



Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Trivedi, Kapil M., 2006, " हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के हास्य व्यंग्य निबंधों का तुलनात्मक अध्ययन ", thesis PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/1050>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के हास्य- व्यंग्य निबंधों का तुलनात्मक अध्ययन

(A COMPARATIVE STUDY OF THE
HUMOROUS & SATIRICAL ESSAY OF
HARISHANKAR PARSAI & VINOD BHATT)

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी)
उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

✽ अनुसंधित्सु ✽
प्रा.के.एम.त्रिवेदी
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
विनयन एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
बगसरा

✽ निर्देशक ✽
डॉ. गिरीश जे. त्रिवेदी
रीडर, हिन्दी विभाग,
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट-360 005

वर्ष : 2006

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रा.के.एम.त्रिवेदी** ने मेरे निर्देशन में यह “**हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के हास्य-व्यंग्य निबंधों का तुलनात्मक अध्ययन**” शीर्षक शोध प्रबंध सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधी के लिए तैयार किया है। इन्होंने उक्त विषय पर यथाशक्ति अध्ययन एवं विश्लेषण-विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है। इस शोध प्रबंध का कोई अंश अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

निर्देशक

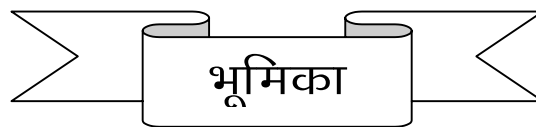
डॉ. गिरीश जे. त्रिवेदी
हिन्दी भवन,
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट।

दिनांक : / /2006

अनुक्रमणिका

हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के हास्य-व्यंग्य निबंधों का तुलनात्मक अध्ययन

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
१	प्राक्कथन	I - X
२	प्रथम अध्याय - तुलनात्मक साहित्य : स्वरूपगत समीक्षा	१ - १७
३	द्वितीय अध्याय - हिन्दी-गुजराती निबंध : स्वरूप एवं विकास	१८ - १०५
४	तृतीय अध्याय - हास्य-व्यंग्य : स्वरूप विश्लेषण	१०६ - १६१
५	चतुर्थ अध्याय - हिन्दी एवं गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा	१६२ - २२२
६	पंचम अध्याय - परसाईजी एवं विनोद भट्ट का जीवन कवन एवं साहित्य	२२३ - २८०
७	षष्ठम् अध्याय - हरिशंकर परसाई के हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का आलोचनात्मक अध्ययन	२८१ - ३४३
८	सप्तम् अध्याय - विनोद भट्ट के हास्य-व्यंग्य निबन्धों का आलोचनात्मक अध्ययन	३४४ - ४१४
९	निष्कर्ष	४१५ - ४२९
१०	परिशिष्ट : सहायक ग्रंथसूची - आधारग्रंथ - सहायक ग्रंथ - शब्दकोश	४३० - ४४०



“हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के हारस्य-त्यंग्य निबन्धों का तुलनात्मक अध्ययन”

प्रस्तावना :-

यह तो सनातन सत्य है कि सृष्टि के सभी प्राणियों में मानव परमात्मा का श्रेष्ठतम सृजन है। वैसे ही साहित्य मनुष्य का सर्वोत्तम सृजन है। मानव-जीवन व सभ्यता के विषय में साहित्य का जितना योगदान रहा है उतना शायद ही किसी तत्व का रहा हो। साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है। साहित्य और समाज का सम्बन्ध अत्यन्त व्यापक और गहरा रहा है। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से समाज की हर प्रकार की हलचल को प्रस्तुत करता है। उसके सभी व्यवहारों को अपनी भावभूमि पर रखकर नापता-तोलाता है। इससे हम कह सकते हैं कि जो समाज की ‘करनी’ है, वही साहित्य की ‘कथनी’ बन जाती है। साहित्य उजाले और अमृत-संजीवनी का प्रतीक माना जाता है। इस संदर्भ में कहा भी गया है -

“अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं हैं और मूर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं हैं।”

वर्तमान समय की बात करें तो पद्य की तुलना में गद्य साहित्य की लोकप्रियता विशेष है। आधुनिककाल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जाता है इनमें से एक कारण यह भी है कि इस युग में गद्य साहित्य का आविर्भाव हुआ। हिन्दी के प्राचीन साहित्य का गौरव पद्यात्मक रचनाओं तक सीमित रहा, आधुनिक साहित्य गद्य की विभिन्न विधाओं- नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, जीवनी, संस्मरण आदि गद्य विधाओं से सम्पन्न हुआ और हो रहा है। वस्तुतः गद्यात्मक रचनाओं की प्रधानता व विविधता के कारण ही इस युग को ‘गद्य-काल’ की संज्ञा दी गई।

निबन्ध आधुनिक साहित्य की देन हैं। निबन्ध आधुनिक चेतना का परिणाम हैं,

निबन्ध अत्यन्त परिष्कृत और प्रौढ़ गद्य का प्रतीक है, शक्ति-सम्पन्न मौलिक गद्य के पूर्ण विकास की अपेक्षा के साथ ही निबन्ध रचना सम्भव हैं। 'निबन्ध' के स्वरूप को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य की अन्य विधाओं से निबन्ध का अलग व उत्तम रूप है। 'निबन्ध' साहित्य रूपी उपवन का सुगन्धित पुष्प है। इसमें लेखक के प्रौढ़ चिंतन का परिचय मिलता है इसलिए आचार्य शुक्लजी ने स्पष्ट कहा है कि - "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।" निबन्ध हिन्दी साहित्य की अद्यतन श्रेष्ठ विधा है। इसका कारण यह है कि निबन्ध में काव्य की-सी रमणीयता, भावुक्ता एवं सरसता होती है, कहानी का विनोदपूर्ण 'बतरस' होता है नाटक की-सी गतिशीलता, अभिनयता, संवादात्मकता एवं प्रभावान्विति होती है, जीवनी का सा आत्मविश्लेषण, निजीपन एवं व्यक्तित्व की विवृति होती है, संस्मरण जैसी विवरणात्मकता, निष्पक्षता, मार्मिकता एवं निजता होती है, रेखाचित्र की-सी चित्रात्मकता, आत्मानुभूति, मनोवैज्ञानिकता एवं कल्पना प्रवणता होती है तथा गद्यगीत की-सी भावासिकता, अनुभूतिप्रवणता, रसात्मकता एवं एकाग्रता होती है, इतना ही नहीं निबन्ध को हम गद्य का शृंगार भी कह सकते हैं।

आधुनिक युग में निबन्ध साहित्य काफी विकसित हुआ है इस में भी हास्य-व्यंग्य निबन्धों की काफी बोलबाला रही है। बीसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हिन्दी साहित्य की प्रमुख घटना है। प्राचीन साहित्य में हास्य-व्यंग्य के दर्शन साधन स्वरूप में होते थे। आज हास्य-व्यंग्य स्वयं एक विधा के रूप में विकसित है। आज व्यंग्य जीवन का शाश्वत और प्रमुख स्वर बन गया है। व्यंग्य समाज एवं मानव-जीवन के अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति हैं। व्यंग्य-जीवन से साक्षात्कार करता है। अच्छा व्यंग्य सूक्ष्म अनुभूति का उत्कृष्ट रूप होता है जो काफी करीब से जीवनानुभूति को स्पर्श करता है। व्यंग्यकार सामाजिक सच्चाईयों से परिचित होता है, वह उसे जानकर चुप नहीं रहता पर वह जोखिम उठाकर भी सच कहने की हिंमत रखता है।

परसाईजी और विनोद भट्ट हास्य-व्यंग्य साहित्य के दो ऐसे स्तंभ हैं जिन्होंने

हास्य-व्यंग्य साहित्य को काफी ऊँचाई प्रदान की है। 'हरिशंकर परसाई' सही मायनो में हास्य-व्यंग्य लेखन में 'मास्टर माईन्ड' हैं। एक ऐसे लौह-लेखक जिनके कारण ही व्यंग्य एक विधा के रूप में स्थापित हो सकी। इधर गुजराती साहित्य में 'विनोद भट्ट' का नाम इसी शृंखला में आता है कि जिन्होंने हास्य-व्यंग्य को साहित्य में महत्व का स्थान दिलाया है। मैंने हिन्दी और गुजराती, दोनों साहित्य के इन रचनाकारों को अपना शोध विषय बनाकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

आधुनिकयुगीन साहित्य में गद्य का विशेष महत्व रहा है। गद्य विधाओं में निबन्ध सर्वाधिक लोकप्रिय विधा हैं। निबन्ध में हास्य-व्यंग्य निबन्धों का अपना एक अनूठा स्थान हैं और हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों में 'हरिशंकर परसाई' एवं 'विनोद भट्ट' सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार हैं। इसलिए इन दोनों निबन्धकारों के हास्य-व्यंग्य निबन्धों का तुलनात्मक अध्ययन साहित्य के लिए एक नवीन दिशा का वाहक सिद्ध हो सकता है।

शोध-विषय की प्रेरणा :-

प्रस्तुत संशोधन के संदर्भ में काफी सालों से सोच चल रही थी, इसमें भी अध्यापक के रूप में कार्यान्वित होने के बाद बार-बार साहस जुटाता था, पर पारिवारिक जिम्मेदारियों के रहते सम्भव नहीं हो पा रहा था, पर अब इन जिम्मेदारियों से थोड़ा मुक्त हुआ हूँ। मेरी अर्धांगिनी कीर्ति ने मुझे प्रेरित किया कि अब इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। मेरे माता-पिता की भी यही इच्छा थी इसलिए फिर मन बना लिया कि अब और बातों को छोड़ कुछ संशोधन किया जाये। इसके फल स्वरूप अब इस पथ पर कदम बढ़ा रहा हूँ।

व्यंग्य साहित्य के प्रति मेरी जिज्ञासावृत्ति छात्रावस्था के समय से ही रही है। इस दिशा में मेरी जिज्ञासा एक व्यंग्यकार ने ही बढ़ाई है, जिनका नाम है - श्रीसुदर्शन मजीठिया। स्व.डॉ.सुदर्शन मजीठियाजी के पास मैंने दो साल तक शिक्षा पायी है। आप एक सशक्त व्यंग्यकार थे कि जिनका प्रभाव आज भी मेरे मस्तिष्क पर हावी रहा है।

आपके व्याख्यानों के दौरान मैं आपकी शैली से अत्यधिक प्रभावित रहा हूँ। आज मुझे लगता है कि वाकई मैं मजीठियाजी की वजह से ही इस शोधकार्य में प्रवृत्त हो सका हूँ।

मेरी पढाई के दौरान मेरे विश्वविद्यालय में डॉ.सुदर्शनजी ने 'हास्य-व्यंग्य' पर द्वि-दिवसीय गोष्ठी का आयोजन किया था। उक्त गोष्ठी में हिन्दी-गुजराती के स्वनामधन्य कई व्यंग्यकार पधारे हुए थे। मेरा सौभाग्य रहा कि इन दिनों मुझे ऐसे साहित्यकारों का 'दर्शन-लाभ' हुआ। परसाईजी की सेहत कुछ नासाज थी इस वजह से वे नहीं आये पर विनोद भट्ट पधारे हुए थे जिनका मुझे सानिध्य प्राप्त हुआ था। मेरी शोध यात्रा में यह प्रसंग भी एक प्रेरक शक्ति है।

शोध की दिशा में अग्रसर होने के लिए मैंने डॉ.गिरीशभई त्रिवेदी का संपर्क किया। आपके पास मैंने अपनी इच्छा प्रकट की। विषय के चुनाव सम्बन्धी आप से मार्गदर्शन लिया, मित्र डॉ.कमलेश देसाई और प्रा.बुखारीजी से परामर्श किया और आखिर विषय तय कर लिया - "हरिशंकर परसाई एवं विनोदभट्ट के हास्य व्यंग्य निबन्धों का तुलनात्मक अध्ययन"।

तुलनात्मक संशोधन का महत्त्व :-

किसी दो भाषा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन अध्येता को व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। इससे उत्तम व सार्वभौम साहित्य की संकल्पना साकारित होती है। विश्व साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय चेतना में अद्भूत समानता है। भारतीय समाज में भाषा, धर्म एवं संस्कृति से संबंधित नाना भेद विद्यमान हैं। इस विविधता में भी एकता का सूत्र अनुस्यूत है। वस्तुतः यह भावात्मक एकता और अखंडितता की नींव है। इस सन्दर्भ में राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषा गुजराती साहित्यकारों के साहित्य के बीच में तुलनात्मक अध्ययन करना आज के गतिशील जीवन की आवश्यकता है।

तुलनावृत्ति मनुष्य की आदि एवं सहज वृत्ति है। मनुष्य को बुद्धि प्राप्त हुई तब से वह किसी न किसी रूप में, किसी न किसी कारण तुलना करता करता रहा है। तुलना करने की उसकी वृत्ति के पीछे किसी न किसी हद तक वस्तु, विचार या किसी घटना

को व्यावहारिक ज्ञान की भूमिका में ज्यादा विशद रूप में और वेधक रूप में हाँसिल करने और करवाने की उसकी इच्छा रही है, और यों कहें तो जब से उसकी रसेन्द्रिय जागृत हुई होगी तबसे तुलना कर रहा है।

समाज और संस्कृति के विकास के साथ तुलना की इस आदि एवं सहजवृत्ति ने ज्ञान विज्ञान की विविध शाखाओं में शोध एवं सिद्धि के लिए निरंतर सक्रिय रह कर मानवजाति की सांस्कृतिक विरासत में संशोधन और विवर्धन किया है। सहजवृत्ति ने मनुष्य की दृष्टि का विकास करके उसे सीमाबद्धता एवं संकुचितता के कटघरे से बाहर निकाला है।

भारत में सर्वप्रथम विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्व साहित्य का खयाल प्रचलित किया। उन्होंने ने १९०७ में 'तुलनात्मक साहित्य' का भारतभूमि में बीजारोपण करते हुए अपने प्रवचन में कहा था कि, "संकुचित प्रदेशवाद-प्रांतवाद में से हमें मुक्त होना पड़ेगा, प्रत्येक लेखक के सर्जन को समग्र रूप से हमें देखना चाहिए और यह समग्रता मनुष्य की वैश्विक सर्जनात्मकता के भाग के रूप में होनी चाहिए अब इस दिशा में कदम बढ़ाने का समय आ चुका है।"

तुलनात्मक साहित्य की व्याख्या करते हुए 'हेन्री रिमार्क' ने कहा है कि, "Comparative literature is the study of literature beyond the confines of one particular country and the study of the relationship between literature on the one hand and other areas of knowledge and belief, such as the arts, philosophy, history, social science religion etc. on the other. In brief it is comparison of one literature with another of others, and the comparison of literature with other spheres of human expression." (तुलनात्मक साहित्य किसी भी प्रकार की कोई निश्चित एक देश या उसकी सीमा को लाँध के होनेवाला साहित्यिक अभ्यास है, वह एक ओर से साहित्य और दूसरी ओर कला, तत्वज्ञान, इतिहास, समाजविद्या, विज्ञान, धर्म आदि ज्ञान और

मान्यता के अन्य क्षेत्रों के बीच के संबंध का अभ्यास है, संक्षेप में वह एक साहित्य की अन्य साहित्यों के साथ और साहित्य की एवं मानवीय अभिव्यक्ति के अन्य क्षेत्रों के साथ की तुलना है।)

इन बातों से इसका स्वरूप कुछ इस प्रकार स्पष्ट है.....

- वह एक देश या काल में बँधा हुआ नहीं रहता।
- दो कृतियों, दो देशों की न हो एक ही देश की हो पर यह भिन्न-भिन्न भाषा की होनी चाहिए।
- एक ही प्रदेश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यों की तुलना भी हो सकती है।
- एक से अधिक भाषा में सर्जन की गई एक ही रचना की दो कृतियों का तुलनात्मक अभ्यास हो सकता है।
- तुलनात्मक साहित्य में साहित्य की तुलना अन्य कलाओं के साथ भी हो सकती है।
- तुलनात्मक साहित्य में तुलना साम्यता द्वारा विवेच्यकृति में साम्य, वैषम्य की चर्चा अपेक्षित होती है।

इस प्रकार तुलनात्मक साहित्य का अपने आपमें एक विशेष महत्व है, क्योंकि कोई भी तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक राष्ट्रीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में या अन्य कुछेक बौद्धिक अभ्यासों के संयोजन में साहित्यिक घटनाओं का किया हुआ अभ्यास है। इसलिए उसका विशेष महत्व रहता है।

व्यंग्य की दिशाएँ एवं भविष्य :-

पूर्ववर्ती शोध-कार्य एवं भावी शोध-प्रबन्ध की दिशाएँ :-

हिन्दी साहित्य के प्रमुख व्यंग्यकार 'हरिशंकर परसाई' एवं गुजराती व्यंग्य साहित्य में जिसका विशिष्ट योगदान माना जाता है ऐसे 'विनोदभाई भट्ट' दोनों का हिन्दी-गुजराती साहित्य में विशिष्ट स्थान रहा है। परसाईजी एवं विनोदभाई भट्ट पर

व्यक्तिगत रूप से काफी कार्य होता रहा है, पर दोनों व्यंग्यकारों को साथ लेकर हिन्दी-गुजराती व्यंग्य एवं व्यंग्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा हो ऐसा शायद प्रथम प्रयास है। दोनों पर स्वतंत्र रूप से काफी कुछ लिखा जा चुका है, जैसे.....

- ☞ हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ.मनोहर देवलियाँ
- ☞ हरिशंकर परसाई की दुनियाँ - डॉ.मनोहर देवलियाँ
- ☞ व्यंग्य का सौंदर्य-शास्त्र एवं परसाईजी की व्यंग्यकला - डॉ.मनोहर देवलियाँ
- ☞ परसाईजी का प्रथम पुरुष - डॉ.धनंजय शर्मा
- ☞ हरिशंकर परसाई की संवेदन दुनियाँ - डॉ.सुरेश आचार्य
- ☞ हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में वर्ग चेतना - कुमारी आभा भट्ट
- ☞ हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि - राधेमोहन शर्मा
- ☞ विनोद भट्ट - प्रफुल्ल रावल
- ☞ नमुं ते हास्य-ब्रह्म ने - रतिलाल बोरीसागर
- ☞ विनोद विमर्श - विनोद भट्ट
- ☞ गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष - मधुसूदन पारेख

हिन्दी-गुजराती साहित्य में तुलनात्मक दृष्टिकोण से डॉ.भगवानदास कहार ने (डी.लिट्) संशोधन किया है, जिसका शीर्षक है - 'हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन' पर हिन्दी-गुजराती व्यंग्य साहित्य के लिए और भी संशोधन कार्य संभव है। जैसे.....

- ☞ हिन्दी-गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्धों का तुलनात्मक अनुशीलन।
- ☞ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-गुजराती हास्य-व्यंग्य उपन्यास - एक अनुशीलन।
- ☞ हिन्दी-गुजराती व्यंग्य विकास में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका।
- ☞ हिन्दी-गुजराती हास्य-व्यंग्य नाटकों का सम्यक् मूल्यांकन।
- ☞ सुदर्शन मजीठिया एवं बकुल त्रिपाठी के हास्य-व्यंग्य साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन।

इस प्रकार हिन्दी-गुजराती की विभिन्न हास्य-व्यंग्य रचनाओं को लेकर एवं हिन्दी-

गुजराती के प्रमुख हास्य-व्यंग्य लेखकों के बीच तुलनात्मक संशोधन संभव है जो हास्य-व्यंग्य साहित्य के विश्व को विविधता, विशालता एवं गहरई प्रदान कर सकता है। हास्य-व्यंग्य साहित्य का भविष्य काफी उज्ज्वल है।

कृतज्ञता ज्ञापन :-

यह सत्य है कि छोटा सा कर्म भी अपने आप सम्पन्न नहीं होता। हर क्रिया के पीछे विभिन्न क्रिया-प्रक्रियाओं का सहयोग जुड़ा हुआ रहता है। मनुष्य स्वयमेव कोई कार्य करता है तो भी उसमें विभिन्न अंगों का सहयोग रहता है। हम छोटे से शब्द का उच्चारण करते हैं तब भी जिह्वा को मुँह के विभिन्न हिस्सों का सहयोग लेना पड़ता है। तब जब कोई बड़ी साधना व कर्म होता है तो अवश्य ही वह अनेक आशीर्वादों का, शुभकामनाओं का, सद्भावनाओं का, सहयोगों का प्रतिफल होता है। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर मैं ऋणमुक्त नहीं होना चाहता पर मेरे इस योग में उनकी महत्ता को भी प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ। मेरे संशोधन में परिजनों, गुरुजनों, मित्रों, शिष्यों, सहपाठियों, सहकर्मियों का साजा योग रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रारम्भ से लेकर सम्पन्न होने तक मुझे नामी अनामी कई मनीषियों का, विद्वत्जनों का असीम स्नेह और मार्गदर्शन मिला है। सर्वप्रथम तो मैं उस अगम-अगोचर जगत नियंता, जगत गुरु के प्रति नतमस्तक हूँ जिनकी कृपा मेरे लिये हरदम बनी रही है किन्तु अध्ययन के क्षेत्र में विद्यागुरु ही सर्वोपरि है। मुझे इस शोध-प्रबंध के लिये प्रेरित करनेवाले श्रद्धेय डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी (रीडर, हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) का मैं ऋणी हूँ। वे प्रारंभ से ही मेरे पथ-प्रदर्शक रहें। शीर्षक चयन से लेकर शोध-प्रबंध सम्पन्न होने तक उनके कुशल निर्देशन, परिश्रमी एवं उत्साहवर्धक स्वभाव के कारण मेरी शोधयात्रा बिना किसी व्यवधान के निरंतर चलती रही। उनकी मौलिकता, मर्मज्ञता के साथ-साथ सालसता व सरलता ने मुझे विद्यार्जन के साथ व्यवहारु ज्ञान भी दिया है। साथ ही डॉ. एस.पी. शर्मा (विभागाध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) का मैं आभारी हूँ जिनकी ओर से मुझे यथा समय

सुचारु मार्गदर्शन मिलता रहा। प्रा.बी.के.कलासवाजी के साथ मेरा संवाद हरदम चलता रहता था। उनके सुझावों से मैं विशेषतः लाभान्वित हुआ हूँ।

प्रातः स्मरणीय मेरे माता-पिता की जीवन के प्रति आस्था, सत्य, निष्ठा, सर्वहित चिंतन, कर्मयोगी जीवनशैली ने हरदम मेरा आत्मविश्वास बनाये रखा, आज मैं जो भी हूँ वह उनके धैर्य व साधना का ही फल है। मेरे इस संशोधन में मेरी अर्धांगिनी ने सही रूप में अपनी भूमिका को साकारित किया है क्योंकि मेरे मंथन को उसीने शब्दबद्ध किया है। पारिवारिक व व्यावसायिक व्यस्तता के बावजूद हर कदम पर उसने मेरा साथ दिया है।

मेरे चिंतन से निरंतर जुड़े रहकर मेरा मार्ग प्रशस्त करनेवाले मेरे बन्धुवत मित्र प्रा.डॉ.कमलेश देसाई और प्रा.यु.के.बुखारी का मैं तहेदिल से शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने हर समय तत्परता दिखाकर मेरे विचारों को वाचा दी है। मेरे कर्म को क्रियात्मक रूपों में ढाला है। मेरे संशोधन के खयाल से लेकर खत्म होने तक उनका खुला समर्थन मिला है।

मेरे कॉलेज के ट्रस्टी श्री वजुभाई धानक की “न झुकना है, न रुकना है” की जीवनशैली ने भी मुझे विशेष प्रेरणा दी है। मेरे कॉलेज के प्राचार्य श्री देवजानी सेन का भी मुझे कुशल मार्गदर्शन मिला है एवं कॉलेज के सभी कर्मचारियों से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उचित सहयोग प्राप्त हुआ है। भाषा-साहित्य से जुड़े हुए प्रा.रमेशभाई फिचडिया, सुभाषभाई मोरी, हरिभाई वाला के साथ मेरा विमर्श निरंतर चलता रहता था तो प्रा. बी.जे.पटेल, प्रा.डी.एम.राठोड, प्रा.एच.वी.चौधरी की ओर से भी मुझे सार्थक समर्थन मिलता रहा। कॉलेज के ग्रंथपाल अमरसिंहभाई हर समय तत्परता के साथ मेरी आवश्यकता की पूर्ति करते रहें। इन सभी साथी अध्यापक मित्रों की विशेष भूमिका रही हैं। साथ ही मेरे छात्र विपुल देवमुरारी ने सामग्री संकलनकर्ता के रूप में मेरी एवं ग्रंथालयों के बीच मज़बूत कड़ी बनकर हर वक्त मेरी सहायता की है।

मेरे इस शोध-प्रबन्ध को निश्चित समयावधि में पूर्ण करने में मुझे बहुत से अध्यापकों का समर्थन मिला है, जो अपनी व्यस्तता के बावजूद भी हर समय, हर सम्भव प्रयास कर मेरे बोझ को हलका करते रहे। प्रा.प्रवीणाबहेन रावल, प्रा.जागृति पंड्या,

प्रा.गोपाल निरंजनी, प्रा.सनत त्रिवेदी के मज़बूत समर्थन से मुझे बल मिला है। साथ ही डॉ.गेलजीभाई भाटियां, डॉ.नवनीत जोशी, डॉ.राजेन्द्र चोटलीयाँ, डॉ.उदयनारायण मिश्र, डॉ.महेश व्यास, डॉ.जनक जोशी, डॉ.वीना मनचंदा, डॉ.लीना चौहान, डॉ.वी.पी.चौहान के साथ समर्थ विमर्श से मेरा संशोधन ज्यादा सर्वग्राही एवं समृद्ध बन सका है।

इस अवसर पर मैं उन ग्रंथालयों एवं ग्रंथपालों के प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिनके सहयोग के बिना मेरा यह कार्य असम्भव ही था। जिनमें श्रीमती जे.सी.धानक कॉलेज-बगसरा, एम.बी.आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज-गोंडल, महिला आर्ट्स, कॉमर्स एण्ड होमसायन्स कॉलेज-गोंडल, कणसागरा महिला कॉलेज-राजकोट, बहाउद्दीन आर्ट्स कॉलेज-जुनागढ़, एच.एल.पटेल आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज-भायावदर, आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज-माणावदर, शामळदास आर्ट्स कॉलेज-भावनगर, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय-राजकोट, जिल्ला पुस्तकालय-राजकोट, गुजरात विद्यापीठ-अहमदाबाद के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। मेरे अध्ययन को विकसित एवं विस्तारित करने में उनकी अहम भूमिका रही है। साथ ही उन तमाम लोगों के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ कि जिनकी सद्भावना मेरे साथ जुड़ी रही एवं मेरे इस शोध-प्रबन्ध में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहयोगी रहे हैं।

अंततः उस परम तत्त्व के प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करता हूँ जिनके असीम आशीर्वाद से मैं शक्ति व सामर्थ्य जुटाकर इस शोध-यात्रा को पूर्ण कर पाया।

बगसरा

विनीत,

दिनांक : / / २००६

प्रा.के.एम.त्रिवेदी

अध्याय : १

तुलनात्मक साहित्य : स्वरूपगत समीक्षा

१.१ प्रास्ताविक

१.२ आवश्यकता एवं महत्त्व

१.३ तुलना : व्युत्पत्ति, अर्थ एवं इतिहास

१.४ तुलनात्मक साहित्य : व्याख्या एवं स्वरूप

१.५ तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र

१.१ प्रास्ताविक :-

यह सनातन सत्य है कि तुलनात्मक अध्ययन आज के युग की माँग है आज की अतिआवश्यक संकल्पना है। “तुलनात्मकवृत्ति मनुष्यनी आदि अने सहजवृत्ति छे। मनुष्य ने बुद्धि प्राप्त थई त्यार थी ते कोई न कोई रीते, कोई ने कोई हेतु माटे तुलना करतो रह्यो छे ! तुलना करवानी एमनी प्रवृत्ति पाछल वत्ता ओछा प्रमाण मां वस्तु, विचार के कोई घटना ने व्यवहार ज्ञान नी भूमिकाए वधु विशदता थी अने वेधकता थी पामवा पमाडवानी एमनी इच्छा काम करी रही होय छे।”^(१) हम हमारी आदिम अवस्था से लेकर आजतक के मानवजीवन के क्रमिक विकास को देखे तो यह सहज हो जाता है कि उस विकास में तुलनात्मक दृष्टि बिन्दुओं का विशेष योगदान रहा है। तुलनात्मक एवं अनुकरणात्मकवृत्ति के कारन ही मनुष्य का शारीरिक एवं बौद्धिक विकास हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टिकोण को भाषा-साहित्य के नज़रिये से देखा जाय तो यह भारतवर्ष के सन्दर्भ में विशेष उपयुक्त एवं आवश्यक है क्योंकि, “भारतवर्ष बहुभाषा देश है। गुजराती, मराठी, कन्नड, मलयालम, तमिल, तेलुगू, बंगला, असमी, कश्मीरी, पंजाबी, सिन्धी, हिन्दी तथा उर्दू भारतवर्ष की प्रधान आधुनिक भाषाएँ हैं।”^(२) जब तक भारतवर्ष की इन भाषाओं को तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा नहीं जाता तब तक उनमें छिपा वैविध्य व वैशिष्ट्य सार्वजनिक नहीं हो सकता है। यही कारन है कि, “भारतवर्ष के स्वतंत्र हो जाने के बाद ही भारतवर्ष की आधुनिक भाषाओं का सम्मान बढ़ा है और उनके विकास की ओर ध्यान दिया गया है।”^(३) उसी दिशा का एक बिन्दु है तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा, समाज और संस्कृति के विकास के साथ तुलना की ये आदि एवं सहजवृत्ति ने ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं में शोध एवं सिद्धि के लिए निरन्तर सक्रिय रहके मानवजाति की सांस्कृतिक विरासत में संशोधन और विवर्धन, विवेचन किया है, जिनसे मनुष्य का समाज व जीवन के प्रति उसे देखने का नज़रिया कुछ बदला है। विकसित हुआ है। उनके सीमित व संकुचित दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। वो प्रांतियता से उपर उठके राष्ट्रीय एवं आंतरराष्ट्रीय चहल-पहल को पहचान सका है। इसी कारन विश्वसाहित्य की दिशा भी बनती हुई नज़र आती है।

9.2 आवश्यकता एवं महत्त्व :-

आज साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक आधारों को अपनाने की विशेष आवश्यकता महसूस की जाती है। आज ये कार्य इतना कठिन नहीं है। आज आसानी से हम जिस प्रकार की जानकारी हाँसिल करना चाहे, कर सकते हैं। अगर हम अपने दायरे को बढ़ाना चाहते हैं, अगर विशाल दृष्टिकोण व गहरी समझ पैदा करना चाहते हैं तो विकसित समाज के अन्य भाषा-साहित्य में जो कुछ भी पनप रहा है, अपने साथ तुलनात्मक अभिगम से यह निश्चित किया जा सकता है कि हम कहाँ खड़े हैं। किसी दो भाषासाहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से व्यापक दृष्टिकोण पैदा होता है। इससे श्रेष्ठ व सार्वभौम साहित्य का आदर्श सिद्ध होता है। विश्व साहित्य में व्यक्त होनेवाली मानवाभिव्यक्ति में काफी हद तक समानता है। इस सन्दर्भ में भारतीय जनसमाज में भाषा, धर्म, संस्कृति में विषमता के बावजूद उसमें साम्यता का सूत्र अनुस्यूत है। भारत में हर प्रान्त की अपनी भाषा है, जिसकी सभ्यता व संस्कृति भिन्न-भिन्न है। उनको तुलनात्मक नज़रिये देखने की विशेष आवश्यकता है। “आज प्रायः सभी आधुनिक भाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों में विकसित हो रही हैं। उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाया गया है। सभी अपनी-अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त कर सकें ऐसी सुविधा पहले की अपेक्षा अधिक उपलब्ध है। परिणाम यह हुआ कि ये सब भाषाएँ पहले की अपेक्षा अधिक व्यवहार में हैं और इनका तुलनात्मक अध्ययन करना अधिक सुलभ हो गया है।”^(४) आज की यह आवश्यकता है कि विभिन्न भाषाओं में विकसित भारतीय भाषा संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन हो, जिनसे भारतीय संस्कृति का एक व्यापक रूप प्रस्थापित हो सकता है। एवं स्थानिय, प्रांतीय सीमाओं से उपर उठकर विश्वसाहित्य की विभावना बन सकती है। कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके महत्त्व को समजते हुए कहा था कि, “संकुचित प्रदेशवाद, प्रांतवाद मांथी आपणे मुक्त थवुं ज रह्यु। हवे आ दिशा मां डग मांडवानो समय पाकी चूक्यो छे।”^(५) भारतीय भाषा साहित्य के सन्दर्भ में ये विशेष महत्त्वपूर्ण व आवश्यक माना जा सकता है, क्योंकि भारत बहु भाषा-भाषी देश है जिनमें विभिन्न भाषा-साहित्य के बीच का तुलनात्मक अभ्यास राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में विशेष कारगर सिद्ध

हो सकता है। जिनसे ज्ञान का विस्तार होगा, जानकारीयाँ बढ़ेगी, अपनी अभिव्यक्तियों को श्रेष्ठतम रूप दिया जा सकेगा। राष्ट्रीय साहित्य में एक सर्वसामान्य भावबोध प्रस्थापित होगा, भावात्मक एकता प्रस्थापित होगी एवं बहोत-सी ऐसी नवीन दिशाएँ खुलेगी इसलिए आज के सन्दर्भ में विभिन्न भाषा-साहित्य के बीच में तुलनात्मक अभिगम को अपनाने की आदिम अवस्था से आजतक की उनकी विकास गाथा पर दृष्टिपात किया जाय तो वो अनुकरण एवं तुलनात्मक अभिगम के कारन ही सम्भव हो सका है। मनुष्य किसी ऐसे सामान्य निर्णय लेने से पहले तुलना का ही आधार लेता है, वह अपने भुतकालीन अनुभवों पर से भविष्य के मार्ग को प्रशस्त करता है। अतः हर क्षेत्र में तुलना का विशेष महत्व रहा है। आज के भाषा-साहित्य की दिशा को विस्तार देने व उसे विकसित करने के लिए विभिन्न भाषा-साहित्य के बीच तुलना की आज विशेष आवश्यकता है। तुलनात्मक अध्ययन के वैशिष्ट्य को व्यक्त करते हुए डॉ. रनजीव कुमार ने माना है कि, “तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा तुलनीय पक्षों की ऐसी विशेषताओं का अध्यापन हो जाता है, जो सामान्य अध्ययन के द्वारा प्रकाश में नहीं आ पाती है। तुलनीय कवि या कृतियाँ एक दूसरे को नवीन संदर्भ प्रदान करते हैं। एक दूसरे के संदर्भ में इनका नवीन रूप प्रकट होता है। तुलनात्मक अध्ययन भाषा और साहित्यों के परस्पर संपर्क को बढ़ाता है। एक भाषा के अध्ययन-अध्यापन के लिए दूसरी भाषा और साहित्य की सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। दो भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से अनुवाद और मशीनी अनुवाद में सहायता मिल सकती है। पारस्परिक संपर्क और आदान-प्रदान से भाषाओं और साहित्यों के क्षितिज विस्तृत होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा समता और विभेदों का तटस्थ अध्ययन करके भ्रम और पूर्वाग्रह से मुक्त हुआ जा सकता है। इससे एक ही देश की विभिन्न इकाइयों को परस्पर निकट आने की संभावनाएँ प्रोत्साहन पाती है। तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात शोधार्थी और शोध-प्रबन्ध अध्येताओं का मन अनेक भ्रमों और दम्भों से मुक्त हो जाता है। सत्य की पारदर्शिता सामने आ जाती है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मानवजाति के हृदय एवं मस्तिष्क में परिलक्षित भाव-साम्य का समुद्घाटन एवं विश्व-साहित्य के द्वारा विश्व मानवता की

एकता का निरूपण किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन मानव के सीमित ज्ञान-क्षेत्र को विस्तृत करता है और उसके भाषागत, साहित्यिक एवं प्रादेशिक बंधनों को ज्ञानार्जन में बाधा नहीं डालने देता। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा विभिन्न साहित्यों की समानताओं एवं विभिन्नताओं का विवेचन करके इनके कारणों का अन्वेषण किया जाता है, विश्वमानव एवं विश्व-मानवतावाद को प्रतिष्ठित किया जाता है।^(६)

तुलनात्मक साहित्य के वैशिष्ट्य को व्यक्त करते हुए डॉ.एस.गुलाम रसूल ने माना है कि, 'इनसे ज्ञान-विज्ञान की नई दिशाओं का उद्घाटन होता है। भाषाशैली एवं अभिव्यंजना की मनोहारी अभिनव छटाओं का दिग्दर्शन होता है। राष्ट्रीय एवं भावात्मक ऐक्य का विश्वसनीय प्रतिपादन होता है। विश्व मानव चेतना का संश्लेषण बहुमुखीय रूप का प्रकटीकरण जाति, धर्म एवं रुढ़ियों द्वारा आरोपीत भिन्नता में अन्तर्हित सामाजिक आदर्श एवं त्यागप्रधान भारतीय संस्कृति का संस्थापन एवं अनेक न्यूनताओं के प्रति सतर्कता तुलनात्मक अध्ययन द्वारा सम्भव होती है।'^(७)

- इनके अलावा देशकी विविधता और विचित्रता में मूलभूत एकता का अन्तर्दर्शन कराने में तुलनात्मक अध्ययन का विशेष महत्त्व है।^(८)
- भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक एकता की अनुभूति को तुलनात्मक अध्ययन आधार प्रदान करता है।^(९)

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन के कारण काफी कुछ नावीन्य एवं वैशिष्ट्य को उजागर किया जा सकता है, क्योंकि ऐसा अध्ययन व्यक्ति को देशकाल, भाषा एवं साहित्य के ऐसे सभी बन्धनों से मुक्तकर ज्ञान के द्वार को अर्जित करने में सहायक सिद्ध होता है।

१.३ तुलना : व्युत्पत्ति, अर्थ एवं इतिहास :-

तुलना शब्द को व्युत्पत्ति के आधार पर देखे तो ये 'तुल' धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से 'तुलन' शब्द बनता है। पुनः उसे 'आ' के योग से 'तुलना' शब्द व्युत्पन्न होता

है।^(१०) तुलना शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है, साहित्यिक सन्दर्भ में तो इनका आज प्रयोग होता है पर इनके अलावा सामाजिक व्यवहारों में, शिक्षा में, व्यावसायिक लेनदेन में कारोबार के साथ ये शब्द अपने भिन्न-भिन्न अर्थों के साथ जुड़ा हुआ है। उनका विस्तृत विवेचन करते हुए डॉ.रनजीव कुमार ने इन्हें निम्नलिखित कोटियों में वर्गीकृत किया है।

तुलना के अर्थात्मक भेद

संज्ञात्मक अर्थ		क्रियात्मक अर्थ	
सामान्य अर्थ	विशेष अर्थ	सामान्य अर्थ	विशेष अर्थ
समतापरक अर्थ	काव्यशास्त्रीय अर्थ	बाह्य अर्थ	उपवेशनात्मक अर्थ
गणनापरक अर्थ	दार्शनिक अर्थ	आन्तरिक अर्थ	अस्त्र प्रक्षेपणात्मक अर्थ
तौलपरक अर्थ			नियमिततापरक अर्थ
तारतम्यपरक अर्थ			अनुमानात्मक अर्थ
प्रतियोगिता परक अर्थ			अभ्यासपरक अर्थ
			विचारात्मक अर्थ
			तत्परतापरक अर्थ
			परिपूर्णात्मक अर्थ
			हठपरक अर्थ
			दृढसंकल्पपरक अर्थ ^(१०)

इनसे स्पष्ट है कि 'तुलना' शब्द व्यापक रूप से विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है, पर साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन के सन्दर्भ में देखे तो आज व्यापक रूप से वो सर्वस्वीकृत शब्द है, पर 'तुलनात्मक साहित्य' शब्द में उनके पदक्रम को लेकर काफी भ्रांतियाँ उत्पन्न हुई हैं। एक तरह से चर्चास्पद रहा है। 'तुलनात्मक साहित्य' इस पद को देखे तो वो दो शब्दों के मेल से बना है, जिनमें 'तुलना' विशेषण में 'साहित्य' विशेष्य जुड़ा हुआ है। जिनसे ये अर्थ प्रतिपादित होता है कि ऐसा साहित्य जो तुलनामुलक हो, उसे 'तुलनात्मक साहित्य' कहा जाय। वस्तुतः 'तुलनात्मक साहित्य' पद से साहित्य के

अर्थ में विस्तार आ गया है पर यहाँ 'साहित्य' का अर्थ सर्जनात्मक साहित्य तक ही सीमित समजना है। इस प्रकार, "तुलनात्मक साहित्य का पारिभाषिक अर्थ है, 'साहित्य का तुलनात्मक अभ्यास'। इस तरह साहित्य का तुलनात्मक अभ्यास करने का कार्य यानी 'तुलनात्मक साहित्य'।"^(११)

तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है, "अंग्रेजी के कवि मैथ्यू आर्नल्ड ने सन् १८४८ में अपने एक पत्र में सबसे पहले 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' पद का प्रयोग किया था।"^(१२)

"फ्रांसीसी में इससे पहले से 'लितरेत्योर कोंपारे' शब्द चल रहा था, जिसका प्रयोग पहली बार विलेमां ने १८२९ में क्यूवियर के 'अनातोमीकोपारे'(१८००) के साद्रश्य पर किया गया था और वहाँ आज भी यह शब्द प्रचलित है।"^(१३) अंग्रेजी में प्रयुक्त comparative शब्द लेटिन शब्द comparativus पर से बना मालूम पड़ता है तो उसी प्रकार से विज्ञान के क्षेत्र में, व्यावयायिक एवं राजनैतिक क्षेत्र compare, comparison में आदि शब्दों का प्रयोग दो वस्तुस्थिति के बीच साम्य-वैसम्य को व्यक्त करने के लिए होता है। पर आज 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' शब्द स्थायी रूप से अपना लिया गया है, जो रुढ़ हो गया है। आज उनके पारिभाषिक अर्थ को लेकर कोई ऐसी संदिग्धता देखने को नहीं मिलती। डॉ.राजुरकर ने इनकी स्पष्टता करते हुए लिखा है कि, "अंग्रेजी भाषा में आरंभ से ही भूल हो गई। किन्तु उसका प्रचलन आगे इतना व्यापक हो गया कि नाम बदलने के प्रयत्न व्यर्थ प्रतीत हुए और फिर हिन्दी में जब यह कार्य आरम्भ हुआ तो उसी अंग्रेजी के पद का शाब्दिक अनुवाद कर लिया गया। सच तो यह है कि प्रचलन में इतना बल होता है कि वह वास्तविकता की ओर ध्यान नहीं देता और जो लोग अर्थ मीमांसा करना चाहते हैं, वे भी आरंभ में अर्थ दोष बतलाकर पुनः प्रचलित अर्थ को स्वीकार कर अपना काम करने लगते हैं।"^(१४) इसलिए आज इस शब्द का सहज स्वीकार हो गया है।

१.४ तुलनात्मक साहित्य की व्याख्याएँ :-

साहित्य के तुलनात्मक अभ्यास को लेकर विभिन्न विद्वानों ने उसे यथोचित रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया है। जिनसे तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप सहज ही स्पष्ट हो जाता है, उनका परिचय मिल जाता है उनकी मर्यादाओं, वैशिष्ट्य एवं उपयोग का पता चलता है। इस सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वानों में J.A.Cuddoh, Henry Remark एवं F.W.Chandler ने काफी अर्थसभर परिभाषाएँ दी हैं। यथा-

"Comparative literature is the examination and analysis of the relationships and similarities of the literatures of different peoples and notions."^(१५) (तुलनात्मक साहित्य यानी विभिन्न राष्ट्रों की जनताओं के साहित्यों का भीतरी संबन्ध और समानता का विश्लेषण एवं उनका अभ्यास।)

"Comparative literature is the study of literature beyond the confines of one particular country and the study of relationship between literature on the one hand and other areas of knowledge and belief, such as arts... philosophy, history, the social sciences, the science, religion etc.... on the other. In brief comparison of one literature with another or other, and the comparison of literature with other spheres of human expression."^(१६) (तुलनात्मक साहित्य कोई भी एक निश्चित देश या उनकी सीमा को लाँध के होनेवाला साहित्यिक अभ्यास है वह एक ओर से साहित्य और दूसरी ओर कला, तत्त्वज्ञान, इतिहास, समाजविद्या, विज्ञान, धर्म आदि ज्ञान और मान्यता के अन्य साहित्यों के साथ और साहित्य की एवं मानवीय अभिव्यक्ति के अन्य क्षेत्रों के साथ की तुलना है।)

तुलनात्मक साहित्य का अभ्यास एक विशिष्ट शैली से साहित्य को उनके सर्वांगी रूप से देखने का तरीका है। इस प्रकार के साहित्य की सर्वांगीता का सिंचन भिन्न राष्ट्रों के साहित्यिक अंशों से होता है। भाषा-विज्ञान के अभ्यास से अलग ऐसी ये विभावना

है।^(१७)

इसी तरह से भारतीय विद्वानों ने भी तुलनात्मक साहित्य के सन्दर्भ में जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं वह भी सारगर्भित हैं जिनसे सहज ही उनका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

डॉ.इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार, “भारत जैसे बहुभाषी देश की स्थिति को ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा मात्र यही हो सकती है कि तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ प्रतीति एवं ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है।”^(१८) उन्होंने यह भी माना है कि, “तुलनात्मक साहित्य साहित्येतिहास का विश्लेषण है जिसमें विभिन्न साहित्यों के पारस्परिक यथार्थ संबंधों की छानबीन की जाती है और गंभीर अध्ययन के द्वारा सारे तथ्यों को उभारते हुए साहित्य को एक जैविक प्रक्रिया तथा अविच्छिन्न संचित संपूर्ण इकाई के रूप में देखा जाता है।”^(१९)

डॉ.नगेन्द्र के अनुसार, “तुलनात्मक साहित्य जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह नामपद वास्तव में एक प्रकार की न्यून पदीय प्रयोग है और साहित्य के ‘तुलनात्मक अध्ययन’ का वाचक है।”^(२०) तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का अंतः साहित्यिक अध्ययन है, जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है - अनेकता में एकता का संधान।^(२१)

राजूरकर के अनुसार, “तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ प्रतीति एवं ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है।”^(२२)

इस प्रकार इन परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से अभिप्रेत है कि किसी एक भाषा-साहित्य को दूसरे भाषा-साहित्य से जोड़कर देखना एवं साहित्य का अन्य कलाओं के साथ ज्ञान, आध्यात्म, संस्कृति या तो विभिन्न सामाजिक व्यवहारों के तुलनात्मक अभ्यास का संकेत मिलना। जिसके लिए, “भाषागत

वैविध्य रुपी परदे को अनावृत करना सर्वप्रथम आवश्यक कार्य है।^(२३) क्योंकि तुलनात्मक साहित्य विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त साहित्य का ही अभ्यास करता है इसलिए साधारण रुप से इसके अध्ययन में एक से अधिक राष्ट्रों जिस में भाषा वैविध्य है उनके संपूर्णतः सामाजिक सारोकारों का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है। उनकी अभिव्यक्तियों में रहा भावात्मक एकता का सूर ही विश्वमानव को हर क्षेत्र में करीब ला सकता है। इनसे तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप कुछ इस रुप में व्यक्त होता है - यथा,

- तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र काफी विशाल है। क्योंकि इसमें एक तथ्य की खोज में दो साधारणतः समान सन्दर्भ नियोजित होने लगते हैं।
- दो भाषा के लेखकों (राष्ट्रीय या आन्तरराष्ट्रीय) या उनकी किन्ही दो कृतियों का अभ्यास होना चाहिए।
- वह एक देश या काल से बन्धा हुआ नहीं रहता।
- ये बहु आयामी है जिनकी आधार सामग्री एक से अधिक स्रोत से ली जाती है।
- दो भिन्न-भिन्न संस्कृति से जुड़े लेखकों को चुनने से सार्थक तुलना होती है।
- दो कृतियाँ दो देश की न हो, एक ही देश की हो, पर ये भिन्न-भिन्न भाषा की होनी चाहिए।
- इसमें दो स्तरों पर तुलनात्मक अभ्यास होता है, प्रथम दो प्रभावस्रोत का फीर साहित्य में उनका स्वरूप देखा जाता है।
- एक भाषा में लिखी गई दो कृतियों के बीच तुलनात्मक अध्ययन, तुलनात्मक साहित्य नहीं कहा जा सकता।
- एक ही प्रदेश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यों की तुलना भी हो सकती है।
- साधारणतः इसमें दो या दो से अधिक विषयों की तथ्य परक तुलना होती है।
- एक से अधिक भाषा में सर्जन की गई एक ही रचनाकार की दो कृतियों का तुलनात्मक अभ्यास हो सकता है।

- तुलनात्मक अध्ययन में तर्कशक्ति का विशेष महत्त्व रहेता है।
- तुलनात्मक साहित्य में साहित्य की तुलना अन्य कलाओं के साथ भी हो सकती है।
- तुलनात्मक साहित्य में तुलना साम्यता द्वारा विवेच्य कृति में साम्य-वैषम्य की चर्चा अपेक्षित रहती है।

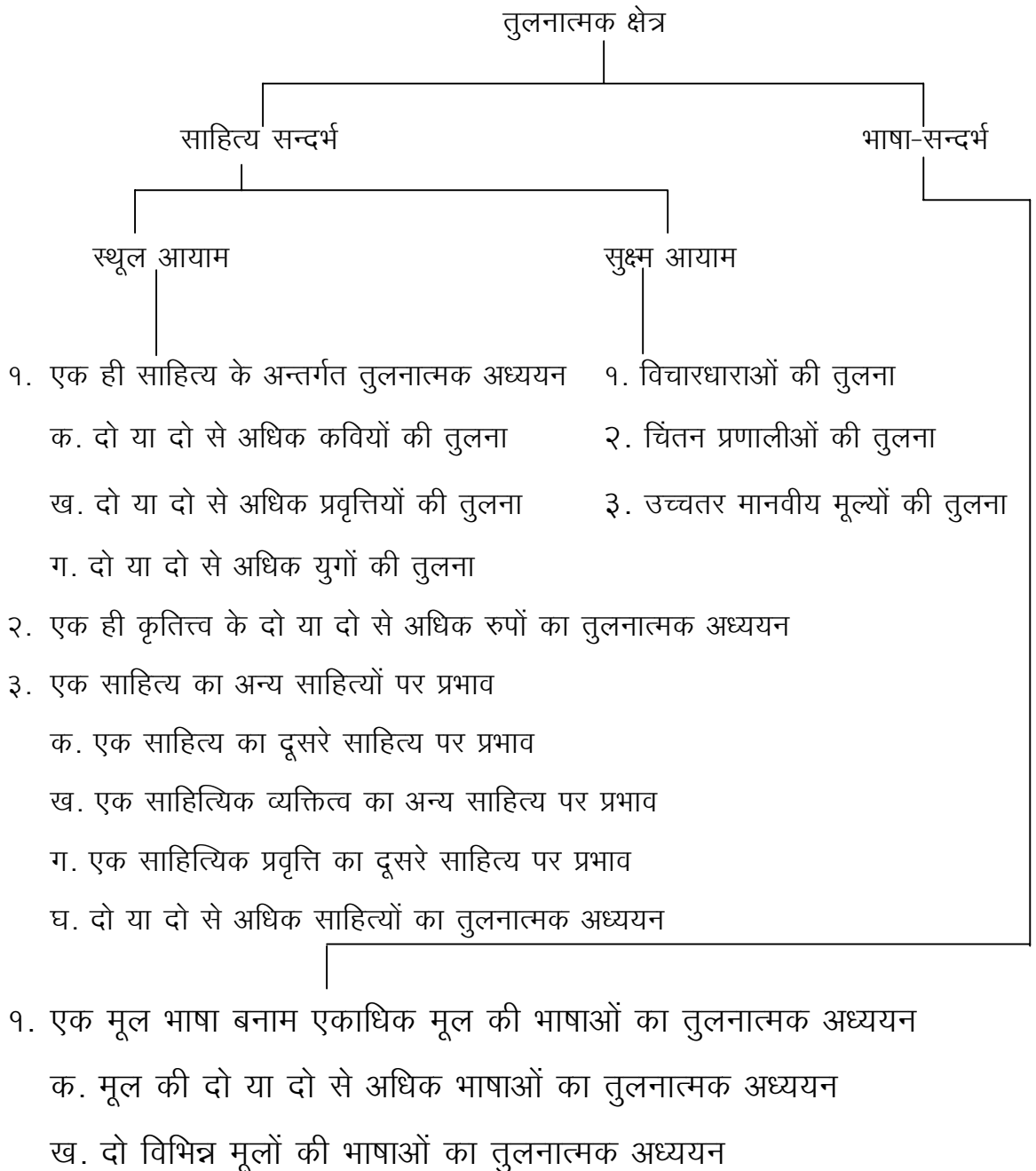
डॉ.दयाशंकरजी मानते है कि तुलनात्मक साहित्य की मुख्य तीन शर्तें है। प्रथम - तुलनाकार कम से कम दो भाषाओं पर प्रभुत्व रखता हो और उनमें लिखे गये साहित्य से सुपरिचित हो। द्वितीय - उसके पास द्विस्तरीय दृष्टिकोण होना आवश्यक है। तृतीय - तुलनाकार कभी-कभी दोनों भाषाओं के साहित्य से परिचित होता है तथा कभी यह अनूदित ग्रंथों को ही आधार बनाता है। अतः तुलनात्मक साहित्य के लिए स्तरीय अनुदित ग्रंथों का होना आवश्यक है।^(२४)

१.५ तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र :-

तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप के जरिये उनका क्षेत्र काफी कुछ स्पष्ट हो जाता है। यह तो स्पष्ट है कि तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र काफी विशाल है क्योंकि वो किसी देश, भाषा या युग तक सीमित नहीं है ना ही वो सिर्फ साहित्य से जुड़ा हुआ है। जब तुलना की जाती है तो भिन्न-भिन्न भाषा साहित्य के साथ की जाती है एवं आवश्यकता पडने पर साहित्य के साथ अन्य कलाओं का भी सन्दर्भ लिया जाता है। फल स्वरूप तुलनात्मक साहित्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार बढ़ जाता है। फिर भी उनके कार्यक्षेत्र को कुछ निश्चित रूपों में देखा जा सकता है।

डॉ.दयाशंकर मिश्र के अनुसार, “तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र विशाल है। आज तक प्रायः प्रभाव और वस्तु का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाता रहा है। परन्तु हमें साहित्यिक आंदोलनों और साहित्यिक विधाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए। यानी युग प्रवृत्ति के आधार पर समग्र भारतीय साहित्य दस्तावेजों की पड़ताल करने से न केवल तुलनात्मक साहित्य का इतिहास तैयार होगा बल्कि भारतीयता की

पहचान सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, दार्शनिक, साहित्यिक स्तरों पर सम्प्रेषणीय होगी। तुलनात्मक साहित्य विविध भाषाओं के लोकगीत और लोक साहित्य का संग्रह करके उनका भी तुलनात्मक अध्ययन करता है।^(२५) इससे तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र कुछ हद तक स्पष्ट होता हुआ नज़र आता है, इस सन्दर्भ में डॉ.रनजीव कुमार ने कुछ विषय विश्लेषण व्यक्त किया है। उन्होंने तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र को आन्तरिक व बाह्य दृष्टिकोण से परखते हुए भाव व शैली के आधार पर विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं को नज़र में रखते हुए अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जो कुछ इस प्रकार है,



२. विभाषा बनाम भाषा का तुलनात्मक अध्ययन

क. विभाषा और विभाषा का तुलनात्मक अध्ययन

ख. विभाषा और मानक भाषा का तुलनात्मक अध्ययन

३. भाषाओं का व्यापक बनाम गहन तुलनात्मक अध्ययन

क. दो या दो से अधिक भाषाओं का व्यापक तुलनात्मक अध्ययन

ख. दो या दो से अधिक भाषाओं का गहन तुलनात्मक अध्ययन

४. भाषा का एक ज्ञानानुशासनात्मक बनाम अन्तर ज्ञानानुशासनात्मक तुलनात्मक अध्ययन

क. एक ज्ञानानुशासनात्मक तुलनात्मक अध्ययन

- विकासात्मक तुलनात्मक अध्ययन

- संरचनात्मक तुलनात्मक अध्ययन

ख. अन्तर ज्ञानानुशासनात्मक तुलनात्मक अध्ययन

- भाषा भौगोलिक तुलनात्मक अध्ययन

- मनोभाषा वैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन

- समाज भाषा वैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन

- शैली वैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन

इनसे यह स्पष्ट है कि आज तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र काफी विकसित एवं विस्तृत नज़र आता है। उपरोक्त विश्लेषणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलनात्मक अध्ययन का क्षेत्र व्यापक है जिसमें छोटी-से-छोटी साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से भी साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, समाज एवं राजनैतिक समज को विशिष्ट सन्दर्भों के साथ व्यक्त किया जाता है। तुलनात्मक साहित्य का दायरा साहित्य में व्यक्त भाव, भाषा, शैली के उस हर व्यक्त-अव्यक्त रूप के साथ जुड़ा हुआ है, यानी कि रचना की आंतरिक या बाह्य अभिव्यक्ति अथवा उनके अन्य प्रभावों, व्यंजित होते हुए अन्य रूपों को लेकर भी तुलना संभव है जैसे कवियों, लेखकों, प्रवृत्तियों, स्वरूपों, युगों, विचारों, चिन्तन प्रणालियों, सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों साहित्य में चल रहे विभिन्न आंदोलनों, प्रभावों,

उनकी भाषिक अभिव्यक्तियों ध्वन्यात्मक आधारों शैलियों, शब्द रूपों आदि ऐसे अनेक रूपों में आज तुलनात्मक क्षेत्र का विस्तरण हो चुका है जो दिन ब दिन गहराता जा रहा है फैलता जा रहा है। संक्षेप में कहे तो वो सर्जन प्रतिभाओं, सर्जन प्रक्रियाओं एवं सर्जनात्मक परिणतियों के तुलनात्मक अभ्यास तक फैला हुआ है। प्रसाद ब्रह्मभट्ट के अनुसार, “तुलनात्मक साहित्य नुं कार्यक्षेत्र केवल कल्पनाप्रधान सर्जनात्मक कृतियों पूरतुं सीमित नथी पण साहित्य मीमांसा अने विवेचन नी तुलना सुधी विस्तरे छे.”^(२६)

तुलनात्मक साहित्य स्वरूप के अनुशीलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य महत्त है। विश्व साहित्य की जो विकासगाथा उनसे साकारित होती है वो अपने आप में गौरवमयी इतिहास की झांकी करवायेगा जो आज तक परिकल्पनात्मक रूप में चिंतन क्षेत्र में स्थिर था तो वास्तविक रूप धारण कर आज विश्व की चिंतनधारा में एकता का सूर प्रबल कर रहा है। इस लिए ए.ओवनओलरिज ने माना है कि, “Briefly defined comparative literature can be considered the study of any literary phenomenon from the perspective of more than one national literature or in conjunction with another intellectual discipline or even several.”^(२७) (तुलनात्मक साहित्य यानी एक या एक से अधिक राष्ट्रीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अथवा कुछ बौद्धिक, अभ्यासिक संयोजन में साहित्यिक घटनाओं का किया हुआ अभ्यास है।) इनसे स्पष्ट है कि भारतीय भाषाएँ एवं विश्व भाषाओं का आपसी रिश्ता मजबूत होना चाहिए। सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए। एक भाषा दूसरी भाषा से उचित परिचय प्राप्त कर अपना दायरा बढ़ाय यह उनका विशेष उद्देश्य है। “यह हमारे बहुभाशी देश की विविध भाषाओं के बीच सेतु रचने का कार्य करेगा।”^(२८) इसमें हिन्दी की अपनी एक विशिष्ट भूमिका रहेगी जिनसे भावात्मक ऐक्य स्थापित हो सकेगा क्योंकि तुलनात्मक मानदण्डों से दो भिन्न भाषा साहित्य को जोड़ा जाता है तो भितर से सर्वमान्य सूर निकलता है जो दोनों को जोड़ता है। तुलनात्मक साहित्य के इसी उद्देश्य को व्यक्त करते हुए डॉ. दयाशंकर मिश्र ने माना है कि, “तुलनात्मक साहित्य का प्रभाव प्रयोजन चेतना का विस्तार करके शोषण को दूर करना और मानव को मानव के धरातल पर

अवस्थित करना। आज का मानव समुदाय धर्म, वर्ण और जाति के पूर्वाग्रहों के कारन विभाजित है। इससे मानव एकता की बात असंभव-सी लगती है। तुलनात्मक साहित्य पाठकों को अधिक संवेदनशील बनाती है और उनकी चेतना का उर्ध्वीकरण करता है। उर्ध्वचेतना से समाज में जागृति आती है। इस प्रकार की जागृति ही मानव के बीच की दूरी को धीरे-धीरे मीटाकर उन्हें एक दूसरे से जोड़ देती है।^(२९)

सन्दर्भ सूची

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृ.क्रमांक
१	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत अने विनियोग	डॉ.प्रसाद ब्रह्मभट्ट	१
२	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा	सं.महावीरसिंह चौहान	२६
३	तुलनात्मक अध्ययन : भारतीय भाषाएँ और साहित्य	सं.म.ह.राजूरकर राजकमल वोरा	११
४	॥	॥	११
५	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत अने विनियोग	डॉ.प्रसाद ब्रह्मभट्ट	७
६	रचनाकर्म	सं.डॉ.मायाप्रकाश पाण्डेय	३७
७	तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्याएँ	सं.डॉ.एस.गुलामरसूल	३५
८	हिन्दी अनुसंधान	डॉ.विजयपालसिंह	२६४-६५
९	॥	॥	२८४
१०	रचनाकर्म (लेख. रनजीवकुमार)	सं.मायाप्रकाश	२७
११	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत अने विनियोग	डॉ.प्रसाद ब्रह्मभट्ट	१४
१२	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	डॉ.इन्द्रनाथ चौधरी	१
१३	रचनाकर्म	सं.डॉ.मायाप्रकाश पाण्डेय	२८
१४	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा	सं.महावीरसिंह चौहान	३०
१५	तुलनात्मक साहित्य : भारतीय संदर्भ	सं.चैतन्य ज. देसाई	८
१६	Contemproray Criticism	(ed) Malcalm Bradby	१११
१७	तुलनात्मक साहित्य नी दिशा मां	डॉ.अश्विन देसाई	१६
१८	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	डॉ.इन्द्रनाथ चौधरी	५

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृ.क्रमांक
१९	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	डॉ.इन्द्रनाथ चौधरी	१०
२०	तुलनात्मक साहित्य	डॉ.नगेन्द्र	१२
२१	रचनाकर्म	सं.डॉ.मायाप्रकाश पाण्डेय	२९
२२	तुलनात्मक अध्ययन : स्वरूप और रचनाएँ	डॉ.भ.ह.राजूरकर	३५
२३	शोध भारती	सं.डॉ.रामगोपालसिंह	२
२४	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा	सं.महावीरसिंह चौहान	३८
२५	॥	॥	३८
२६	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत अने विनियोग	डॉ.प्रसाद ब्रह्मभट्ट	२२
२७	तुलनात्मक साहित्य : भारतीय संदर्भ	सं.चैतन्य ज. देसाई	१०
२८	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा- प्रस्तावना से.....	ले.डॉ.दिलावरसिंह जाडेजा	१
२९	तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा	सं.महावीरसिंह चौहान	३९

अध्याय : २

हिन्दी-गुजराती निबन्ध : स्वरूप एवं विकास

२.१ हिन्दी-गुजराती निबन्ध का स्वरूप :-

- २.१.१ प्रास्ताविक।
- २.१.२ निबन्ध शब्द का अर्थ एवं महत्व।
- २.१.३ निबन्ध की विभिन्न परिभाषाएँ।
- २.१.४ निबन्ध की विशेषताएँ एवं लक्षण।
- २.१.५ निबन्ध के तत्त्व।
- २.१.६ निबन्ध के भेद।

२.२ हिन्दी निबन्ध : उद्भव एवं विकास।

- २.२.१ प्रास्ताविक।
- २.२.२ हिन्दी निबन्ध के विकास का स्रोत।
- २.२.३ हिन्दी निबन्ध का उद्भव एवं विकास।
- २.२.४ भारतेन्दुयुगीन निबन्ध साहित्य।
- २.२.५ द्विवेदीयुगीन निबन्ध साहित्य।
- २.२.६ शुक्लयुगीन निबन्ध साहित्य।
- २.२.७ शुकलोत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य।
- २.२.८ अद्यतन निबन्ध साहित्य।

२.३ गुजराती निबन्ध : उद्भव एवं विकास।

- २.३.१ प्रास्ताविक।
- २.३.२ सुधारयुगीन निबन्धसाहित्य।
- २.३.३ पंडितयुगीन निबन्धसाहित्य।
- २.३.४ गांधीयुगीन निबन्धसाहित्य।
- २.३.५ आधुनिकयुगीन निबन्धसाहित्य।

२.१ हिन्दी-गुजराती निबंध का स्वरूप।

२.१.१ प्रास्ताविक :-

“हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इस काल में पद्य और गद्य दोनों विधाओं की प्रतिष्ठा हुई। विभिन्न गद्य शैलियों का समुचित विकास हुआ। हिन्दी के प्राचीन साहित्य का गौरव पद्यात्मक रचनाओं तक सीमित रहा, आधुनिक साहित्य गद्य की विभिन्न विधाओं-नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, जीवनी-संस्मरण और इतिहास, भूगोल, दर्शन, विज्ञान आदि विषयों के वाङ्मय से सम्पन्न हुआ और हो रहा है। वस्तुतः गद्यात्मक रचनाओं की प्रधानता, विविधता, इयता और ईदृवता के कारण ही आधुनिक काल को ‘गद्यकाल’ की संज्ञा दी जाती है।”^(१)

इसलिए ही डॉ.शकुंतला दुबे का मानना है कि “निबन्ध आधुनिक साहित्य की उपज है। हिन्दी के लिए तो यह अपेक्षाकृत अत्यन्त आधुनिक गद्य-विधा है और बहुत सीमातक मुद्रण-यंत्र युगीन हिन्दी पत्रकारिता की जीव है। यह किसी साहित्यिक भाषा की सबल व्यंजना शक्ति का द्योतक तथा गद्य की प्रौढता का प्रतीक है। इसलिए गद्य को कवियों और लेखकों की कसौटी कहा गया है। शक्ति-सम्पन्न मौलिक गद्य के पूर्ण विकास की अपेक्षा के साथ ही निबन्ध-रचना संभव है। यही कारण है कि खड़ीबोली हिन्दी के गद्य के समर्थ तथा मौलिक रूप के विकास के साथ इसका उद्भव हुआ, जिसका माध्यम हिन्दी पत्रकारिता थी। निष्कर्ष यह है कि मान्य अर्थों में रूप और तत्त्व की दृष्टि से परंपरा-प्राप्त साहित्य-विधाओं में हिन्दी निबन्ध गत शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से मौलिक एवं समर्थ हिन्दी गद्य-रचना के रूप में प्रस्तुत अपेक्षाकृत आधुनिक साहित्य प्रकार है और पश्चिमी-साहित्य से प्रेरित तथा गृहीत होने पर भी प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्णरूपेण हिन्दी की स्वार्जित सम्पत्ति है।”^(२)

इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि “निबन्ध आधुनिक चेतना का परिणाम है। प्राचीन काल में अधिकांशतः काव्य ही सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान तथा कला-शास्त्र की अभिव्यक्ति का माध्यम था। गद्य का व्यवहार होता था, परन्तु वह अत्यन्त क्षीण रूप में

था। निबन्ध अत्यन्त परिष्कृत और प्रौढ गद्य का प्रतीक है, अतः उस समय निबन्ध रचना की सम्भावना नहीं थी। मुद्रणयंत्र का आविष्कार, अंग्रेजी का आगमन, समाचारपत्रों का प्रकाशन, परस्पर वैचारिक आदान-प्रदान आदि बातोंने गद्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। गद्य की विभिन्न विधाएँ तेजी से विकास पाने लगी। निबन्ध की रुपरेखा इसी गद्य की काया में व्यक्त हुई।”^(३)

जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास, एकांकी, रिपोताज़, रेखा-चित्र आदि की तरह निबन्ध की प्रेरणा भी मुख्यतः पाश्चात्य साहित्य की देन है। आज के अर्थ में निबन्ध को प्राचीन साहित्य में ढूँढ़ना हठधर्मी ही कहेलायेगी।

अतः निबन्ध साहित्य के लिए ये स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गद्य साहित्य विकास के लिए निबन्ध से उपयुक्त कोई विधा नहीं हो सकती क्योंकि निबन्ध में ही लेखक अपने-आपको बिना किसी अन्य माध्यम से सीधे ही प्रस्तुत करता है। उसे जो कुछ कहना है वह सीधे-सीधे पाठकों से कह देता है, इसलिए आधुनिक नव्य विधाओं में लेखक के व्यक्तित्व का पूर्ण प्रस्फूटन निबन्धों में ही सम्भव हैं। अंततः ये कहा जा सकता है कि हिन्दी व गुजराती निबन्ध के स्वरूप एवं वैशिष्ट्य का सम्यक् विकास हुआ है। वह संस्कृत से सर्वथा भिन्न एक स्वतंत्र एवं सशक्त विधा के रूप में साहित्य संसार में सुस्थापित है।

२.१.२ निबन्ध शब्द का अर्थ एवं महत्व :-

‘निबन्ध’ शब्द को लेकर भी विभिन्न प्रकार के अर्थ किये गये हैं। विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी तराह से छान-बीन करके इसका अर्थ लगाने का प्रयास किया हैं। डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी मानते हैं कि - “निबन्ध हिन्दी का तत्सम् शब्द है। संस्कृत में इनका अनेक अर्थों में अति प्राचीन प्रयोग मिलता है। निबन्ध के अर्थों की भिन्नता इसकी व्युत्पत्ति की भिन्नता का ही प्रतिफल है। संस्कृत की मूलधातु ‘बंध’ में ‘नि’ उपसर्ग (नि+बंध) लगाकर दो प्रत्ययों के योग से दो पृथक् व्युत्पत्तियाँ की गयी है। (१) ‘वाचस्पति’ के

अनुसार (नि+बंध+धज्) से इसका अर्थ बांधना, रोकना और संग्रह करना है, और (२) 'जटाधर' के अनुसार नि+बंध+अच् से नीम का वृक्ष और उसके सेवन से कृष्ठ रोग का निरोध होता है, "किन्तु कालांतर में इस अर्थ में परिवर्तन हुआ है, कोष-ग्रंथों में दिए गये और आधुनिक युग में 'निबंध' शब्द के प्रयोग इसके प्रमाण हैं।"^(४)

इस बात को आगे बढ़ाते हुए डॉ. द्वारिका प्रसादजी ने माना है कि - "निबन्ध शब्द की प्रकृति-प्रत्यानुसार बाटी जाती है, पहले तो 'नि' उपसर्ग पूर्व 'बन्ध' धातु में 'ल्युट' प्रत्यय कहने पर - 'निबन्धते अस्मित इति अधिकरणे निबन्धनम्' अर्थात् जिसमें विचार बांधा जाय या गूँथा जाय, ऐसी रचना निबन्ध है। दूसरे 'नि' उपसर्ग पूर्व 'बंध' धातु में 'धज' प्रत्यय कहने पर - 'निश्चितार्थन विषयम् अविकृत्य बन्धनम् निबन्धनम्' अर्थात् निश्चित रूप से किसी विषय पर विचारों की श्रृंखला बाँधने, रोकने या संग्रह करने को 'निबंध' कहते हैं।"^(५) इसी प्रकार संस्कृत में प्रयुक्त विभिन्न मान्यताओं के अनुसार 'निबन्ध' शब्द के अनेकानेक अर्थ लगाये जाते हैं।

यही कारण है कि - "श्रीमद् भगवद्गीता में निबन्ध का प्रयोग आसुरी संपदा को बांधने के लिए हुआ है। 'वासवदत्ता' में ग्रंथ-रचना के रूप में है। 'कादम्बरी' में शब्द-शिल्प के रूप में किया गया है, इस प्रकार 'शिशुपालवधम्' में शाश्वतदान एवं भाष्य-ग्रंथों के रूप में आया है। यही कारण है कि संस्कृत में 'निबन्ध' शब्द काफी परिवर्तित रहा है। पर इस संदर्भ में 'गुजराती' आलोचक 'जयंत कोठारी' ने माना है कि - "निबन्ध शब्द संस्कृत भाषानो छे, परंतु साहित्य मां ऐ नामनो कोई साहित्य प्रकार न हतो। 'निबन्ध' शब्द नो साहित्यिक रचना एवो अर्थ संस्कृत कोषों मां नोंधायेलो छे, पण ए अर्वाचीन समयनो छे।"^(६)

'निबन्ध' के सन्दर्भ में 'साहित्य-विवेचन के रचियता सुमनजी ने लिखा है कि- 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग चिन्तन और विश्लेषण प्रधान लेखों के लिए ही साहित्य में, साहित्य के क्षेत्र में किया जाता हैं। 'निबन्ध' का शाब्दिक अर्थ है बांधना। प्राचीन समय में यंत्रों का अभाव था, और कागज आदि भी प्राप्य न थे, लोग अपने विचारों को भोज-

पत्रो पर लिखकर उन्हें पुस्तक के रूप में बांध देते थे। इस बाँधने की क्रिया को ही निबंध या प्रबन्ध कहा जाता था।”^(७) यही कारण है कि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ‘हिन्दी-शब्द-सागर’ में निबन्ध के बारे में लिखा है कि यह ऐसा साहित्यिक रूप है कि जिसमें अनेक मतों को संग्रहित किया जाता है, बांधा जाता है।

पर आज के निबन्ध साहित्य की ओर देखें तो वह अधिकतर निबन्ध के पाश्चात्य स्वरूप से प्रभावित है, इसी बात को देखते हुए ‘नवनीत गोस्वामी’ ने अपने ‘काव्य-शास्त्र’ में स्पष्ट किया है कि - “यद्यपि निबन्ध शब्द बहुत पुराना है, और हिन्दी में यह शब्द संस्कृत से ही लिया गया है, फिर भी आज इस शब्द से अंग्रेजी में ‘essay’ का ही बोध होता है। अंग्रेजी का ‘essay’ शब्द मूल फ्रेन्च भाषा के ‘essai’ पर से बना है। फ्रेन्च भाषा में इसका सर्वप्रथम प्रयोग ‘मोन्टेन’ नामक विद्वानने सन् १५८० में किया, जो पाश्चात्य निबन्ध का जनक माना जाता है। फ्रेन्च भाषा में ‘essai’ शब्द का अर्थ होता है ‘प्रयत्न’। अंग्रेजी में इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ‘बेकन’ ने किया किन्तु उसने निबंध को विषय-निरूपण के माध्यम के रूप में देखा -”^(८)

इस प्रकार निबन्ध शब्द को अनेक रूपों में देखा गया है पर मूलतः निबन्ध का अर्थ है बांधना या बंधा हुआ, जो एक-एक विशिष्ट प्रकार की गद्य रचना है पर ये ‘निबन्ध’ वैयक्तिक रूप से मुक्त विचारों को निबाँध रूप से व्यक्त करने का साहित्यिक रूप है। आधुनिक काल में इसका अर्थ-संकोच हो गया है। अब वह सामान्यतः उस साहित्यिक रचना का वाचक है जो गद्यमयी और संक्षिप्त हो, यथार्थ यह है कि - गद्य के रूप विशेष के लिए प्रचलित ‘निबन्ध’ शब्द अंग्रेजी के ‘एस्से’ का समशील है। अंग्रेजी का ‘एस्से’ फ्रेन्च के ‘एसाई’ से व्युत्पन्न है। ‘एसाई’ लेटिन के ‘एग्जीजियर’ से निकला है, जिसका मूल अर्थ है - प्रयत्न, प्रयोग या परीक्षण। अतः ‘एस्से’ अपने मौलिक अर्थ में अपूर्णता और अस्थिरता का द्योतक है। - आज भी निबन्ध शब्द विभिन्न अर्थों को लेकर फैला हुआ है। फलतः ये सही है कि ‘निबंध’ शब्द सर्वप्रथम हमें संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है पर आज आधुनिक युग में हमारे निबन्ध साहित्य का जिस रूप में विकास हुआ

है या हो रहा हैं वह पाश्चात्य साहित्य पर यानी कि 'अंग्रेजी' के 'एस्से' पर आधारित 'निबंध' साहित्य हैं।

निबंध के स्वरूप को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य की अन्य विधाओं से निबन्ध अलग व उत्तम का आदि रूप काव्यात्मक रहा है और गद्य निश्चित रूप से आधुनिक युग की उपलब्धी कही जा सकती हैं। 'निबन्ध' साहित्यरूपी उपवन में गन्ध के समान हैं। जहाँ तक 'निबन्ध' साहित्य का प्रश्न है, यह आधुनिक चेतना का परिणाम है और इसमें लेखक के प्रौढ़ चिन्तन का परिचय मिलता है। इसलिए आचार्य शुक्लजी ने स्पष्ट किया है कि - “यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसोटी है तो निबन्ध गद्य की कसोटी हैं। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास 'निबन्ध' में ही सबसे अधिक संभव होता है, इसलिए गद्यशैली के विवेचक उदाहरणों के लिए अधिकतर निबंध ही चुना करते हैं।”^(९)

उसी प्रकार से निबंध की महत्ता के एक और पहलु को व्यक्त करते हुए 'द्वारिकाप्रसादजी' ने लिखा है कि - “निबंध हिन्दी साहित्य की अद्यतन श्रेष्ठ विधा है, इसका कारण यह है कि निबंध में काव्य की-सी रमणीयता, भावुकता एवं सरसता होती हैं। कहानी का विनोदपूर्ण 'बतरस' होता हैं। नाटक की-सी गतिशीलता, अभिनयता, संवादात्मकता, एवं प्रभावान्विति होती है। जीवनी की-सी आत्मविश्लेषण निजीपन एवं व्यक्तित्व की विवृति होती हैं। संस्मरण जैसी विवरणात्मकता, निष्पक्षता, मार्मिकता एवं निजता होती हैं। रेखाचित्र की-सी चित्रात्मकता, आत्मानुभूति, मनोवैज्ञानिकता एवं कल्पना प्रणवता होती हैं तथा गद्यगीत की-सी भावात्मकता, अनुभूति-प्रणवता, रसात्मकता एवं एकाग्रता होती है। इतना ही नहीं, निबन्ध को गद्य का श्रृंगारी कह सकते हैं।”^(१०) इससे ये स्पष्ट हो जाता है कि अन्य साहित्यिक विधाओं से निबन्ध में काफी कुछ व्यक्त हो सकता है, क्योंकि लेखक अपनी संवेदना को किसी भी रूप में व्यक्त करने के लिए मुक्त रहता हैं।

इसी भावना को आगे बढ़ाते हुए गुलाबराय कहते हैं कि - “वास्तव में 'निबन्ध' में ही हम गद्य का निजीरूप देख सकते हैं। साहित्य की अन्य विधाओं में तो गद्य की भाषा

एक माध्यम मात्र है किन्तु निबंध में वह अपनी पूर्णशक्ति और सज-धज के साथ प्रकट होती है। निबन्ध में ही गद्य-लेखक की शैली का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है और शैली ही व्यक्ति है (style is the man himself) की उक्ति साहित्य की इस विधा के सम्बन्ध में पूर्णतया सार्थक होती है। काव्य की इस विधा में सभी तत्त्व रहते हैं। कोई विषय निबंध के क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। इतिहास, पुराण, दर्शन, विज्ञान, आलोचना, जीवन-मीमांसा, कथा-यात्रा सभी इसके व्यापक क्षेत्र के भीतर आते हैं।^(११) इसमें सन्देह नहीं है कि निबन्ध में ही गद्य के सौन्दर्य एवं माधुर्य का पूर्ण विकास होता है। निबन्ध में ही गद्य की अभिव्यंजना शक्ति का पूर्ण चमत्कार दृष्टिगोचर होता है और निबंध में ही गद्य के उक्ति वैदग्ध्य एवं अर्थ-दीप्ति के दर्शन होते हैं।

राजनाथ शर्मा ने अपने साहित्यिक निबन्ध में निबन्ध के तात्त्विक विवेचन में उनका महत्व व्यक्त करते हुए लिखा है कि - “यह प्रामाणित होता है कि गद्य का पूर्ण विकसित और शक्तिशाली रूप निबन्ध में ही परम उत्कर्ष को प्राप्त होता है, इसलिए भाषा की दृष्टि से निबंध गद्य साहित्य का सबसे अधिक परिपक्व और उन्नत रूप है, अन्य गद्य रूपों में भाषा केवल साधन न रहकर साध्य का एक अंग बन जाता है। इसलिए ही साधारण लेख और निबन्ध में पर्याप्त अन्तर होता है।”^(१२)

अतः इन अवतरणों से ये स्पष्ट है कि निबंध गद्य-साहित्य की वह विशिष्ट विधा है जिसमें लेखक का व्यक्तित्व प्रमुख रहता है। अन्य साहित्य रूपों की तुलना में ये श्रेष्ठ रूप हैं। निबन्ध में साहित्य, संस्कृति व शैली की समग्रता का अवकाश संपूर्णतः रहता है। अन्य विधाओं में लेखक अपने को पर्दे के पीछे छिपाकर रखता है। पात्रों के माध्यम से अपने को प्रकट करता रहता है। जबकि निबन्ध में निबंधकार स्वयं पाठक के समक्ष आता है। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक संवेदना और प्रत्येक विचार उसीका होता है। किसी भूमिका या किसी पात्र की जरूरत उसे नहीं होती। निबन्धकार बेजिजक अपने को पाठक के सामने खोलकर रख देता है। उसके व्यक्तित्व का राग, रंग, रस, हास्य, विनोद, व्यंग्य, विद्वता आदि सबकुछ परत दरपरत खुलता चला जाता है, इसलिए साहित्यिक विधाओं में निबन्ध विधा अपने आप में एक विशिष्ट महत्व रखती है।

२.१.३ निबन्ध की विभिन्न परिभाषाएँ :-

किसी भी साहित्य प्रकार को व्याख्याओं की चौखट में बैठाने की प्रवृत्ति मनुष्य की तर्कशुद्ध बुद्धिनिष्ठता की परिचायक है। कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, रेखाचित्र, आत्मचरित आदि को उसने व्याख्याओं सीमाओं में बद्ध कर लिया है। सामान्य मतभेद छोड़ दे तो हर विधा का रूप और उसकी सर्वमान्य व्याख्या साहित्य में निर्धारित हो चुकी है। परन्तु निबन्ध की बात करें तो इतनी दीर्घ कालावधि के बाद भी निबन्ध का सर्वमान्य रूप एवं व्याख्या निश्चित नहीं हो सकी है। उनकी आज-कल की सभी परिभाषाएँ अधूरी एवं दिशा संकेत मात्र है, परस्पर विरोधी है, कोई भी सर्वमान्य नहीं है। फिर भी इन परिभाषाओं के आधार पर निबन्ध के कुछ गुण, तत्त्व व लक्षण निश्चित किये जा सकते हैं। निबन्ध के संदर्भ में दि गई भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ कुछ इस प्रकार हैं।

हमारा निबन्ध साहित्य पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हैं। वह उनसे अधिक करीब व मिलता हुआ देखा जा सकता है, इसलिए पहले पाश्चात्य विद्वानों ने निबन्ध के सन्दर्भ में दिए मन्तव्य की बात करें, बाद में भारतीय विद्वानों के मतों की बात करेंगे। पाश्चात्य साहित्य में निबन्ध विधा के सूत्रधार के रूप में मोन्तेन और बेकन को माना जाता है। उन्होंने इस धारा का सूत्रपात किया।

‘मोन्तेन’ ने निबन्ध को एक ऐसी वैयक्तिक रचना स्वीकार किया है, जिसमें - “निबन्ध लेखक पाठकों से सामीप्य रखता हुआ सम्भाषण किसी अनौपचारिक शैली में, उनसे आत्मीय अनुभवों की ऐसी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति करता है जिसमें समबद्धता की अपेक्षा विश्रृंखलता अधिक रहती हैं। ‘बेकन’ की मान्यता है कि - निबन्ध कुछ इने-गीने पृष्ठों में लघु-विस्तार में होना चाहिए, जिसमें सारगर्भित ठोस विचारों-सा निर्दिष्ट हो और ये विचार अधिक विस्तार में प्रगट न किया हो।”^(१३)

बेकन की भाँति ‘मरे’ की मान्यता है कि “किसी विशिष्ट विषय अथवा विषय के अनुभाग पर परिमित आकार और समधिक शैली में विस्तृत किन्तु आकार में सीमित

रचना निबन्ध है।”^(१४)

डॉ.सैम्यूल जौन्सन के अनुसार, “निबन्ध मन की उच्छृंखल तरंग है जो नियमित कथा कृति मात्र होती है, इनमें न कोई क्रम होता है और न नियमबद्धता-” इस प्रकार निबन्ध उच्छृंखल भावनाओं की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है।^(१५)

अंन्साईकलोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार - “अंग्रेजी मानस के लिए सही निबन्ध वे है जिसकी लंबाई परिमित आकार में हो, जो गद्यात्मक हो और जो पसंद किये गये विषय को लेखक अगम्भीर रूप से व्यक्त करे वो निबन्ध हैं।”^(१६)

डबल्यू.ई.विलियम्स के अनुसार - “निबन्ध की संक्षिप्त परिभाषा यह है कि वह गद्य-रचना का एक प्रकार है, जो बहुत ही छोटा होता है। उसमें केवल वर्णन नहीं होते, कभी-कभी अपनी बातों को सिद्ध करने के लिए निबन्धकार प्रसंग की अवतारणा करते हैं, पर उनका मूल उद्देश्य कुछ कहना नहीं होता। निबन्ध लेखक का मुख्य कार्य सामाजिक, दार्शनिक, आलोचक या टिप्पणीकार जैसा होता है।”^(१७) इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताओं में निबन्ध का स्वरूप काफी बदलता हुआ नज़र आता है।

पाश्चात्य विद्वानों के साथ-साथ भारतीय विद्वानों ने भी साहित्य में सभी स्वरूपों का विश्लेषण किया है। निबन्ध के संदर्भ में भी भारतीय विद्वानों की काफी गहन व्याख्याएँ पायी जाती है, जो कुछ इस प्रकार हैं।

आचार्य शुक्लजी के अनुसार “गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी हैं -”^(१८)

गुलाबराय के अनुसार “निबन्ध उन गद्य रचनाओं को कहते हैं जिनमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति सम्बद्धता के साथ किया गया है।”^(१९)

जयनाथ नलिन के अनुसार - “निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्चल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।”^(२०)

साहित्य-विवेचन में क्षेमचन्द्र सुमनने कहा है कि - “यदि हम कहें कि गद्य-काव्य

का पूर्ण और वास्तविक रूप निबन्ध में ही प्राप्त होता है, तो कोई अत्युक्ति न होगी क्योंकि गद्य-काव्य में अन्य विभिन्न रूप वैयक्तिक शैली के प्रयोगों के इतना अधिक नहीं जितना कि निबन्ध।”^(२१)

आचार्य श्यामसुन्दरदास के अनुसार - “निबन्ध उस लेख को कहना चाहिए, जिसमें किसी विषय पर गहन और पांडित्यपूर्ण विवाद किया गया हो।”^(२२)

हिन्दी के समान गुजराती साहित्य में भी निबन्ध को लेकर काफी कुछ समीक्षा देखी जा सकती है। गुजराती के विवेचकों ने भी अपनी परिभाषाओं के माध्यम से निबन्ध के पूर्ण रूप को व्यक्त किया है गुजराती के आलोचकों के द्वारा निबन्ध की जो परिभाषाएँ दी गई हैं ये इस प्रकार हैं।

जिन्होंने गद्य के क्षेत्र में और खासकर निबन्ध के क्षेत्र में विशेष प्रदान किया है, ऐसे गुजराती साहित्य के मूर्धन्य लेखक श्री नर्मदाशंकर ने निबन्ध की व्याख्या करते हुए कहा है कि - “निबन्ध लखवा जेवी तेवी वात नथी। पोताना मन नी कल्पना कागल उपर राखी लखी जणाववी तथा केटली एक बाबतों मां विद्वानों ना मत शोधवा पडे तथा तेओ पोताना ग्रंथ मां केवी रीते वाक्य योजना करी गया छे ते सर्वे जाणवुं जोइए।”^(२३)

उसी प्रकार से गुजराती साहित्य के एक और गंभीर लेखक - मणीलाल नभुभाई द्विवेदी ने कहा है कि, “विषय नो अर्क बांधी तेनुं स्वरूप आपवुं अने तेनुं समर्थन बेचार द्रष्टांतों थी बेचार श्लोको थी करवुं एटलां मां निबन्धनुं निबन्धत्व नथी। निबन्ध ते छे के जेनुं वचने वचन अनुभव थी गंठायेलुं छे जेनी वाक्यरचना सूत्ररूप छे, अने जेनो उपदेश हृदय ना मर्म ने तुरत ज आघात करी क्षणवार तदाकारकता उपजावे छे।”^(२४)

विश्वनाथ भट्ट ने कहा है कि, “कोइ पण बाबत उपर पोताना जे विचारों होय तेने विषयांतर के विस्तार कर्या विना साहित्योरित शैली मां अने गंभीर मनोवृत्ति सह जेमां रजु करेला होय तेनुं नाम निबन्ध.”^(२५) इसी विचार में अपना सूर मिलाते हुए नवलराम ने कहाँ है कि, “कोई पण बाबत उपर पोताना जे विचारो होय ते बीजा ने बराबर लखी जणाववा तेने निबन्ध कहे छे.”^(२६)

तो प्रसाद ब्रह्मभट्ट ने संक्षिप्त में कहा है कि, “निबन्ध एक अर्थमां निबन्धकार नुं

अदीठ वांचक साथेनुं संभाषण छे.”^(२७) इसी बात को काका साहेब ने कुछ विस्तार से कहाँ है कि, “निबंध नुं मुख्य लक्षण ए के तेमां वांचक नी जोडे परिचितपणा नों संबंध होय-एक जात नी व्यक्तिगत विनंति होय अने सीधी भाषा मां मननी वात करी दीधेली होय ते निबंध.”^(२८)

सुन्दरम् की मान्यता है कि, “एक संक्षिप्त स्वरूपवाणी ऐकाग्र ने सुश्लिष्ट रीते गद्य मां लखायेली रचना ते निबंध.”^(२९) तो उमाशंकर जोषी ने लिखा है कि, “आज सुधी निबंध नों जे कला प्रकार खेडायो छे ते उपरथी एक सर्व सामान्य लक्षण ए स्वीकारायुं छे के निबंध ए अचुक पणे लेखक ना व्यक्तित्व नी-वैयक्तिक जीवननी मुद्रा थी अंकित थयो छे.”^(३०)

इस प्रकार इन विभिन्न भाषा-भाषी विद्वानों के द्वारा व्यक्त की गई निबन्ध की विभिन्न परिभाषाओं से निबन्ध का स्वरूप काफी कुछ स्पष्ट हो जाता हैं। उनके लक्षण क्या हो सकते हैं, उनमें कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं - ये काफी कुछ स्पष्ट हो जाता है। इन व्याख्याओं को द्रष्टि समक्ष रखते हुए हम निबंध के कुछ लक्षण एवं विशेषताओं को व्यक्त कर सकते हैं, जो कुछ इस प्रकार हैं।

२.१.४ निबन्ध की विशेषताएँ एवं लक्षण :-

निबन्ध के बारे में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर किसी एक को लेकर इसमें पूर्णता की खोज करना व्यर्थ है, किन्तु इन परिभाषाओं के आधार पर हम निबन्ध के कुछ लक्षण एवं विशेषताएँ निकाल सकते हैं, जिनके बारे में अनेक विद्वानों ने अपनी अलग-अलग राय दी है, जो इस प्रकार है।

बाबू गुलाबराय ने निबन्ध के संबंध में पाँच बातें बताई हैं - (१) निबन्ध अपेक्षाकृत आकार में छोटी गद्य-रचना के रूप में होता है। (२) निबन्ध में लेखक के निजीपन और व्यक्तित्व की जलक होते हैं। (३) निबन्ध में अपूर्णता और स्वच्छन्दता के रहते हुए भी वह स्वतःपूर्ण होते हैं। (४) निबन्ध साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचक और सजीव

होते हैं। (५) निबन्ध को हम 'स्वगतभाषण' भी कह सकते हैं।^(३१)

डॉ.यतीन्द्र तिवारी ने अपने काव्यशास्त्र में निबन्ध की विशेषता के बारे में लिखा है कि - “निबन्ध में निबन्धकार आत्मीयता-अनात्मीयता, वैयक्तिकता-निर्व्यक्तिकता के साथ किसी एक विषय या उसके किन्हीं अंशों अथवा प्रसंगों पर अपनी निजी भाषा-शैली में भाव या विचार प्रकट करता है। स्वच्छता, सरलता और आड़म्बरी हीनता के साथ कही घनिष्ठता और आत्मीयता को लेकर अपने वैयक्तिक आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण को भी व्यक्त करता है। निबन्धकार की स्वच्छन्दता उशृंखलता नहीं हैं, उसकी अनियमितता में भी एक नियम और अव्यवस्था में भी एक व्यवस्था होती है। विषय की द्रष्टि से निबन्ध की कोई सीमा नहीं होती। शून्य से लेकर अनन्त तक उसका विषय-क्षेत्र है।”^(३२)

डॉ.जगदीश प्रसाद शर्मा ने निबन्ध के चार गुण बताये हैं - (१) सीमित विस्तार (२) असम्बद्धता में सम्बद्धता (३) प्रवाह एवं गतिशीलता (४) व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति।^(३३)

डॉ.बाबूराम मैहला ने निबन्ध की पाँच विशेषताएँ बताई हैं - जैसे (१) निबन्ध एक गद्य रचना है (२) निबन्ध आकार में छोटी गद्यरचना है (३) निबन्ध किसी एक विषय पर क्रमबद्ध रचना है। (४) निबन्ध में लेखक के निजीपन और व्यक्तित्व की झलक होती है (५)भावप्रधानता के साथ निबन्ध सर्वाधिक बुद्धिप्रधान या विचारोत्तेजक रचना होती है।^(३४)

डॉ.शकुंतला दुबे ने निबन्ध की चार विशेषता बताई है जैसे (१) यह आधुनिक गद्य साहित्य की एक लघु-ललित रचना एवं विशिष्ट विधा है। (२) इसमें लेखक के व्यक्तित्व की भावनाओं और विचारों की स्वच्छन्द किन्तु शृंखलाबद्ध अभिव्यक्ति रहती है। (३)असंपूर्णता के बावजूद इसमें स्वतःपूर्णता रहती है (४) इसके माध्यम से लेखक और पाठक के मध्य सौहार्दपूर्ण वार्तालाप, अन्तरंगता और नैकट्य की स्थिति बनती है - ^(३५)

गुजराती साहित्य के आलोचक जयंत कोठारी ने निबन्ध की दस विशेषताएँ एवं लक्षण बताते हुए लिखा है कि - “(१) सौ प्रथम निबन्ध ए गद्य रचना नो प्रकार छे (२) निबन्ध मूलभूत रीते अर्थ घटनात्मक के विवरणात्मक साहित्य प्रकार छे (३) निबन्ध ने विषय-वस्तु नी कोई मर्यादा नथी (४) पोताना विषय नु सांगोपांग सर्वग्राही निरूपण करवुं

ए निबंध नुं लक्ष्य होतु नथी (५) निबंध प्रमाण मां टूँको होय छे (६) जीवन नुं अवलोकन अने अर्थघटन निबंधनुं मुलभूत अने व्यावर्तक तत्व छे, (७) निबंध वास्तवदर्शन के सत्यदर्शन रज्जू करे छे (८) निरुपण पद्धति निबंध नी एक महत्व नी विशेषता छे (९) निबंध मां लेखक ना व्यक्तित्व नी छाप उपसे छे (१०) निबंध सरल, सुगम साहित्य प्रकार छे।”^(३६)

उसी प्रकार से गुजराती के एक और आलोचक प्रसाद ब्रह्मभट्ट ने अपने ‘बार साहित्य स्वरूपो’ नामक रचना में निबंध के पाँच लक्षण बताये हैं - “(१) निबंध मापसर नी लंबाई धरावती प्रमाण मा संक्षिप्त गद्य रचना छे (२) निबंध सर्जक नी आगवी मुद्रा थी अंकित होय छे (३) निबंध आत्मनिर्भर स्वतः पूर्ण हृदय स्पर्शी अने रसिक होय छे (४) निबंध प्रौढ़, संस्कारी, जीवंत, सुरेख बलवती भाषा मां लखाय छे (५) निबंध मां सर्जक नो स्वैरविहार देखीतो होय तो पण भाव विचार के विषय नी केन्द्रीयता होय छे।”^(३७)

इस प्रकार निबंध के लक्षण एवं विशेषताओं के बारे में उपर्युक्त विद्वानों के मंतव्यों के आधार पर हम निबन्ध के लक्षण एवं विशेषताओं को कुछ इस प्रकार निकाल सकते हैं।

- (१) निबन्ध एक गद्य रचना हैं।
- (२) निबन्ध का आकार छोटा होता हैं।
- (३) निबन्ध एक सरल-सुगम साहित्य प्रकार है।
- (४) निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व प्रकट होता है।
- (५) निबन्ध में विषय की कोई मर्यादा नहीं होती।
- (६) निबन्ध में जीवन का अवलोकन व अर्थघटन खास रहता हैं।
- (७) निबन्ध में वास्तव दर्शन व्यक्त होता है।
- (८) निबन्ध का सामान्य एवं मनोरंजनात्मक रूप होता हैं।
- (९) निबन्ध में सैद्धांतिक बात कम होते हैं।
- (१०) निबन्ध में अन्य विधाओं की अपेक्षा भाषा-शैली प्रौढ़ होती हैं।

- (११) निबन्ध मूल में घटनात्मक या विवरणात्मक साहित्य प्रकार हैं।
 (१२) निबन्ध भाव एवं शैली की दृष्टि से मुक्त रचना है।
 (१३) निबन्ध में प्रवाहमयता एवं गतिशीलता होती है।
 (१४) निबन्ध में भावों के साथ बौद्धिकता भी सम्मिलित होती है।
 (१५) निबन्ध उनमुक्त एवं स्वच्छन्द होते हुए अपने आप में पूर्ण होता है।
 (१६) निबन्ध के असंबद्ध रूप में भी संबद्धता होती है।
 (१७) निबन्ध में विचारोंको क्रमबद्ध रूप से व्यक्त किया जाता है।
 (१८) भाषा की दृष्टि से भाषा की शक्ति का संपूर्ण विकास होता।

निबन्ध की इन विशेषताओं को देखते हुए इतना कहना पर्याप्त होगा कि निबन्ध यानी बीस-तीस पन्ने का किसी भी विषय को व्यक्त करता हुआ लेख, पर वह जो वैयक्तिक, अनौपचारिक और दंभ के बीना लिखा हुआ छोटा सा गद्य रूप; जो चिंतनात्मक होगा पर भारी भरकम नहीं वो फिलोसोफी की सीमाओं को स्पर्श करता होगा पर बहुत शास्त्रीय नहीं होगा वो एक प्रकार से शिथिल व एकात्मक होगा पर वो बार-बार आह्लादक विषयांतर में चला जायेगा वो हमें संमत होने की प्रेरणा देगा मगर वह अपनाने की हँठ नहीं करेगा।

२.१.५ निबन्ध के तत्त्व :-

साहित्य की हर विधा के लिए उनके तत्त्व निश्चित किए गये हैं। उसी प्रकार निबन्ध के तत्त्वों का जहाँ तक सवाल है, निबन्ध के तत्त्वों को लेकर काफी कुछ मतमतांतर देखे जा सकते हैं, क्योंकि 'निबन्ध' भाव, विचार, विषय व शैली की दृष्टि से एक परिवर्तनशील एवं मुक्त रचना होने के कारण उसे तात्त्विक रूपों में बाँधना कठिन अवश्य है। इसलिए कई विद्वानों ने निबन्ध के लक्षणों को ही उनके तत्त्व बता दिए हैं, तो कई विद्वानों ने निबन्ध के तत्त्वों का उल्लेख ही नहीं किया, पर कोई भी किसी भी प्रकार की रचना हो, उनके कुछ तत्त्व अवश्य रहते हैं; जिन पर रचना निर्माण का आधार रहता

है, क्योंकि तत्त्व तो वह मूल उपकरण होता है; जिसमें किसी वस्तु का निर्माण होता है तथा जिसकी अनुपस्थिति में उस वस्तु का अस्तित्व ही सर्वथा असंभव हो जाता है, इसलिए किसी भी विधा के लिए उनके तत्त्व काफी महत्व रखते हैं। निबन्ध के तत्त्वों को लेकर आलोचकों ने जो राय दी है वो कुछ इस प्रकार हैं।

“डॉ. दशरथ ओझा ने निबन्ध के छे तत्त्व माने हैं

- (१) गद्य रचना
- (२) व्यक्तित्व
- (३) एकसूत्रता
- (४) रोचकता
- (५) भावों का पुट
- (६) औपचारिकता का अभाव ऐसे ही डॉ.दान बहादुर पाठक ने निबन्ध के सात तत्त्व बताये हैं
- (१) व्यक्तित्व
- (२) विचार - स्वातंत्र्य
- (३) लघु आकार
- (४) एक सूत्रता
- (५) निजी अनुभूति
- (६) सजीव भाषाशैली और
- (७) प्रभावोत्पादकता।”^(३८)

डॉ. मु.ब.शहाने अपनी रचना ‘हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन’ में निबन्धों का तात्त्विक विवेचन करते हुए निबन्ध के चार तत्त्वों की बात की है जैसे -

- (१) व्यक्ति सापेक्षता
- (२) स्वच्छन्दता
- (३) वैचारिकता
- (४) संक्षिप्तता।”^(३९)

डॉ. बाबुराम मैहला ने निबन्ध के तत्त्वों के बारे में कहा है कि “निबन्ध चिंतन प्रधान कलात्मक विधा है। उसके स्वरूप को समझने के लिए उसके तत्त्वों का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रायः सभी विद्वानों ने निबन्ध के निम्नलिखित तत्त्व स्वीकार किये हैं (१) विषय (२) आत्मतत्त्व (३) विचार तत्त्व (४) भाव तत्त्व (५) स्वच्छन्दता और एकान्वित (६) कलात्मकता।”^(४०)

डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी ने अपनी रचना ‘निबन्ध’ सिद्धांत और प्रयोग में निबन्ध के तत्त्वों को लेकर कहा है कि - “निबन्ध सम्बन्धी चिन्तन में कुछ बातों पर अनावश्यक बल दिया गया है और कुछ आवश्यक तत्त्वों की अपेक्षा की गई है। इन आवश्यक तत्त्वों को महत्व के क्रम में निरूपित करना हमारा उद्देश्य होगा। इसलिए हमारी विचार-सरणी निम्नलिखित होगी

- (१) वैयक्तिकता की धारणा
- (२) वैयक्तिकता और वास्तवता का असमंजस और सामंजस्य
- (३) निबन्ध का सांस्कृतिक पक्ष
- (४) निबन्ध का स्वर-वैशिष्ट्य
- (५) निबन्ध में हास्य की उपादेयता
- (६) निबन्ध और काव्यात्मकता साधर्म्य और वैधर्म्य
- (७) निबन्ध का कलापक्ष
- (८) निबन्ध की परिभाषा।”^(४१)

पर यहाँ लगता है कि हरिहरनाथजी ने निबन्ध के लक्षणों और तत्त्वों का मिश्रित रूप व्यक्त किया है, इसमें काफी अस्पष्टता है। पर डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने अपने पाश्चात्य काव्यशास्त्र में निबन्ध के तत्त्वों के बारे में विस्तार से अपनी बात को व्यक्त किया है। उन्होंने कहाँ है कि - “निबन्ध के तत्त्व अनेक हो सकते हैं। निबन्ध के ये तत्त्व वे हैं जिनके बिना उसका कलेवर बन नहीं सकता। इन्हीं तत्त्वों से उसे मूर्तता प्राप्त होती है।

अतः इनका विवेचन करना भी आवश्यक है, निबन्ध के तत्त्वों का वर्गीकरण तीन आधार पर कर सकते हैं। जैसे

(१) अंगों के आधार पर :- प्रस्तावना

- विषय-प्रतिपादन अथवा उपपत्ति
- उपसंहार

(२) व्यक्तित्व के आधार पर :- भावतत्त्व

- बुद्धितत्त्व
- सौन्दर्य तत्त्व

(३) अभिव्यक्ति के आधार पर :- भाषा-शैली

- अलंकार
- ध्वन्यात्मकता
- औचित्य।”^(४२)

तत्त्वों का इस रूप में विभाजन निबन्ध को काफी कुछ सुस्पष्ट कर देता है। वैसे भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत में डॉ.मखनलाल शर्मा ने निबन्ध के तत्त्वों के संदर्भ में दो ही बातों को विशेष महत्वपूर्ण बताया है जैसे - “निबन्ध का विवेचन वर्ण्य-विषय तथा शैली की दृष्टि से किया गया है, अतः निबन्ध के मूल तत्त्वों के रूप में हम इन्हीं दो को स्वीकार करके चलेंगे।”^(४३)

डॉ.यतीन्द्र तिवारी ने अपने ‘काव्यशास्त्र’ में निबन्ध के लिए छः तत्त्वों का उल्लेख किया है जैसे (१) संघटित विचार परंपरा (२) निबन्धकार का व्यक्तित्व (३) नवीन विचारों की उद्भावना (४) साहित्यिकता (५) गम्भीरता (६) भाषा-वैशिष्ट्य पर मुख्यतया निबन्ध के तीन तत्त्व माने जाते हैं (१) विषय (२) भाव (३) शैली।”^(४४) इस तरह यतीन्द्र तिवारीजी ने निबन्ध के तत्त्वों को लेकर काफी सही समीक्षा की है। मूलतः निबन्ध की रचना प्रक्रिया में यही उनके आधार रहते हैं।

इसी भावधारा को आगे बढ़ाते हुए डॉ.जगदीश प्रसाद शर्मा ने अपने 'पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र' में निबन्ध के चार तत्त्वों का निरूपण किया है जैसे - “(१) विषय (२) विषय-प्रतिपादन (३) व्यक्तित्व की अभिव्यंजना (४) शैली।”^(४५)

इस प्रकार उपरोक्त विवरणों के आधार पर ये निश्चित रूप से कहना तो कठिन होगा कि निबन्ध में यही कुछ तत्त्व हो, क्योंकि तत्त्वों को लेकर काफी मतभेद हैं। वैसे ध्यानपूर्वक देखा जाये तो उक्त तत्त्वों में निबन्ध की विशेषताएँ अधिक मिश्रित है। तत्त्व का निरूपण सही ढंग से नहीं हो सका है, क्योंकि तत्त्व मूल वस्तु है जिनके बिना रचना संभव नहीं इस द्रष्टि से विचार करने पर हम निबन्ध के वही पाँच तत्त्व मान सकते हैं जैसे - अनुभूति-तत्त्व, बुद्धि-तत्त्व, कल्पना-तत्त्व, अहं-तत्त्व और शैली-तत्त्व इनके बिना निबन्ध का निर्माण होना सर्वथा असंभव है। वैसे ये सभी तत्त्व निबन्ध में विद्यमान रहते हैं पर विचारात्मक निबन्ध में बुद्धि-तत्त्व का प्राधान्य रहता है। भावात्मक निबन्धों में अनुभूति-तत्त्व का प्राधान्य रहता है। वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्धों में कल्पना का प्राधान्य रहता है तथा शेष अहं-तत्त्व और शैली तत्त्व सभी निबन्धों में समान रूप से विद्यमान रहते हैं।

२.१.६ निबन्ध के भेद :-

कला एक अविच्छिन्न एवं अखंड अभिव्यक्ति है। इसका विभाजन नहीं हो सकता। यदि हो भी तो वह बाह्य ही होगा। इसी भावना से प्रेरित होकर अभिव्यंजनावादी क्रोंचे किसी भी क्षति की चिंता किए बिना विभाजन संबंधी सभी पुस्तकों को जला देने का आग्रह करता है।^(४६) किन्तु हम संसार की प्रत्येक वस्तु को सुविधा के लिए प्रकारों और वर्गों में देखने के आदि हो गये हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मानंद सहोदर, 'रस' की प्रतीति भी हमें प्रकार विशेष में ही होती हैं।

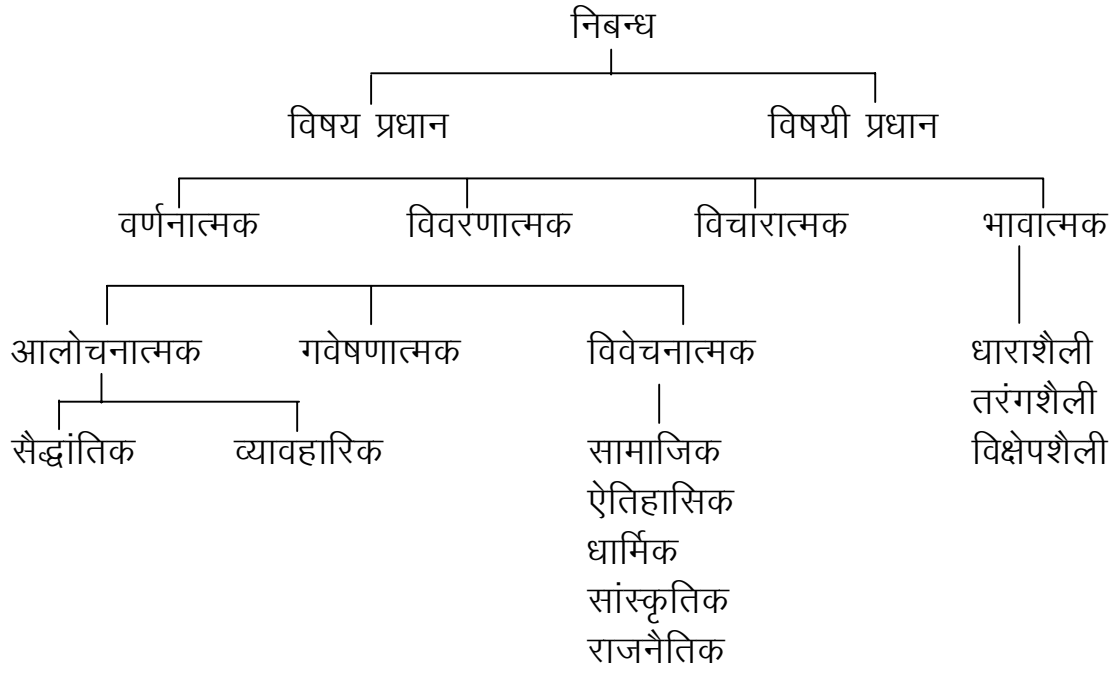
निबन्ध उत्कृष्ट साहित्य कला हैं। वह हमारी अभिव्यक्ति का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन हैं। हमारी समस्याओं और जातीय जीवन का उससे प्रत्यक्ष संबंध हैं। इसलिए

उसके प्रकार विश्लेषण के सर्वाधिक प्रयास दिखते हैं उसकी प्रगतिशीलता के तथा विषय और शैलीगत वैविध्य के कारण, उसके स्वरूप और सुनिश्चित आधार के स्पष्ट ज्ञान के अभाव में विद्वानों की प्रकार संबंधी मान्यता एक नहीं हो पाई हैं।^(४७)

‘निबन्ध’ का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है और प्रत्येक आधार नव्य वर्गों का निर्धारक होगा। प्रक्रिया की दृष्टि से वर्णनात्मक, आख्यात्मक, व्याख्यात्मक एवं विचारात्मक कोटियाँ हैं, तो विषय की दृष्टि से सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक। साहित्यिक निबन्ध समीक्षात्मक, विवेचनात्मक होते हैं और इनकी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक कोटियाँ स्वीकृत हैं। उपलब्धि को यदि आधार माने तो कोटियाँ होगी-विचारोत्तेजक, भावोत्तेजक एवं प्रचारात्मक। विषय और विषयी की चिन्ता के आधार पर विषय-मूलक एवं विषयीप्रधान रचनाएँ उपलब्ध होगी। इस प्रकार आत्मपरक, आत्माभिव्यंजक, संश्लेषणात्मक और व्यंग विनोद-मूलक निबन्ध कोटियाँ निर्धारित होगी।^(४८)

विविधता से भरे हुए निबन्ध साहित्य को देखा जाये तो उनके बारे में काफी अलग-अलग राय मिलती हैं। इनके सन्दर्भ में कुछ विद्वानों के मत को देखेंगे तो बात कुछ और स्पष्ट हो जायेगी।

- हिन्दी साहित्य में उपलब्धि निबन्धों की विषय विविधता तथा वर्णन शैली की भिन्नता को देखकर निबन्धों को स्थूल रूप से दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है विषय-निष्ठ और विषयी-निष्ठ - डॉ.मू.ब.शहा^(४९)
- निबन्ध या गद्य विधान कई प्रकार के हो सकते हैं - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक - रा.शुक्ल^(५०)
- निबन्धों को हम चार विभागों में बाँट सकते हैं - वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, भावात्मक - गुलाबराय^(५१)
- डॉ.यतीन्द्र तिवारी ने कहा है कि - निबन्धों की विषय सीमा अनन्त है। लेखक कभी किसी भाव पर और कभी किसी उपकरण पर निबन्ध लिखता है इसी प्रकार निबन्ध के लक्षण के आधार पर उसके भेद कल्पित होते हैं जो कुछ इस प्रकार हैं।



डॉ. यतीन्द्र तिवारी ने कुछ अन्य द्रष्टि से भी निबन्ध का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जैसे

- (क) सांस्कृतिक, विचारात्मक, व्याख्यात्मक, तार्किक, भावात्मक
- (ख) आत्मकथापरक, विचारात्मक, नाटकीय
- (ग) स्वप्नकथा रूप में, आत्मचरित, कहानी शैली में

विषय-वस्तु की दृष्टि से :-

ऐतिहासिक, गवेषणात्मक, चारित्रिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, यात्रासंबंधी, प्रकृतिसम्बन्धी, हास्य-व्यंग्य प्रधान, आत्मकथात्मक रूप में।

भाषाशैली की दृष्टि से :-

प्रांजल शैली, अलंकारीक शैली, प्रदर्शन शैली, प्रवासशैली, सम्वाद शैली।

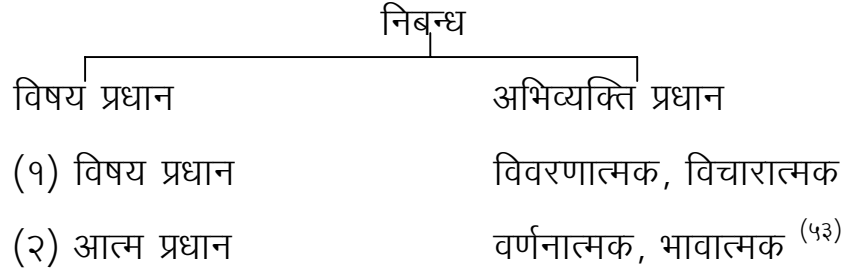
चिन्तनात्मक निबन्ध :-

विचारात्मक, भावात्मक, उभयात्मक

अभिव्यक्ति की दृष्टि से :-

वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक, भाषण, आलंकारिक मुहावरा, काव्यात्मक, उद्धरण, शब्दक्रिडा, खण्डन मण्डन।^(५२)

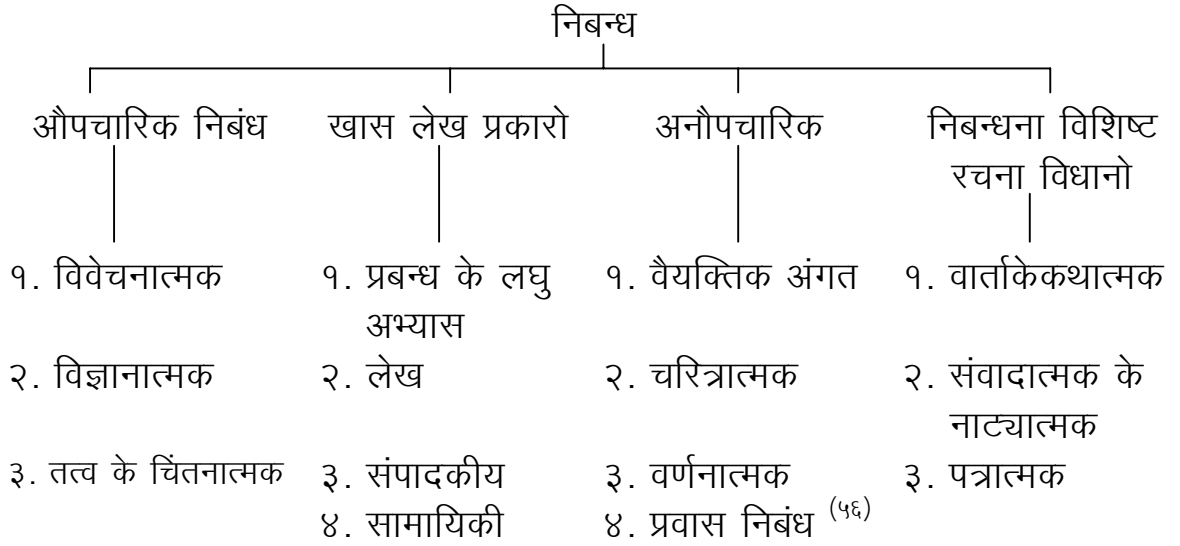
डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने अपने काव्यशास्त्र में निबन्ध के भेदों के बारे में कहा है कि - निबन्ध को दो भागों में बाँटा जा सकता है जैसे विषय के आधार पर और अभिव्यक्ति के आधार पर जिनका विभाजन कुछ इस प्रकार हैं।



यह स्पष्ट है कि 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' के अनुसार विद्वानों ने वर्गीकरण अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हुए उसके अनेक प्रकारों का वर्णन किया है। शुकलजी और गुलाबराय का अनुकरण करते हुए डॉ.जयनाथ नलिन ने निबन्ध के पाँच प्रकार स्वीकार किये हैं। विचारात्मक, भावात्मक, वैयक्तिक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक। प्रो.ब्रह्मदत्त शर्मा ने निबन्ध के छः वर्ग किये हैं - विचारात्मक, भावात्मक, व्याख्यात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, वैयक्तिक। तो द्वारिका प्रसाद सकसेना के विचार से निबन्ध के चार भेद ही मुख्यतः जान पड़ते हैं - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक। डॉ.गणपतचंद्र गुप्त के मतानुसार निबन्ध की विषय-वस्तु के वर्णन, विवेचन, प्रगटीकरण आदि के आधार पर उनके सामान्यतः चार भेद किये जाते हैं-वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, भावात्मक। डॉ.शांतिस्वरूप गुप्त ने विषय की दृष्टि से निबन्ध को पाँच वर्गों में बाँटा है - विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक।^(५४)

निबन्ध के प्रकारों को लेकर 'गुजराती साहित्य' में भी काफी चिंतन हुआ है, प्रसाद ब्रह्मभट्ट ने अपनी रचना 'बार साहित्य स्वरूपों' में लिखा है कि - "श्री नवलराम वर्णन कथन अने चिंतन ने महत्व आपी निबन्ध ना (१) वर्णन परायण (२) कथन परायण (३) चिंतन परायण - ऐवा प्रकारों तारवे छे (१) विचारात्मक, (२) भावात्मक, (३)वर्णनात्मक (४) आलोचनात्मक (५) विवरणात्मक आ उपरांत पण निबन्ध ना अनेक प्रकारों तारववा मां आव्या छे पण आजे मुख्यतः बेज प्रकारों स्वीकृत बन्या छे (१) ललित निबन्ध (२) ललितेत्तर निबन्ध।"^(५५)

जयंतकोठारी ने अपनी रचना 'निबन्ध अने गुजराती निबन्ध' में इन भेदों को कुछ इस तरह से व्यक्त किये हैं।



इस सन्दर्भ में डॉ. प्रविण दरजी ने अपनी रचना 'निबन्ध स्वरूप अने विकास' में लिखा है कि - “आपणे त्या गुजराती मा निबन्ध साहित्य ने बे प्रकार मां वहेची नाखवानुं वलण केटलांक विवेचकोनुं रहयुं छे अने त्यारपछी तेना केटलांक पेटा प्रकारों पाडी बतावाया छे। गंभीर, चिंतन मनन युक्त, सुश्लिष्ट अने सौष्ठवपूर्ण रचना ते निबन्ध अने हणवी शिथिल बंधवाली कटाक्ष-हास्य आदिना आश्रयवाली रमतियाल शैली मां लखायेली रचना तो निबंधिका अथवा तो हणवों निबन्ध एवुं वि.म.भट्ट अने विजयराय वैद्य नुं मानवुं छे।”^(५७)

इस प्रकार निबन्ध के भेदों को लेकर जो मतमतांतर है उनसे ये स्पष्ट होता है कि निबन्ध एक ऐसा रचना विधान है जिसको किसी निश्चित रूप में बाँटना आसान नहीं है, क्योंकि निबन्ध में किसी भी बात को किसी भी रूप में व्यक्त किया जाता है इसलिए ही डॉ.कृष्णदेश शर्मा ने अपने 'समीक्षा सिद्धांत' में लिखा है कि - “निबन्ध के संदर्भ में इतना निर्विवाद है कि निबन्ध हमारे लिए अध्ययन, मनन और चिंतन की वस्तु है। इतना ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र के साथ हमने उसका अटूट संबंध जोड़ दिया है। लेखको के द्वारा कभी वह उग्र होकर समाज-विघातक तत्त्वों पर टूट पड़ता है। कभी समाज की गिरी हुई हालत पर सोचा है, झल्लाया है, कही पर उसने दी दुःखियों के आँसू पोंछे हैं,

उनके तप्तमन और मुग्ध दुःखों को वाणी दी हैं। कभी यायावर बनकर दूर देशांतरों में भटका है। उपदेशक बनकर उसके पाप-पूण्य, भले-बूरे, नीति-अनीति की चर्चा की हैं। कभी किसी की निन्दा में लिप्त हुवा है तो कभी किसी की स्तुति में जमीन, आसमान के कुलाबे मिला दिए हैं। हमारे लिए राजकारण, समाज कारण, अर्थकारण, धर्म, नीति, शिक्षा, शास्त्र, कला विज्ञान सभी के साधारण या असाधारण प्रश्नों को वाणी देने का माध्यम वही रहा है। इस सारे कथन का आशय यही है कि निबन्धों का विभाजन उतना ही जटिल होता है जितना कि कला का विभाजन करना।”^(५८)

इन चर्चा का निष्कर्ष यही है कि विद्वानों ने दो से दस तक निबन्धों के भेद बताये हैं मगर सभी आपस में कहीं न कहीं उलझ जाते हैं। इसलिए हम अपने अध्ययन की सुविधा के लिए निबन्ध को मुख्यतः चार भागों में विभाजित कर सकते हैं (१)विवरणात्मक (२)विचारात्मक (३)भावात्मक (४)वर्णनात्मक जिस तरह विचारात्मक निबन्धों के अन्तर्गत ही आलोचनात्मक निबन्ध आ जाते हैं। उसी प्रकार गद्य काव्यात्मक, वैयक्तिक, संस्मरणात्मक, हास्य-व्यंग्यप्रधान निबन्ध भी भावात्मक निबन्धों के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। अतः निबन्ध के उक्त चार भेद ही सर्वथा समीचीन हैं।

इस प्रकार निबन्ध के स्वरूप, तत्त्व, भेद का विस्तृत विश्लेषण करने के बाद यही कहा जा सकता है कि निबन्ध व्यक्ति की मानसिक चेतना और भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप हैं और जनविकास का यथार्थ पत्रक भी। निबन्ध किसी देश की जनसत्तात्मकता, विचार-स्वातंत्र्य और उदार सामाजिकता का लेख हैं। लेखक और पाठक के मध्य निबन्ध सबसे छोटा, सरल और सीधा राजपथ हैं। उसमें व्याख्यान का प्रभाव, वक्तृत्व का वैशिष्ट्य, तर्क का बल और पारस्परिक वार्ता का आनन्द निहित हैं। अन्य साहित्यिक रूपों की अपेक्षा समाज-चेतना और समाज-रचना में निबन्ध का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। जो विद्वान निबन्ध को केवल मनोरंजन की सीमा में बाँधकर सोचते हैं, मैं समजता हूँ वो बड़ी भारी गलती करते हैं। निबन्ध केवल मानसिक आनन्द प्राप्त करा देनेवाली विधा के रूप में कभी किसी देश में नहीं रहा है। वह व्यक्ति समष्टि के मध्य का सर्वोत्तम सेतुबन्ध रहा हैं।

२.२ हिन्दी निबन्ध उद्भव एवं विकास

२.२.१ प्रास्ताविक :-

मानवीय सभ्यता के उत्तरावर्ती विकास क्रम में गद्य का प्रारम्भ वहीं से आरम्भ होता है जहाँ से भाषिक अभिव्यक्ति की रीति चली, परन्तु उसका समर्थ विकास तथा कलात्मक प्रयोग परवर्ती हैं। एक प्रसिद्ध युरोपीय विद्वान की उक्ति है कि - “उसे यह जानकर घोर आश्चर्य हुआ कि आजीवन गद्य ही बोलता रहा, जिसका उसे पता नहीं था।”^(५९) इस कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से गद्य में ही अपने विचारों की शाब्दिक अभिव्यक्ति करता है।

यही कारण है कि आधुनिक युग को एक और नाम भी दिया गया ‘गद्यकाल’ क्योंकि इस युग में गद्य की अनेक ऐसी विधाओं का आरम्भ हुआ। इन सभी गद्य विधाओं में ‘निबन्ध’ विशिष्ट एवं श्रेष्ठ विधा मानी जाती हैं।

प्राचीनकाल में अधिकांशतः पद्य ही सभी प्रकार के कलाशास्त्र तथा ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम था। गद्य का व्यवहार होता था परन्तु अल्प रूप में गद्य तो आधुनिक चेतना का वाहक है और अत्यंत परिष्कृत तथा प्रौढ़ गद्य का प्रतीक है निबन्ध।^(६०)

यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्यकारों की, क्योंकि भाषा की प्रौढ़ावस्था में ही निबन्ध उद्भूत होता है। विश्व की सभी भाषाओं के निबन्ध इसके साक्षी हैं। इसीलिए ‘कार्लाइल’ ने कहा है कि, “निबन्धों को देखकर किसी साहित्य की गहराई का अनुमान किया जा सकता है। निबन्ध आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय गद्यात्मक विधा है। इसकी व्यापकता और लोकप्रियता अन्य साहित्यिक विधाओं से कहीं आगे है। आधुनिक युग में गद्य-साहित्य की जिन विधाओं का उद्भव एवं विकास हुआ है, उसमें ‘निबन्ध’ सर्वाधिक शक्तिशाली हैं। मनुष्य के बौद्धिक उन्नयन में अन्य विधाओं की अपेक्षा निबन्ध का अधिक योगदान है। हमारी सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं धार्मिक स्थितियों के साथ जैसा प्रत्यक्ष सबन्ध ‘निबन्ध’ का है, वैसा साहित्य के अन्य स्वरूपों का नहीं।

आधुनिक साहित्य में 'निबन्ध' की सत्ता, व्याप्ति और शक्ति असंदिग्ध हैं।^(६१)

२.२.२ हिन्दी निबन्ध के विकास का स्रोत :-

हिन्दी निबन्ध के स्रोत की बात करें तो इसके संदर्भ में काफी कुछ धारणायें की गई हैं। वैसे कहें तो निबन्ध आधुनिक मानसिकता का प्रतिबिम्ब है जो उनकी अपनी उपज है पर इस विधा को अन्य विधाओं के समान संस्कृत साहित्य एवं पाश्चात्य साहित्य के साथ जोड़ा जाता है।

संस्कृत साहित्य में 'निबन्ध' कही जानेवाली रचनाओं की विशेषताओं को आधुनिक निबन्धों में देखकर कुछ विद्वान इसे संस्कृत की सुदीर्घ परम्परा का विकास मानते हैं। केवल एक ही विषय अथवा विषय के किसी अंग विशेष या पक्ष को ही लेकर जो छोटे-छोटे ग्रंथ रचे गये, उसे हम आधुनिक निबन्धों के पूर्वज कह सकते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य का 'शृंगार', 'रसमंडल' अथवा गंग कवि का 'चंद-छंद वर्णन की महिमा' इस कोटि के ग्रंथ कहे जायेंगे। यह गुलाबराय की मान्यता है। डॉ.हजारी प्रसाद के विचार से ग्यारहवीं शताब्दी में इन ग्रंथों, भाष्यों, टीकाओं और उनकी टीकाओं की परम्परा बहुत अधिक बढ़ गई थी। यह आगे चलकर और भी बढ़ती चली गई। यहीं से इसने एक नया रास्ता पकड़ा। टीका-परम्परा की इस नई शाखा को हम निबन्ध साहित्य कह सकते हैं।^(६२)

इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि भाषा में प्राचीनकाल से ही टीका-टिप्पणी लिखने की परम्परा चलती आई है। उसमें परम्परागत बौद्धिक विषयों के सिद्धांत-पक्ष का प्रतिपादन, आक्षेपों का खंडन एवं नवीन उद्भावनाओं की स्थापना की प्रवृत्ति निहित रही इसलिए आचार्य हजारी प्रसादजी ने इसे निबन्ध का प्राचीन रूप माना है।

हिन्दी निबन्ध के विकास के स्रोत के रूप में पाश्चात्य साहित्य एवं आधुनिक भारतीय सभ्यता को भी देखा जाता है। डॉ.शंकुतला दुबे का मानना है कि - "यूरोपीय सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के सम्पर्क, सामाचार-पत्रों के प्रकाशन, वैचारिक आदान-

प्रदान, मुद्रण यंत्र के आविष्कार एवं प्रचलन होने से गद्य के अस्तमित एवं त्वरित विकास में विशेष योगदान मिला। इससे गद्य साहित्य की विधाये द्रुतगति से विकसित होने लगी। निबन्ध की रूपरेखा इसी गद्य की काया में परिलक्षित हुई। एकांकी, उपन्यास, रिपोर्ताज तथा रेखाचित्र की भाँति 'निबन्ध' का भी उद्भव आधुनिक वातावरण और पाश्चात्य सम्पर्क से उत्पन्न उत्तेजना से हुवा हैं।"^(६३)

वैसे ये तो स्पष्ट है कि भारत में आधुनिकता का प्रवेश अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रसार के साथ हुआ। युरोपीय ज्ञान-विज्ञान, जीवन-विधि, सभ्यता-संस्कृति, बौद्धिकता, प्रचार-साधन, वैज्ञानिक-उपकरण, शिक्षा और नये ढंग के प्रशासन ने भारतीय जीवन में अनेक प्रकार की उत्तेजनाएँ पैदा कर दी। इस उत्तेजना को साहित्यिक रूप मिला, और प्रशासन के अनिवार्य कारणों से गद्य को बढावा मिला। भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का संचार होने लगा। परिणामतः पचास-साठ वर्षों के अन्तराल में गद्य ने वैचारिक-भाषा का स्वरूप ग्रहण किया और हिन्दी की मौलिक गद्य विधा के साथ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से गद्य और पद्य साहित्य का तीव्र गति से प्रचार-प्रसार हुआ। इसी क्रम में आधुनिकता के सभी तत्त्वों एवं पाश्चात्य प्रेरणा के साथ हिन्दी निबन्ध का उद्भव हुआ।

वस्तुतः हिन्दी निबन्ध को हम भले ही संस्कृत एवं पाश्चात्य साहित्य से जोड़ रहे हो पर हिन्दी निबन्ध ने उनसे सुघ अवश्य ली हैं, पर अपना विकास स्वतंत्र रूप से किया है। ऐसा कहें तो भी हम गलत नहीं हो सकते। इसी बात को व्यक्त करते हुवे 'हरहरनाथजी' ने लिखा है कि - "हिन्दी का 'निबन्ध' संस्कृत शब्द होते हुए भी अपने प्राचीन स्वरूप से भिन्न है। 'निबन्ध' का यह आधुनिक रूप पश्चिम की देन है। संस्कृत की टीकाएँ और आख्यायिकाएँ तो मिलती हैं, आधुनिक ढंग के निबन्ध नहीं मिलते। वस्तुतः हिन्दी के निबन्ध-साहित्य का स्त्रोत प्राचीन साहित्य नहीं, पाश्चात्य साहित्य और सामायिक परिस्थितियाँ के अनुरूप इसे जन जागरण के अस्त्र के रूप में अपनाया लेकिन हिन्दी का निबन्ध-साहित्य अंग्रेजी का अनुकरण मात्र नहीं है, इसे प्रेरणा भले वहाँ से मिली हो। पं.चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पं.हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं.देवेन्द्रनाथ शर्मा,

पं.विद्यानिवास मिश्र आदि के निबन्धों में छाया भले ही अंग्रेजी की हो, प्रकाश भारतीय है। यह दूसरी बात है कि भारतेन्दु युग के अनेक हिन्दी निबन्धकारों ने अंग्रेजी के निबन्धों का अनुवाद और शैली का अनुकरण किया है, परन्तु इतना स्पष्ट है कि हिन्दी में प्रचलित अर्थ के निबन्ध पाश्चात्य साहित्य की देन नहीं है तो संस्कृत के विकास भी नहीं हैं।^(६४)

२.२.३ हिन्दी निबन्ध का उद्भव और विकास :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का सर्व प्रमुख लक्षण गद्य और गद्य साहित्य का विकास है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृतिका सम्पर्क, आधुनिकता में प्रवेश, भौतिका एवं बौद्धिकता की वृद्धि, वैचारिक संघर्ष, समाचार पत्रों का प्रकाशन, अनुवादों की परम्परा इन सभी के कारण गद्य का अत्यन्त तीव्र गति से विकास एवं प्रचलन हुआ, “निबन्ध साहित्य की उत्पत्ति और विकास का श्रेय भी भारतेन्दु युग को ही दिया जाता है। यह वह समय था, जब भारतीय समाज में एक नवीन सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना का उदय हो रहा था। इस नवीन-चेतना का प्रतिनिधित्व और प्रकाशन तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ जैसे - हरिश्चन्द्र, चंद्रिका, ब्राह्मण, सार-सुधानिधि, हिन्दी-प्रदीप आदि कर रही थी। हिन्दी के आरम्भिक ‘निबन्ध’ छॉटे-छॉटे लेखों के रूप में, जो समाचार-पत्रों के अत्यन्त आवश्यक अंग होते थे, हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इन समाचार-पत्रों के सम्पादक ही इन लेखों के लेखक होते थे। उस समय इन लेखों में साधारण विषयों, सामयिक आन्दोलनों, धार्मिक समस्याओं आदि पर प्रकाश डाला जाता था। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा जिस साहित्यिक रूप का जन्म और विकास हो, उसमें पत्रकारिता की झलक आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। इस प्रकार हिन्दी के इन प्रारंभिक निबन्धों में निबन्ध का एक ऐसा रूप उभरा था जिसमें पत्रकारिता का समावेश होने के कारण गंभीरता के स्थान पर उन्मुक्तता को अधिक स्थान मिला।^(६५)

हिन्दी निबन्ध के क्रमिक विकास का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी निबन्ध का श्रीगणेश हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से हुआ है। सर्वप्रथम १८७३ ई. में

‘हरचिन्द्र मैगेजीन’ का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जिसमें आठ अंको के पश्चात उसका नाम ‘हरिचन्द्र-चन्द्रिका’ हो गया। अतः निबन्ध के आरम्भिक युग का श्रीगणेश १८७३ ई. से होता है और ‘सरस्वती-पत्रिका’ की प्रकाशनारम्भ तिथि अर्थात् १९०० ई. तक चलती हैं।^(६६)

“वस्तुतः आरम्भ में निबन्ध का सम्बन्ध पत्र-पत्रिकाओं से सीधा जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनेक विषय थे। राजनीति, समाज-सुधार, धर्म, दर्शन, आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महा-पुरुषों की जीवनियाँ आदि विषयों को लेकर इस युग के लेखकों ने निबन्ध साहित्य को समृद्ध किया। भारतेन्दु ने ‘हरिचन्द्र मैगेजीन’ प्रतापनारायण ने ‘ब्राह्मण’, बालकृष्ण भट्ट ने ‘हिन्दी प्रदीप’, बद्रीनारायण चौधरी ने ‘आनन्द काद्रम्बिनी’ और श्री निवासदास ने ‘सदादर्श’ पत्रिकाओं का सम्पादन किया।” इन पत्रिकाओं ने हिन्दी निबन्ध-साहित्य के विकास क्रम को अविस्मरणीय योगदान दिया।^(६७)

अतः निबन्धों की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु से मानना ही उचित होगा। डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा, विजयशंकर मल्ल, डॉ. रामरतन भटनागर, जयनाथ नलिन, प्रा. ब्रह्मदत्त शर्मा आदि विद्वान भारतेन्दु को ही हिन्दी निबन्धों का प्रवर्तक मानते हैं। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने ‘राजा-भोज का सपना’ को हिन्दी का प्रथम निबन्ध तथा उसके लेखक ‘राजा शिवप्रसाद’ को हिन्दी का प्रथम निबन्धकार माना है, पर हिन्दी निबन्ध का व्यवस्थित इतिहास भारतेन्दु हरचिन्द्र के समय से ही प्रारम्भ होता है। डॉ. जयनाथ नलिन, धीरेन्द्र वर्मा ‘बालकृष्ण भट्ट’ को प्रथम निबन्ध लेखक मानते हैं। शिवनाथ की द्रष्टि में ‘सदा सुखलाल’ हिन्दी के प्रथम निबन्धकार हैं।^(६८)

इन उपरोक्त मतों के आधार पर देखा जाये तो आधुनिक युग में भारतेन्दु युग के पूर्व की किसी भी गद्य रचना को ‘निबन्ध’ और उनके रचयिता को निबन्धकार कहना उचित नहीं है। बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दुजी से आयु में ६ वर्ष बड़े थे, विषयों की विविधता, भाषा और शैली की परिष्कृतता, एवं मार्मिकता के कारण अनेक आलोचकों ने उन्हें निबन्धकारों में शीर्ष-स्थान दिया है, और स्थान योग्य भी लगता है। आरम्भिक युग

के प्रतिनिधि निबन्धकार पं.बालकृष्ण भट्ट ही हैं जिनके निबन्धों में तत्कालीन युग की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, तथा जिन्होंने विविध शैलियाँ अपनाकर अपने युग का सर्वश्रेष्ठ निबन्ध साहित्य प्रस्तुत किया है।^(६९)

परन्तु हिन्दी निबन्ध-परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु युग से मानते हुए उक्त परम्परा को साधारण तौर पर डॉ.मू.ब.शहा चार भागों में विभाजित करते हैं। - जैसे

- (क) उद्गम युग (भारतेन्दु युग) - १८७३-१९००
- (ख) उत्थान युग (द्वेदी युग) - १९००-१९२०
- (ग) विकास युग (शुक्लयुग) - १९२०-१९४७
- (घ) प्रौढ युग - १०४७-१९६० ^(७०)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में युग के नामकरण का आधार सामान्य रूप से उन व्यक्तियों का सर्व-व्यापक साहित्यिक रूप रहा है, जिन्होंने साहित्य की धारा को गति या दिशा दी, भारतेन्दुजी, महावीर प्रसादजी, रामचन्द्र शुक्ल अपने समय की वे हस्तियाँ थी जो साहित्य क्षेत्रपर काफी प्रभाव रखते थे। पुरा युग उनके व्यक्तित्व से प्रभावित था और पथ दर्शन की दृष्टि से उन्हें ही देखा करता था। इसलिए हिन्दी निबन्ध के विकासक्रम को व्यक्त करने के लिए उन्हीं को आधार रूप में लेते हुवे हम आगे बढे यही उचित होगा।

२.२.४ भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य :-

हिन्दी में निबन्धों का सही रूप में श्रीगणेश भारतेन्दु युग में ही हुआ मिलता है। इसके अतिरिक्त यह भी कम महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं कि अपने शैशवावस्था में भी इस काल के निबन्ध विषय-वस्तु और शैली की दृष्टि से अपूर्व हैं। भारतेन्दु युग सामाजिक हलचल और सुधार की भावना से आंदोलित था। इसलिए अपनी अभिव्यक्ति के लिए लेखकों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक लेख, अग्रलेख, सम्पादकीय तथा निबन्ध लिखें और ऐसी प्रभावोत्पादक शैली का प्रयोग किया जो निबन्ध रचना के लिए अनिवार्य आवश्यकता हैं।^(७१)

भारतेन्दुयुग गद्य का प्रारम्भिक काल था इसलिए इस युग में गाम्भीर्य की अपेक्षा मनोरंजन और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक है, किन्तु यह चमत्कार प्रदर्शन कोरी तडक-भडक नहीं, उसमें यह चटपटेपन के साथ पौष्टिकता भी थी। भारतेन्दु युग के निबन्ध-साहित्य के पीछे राजनीतिक और सामाजिक सृष्टि की भावना भी निहित थी। ये लोग नितांत उपयोगीतावादी भी थे। इस काल के निबन्धों में एक विशेष सजीवता और जिन्दा-दिली के दर्शन होते हैं।^(७२) अतः इस युग के निबन्ध साहित्य में तत्कालीन युग की समग्र चेतना सम्यक रूप से प्रतिबिम्बित हुई। गद्य के किसी सर्व-स्वीकृत रूप के अभाव में भाषा और शैली में एकरूपता का आना उस युग के निबन्धों में कठिन था। अतः इस युग में वैयक्तिक प्रयोग ही चलते रहें। इस युग में निबन्ध खूब लिखे गए और संभवतः इस युग के गद्य-साहित्य का सबसे उन्नत अंग निबन्ध हैं।^(७३)

इस काल के प्रमुख लेखकों ने निबन्धों को समाज सुधार, राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना और उन्नतिशील जीवन की प्रेरणा का साधन बनाया था। इनके निबन्धों में जीवन और जगत के विभिन्न क्षेत्रों से समाजोपयोगी विषय चुन-चुनकर अपनाएँ गए थे। इन विषयों की सीमा में समाज, शिक्षा, राजनीति, साहित्य, धर्म आदि सभी का समावेश होता था, जन-जीवन का स्पर्श करनेवाले सभी विषयों का अनुभूतिपूर्ण समावेश इन निबन्धों की सीमा में किया गया है।^(७४) “भारतेन्दु ने पुरातत्त्व, इतिहास, धर्म, कला, समाज-सुधार, जीवनी, यात्रा-वृत्तांत, भाषा, साहित्य आदि अनेक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। जिनमें से अनेक में व्यंग्य-शैली का अदभूत आकर्षण विद्यमान है। उनके यात्रा-वृत्तांत और ऋतु-वर्णन सम्बन्धी निबन्ध अधिक सजीव हैं। ‘प्रतापनारायण मिश्र’ के लिए विषय की कोई सीमा नहीं थी ‘धोखा’, ‘खुशामत’, ‘आप’, ‘बांते’, ‘दाँत’, ‘भौ’, ‘नारी’, ‘मुच्छ’, ‘परीक्षा’, ‘हृद’, ‘समाज की मौत है’, ‘मनोयोग’ आदि अनेक विषयों को लेकर उन्होंने अपनी मौज में सार्थक बात कही है। भारतेन्दु की भाँति उनका उद्देश्य भी जनता को जाग्रत करना था, फलतः उन्होंने देश की दुर्दशा का चित्र खींचकर सभी क्षेत्रों में सुधार और नव-निर्माण की प्रेरणा दी। बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वाधिक समर्थ निबन्धकार है,

उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर जमकर लिखा है। ‘बाल-विवाह’, ‘स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा’, ‘राजा और प्रजा’, ‘कृषकों की दुरावस्था’, ‘अंग्रेजी शिक्षा और प्रकाश’, ‘हमारे नये सुशिक्षितों में परिवर्तन’, ‘देश सेवा महत्व’, ‘महिला-स्वातंत्र्य’ आदि निबन्ध इसी प्रकार के हैं। इनके अतिरिक्त मनोभावो तथा भाषा और साहित्य संबन्धी विषयों पर भी भट्टजी ने विचार किया हैं। उनके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबन्ध वे हैं जिनमें विषय की अपेक्षा अपने को व्यक्त किया है। ‘ईश्वर भी का ठोल है’ ‘चली सो चली’, ‘देवताओं से हमारी बातचीत’, ‘नये नहर का जनून’, ‘खटका’ आदि निबन्ध आत्मव्यंजना की प्रधानता के कारण अधिक आकर्षक बन पड़े हैं। प्रेमधन के निबन्ध भी आधितर सामाजिक विषयों पर टिप्पणी के रूप में है। वैसे प्राकृतिक उपकरणों पर भी उन्होंने काव्यात्मक शैली में निबन्ध लिखे हैं।”^(७५)

भारतेन्दु युग के सभी निबन्धकारों की शैली में वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता का समन्वय मिलता हैं। गूढ़ से गूढ़ विषयों को भी इस युग के लेखकों ने सरल, सुबोध, मनोरंजक शैली में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा-शैली में व्याकरण की दृष्टि से स्वच्छता या शुद्धता भले ही नहीं, किन्तु वे हृदय को गुदगुदाने उसके मस्तिष्क को झंकृत करने व उनकी आत्मा को स्पर्श करने में पूर्णतः समर्थ हैं। इस युग के निबन्धों की भाषा-शैली पर टिप्पणी करते हुए डॉ.नगेन्द्र ने लिखा है कि - “शैली की दृष्टि से विचारात्मक, भाषा का वर्णनात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, अनुसंहात्मक, एवं भाषण आदि सभी शैलियों के निबन्ध भारतेन्दु युग में लिखे गये।”^(७६)

डॉ.राजनाथ शर्मा ने अपने साहित्यिक निबन्ध में लिखा है कि “इस युग के लेखक आत्मीयता का संबन्ध स्थापित करना चाहते थे, साहित्य की सप्रमाणता उस शैली में है, जहाँ लेखक और पाठक के बीच कोई दूरी नहीं रह जाती। सहज आत्मीयता के भाव में भाषा को खूब स्वाभाविक बना दिया। कृत्रिम शैली में लेखक-पाठक का आत्मीय बन नहीं सकता।”^(७७) आचार्य शुक्लजी ने इस युग की निश्छलता और तन्मयता को लक्ष्य कर कहा था “यह युग बच्चे के समान हँसना, खेलता आया था जिसमें बच्चों की

सी ही निश्छलता, अकड़पन, सरलता और तन्मयता थी।^(७८) भारतेन्दु युग के बाद आज तक हिन्दी निबंधों में ऐसी सरलता और आत्मीयता फिर कभी न मिल सकी।” बाबु गुलाबराय के शब्दों में “निबन्ध की पृष्ठभूमि में रहनेवाला निजीपन, हृदयाल्लास और अपनेपन के लिए भारतेन्दु युग चिर स्मरणीय रहेगा।”^(७९)

इस प्रकार रोचकता, सजीवता, व्यंग्यात्मकता, मार्मिकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता इस काल के निबन्धों में पाई जाती है। इस युग में प्रायः सभी शैली में विपुल लेखन हुआ। इस प्रकार इस युग में भाषा में सरलता एवं शैली में विविधता पाई जाती हैं।

भारतेन्दु युग के प्रमुख निबन्धकारों में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी ‘प्रेमधन’, प्रमापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गौस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दुजी मात्र एक साहित्यकार नहीं थे, अपितु साहित्यकार के विराट रूप थे। उन्होंने कविता, नाटक, निबन्ध, आलोचना आदि सभी रूपों का विकास ही नहीं किया, अपितु उनमें उन विशेषताओं और प्रवृत्तियों का समन्वय भी किया, जो इस युग में सम्भव था। कविता और नाटक की भाँति उनके निबन्ध का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है।^(८०) समाज का कोई ऐसा पहलू नहीं है जिस पर भारतेन्दुजी ने स्वयं निबन्ध न लिखा हो। उनके निबन्धों में अंग्रेज और अंग्रेजीपन तथा अंधविश्वासों और आड़म्बरों पर तीव्र प्रहार किया गया है। उनके व्यंग्य बड़े तीखे और प्रभावशाली हैं। उनके निबन्धों के दो संग्रह हुए - ‘हरिश्चन्द्र कला’ (भाग-४) तथा केसरी नारायण शुक्ल द्वारा संपादित ‘भारतेन्दु के निबन्ध’, होली, खुशी, सूर्योदय, मित्रता, अपव्यय, सरयूरपार की यात्रा, एक कहानी, एकअपूर्व स्वप्न, पाँचवे पैगम्बर, स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन और अंग्रेजी स्त्रोत आदि उनके प्रख्यात निबन्ध हैं। ‘पाँचवे पैगम्बर में अंग्रेजों के शोषण नीति का पर्दाफाश किया है।’ स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन में उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की रूढ़ियों की जकड़ और भारतीयता की दासता पर व्यंग्य किया है। भावों की निर्भीकता, सामयिकता तथा रूप विन्यास में बहती गई उदारता निबन्ध के पुराने प्रतिमानों से अपनी स्वतंत्रता घोषित करती है। सरल बोलचाल और

विदेशी शब्दों के मिश्रित कुतूहल में ही वे मनोरंजन की इतिश्री नहीं समजते। उन्होंने व्यंग्य के साथ विचारों का गांभीर्य भी प्रस्तुत किया।^(८१)

दूसरे उल्लेखनीय निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट हैं। निबन्ध लेखन के अग्रणी भारतेन्दु भले ही रहे हो, जलदाता भट्टजी थे।^(८२) विचार-प्रधान निबन्धों के रचयिता के रूप में बालकृष्ण भट्ट विशेष महत्त्व रखते थे।^(८३) बालकृष्ण भट्ट एक स्वतंत्र और प्रगतिशील विचारों के निबन्धकार हैं। भट्टजी कदाचित् भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार हैं। इन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं।^(८४) भट्टजी 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक थे, और उनकी लेखनी से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक और विचारात्मक सभी प्रकार के निबन्ध प्रस्तुत हुए हैं। कुछ निबन्धों के शीर्षक से ही उनके विषय क्षेत्र की व्यापकता का अनुमान लगाया जा सकता है।^(८५) आँख, नाक, कान, पैसा, नहीं, आँसू, भकुआ कौन-कौन है, इंगलिश पढ़े सो बाबू होय, माँगबो भलो न बापसे जो विधिराखे टेक, पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर है, ईश्वर भी क्या ठठोला है आदि उनके उत्कृष्ट निबन्ध हैं। उनके निबन्धों में गम्भीर तथ्य विवेचन के साथ-साथ मनोरंजन के लिए हास्य तथा रूढ़ियों पर चोट करने के लिए व्यंग्य की प्रचुरता पाई जाती है।^(८६) उनके कतिपय सुन्दर एवं सजीव निबन्धों का एक संकलन 'साहित्य-सुमन' के नाम से प्रकाशित हुआ था। तदनंतर भट्टजी के सुपुत्र जनार्दन भट्ट ने सं.२००४ में बत्तीस निबन्धों का एक संकलन भट्ट 'निबन्ध-माला' प्रथम भाग के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित कराया। तत्पश्चात् सं.२००४ में ही पुनः बत्तीस निबन्धों का एक और संकलन 'भट्ट निबन्ध-माला' दूसरा भाग के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक भी पं.जनार्दन भट्ट ही हैं। इस प्रकार भट्टजी के चौंसठ उत्तम निबन्धों को पुस्तकाकार रूप में दो भागों के अन्तर्गत प्रकाशित कराया गया है। अन्य सभी निबन्ध अभी तक 'हिन्दी प्रदीप' की फाइलों में ही विद्यमान हैं।^(८७)

तीसरे विचारणीय निबन्धकार प्रतापनारायण मिश्र हैं। मिश्रजी 'ब्राह्मण' के

सम्पादक थे। वे स्वभाव से मस्तमौला और फक्कड थे। निबन्ध की परिभाषा स्थिर करने की और उनका ध्यान नहीं गया लेकिन युग के बदलते स्वर और साधारण विषयों को महिमा देने की युगपत् चेष्टा इनके निबन्धों में पाई जाती है। आप, तिल, माँ, होली, मनोयोग, धूरे के लत्ता बिने, समजदार की मौत, खुशामद, शीर्षक निबन्धों से ये बात स्पष्ट हो जाती है।^(८८) प्रतापनारायण मिश्र स्वच्छतावादी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, उसी के अनुरूप उनके निबन्धों में एक प्रकारका उन्मुक्त वातावरण मिलता है।^(८९) इनके 'नवीन', 'प्रताप-पीयूष' तथा 'प्रताप समुच्चय' तीन निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।^(९०) भाषा में स्खलन शैली में धनरूप ग्रामीणता, चंचलता और उछलकूद मिश्रजी की विशेषता हैं। मिश्रजी के निबन्धों में मुहावरों का प्रयोग भी अत्यधिक मात्रा में हुवा हैं कही कही तो वे एक वाक्य में ही अनेक मुहावरों की झडी लगा देते हैं।^(९१)

भारतेन्दु के मित्र चौधरी बट्टीनारायण 'प्रेमधन', 'दोपत्रों', 'आनन्द कादम्बिनी' (मासिक) और 'नागरी-नीरद' (साप्ताहिक) के सम्पादक थे। इन पत्रों में उनके अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए जैसे 'हिन्दी भाषा का विकास, परिपूर्ण प्रयास, उत्साह आलम्बन आदि।' 'प्रेमधनजी' का आलंकारिकता, कृत्रिमता, चमत्कारोत्पत्ति का प्रयास मिलता है।^(९२) उनकी निबन्ध शैली चमत्कार और अलंकरण से परिपूर्ण है। वस्तुतः वे संस्कृत-गर्भित रचना-प्रवृत्ति के समर्थक थे। अतः उन्होंने तत्सम् शब्दों के आधार पर अपनी रचना शैली का निर्माण किया।^(९३) 'प्रेमधन' निबन्धों को एक कला समजकर विशेष-विचार तथा अध्ययन के बाद अपने निबन्ध लिखते थे। उनके निबन्ध भी अधिकतर सामायिक विषयों पर टिप्पणी के रूप में हैं। वैसे प्राकृतिक उपकरणों पर भी उन्होंने काव्यात्मक निबन्ध लिखे हैं।^(९४)

बालमुकुन्द गुप्त ने 'बँगवासी', 'भारतमित्र' आदि का सम्पादन करते हुए अनेक निबन्ध लिखे। उनके निबन्धों में विदेशी शासकों की नीति पर मीठा व्यंग्य किया गया है। 'शिव-शम्भू' के उपनाम से उन्होंने अनेक निबन्ध लिखे, जो 'शिव-शम्भू का चिट्ठा' के नाम से प्रसिद्ध हैं।^(९५) बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु और द्विवेदी युग के बीच की महत्वपूर्ण

कड़ी हैं। 'शिव-शम्भू के चिट्ठा' तथा चिट्ठ और खत, पत्रात्मक शैली के निबन्ध हैं जिनमें उन्होंने सामाजिक तथा साहित्यिक विषयों का समावेश किया है। गंभीर बातों को विनोदपूर्ण तथा व्यंग्यात्मक शैली में कहने की कला उनके निबन्धों में खुलकर आई है। गुप्तजी ने अपने चिट्ठों के द्वारा 'शिवशम्भू' को ऐतिहासिक स्मृति-पुरुष बना दिया है।^(९६) गुप्तजी ने अपने निबन्धों में विदेशी शासकों की नीति पर तीखे व्यंग्य किये हैं। विचारों की स्पष्टता के कारण गुप्तजी के निबन्ध सशक्त बन पड़े हैं। इनके निबन्धों का संग्रह 'गुप्त निबन्धावली' नाम से प्रकाशित हुआ है।^(९७)

इन प्रमुख निबन्धकारों के अलावा राधाचरण-गौस्वमी, पं.अम्बीकादत्त व्यास, लाला श्रीनिवासदास, मोहनलाल पंड्या, भीमसेन शर्मा, ठाकुर जगमोहन सिंह, ज्वाला प्रसाद, तोताराम ने निबन्ध के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

श्री विजयशंकर ने भारतेन्दु युगीन निबन्धों की विशेषताओं को व्यक्त करते हुए कहा है कि - “भारतेन्दु युग में निबन्ध सचमूच प्रयास ही हैं। उनमें न बुद्धिवैभव है न पाण्डित्य प्रदर्शन और न ग्रन्थ-ज्ञापन। इन लेखकों की रुचि सभी विषयों में है पर किसी भी विषय में ये अन्तिम बात नहीं करते, बल्कि पाठक के साथ सोचना-विचारना चाहते हैं। उनमें कुछ ऐसी आत्मीयता और बेतकल्लुफी है कि पाठक भी उनसे घुल-मिल जाना चाहते हैं।^(९८) इस प्रकार इस निवेदन के आधार पर हम भारतेन्दु युगीन निबन्धों की विशेषताओं को देखें तो कुछ इस प्रकार बता सकते हैं।

- भारतेन्दु युगीन निबन्धों में विषयों की विविधता व व्यापकता पाई जाती हैं।
- भारतेन्दु युगीन निबन्धों में गूढ़ विषयों की सरल अभिव्यक्ति मिलती है।
- इस युग के निबन्धों में जीवन व साहित्य का सहज मिलन हुआ है।
- भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्यिक चेतना से युक्त हैं।
- भारतेन्दु युगीन निबन्धों में विविध शैलियों का प्रयोग हुआ है।
- भारतेन्दु युगीन निबन्धों में वैयक्तिकता के साथ सामाजिकता का समन्वय है।
- भारतेन्दु युगीन निबन्धों में संपूर्ण युग चेतना का प्रतिबिंब है।

- भारतेन्दु युगीन निबन्ध में व्याकरणिक दृष्टि से कलात्मकता कम हैं।

वस्तुतः इस युग के कर्मठ, त्यागी, तपस्वी, साहित्यकारों ने जीवन और साहित्य की शृंगारकालीन विभेदक दीवारों को धराशायी कर साहित्य को जीवन के साथ ला मिलाया। जीवन और साहित्य का यह मेल इतना सहज और आत्मीयता भरा था कि उसमें शास्त्रीय विधि-निषेधों का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। पाठकों के साथ पूर्ण आत्मीयता स्थापित कर लेना इस युग के निबन्धकारों की सबसे बड़ी सफलता और विशिष्टता रही हैं।

२.२.५ द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य :-

१९०० ई. में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी को न्यायालयों में स्थान भी इसी वर्ष मिला। काशीनागरी प्रचारिणी सभा को सरकारी सहायता प्राप्त होने का वर्ष यही हैं। द्विवेदीजी १९०३ ई. में 'सरस्वती' का संपादक पद भी ग्रहण कर लेते हैं। ये घटना न केवल हिन्दी निबन्ध का वरन् पूरे हिन्दी साहित्य को एक नया मोड़ देती हैं।^(९९) यद्यपि निबन्ध का जन्म भारतेन्दु युग में ही हुआ, परन्तु उस युग के निबन्धों के विषय और उपादान सीमित ही रहे। सन् १९०३ में 'सरस्वती' पत्रिका को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने हाथों में लिया और निबन्ध के विकास और भाषा-सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। यह युग द्विवेदीयुग के नाम से पुकारा गया।^(१००) द्विवेदी युग हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपेक्षाकृत प्रौढ़ गद्य का काल है स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद, बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', पद्मसिंह शर्मा एवं सरदारपूर्ण सिंह अधिकार के साथ गद्य लिखते थे।^(१०१) इसीलिए इस युग को अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। क्योंकि भारतेन्दुजी ने जो भवन बनाया इसे सजाने, सवॉरने का कार्य इस युग में सम्पन्न होता हुआ नजर आता है।

इस युग के निबन्धों के विषयों को लेकर डॉ.मू.ब. शहा का मतव्य है कि "पूर्ववर्ती युग की अपेक्षा विविध विषयों में पनपनेवाला और आगे बढ़ानेवाला निबन्ध अपेक्षाकृत

गम्भीर और साहित्यिक बन गया।^(१०२) उसके समय में निबन्ध का विषय, समाज, राजनीति तथा चटपटेपन में सीमित नहीं रहा। द्विवेदी के समय में उपयोगिता के साथ ज्ञान-विस्तार की ओर भी प्रवृत्ति आई और उनकी प्रेरणा से ऐतिहासिक, पुरातत्व-सम्बन्धी एवं आलोचनात्मक लेख लिखे गए। दूसरी भाषाओं से गम्भीर विषयों के निबन्धों के अनुवाद भी किये गए।^(१०३) युग एवं जीवन की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, आर्थिक समस्याओं के प्रति भारतेन्दु एवं द्विवेदीयुग के निबन्धकार सजग है इसलिए अपने निबन्धों में उन्होंने इनका संस्पर्श किया है। इस युग के लेखक भारत के प्राचीन दर्शन, संस्कृति वाङ्मय, साहित्य, शिक्षा, ज्ञान, परम्परा से प्रेरणा लेकर उसकी पुनःस्थापना युग के अनुकूल कर रहे थे। इसी कारण ये सभी भारतीयता के गौरवगान, राष्ट्रीयता-श्रेष्ठता के प्रतिपादन एवं उत्कर्ष की स्मृतियों के अवगाहन में लीन थे।^(१०४) इन मंतव्यों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदीयुगीन निबन्धकार अपने निबन्धों के विषय के बारे में काफी गंभीर जान पड़ते हैं।

ये सनातन सत्य है कि द्विवेदी युग के लेखकों की पहचान यही रही है कि इस युग के लेखकों ने युगीन साहित्य को काफी परिमार्जित किया है उन्होंने युगीन साहित्य की भाषा व शैली में काफी निखार लाने का प्रयत्न किया है। इसलिए शिवकुमार शर्मा ने कहा है कि - “इस युग की समस्त साहित्य चेतना महावीरप्रसाद द्विवेदीजी में समाहित है। उनका सबसे पहला कार्य है भाषा का संस्कार तथा परिष्कार। उन्होंने भाषा के व्याकरण-सम्मत प्रयोग तथा हिन्दी विरामचिह्नों के उपयोग पर अत्यधिक बल दिया। उनका भाषा संबन्धी आदर्श था कि हिन्दी को अन्य भाषाओं के शब्दों से सर्वथा अछूता न रखा जाए किन्तु उसमें प्रयत्न पूर्वक संस्कृत के तत्सम् शब्दों का बहिष्कार भी न किया जाय।^(१०५) उन्होंने अपने युग को व्याकरण-सम्मत शुद्ध और परिनिष्ठित भाषा की दिशा में प्रवृत्तकर भाषा को स्थिर रूप प्रदान किया।^(१०६) शैली की दृष्टि से इस युग में वर्णनात्मक, भावात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, कथात्मक, शोधपरक आदि सभी शैलियों में निबन्ध लिखे गये।^(१०७) फिर भी हमें लगता है कि द्विवेदीयुग के निबन्धों में आत्मीयता का भाव लूप्त हुआ है क्योंकि द्विवेदीयुग में जीवन को बौद्धिक दृष्टिकोण से

देखा गया इसलिए डॉ.श्यामवर्मा ने लिखा है कि - “भारतेन्दु युग के भावुकता पूर्ण वर्णन अथवा विवरण-शैली ने द्विवेदीयुग में बौद्धिक व्याख्यात्मक अथवा व्यास शैली का रूप ले लिया। भारतेन्दुयुग में तो जागरण का उन्मेशभर हुआ, उसमें व्यापकता लाने का कार्य द्विवेदीयुग ने सम्पन्न किया। इस कार्य के लिए व्यासपीठ वाली आदेशात्मक एवं उपदेशात्मक शैली ही अधिक उपयुक्त होती हैं।”^(१०८)

इन कथनों से ये स्पष्ट है कि इस युग में भाषा शुद्ध व्याकरण एवं विशिष्ट शैली का निर्माण करने पर विशेष जौर दिया गया है। भाषा-शैली की दृष्टि से ये युग काफी श्रेष्ठ रहा है।

इस युग में पं.महावीरप्रसादजी, बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, गोविंदनारायण मिश्र, चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’, सरदार पूर्णसिंह, गोपालराम गहमरी, पद्मसिंह शर्मा, डॉ.श्याम सुंदर दास, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, मिश्रबन्धु शिव पुजन सहाय, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि कई निबन्धकार हुए।^(१०९) इनके अलावा माधवराय सप्रे, विनयानंद दुबे, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, मातादीन शुक्ल, जनार्दन भट्ट ने इस दिशा पर काम किया पर प्रमुख निबन्धकारों के रूप में पं.महावीरप्रसादजी, चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’, सरदार पूर्णसिंह का उल्लेख किया जा सकता है।

महावीर प्रसादजी युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे। उनके अधिकांश निबन्ध शास्त्रीय पद्धति के तथा विचारात्मक हैं। रसज्ञ-रंजन, साहित्य-संदर्भ और विचार-विमर्श उनके निबन्ध संग्रह हैं। वे सर्वप्रथम बेकन-विचार रत्नावली का हिन्दी अनुवाद लेकर निबन्ध के क्षेत्र में आए। कवि और कविता प्रतिभा, कविता, साहित्य की महत्ता, प्रभाव, सुष्मा, लोभ, प्रीति, क्रोध आदि में पाण्डित्य, संयम और नियम-निष्ठा के दर्शन होते हैं। लेकिन ये निबन्ध शास्त्रीय गरिमा, और तत्वगुरुता के कारण बेकन की पद्धति के दीखते भर हैं।^(११०) कलेवर की दृष्टि से यदि द्विवेदीजी के निबन्धों का वर्गीकरण करे तो उन्हें चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) पत्रिकाओं के लिए लिखित लेख (२) ग्रन्थों की भूमिकाएँ (३) पुस्तकाकार प्रकाशित निबन्ध और (४) भाषण।^(१११) द्विवेदीजी युग-प्रवर्तक चेतना से सदाग्रस्त रहे। वह चेतना ग्रंथी जैसी बन गई थी। निरकुंशता चाहे कालिदास

की हो, चाहे समकालिन लेखकों की, द्विवेदीजी उनका मानभंग, मोहभंग किये बीना माननेवाले नहीं थे। रूढि-खण्डन, त्रुटि-संशोधन और मानदंड-निर्माण के लिए निबन्धों के द्वारा वे एक प्रबल आंदोलन चला रहे थे।^(११२) उन्होंने सामाजिक प्रश्नों के ऐसे-ऐसे समाधान प्रस्तुत किए जो निबन्ध-कला की दृष्टि से सर्वथा प्रशंसनीय हैं तथा जो आगामी निबन्धकारों के लिए आलोक-स्थंभ का कार्य कर रहे हैं।

गुलेरीजी की साहित्य-क्षमता अप्रतिम थी। वे पुरा-तत्त्व के मान्य विद्वान थे, किन्तु कहानी और निबन्ध के क्षेत्र में भी उनका स्थान अन्यतम है। उनके निबन्धों में मार्मिक व्यंग्य, पाण्डित्य की छाप और व्यक्तित्व का आकर्षण हैं। अनेक पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ इस प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं जैसे धरेलू बात-चीत के सामान्य विषय हो। गुलेरीजी की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और विषयानुकूल हैं। 'कछूवा धरम' और 'मारेसि मोहि कुठांव' इनके बहुचर्चित निबन्ध हैं। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के निबन्ध 'गद्यमाला' (१९०९) 'निबन्ध-निचय' में प्रकाशित है।^(११३) गुलेरीजी के वाक्य छोटें और मुहावरेदार हैं। गुलेरीजी बात बनाने में भी अपना सानी नहीं रखते। शीर्षकों में हास्य, निष्कर्षों में हास्य, विचारों के झटको और पैतरो में हास्य, का पुट उनकी रचनाओं को सरस बना देती है।^(११४)

अध्यापक पूर्णसिंह ने हिन्दी में भावात्मक निबन्ध ही लिखे हैं, "जिसमें मधुमयी कल्पना के साथ-साथ गहन अनुभूति विद्यमान हैं और जो गद्य होकर भी पद्य किसी रमणीयता से ओत-प्रोत हैं। वर्ण विषय की दृष्टि से पूर्णसिंह के निबन्ध सामाजिक ही हैं, क्योंकि सभी निबन्ध सामाजिक जीवन की विविध गतिविधियों से परिपूर्ण हैं। रचनाशैली की दृष्टि से सभी निबन्ध भावात्मक हैं, क्योंकि इसमें विचारों की अपेक्षा भावों की प्रधानता है, किन्तु भावों की अविरल धारा में विचारों की मणियाँ भी स्पष्ट देदीप्यमान हो रही हैं।"^(११५) सरदार पूर्णसिंह के कवल छः निबन्ध सच्ची वीरता, कन्यादान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम तथा अमेरिका का मस्तयोगी वाल्ट हिब्रट मैन - लिखकर अमर हो गए हैं। इनके निबन्धों में भावो और विचारों का समन्वय तो है ही, अधिक महत्व की बात है आदेश का स्वर, वक्तृता का ओज और वैयक्तिकता की

उमंग।^(११६) पूर्णसिंह के निबन्धों में स्वाधीन चिंतन, निर्भय-विचार, प्रकाशन एवं प्रगतिशील तत्त्व मिलते हैं। उनकी शैली में अनूठी लाक्षणिकता और अपूर्व व्यंग्य मिलता है। इनके निबन्धों में एक स्वच्छ, सहानुभूति-स्निग्धशील का परिचय मिलता है। इनके निबन्धों में चिर परिचित जन सामान्य सहानुभूति का पूर्ण जागरण है।

द्विवेदी युगीन निबन्धों की विशेषताओं को लिया जाये तो यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन निबन्धों से द्विवेदीयुगीन निबन्ध हर रूप में अलग मालूम पड़ते हैं। भाव-भाषा, विषय, शैली सभी द्रष्टि से द्विवेदी युग के निबन्ध भारतेन्दु युग से भिन्न मालूम पड़ते हैं। इसलिए ही 'शिवकुमार शर्मा' ने कहा है कि - "इस युग के निबन्धों में भारतेन्दुकालीन निबन्धों किसी ताजगी, जिन्दादिली और व्यंग्य-विनोदप्रियता नहीं है, बल्कि विचारों की प्रधानता और गम्भीरता है। इन निबन्धों का वृत्त भी सीमित है। इनमें भारतेन्दुकालीन निबन्धों के समान सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक चेतना का प्रतिबिम्ब नहीं है। भारतेन्दुकालीन निबन्धों में पर्याप्त मौलिकता है, किन्तु इनमें ज्ञान की संचयात्मकता है। वस्तुतः ये निबन्ध कम हैं और विचारों के संग्रह अधिक। गुलेरी और पूर्णसिंह के निबन्धों को छोड़कर द्विवेदी युग के निबन्धों में वैयक्तिकता का भी प्रायः अभाव है। उपदेशात्मकता इन निबन्धों की खास विशेषता है। इस युग के निबन्ध भाषा की द्रष्टि से अधिक शुद्ध और परिष्कृत हैं।"^(११७) शर्माजी के इन विचारों के आधार पर इस युग की विशेषताओं को व्यक्त करे तो वो इस प्रकार हो सकती हैं। जैसे -

- द्विवेदी युगीन निबन्धों में वैयक्तिकता का अभाव है।
- इस युग के निबन्ध गम्भीर एवं साहित्यिक हैं।
- द्विवेदीयुगीन निबन्धों में उपयोगीतावादी एवं उपदेशात्मक वृत्ति का प्रभाव है।
- इस युग के निबन्धों में शुद्ध परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग हुवा है।
- इस युग के निबन्धों में अनुभूति-प्रवणता, रागात्मकता एवं कल्पना की कमी है
- द्विवेदीयुगीन निबन्धों में शास्त्रीय पद्धति एवं विचारात्मक निबन्धों का आधिक्य है।

इस प्रकार इस युग के निबन्ध अपनी सुधारवादी भावना के रहते हुए भी बौद्धिकता और नैतिकता के प्रति अत्यधिक आग्रह रहने के कारण उच्च-शिक्षित वर्ग तक

ही सीमित होकर रह गये।

२.२.६ शुक्लयुगीन निबन्ध साहित्य :-

गांधी और गांधीवाद से प्रभावित यह युग साहित्य को एक नयी दिशा देता हैं। आचार्य शुक्ल के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण से न केवल गद्य ही वरन् निबन्ध, आलोचना, इतिहास-लेखन आदि विधाएँ भी एक अलग उच्चस्तर पर जा बैठती हैं। निबन्ध का अत्यधिक परिष्कृत रूप शुक्लजी में उभर आया।^(११८) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबन्ध-साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदीयुग में विषय-विस्तार और परिमार्जन तो बहुत हुआ, किन्तु उस काल में उतनी विश्लेषण बुद्धि से काम लेने और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी।^(११९) शुक्लजी निबन्ध में कुछ प्रभाव सा महसूस करते थे इसलिए उन्होंने निबन्ध साहित्य की चिन्ता करते हुए 'चिन्तामणि' में लिखा है कि - “ऐसे प्रवृत्त निबन्ध जिनमें विचार-प्रवाह के बीच लेखक के व्यक्तिगत वाग्वैचित्र्य और उनके हृदय की अच्छी झलक हो हिन्दी में कम देखने में आ रहे थे।”^(१२०) निबन्ध इस युग में उत्थानकालीन स्थूलता को छोड़कर सुक्ष्मता की ओर बढ़ रहा था। उसमें अधिक गम्भीरता आ गई थी। ‘निबन्ध को गद्य की कसौटी’ इसी काल में माना गया। फलतः गद्य की शक्ति बढ़ाने में लेखक अधिक दत्तचित्त रहे।^(१२१)

शुक्ल युगीन निबन्धों के विषयों की बात करें तो कह सकते हैं कि इस युग के निबन्ध विषय की सुक्ष्मता को निर्देश करनेवाले हैं। जीवन-जगत की जिन विषय-वस्तु को इस युग में व्यक्त किया गया उसे काफी सुक्ष्म, विचारशील एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त किया गया। इस युग के निबन्धों में समाज व साहित्य के साथ व्यक्ति को भी काफी सजग रूप से व्यक्त किया गया। उनकी मानसिकता, विचार, चिंतन आदि को प्रस्तुत किया गया। इसलिए ‘बाबुराम मैहला’ लिखते हैं कि - “वस्तुतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक भिन्न कोटि के निबन्धकार थे। शुद्ध आलोचनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त आपने मनोविकार संबंधी अनेक निबन्ध लिखे जैसे - चिन्ता, श्रद्धा, करुणा, क्रोध आदि।

इन व्याख्यात्मक निबन्धों में भी उन्होंने व्यंग्य विनोद के छींटे बिखरे हैं और अनेक स्थानों पर संस्मरणात्मक संकेत भी दिये हैं। इन निबन्धों में एक स्वतंत्र चिंतन और भावुक हृदय के समन्वित योग से प्रतिपाद्य विषय में इतनी गम्भीर सार्थकता और उदीप्त भावना आ गई है कि पाठक को नई उपलब्धि होती है।^(१२२) वस्तुतः इस युग में भावों को विषय बनाकर बड़ी संख्या में निबन्ध लिखे गये।^(१२३) इस प्रकार इस युग के निबन्धों में विषय के प्रतिमान कुछ बदलते हुए पाए जाते हैं।

शुक्ल युग के निबन्ध भाषा-शैली की दृष्टि से विशिष्ट निबन्ध माने जा सकते हैं क्योंकि भाषा-शैली की दृष्टि से इस युग के निबन्धों में विशेष नाविन्य दिखाई देता है। डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त लिखते हैं कि - “इस युग के निबन्ध अन्तः प्रयास से निकली हुई सहज विचारधारा के प्रतिरूप हैं। उनके आगमन से हिन्दी-जगत को नयी अनुभूति, नये विचार और नयी भावाभिव्यक्ति शैली के दर्शन हुए। उन्होंने मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक तथा सैद्धांतिक सभी प्रकार के निबन्ध लिखे।”^(१२४) शुक्लजी ने विचारात्मक शैली को चरम सीमा तक पहुँचा दिया, अन्य शैलियों का विकास तो हो ही रहा था, पर भावनात्मक और विचारात्मक शैलियों के विकसित होने के आधार अधिक थे।^(१२५) वैसे इस युग के निबन्धों की शैली को विकसित करने में शुक्लजी का विशेष योगदान रहा है। इस संदर्भ में डॉ.मू.ब.शहा का कथन काफी स्पष्ट है कि - “हिन्दी साहित्य में नवीन और प्रौढ़ साहित्य शैलियों का प्रवर्तन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया था और समय-समय पर अपने लेखों, प्रबंधों और निबंधों द्वारा उन्होंने शैली के राजमार्गों का निर्माण किया। यो गिनती गिनाने के लिये हम भले ही दस-बीस नाम गिनाकर अपनी आत्मतुष्टि करले, किन्तु सच पूछा जाये तो हिन्दी साहित्य संसार में शुक्लजी को छोड़कर और कोई भी न तो शैली का मर्म ही समझ सका और न कोई विशिष्ट शैली का निर्माण ही कर सका।”^(१२६) इनसे इस युग के निबन्धों की शैलीगत श्रेष्ठता अपने आप सिद्ध हो जाती है।

शुक्ल युग के निबन्धकारों में से रामचन्द्र शुक्ल, डॉ.गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शियारामशरण गुप्त, मुन्शी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, रायकृष्णदास,

वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ.पीताम्बरनाथ बड्थवाल, राहुलसांकृत्यायन, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला' सुमित्रानंदन पंत, डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पं.नन्ददुलारे बाजपेयी, श्रीराम शर्मा, महादेवी वर्मा, डॉ.सम्पूर्णानन्द, काका कालेलकर, परशुराम चतुर्वेदी आदि कितने ही निबन्धकार उल्लेखनीय हैं। किन्तु इस उत्कर्ष युग का प्रतिनिधित्व करनेवाले चार प्रमुख निबन्धकार हैं। पं.रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, नन्द दुलारे बाजपायी और महादेवी वर्मा।^(१२७) इनके वैशिष्ट्य को व्यक्त करते हुए डॉ.द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने कहा है कि - “शुक्लजी यदि निबन्धों की समालोचना शैली के जन्मदाता है, तो जयशंकर प्रसाद उसमें साहित्य दर्शन और इतिहास की त्रिवेणी प्रवाहित करनेवाले हैं। पं.नन्ददुलारे बाजपेयी उस शैली में निर्भीकता एवं नूतन द्रष्टिकोण का समावेश करने वाले हैं और श्रीमती महादेवी वर्मा उसमें शब्द-चित्रकौशल एवं सुक्ष्म संकेतों से परिपुष्ट करनेवाली हैं।”^(१२८) इन चारों निबन्धकारों का संक्षिप्त परिचय कुछ इस प्रकार है।

आलोचक प्रखर रामचन्द्र शुक्ल का स्थान हिन्दी निबन्ध परम्परा में शीर्ष स्थान पर है। इनके निबन्ध ने पाठकों को काफी प्रभावित किया है। द्वारिका प्रसादजी ने लिखा है कि - “शुक्लजी ने अधिक, निबन्ध तो नहीं लिखे हैं, किन्तु जितने भी निबन्ध लिखे हैं वे उनकी ख्याति एवं प्रसिद्धि के लिए परियाप्त हैं, क्योंकि वे इतने परिष्कृत, परिमार्जित, परिनिष्ठित एवं उत्कृष्ट हैं कि कलात्मकता के साथ-साथ निबन्ध का आदर्श प्रस्तुत करने में वे सक्षम एवं समर्थ हैं।”^(१२९) शुक्लजी के निबन्धों में विचारों की प्रौढ़ता, सुक्ष्म निरीक्षणशक्ति और गूढ़ अध्ययन की व्यापकता हैं। ये गम्भीर एवं उत्कृष्ट गद्य लेखक थे। आपके निबन्ध तत्कालीन ‘सरस्वती’, ‘आनन्द-कादम्बिनी’ आदि हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। आपके साहित्य ‘भाषा की शक्ति’, ‘उपन्यास’, ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी’ आदि आरम्भिक काल के निबन्ध हैं, जिनमें आपकी गहन चिन्तन-मनन की पद्धति तो विद्यमान है किन्तु उतनी प्रौढ़ अभिव्यंजना शक्ति नहीं है, जो आगामी निबन्ध संग्रहों में दृष्टिगोचर होता है। आगे चलकर आपने कितने ही प्रौढ़

प्रांजल एवं उच्चकोटि के निबन्ध लिखे, जिन्हें पहले 'विचार-वीथी' के नाम से संकलित करके पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया। तदन्तर 'चिंतामणी' भाग-१, तथा भाग-२ के नाम से प्रौढ़ एवं उत्कृष्ट निबन्ध पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए।^(१३०) शुक्लजी के निबन्धों की कुल संख्या सताईस है जिन्हें सुविधा की द्रष्टि से तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) असंकलित निबन्ध (२) संकलित निबन्ध (३) भूमिकाओं के रूप में लिखित निबन्ध।^(१३१)

शुक्लजी के निबन्धों में पर्याप्त मौलिकता, स्पष्टता और रोचकता है। शुक्लजी हृदय से कवि, मस्तिष्क से आलोचक और जीवन से अध्यापक है। इस कारण सरलता और गम्भीरता उनके लेखों में घूली-मिली रहती है। सूत्र, व्याख्या और निष्कर्ष उनके निबन्धों का सार है। उनकी शैली के सबन्ध में डॉ. गणपतचन्द्र गुप्त लिखते हैं कि - “निबन्धकार शुक्ल की शैली में भी निजी विशिष्टता मिलती है। भारतेन्दु युग की सी मौलिकता उसमें है किन्तु वे उसके छिछलेपन से दूर हैं। द्विवेदीयुग की विचारात्मकता उसमें है किन्तु वैसी सुष्फता का अभाव है। विचारों की गम्भीर घाटियों के बीच-बीच में उतरी हास्य-व्यंग्य से ओत-प्रोत उक्तियाँ किसी स्वच्छ शीतल निर्झर के कोमल, मधुर, कलकल स्वर की तरह सुनाई पड़ती हैं।”^(१३२) यह भी सच है कि उनके कुछ निबन्ध हिन्दी के साधारण पाठक की तो क्या बात हिन्दी के अच्छे-अच्छे विद्वानों को जटिलता के कारण हैरान कर देते हैं।

जयशंकर प्रसाद के रूप में हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसी प्रतिभा ने जन्म लिया था, जिसने हिन्दी-साहित्य की सवाँगी उन्नति के लिए सतत प्रयत्न किये। जिसने हिन्दी-साहित्य को सभी प्रकार से समुन्नत एवं समृद्ध बनाया। जिसने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं की समृद्धि के लिए अपनी लेखनी चलाई। द्वारिकाप्रसाद लिखते हैं कि - “जहाँ तक प्रसाद के निबन्ध साहित्य का प्रश्न है, प्रसाद ने पर्याप्त मात्रा में निबन्ध लिखे हैं। इनके कतिपय निबन्ध तो वाराणसी से प्रकाशित होनेवाली 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित होते रहे, कुछ निबन्ध 'हंस', 'गंगा-वेदांक', 'कोशोत्सवस्मारक संग्रह' आदि

पत्रों में प्रकाशित हुए और कतिपय निबन्धों की भूमिकाओं के रूप में इनके सुप्रसिद्ध नाटकों के आरम्भ में अथवा कामायनी के आमुख के रूप में विद्यमान है।”^(१३३) प्रसादजी ने विविध प्रकार के निबन्धों की रचना की है जिनमें विविध साहित्यिक एवं साहित्य-शास्त्रीय विषयों के अतिरिक्त ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण शोध को महत्व दिया गया है जो हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में युगान्तर प्रस्तुत करते हैं।

‘प्रसादजी’ ने कुल मिलाकर अठ्ठाईस निबन्ध लिखे हैं, जिन्हें सुविधा की द्रष्टि से पहले दो भागों में विभाजित कर सकते हैं (१) साहित्यिक और (२) ऐतिहासिक साहित्यिक निबन्धों के अन्तर्गत उनके अठारह निबन्ध आते हैं जिनमें से ‘ब्रह्मर्षि’, पंचायत, प्रकृति-सौंदर्य, भक्ति और सरोज नामक पाँच निबन्ध तो ‘चित्राधार’ में संकलित हैं, और काव्य और कला, रहस्यवाद, रस, नाटकों में इसका प्रयोग, नाटकों का आरम्भ, रंगमंच, आरम्भिक पाठ्यकाव्य तथा यथार्थवाद और छायावाद नामक आठ निबन्ध ‘काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध’ नामक संकलन में विद्यमान हैं।”^(१३४) इनके अलावा इनके पाँच साहित्यिक निबन्ध ‘इन्दु’ पत्रिका में प्रकाशित हुए और दस ऐतिहासिक निबन्ध उनके नाटकों व ‘कामायनी’ की भूमिका में पाए जाते हैं। इस प्रकार प्रसादजी के बारे में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उनके निबन्धों में काव्य किसी ही गरिमा है, वर्चस्व है, भव्यता है, ओजस्विता है, उत्तुंगता है एवं महत्ता है।

नन्ददुलारे बाजपेयीजी मूलतः विचारक एवं आलोचक हैं। अतः उन्होंने मुख्य रूप से आलोचनात्मक निबन्ध लिखे जो विविध साहित्यकारों, साहित्य कृतियों, साहित्यिकवादों तथा साहित्य की गतिविधियों पर हैं। “बाजपेयी के द्वारा लिखित निबन्धों की संख्या लगभग एकसौ हैं। उनके लगभग सभी निबन्धों के पाँच संकलन निकल चुके हैं। (१) हिन्दी-साहित्य बीसवीं शताब्दी (२) जयशंकर प्रसाद (३) प्रेमचंद (४) आधुनिक साहित्य और (५) नया साहित्य नये प्रश्न।”^(१३५) उनके निबन्ध विचारप्रधान वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। उनके विचार निजी चिंतन-मनन पर आधारित हैं, अतः इस दृष्टि से अवश्य उन पर व्यक्तित्व की छाप है। किन्तु उनकी प्रतिपादन शैली विषय के साथ इस

प्रकार बँधी हुई विचारों से जकड़ी हुई है कि उसमें व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता का आभास प्रायः नहीं मिलता।^(१३६) इस प्रकार बाजपेयी के समीक्षात्मक निबन्धों का विषय-निरूपण अत्यन्त तथ्यपूर्ण हैं, आपकी विवेचन पद्धति आकर्षक हैं। आपकी प्रतिभा तथ्यग्राहिणी हैं। आपके निष्कर्ष विचारोंत्तेजक है। आपका चिंतन-मनन दार्शनिक हैं। आपके विचार स्वतंत्र निष्पक्ष एवं युगानुकूल हैं।

छायावाद के प्रमुख चार स्थलों में महादेवीजी का स्थान उल्लेखनीय हैं। हिन्दी काव्य को नूतन दिशा प्रदान करने में महादेवीजी का योगदान सर्वथा सराहनीय हैं। महादेवीजी ने अधिकांश विचारात्मक निबन्ध ही लिखे हैं। जिनमें कुछ संस्मरणात्मक हैं। कुछ आलोचनात्मक, कुछ नारी-समस्यामूलक है और कुछ अन्य विषयों पर हैं। महादेवीजी के निबन्धों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता हैं। विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक इनके निबन्ध संग्रह 'साहित्यकार की आस्था एवं अन्य निबन्ध' और 'संभाषण' विचारात्मक कोटि में आते हैं। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार' ये भावात्मक निबन्ध हैं तो 'स्वर्ग का एक कोना', 'सूई दोरा दोरानी', 'बद्रीनाथ की यात्रा' ये उनके वर्णनात्मक निबन्ध हैं। "महादेवीजी ने प्रौढ़ चिंतन-मनन के साथ-साथ गूढ़ विचारों की अभिव्यक्ति द्वारा अपने निबन्धों को जीवन और जगत की गहन अनुभूतियों का भंडार बनाया हैं, इनमें भाव-विचार और कल्पना की त्रिवेणी प्रवाहित की हैं। इन्हें जीवन के विराट भाव-बोध को जागृत करने की विलक्षण शक्ति से परिपूर्ण किया हैं और समीक्षा की स्वस्थ परम्परा को स्थापित करने के लिए इन्हें युगानुकूल नूतन कसौटी से सुसज्जित किया हैं।"^(१३७)

इनके अलावा बाबु गुलाबराय के अध्यन और आखाद, मेरे निबन्ध, कुछ गहरे कुछ उथले, जीवन-रश्मियाँ और मेरी असफलताएँ शिवपूजन सहाय की शिवपूजन रचनावली, दो घड़ी, मै हज्जाम हूँ, माता की माया 'सियारामशरण' के 'झुठा-सच' तथा बख्शी का 'पंचतंत्र' इस युग के प्रमुख निबन्ध संग्रहों में से है। इस प्रकार इस युग में निबन्ध साहित्य को काफी गहराई मिली वो अपने नामानुसार ख्यात एवं प्रसिद्ध हुआ।

इस युग के निबन्धों की विशेषताओं को व्यक्त करें तो शुक्लयुगीन निबन्ध साहित्य अपने पूर्ववर्ती निबन्ध साहित्य से काफी भिन्न हैं, इसलिए ही 'गुलाबरायजी' लिखते हैं कि 'भारतेन्दु और द्विवेदीयुग में भी 'क्षमा', 'आत्मनिर्भरता' आदि विषयों पर विवेचन हुआ है किन्तु वह शुक्लजी का सा विश्लेषणात्मक न था वरन् प्रशंशात्मक और नैतिक अधिक था। इन निबन्धों की पद्धति में मनोविज्ञान का आत्मविश्लेषण चाहे हो किन्तु उनका लक्ष्य साहित्यिक हैं। इन निबन्धों के बहुत से वाक्य-सूक्ति होने की क्षमता रखते हैं।^(१३८) इस युग के निबन्धों के बारे में शिवकुमार शर्मा का मत है कि - "इस युग के निबन्धों में विषय वैविध्य हैं, गम्भीरता और सुक्ष्मता है, भाषा की प्रौढ़ता सरसता, शैली की विशिष्टता और वैयक्तिकता की दृष्टि से इस युग के निबन्ध द्विवेदीयुग के निबन्धों से उन्नत हैं।"^(१३९) इस प्रकार इस युग के निबन्धों की विशेषताओं को कुछ इस रूप में निकाला जा सकता है।

- इस युग के निबन्ध विषय-क्षेत्र की दृष्टि से अधिक गम्भीर व सुक्ष्म हैं।
- शुक्ल युग के निबन्धों का मुख्य विषय साहित्य, मनोविज्ञान, संस्कृति एवं इतिहास हैं।
- इस युग के निबन्धों में नया दृष्टिकोण एवं मौलिकता हैं।
- इस युग के निबन्धों में श्रेष्ठ विश्लेषण-शक्ति एवं गहराई हैं।
- इस युग के निबन्धों में काव्यात्मकता एवं दार्शनिकताका प्रभाव हैं।
- शुक्लयुगीन निबन्ध मानवतावादी विचारधारा से युक्त हैं।
- इस युग में सभी प्रकार के निबन्धों की रचना हुई।
- इस युग के निबन्धों की भाषा में गम्भीरता, प्रौढ़ता, एवं प्रभविष्णुता हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल का हिन्दी-निबन्ध संसार में आगमन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। उन्होंने अपनी उर्वर प्रतिभा से अतीत एवं वर्तमान तथा पूर्व और पश्चिम का जैसा समन्वय एवं समाहार किया है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। उन्होंने अपने निबन्धों के द्वारा निबन्ध के तात्त्विक स्वरूप का निर्माण किया, कतिपय अन्य लेखकों की भाँति सजातीय रचनाओं का संमिश्रण न करके उनका स्वतंत्र रूप स्थापित किया। शुक्लयुगीन निबन्धों में प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली को समृद्ध किया है।

२.२.७ शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य :-

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल के बाद के निबन्ध का आयाम अत्यन्त द्रुत गति से बढ़ा। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई, शिक्षा का विस्तार हुआ। विभिन्न साहित्यों के साथ सम्पर्क बढ़ा और १९४७ में देश के स्वतंत्र हो जाने के उपरान्त सर्वतोन्मुखी विकास हुआ। इन परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप निबन्ध की लोकप्रियता बढ़ी और उनका बहुमुखी विकास हुआ।^(१४०) हिन्दी साहित्य के इतिहास में निबन्ध सबसे अधिक इसी युग में लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। अतः वर्तमान समय को निबन्ध-युग कहा जा सकता है।^(१४१) रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निबन्ध को वैशिष्ट्य प्रदान किया। शुक्लोत्तरकाल में समीक्षात्मक निबन्ध ही अधिक लिखे जा रहे हैं किन्तु निजी अनुभूतियाँ और भावना की अभिव्यक्ति अनेक निबन्धकारों ने की हैं।^(१४२) ‘नगेन्द्रजी’ लिखते हैं कि- “छायावादोत्तर काल में हिन्दी निबन्ध अन्य समीक्षात्मक निबन्ध ही अधिक लिखे गये, यद्यपि व्यक्ति व्यंजक निबन्धों की संख्या भी काफी बढ़ी है।”^(१४३) इस प्रकार शुक्लोत्तर युग में निबन्ध साहित्य भाव-भाषा-विषय-शैली की दृष्टि से काफी विस्तारित एवं विकसित हो गया था। उनके विकास की दिशाएँ फैल गई थी वो सुक्ष्म से सुक्ष्मतर होता जा रहा था। वैसे १९४७ के बाद सारे भारतीय साहित्य में एक परिवर्तन की एक लहर आयी थी और साहित्य की सभी विधाओं में एक नया युग शुरू हो गया था।

शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य के विषय एवं भाषा-शैली की बात करें तो यह सहज अनुभूति होती है कि निबन्ध अभिव्यक्ति के लिए चयनित विषय तो यही रहा है पर उनकी सम्प्रेषणीयता विषय को अनुभूत करने का दृष्टिकोण एवं व्यक्त करने का लहेजा बदला हुआ नज़र आता है। क्योंकि इस समय तक पाठक वर्ग ही इतना सतर्क व समृद्ध हो गया था कि वो खुद हर निबन्ध को आलोचनात्मक ढँग से देखता था इसलिए जैसे-जैसे समय बीता वैसे-वैसे उसमें काफी निखार आता गया इसलिए इस युग के निबन्धों में “सांस्कृतिक विरासत के वर्चस्व के साथ नवीन जीवनबोध, उत्कट जिजीविषा और नयी सामाजिक समस्याओं के बीच राह पाने की ललक सर्वत्र ही दिखाई पड़ती है।”^(१४४)

इतिहास, पुराण, साहित्य आदि से गम्भीर से गम्भीर तथ्य उठाते हुए वे प्रायः उसे समसामायिकता से जोड़ देते हैं।^(१४५) इस प्रकार ये स्पष्ट है कि इस युग के निबन्धकारों ने विषय को कुछ नये नजरिये से व्यक्त किया है नये संदर्भ से जोड़ा है। इस युग में समीक्षात्मक, विचारात्मक निबन्धों के अलावा वैयक्तिक भावबोध को लेकर लिखे गये। ललित निबन्धों एवं विभिन्न शैलीगत नावीन्य को लेकर लिखे गये निबन्ध का भी आरम्भ इस युग में हो गया।

जहाँ तक भाषा व शैली का प्रश्न है इनके बारे में इतना ही कहेना पर्याप्त है कि इस युग के निबन्धों का चेहरा कुछ नवीन ढंग से व्यक्त करने का श्रेय भाषा-शैली को ही जाता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह है कि अब निबन्ध पाठकों की मानसिकता को लक्ष्य करके लिखे जाते थे इसलिए भाषा में काफी विषयानुरूपता लाने का प्रयास किया गया, उसे कुछ सरल बनाने का प्रयास हुआ, क्योंकि अब कोई पांडित्य प्रदर्शन करना नहीं चाहता था पर सहजता के साथ कलात्मकता लाने का प्रयास करता था इसलिए “भाषा की लय गुम्फित पदावली, विषयांतर, वस्तुओं के बिम्बात्मक चित्रण आदि से निबन्ध एकतान, अन्वितिपूर्ण और संश्लिष्ट हो गये।”^(१४६) संक्षिप्त में कहें तो इस युग की भाषा में सरलता, सजीवता एवं बोधगम्यता पाई जाती है जो इस युग के निबन्धों के लिए काफी महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

हिन्दी साहित्य का वर्तमान युग आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से बहुशः प्रभावित है। उनमें प्राचीनता और नवीनता का अद्भूत समन्वय है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी के आलोचनात्मक और सर्जनात्मक दोनों अंग पुष्ट हुए हैं। यदि इस युग को दूसरा द्विवेदीयुग कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। वे वाङ्मय की समग्र चेतना से युक्त प्रबुद्ध निबन्धकार हैं।^(१४७) इस युग के निबन्धकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ.नगेन्द्र, डॉ.सत्येन्द्र, डॉ.विनयमोहन शर्मा, डॉ.रामविलास शर्मा, डॉ.प्रभाकर माचवे, श्री अज्ञेय, रामधारी सिंह ‘दिनकर’, शिवदानसिंह चौहान, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, रामप्रसाद पाण्डेय, डॉ.रांगेयराघव, डॉ.भगीरथ मिश्र, श्री कुबेरनाथराय, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर,

डॉ.भगवतशरण उपाध्याय, डॉ.पद्मसिंह शर्मा, डॉ.विश्वभरनाथ उपाध्याय, महादेवी वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं।^(१४८)

शुक्लोत्तर निबन्धकारों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का स्थान प्रमुख हैं। - “उनके निबन्धों का विषय-क्षेत्र बहुत व्यापक हैं। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि परंपरा और संस्कृतिका वह दाय है जिसके वे भंडार हैं। द्विवेदीजी ने भारतीय संस्कृति और साहित्य का गहन अध्ययन किया है। उनके निबन्धों पर उसकी पूरी छाप हैं। इसलिए उनके निबन्ध गंभीरता और चिन्तन की विशेषताओं से युक्त हैं किन्तु उसके बावजूद वे सरस और रोचक हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उनमें उसके निजी व्यक्तित्व की सरलता, सहजता और ह्रास-परिहास की वृत्ति भी समाहित हैं।^(१४९) आपके निबन्धों के कई संकलन निकल चुके हैं, जिनमें से कुछ निबन्धों का संकलन निबन्ध संग्रहों के रूप में ही हुआ है। जब कि कुछ निबन्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में प्रकाशित हुए हैं। जैसे अशोक के फूल, विचार-प्रवाह, हमारी साहित्यिक समस्याएँ, विचार और वितर्क, गतिशील चिंतन, साहित्य का मर्म, कल्पलता, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, कुटज, आलोकपर्व, साहित्य-सहचर आदि पूर्णतया निबन्धों के संकलन पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए हैं।^(१५०) द्विवेदीजी के निबन्धों को मुख्यतया पाँच भागों में बाँटा जाता है। जैसे -

- समीक्षात्मक निबन्ध
- सांस्कृतिक निबन्ध
- ऐतिहासिक निबन्ध
- वैयक्तिक निबन्ध
- गवेषात्मक निबन्ध

द्विवेदीजी के बारे में डॉ.जयनाथ नलिन ने लिखा है कि- “आचार्य हजारीप्रसादजी शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्धकारों में प्रथम श्रेणी के लेखक हैं। प्राचीन और नवीन का सानुपानिक स्वस्थ और स्वाभाविक सामजस्य सरल नहीं यदि हो सके, तो भारी सफलता। इसी का प्रयत्न हजारीप्रसादजी के निबन्धों में मिलेगा। सनातन जीवन दर्शन,

प्राचीन ज्ञान और साहित्यिक-सिद्धांत को नवीन अनुभवों से मिलाकर अपने निबन्ध की रचना की। आपके निबन्ध गहन पट पर बने वर्तमान जागरण के मनोहर चित्र हैं। रंग पुराने हैं चमक नवीन, प्राण प्राचीन है गति आधुनिक, आस्थाएँ श्रद्धा प्रेरित हैं, उनको जीवन का स्वरूप देनेवाला 'कर्म' विज्ञान सम्मत हैं। साधारण और सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्ध में भी आपका पांडित्य और सुक्ष्मचिंतन मधुर मुग्ध शैली में बोलता है। सभी सीमा क्षेत्रों से निबन्ध के विषयों का चुनाव, प्रकार और शैली की अनेक रूपता, संस्कृति समन्वय, मानव के प्रति अकम्पित आस्था और जोतिर्मय भविष्य की आशा, आपको हिन्दी निबन्धकारों में गौरवपूर्ण स्थान दिलाती हैं।”^(१५१)

शान्तिप्रियजी अपने जीवन में अभावग्रस्त, और उपेक्षित हैं। फिर भी निरन्तर साहित्य-साधना में जुटे रहना उनके जीवन का परिचायक है। वे सौन्दर्य संस्कारिता के उपासक थे। संस्कारिता में उनका विश्वास था। प्रगतिशीलता के विरोधी वे कभी नहीं रहे, पर गरीबी, अभाव पीडा को ये सृजन के मार्ग में बाधा नहीं मानते थे - नगेन्द्रजी कहते हैं कि - “उनके समीक्षात्मक निबन्धों में भी निर्बन्ध निबन्धों का स्वाद मिलता है। वे प्रकृति से तरल, आत्मनिष्ठ और भावुक साहित्यकार थे छायावादी काव्य के मानवीकरण अलंकार ! उनकी तरल, सहृदय और अन्तरंगता के दर्शन उनके निबन्धों में सर्वत्र होते हैं। संचारिणी, युग और साहित्य, सामयिकी, धरातल, प्रतिष्ठान, साफल्य, आधात, वृन्त और विकास आदि उनके प्रमुख निबन्ध संग्रह हैं।”^(१५२) इस प्रकार द्विवेदी ने विचारात्मक और भावात्मक निबन्ध लिखे पर उनकी भाषा की काव्यगतता कदम-कदम पर पाठकों को सम्मोहित करती है। इसलिए डॉ. जयनाथ ने लिखा है कि - “वैयक्तिक निबन्ध के क्षेत्र में शान्तिप्रियजी ने काफी स्वस्थ और प्रशंसनीय देन हिन्दी को दी है।”^(१५३)

जैनेन्द्रकुमार ने कथाकार और उपन्यासकार के रूप में अपना परिचय दिया है पर फिर कुछ निबन्धों की रचना कर उन्होंने इस क्षेत्र में भी अपना नाम जोड़ लिया है। ‘जड की बात’, ‘साहित्य का श्रेय और प्रेय’, ‘सोच विचार’, ‘ये और वे’ इत्यादि उनके

निबन्ध संग्रह हैं। वे स्वयं मानते हैं कि - “निबन्ध मेरे माने का नहीं” यों वे अपना एक सोचने का ढंग रखते हैं और जब उस तरह से सोचते हैं तो अनजाने में ही एक विचित्र सा दर्द छोड़ जाते हैं।^(१५४) इस प्रकार जैनेन्द्रजी ने भी निबन्ध साहित्य को सजाया है।

कहा जाता है कि दिनकरजी के निबन्ध परिमाण और गुण में बहुत महत्वपूर्ण हैं। निःसंदेह वे कवि के रूप में इतने प्रख्यात हुए कि वो गद्यकार के रूप में ओझल ही रहे। पर वे दोनों साहित्यिक स्वरूप को बखूबी पेश कर सकते हैं। उनके निबन्ध संग्रह है - “मिट्टी की और”, ‘अर्धनारीश्वर’ गुप्त, प्रसाद, पन्त और मैथिलीशरण साहित्य मुखी, शुद्ध कविता की खोज, रेती के फूल, हमारी सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य।”^(१५५) इनके निबन्धों में सर्वत्र मानवतावादी दृष्टिकोण पाया जाता है। वे अपनी बात पाठकों तक बड़ी स्पष्टता के साथ व्यक्त करते हैं। जिनसे उनके विचार सर्वत्र मूर्तिमंत हो जाते हैं।

अज्ञेय निबन्धों में अपना अनुभव लिखते हैं - त्रिशंकु, आत्मनेपद और हिन्दी साहित्य; एक आधुनिक परिदृश्य में अनुभूति का वैचारिक विश्लेषण मिलता है। ‘आत्मनेपद’ निबन्ध वैयक्तिक सन्दर्भों में लिखे जा कर भी निर्व्यक्तिक आधुनिक संदर्भों की सृष्टि कहते हैं। निजीपन उनकी विशेषता है। तो वही खामी भी है।^(१५६) भाषा की संश्लिष्टता के कारण उनके निबन्ध भी संश्लिष्ट हो गये हैं। उनके विशिष्ट निबन्ध संग्रहों में ‘सबरंग’, ‘आलवाल’, ‘भवन्ति’ तथा ‘लिखि कागद कोरे’ का उल्लेख दिया जा सकता है।

हिन्दी निबन्ध उत्कर्ष के सोपान पर जिन महान प्रखर निबन्धकारों का नाम अंकित है, उसे साहित्य संसार डॉ.नगेन्द्र के नाम से पुकारता है। उन्होंने विचार और विवेचन, विचार और अनुभूति, विचार और विश्लेषण जैसे उत्कृष्ट निबन्ध संग्रह हिन्दी जगत को भेंट किये हैं। समीक्षात्मक निबन्धों की अभिवृद्धि में डॉ.नगेन्द्र ने विशेष योगदान दिया। उन्होंने विवादास्पद वादों और साहित्यिक सिद्धांतों को बहुत ही बोधगम्य ढंग से समझाया है। साहित्य के अध्येता के लिए उनकी यह प्रशंसनीय देन है।^(१५७)

जिनके निबन्धों का एक बृहद संकलन 'आस्था के चरण' के नाम से नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित हो गया है, जिसमें उनके १०१ निबन्ध संकलित हैं।^(१५८)

विषय की दृष्टि से इन सभी निबन्धों को हम आठ भागों में विभाजित कर सकते हैं जैसे-

- (१) अनुसंधान सबन्धी निबन्ध
- (२) हिन्दी-कविता की प्रवृत्ति सबन्धी
- (३) कृतिकार सबन्धी निबन्ध
- (४) स्मृति-चित्र सबन्धी निबन्ध
- (५) सिद्धांत सबन्धी निबन्ध
- (६) हिन्दी साहित्य की प्रवृत्ति
- (७) कृति सबन्धी निबन्ध
- (८) समस्या सबन्धी निबन्ध

इस प्रकार डॉ.नगेन्द्रजी ने अपने निबन्धों के द्वारा हिन्दी समीक्षा को उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर अग्रसर किया। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य शास्त्र का मंथन करके जो अपनी सहजानुभूति हमारे सामने रखी है वो अनमोल है।

इन प्रमुख निबन्धकारों के अलावा वासुदेव शरण अग्रवाल का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने दार्शनिक पुरातत्व, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है।^(१५९)

शुक्लोत्तर युग में ललित निबन्धों की दृष्टि से 'गुलाबराय' की कुछ रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। 'ढलुआ क्लब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएँ' संग्रहों में उनके कुछ श्रेष्ठ वैयक्तिक निबन्ध संकलित हैं।^(१६०) इनके साथ बनारसीदास, माखनलाल चतुर्वेदी, कनैयालाल मिश्र, प्रभाकर, भागवतशरण उपाध्याय ने भी ऐसे ही निबन्ध लिखे हैं।

डॉ.सत्येन्द्र ने भी शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध के उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। कला, कल्पना, साहित्य की झांकी उनके निबन्धों में सहज ही दर्शनीय हैं।^(१६१)

डॉ.रामविलास शर्मा प्रगतिवादी समीक्षक हैं। उन्होंने मार्क्सवाद का समर्थन, प्रचार और विश्लेषण अपने निबन्धों में किया है।^(१६२)

दर्शन, साहित्य, कला, चिंतन सभी का स्वस्थ सामंजस्य 'प्रभाकर माचवे' के निबन्धों में उपलब्ध हैं। उन्होंने विचार और व्यंग्य प्रधान निबन्ध लिखे हैं।^(१६३)

डॉ.जयनाथ नलिन के 'प्रस्ताव-सभा', 'चिन्तन और कला' तथा 'मझधार के पार' संग्रह हिन्दी के सोपान को उन्नत बनाने में सहयोगी रहे हैं।^(१६४)

इस प्रकार शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य में काफी निबन्धकारों ने अपने विभिन्न विषयों से जुड़े निबन्ध-साहित्य से इस युग को समृद्धि प्रदान की हैं। इस युग में ललित निबन्ध एवं हास्य व्यंग्य निबन्ध का आरम्भ हो जाता था। खासकर गुलाबराय की ललित निबन्ध परम्परा को विद्यानिवास मिश्रजी ने ग्रहण कर लिया है और व्यंग्य निबन्ध में बेदब बनारसी की बात को 'परसाईजी' ने आगे बढ़ाया, पर इस विधा का विशेष विकास अद्यतन युग के निबन्ध में होता हुआ नजर आता है।

वस्तुतः शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य के बारे में इतना तो हम अवश्य कह सकते हैं कि इस युग में निबन्ध साहित्य का सर्वश्रेष्ठ तरीके से सार्वत्रिक रूप से विकास हुआ विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे गये, विभिन्न शैलियों की अभिव्यक्ति हुई, दर्शन, कला साहित्य का सामंजस्य हुआ। व्यक्ति परक निबन्धों में ललित एवं व्यंग्य प्रधान निबन्ध लिखे गये। इस प्रकार हर प्रकार का आस्वाद इस युग के निबन्धों से मिलता है इसलिए शुक्लोत्तर युग के निबन्ध साहित्य का एक समृद्ध युग मानना चाहिए।

२.२.४ अद्यतन निबन्ध साहित्य :-

समसामयिक हिन्दी निबन्ध में वैचारिक खुलापन आने के साथ-साथ युग की समस्याओं, जटिलताओं, चुनौतियों पर तार्किक बहस केन्द्रित विवेक-वयस्कता में पर्याप्त वृद्धि हुई। अनेक प्रकार की गद्य विधाओं के विकास ने हिन्दी गद्य को जो प्रौढ़ता प्रदान की है - इसका पुरा लाभ इधर के वर्षों में समीक्षात्मक तथा ललित-व्यक्तित्व-व्यंजक

निबन्धों ने उठाया हैं।^(१६५) आज निबन्ध अधिक एकाग्र आत्मदान प्रेरित विधा के रूप में विकसित है, गतिशील है और निबन्धकार भी एकाग्रता के साथ निबन्धों को गहराई से जानने के प्रयास में रत हैं। भारतेन्दु युग से आरम्भ हुई निबन्ध परम्परा का विकास रुका नहीं है मगर नई चिन्तन पद्धति एवं नवीन अभिव्यक्ति कौशल से सुसज्जित हुआ है। इस युग के निबन्धों में कई नवीन आविष्कार पाये जाते हैं। रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा आदि सभी निबन्ध की नयी शैली में मथकर नये रूपों-छवियों में आ रहे हैं। स्थिति यहाँ तक आ गयी है कि अब निबन्धों को भावात्मक वैचारिक निबन्धों में वर्गीकृत करनेवाला पुराना साँचा अपर्याप्त हो गया है। आज जटिल राजनैतिक परिस्थिति पर भी व्यंग्य-शैली में वैचारिक गहनता से निबन्ध लिखा जा रहा है और सांस्कृतिक विषयों पर निहायत अगम्भीर ढंग से ललित निबन्ध भी। आज ऐसा कोई विषय नहीं जो निबन्ध की व्यापक परिधि के अन्तर्गत समाहित न हो पाता है^(१६६), क्योंकि ज्ञान के सभी अनुशासन आज के निबन्धों में समन्वित-समंजित दृष्टि से निखरकर व्यक्त हुए हैं।

अद्यतन निबन्धों को विकसित करने में जितना योगदान युवा लेखकों का रहा उतनी ही चिंता ऐसे लेखकों ने भी की है जो परम्परागत रूप से विगत वर्षों से लिखते रहे हैं, जिनमें - “अज्ञेयजी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, निर्मल वर्मा, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, जानकी वल्लभ शास्त्री, रामेश्वर शुक्ल अंचल, नेमिचन्द्र जैन, विष्णु प्रभाकर, जगदीश चतुर्वेदी, डॉ.विराज, डॉ.नामवरसिंह, विवेकीराय आदि ने हिन्दी निबन्ध परम्परा को सिर्फ आगे ही नहीं बढ़ाया मगर हिन्दी निबन्ध साहित्य के सम्भवित विकास की ओर हमें आस्वस्त करते हैं। इसमें अज्ञेयजी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रमेशचन्द्र शाह आदि का विशेष योगदान रहा है।

इस कालखंड में अज्ञेयजी के निबन्धों ने पाठकों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट किया है। अज्ञेयजी के समीक्षात्मक-निबन्ध साहित्य के सवालों को साहित्य में उजागर ही नहीं करने देते। उनके लिए ये सवाल मानव संस्कृति से जुड़े महत्वपूर्ण सवाल हैं और इन सवालों के लिए रचनाकार ‘अज्ञेय’ की साहित्य दृष्टि बहुत गहरे तक जाती है।^(१६७) संक्षेप में सामुहिक चेतना की मुलभूत वास्तविकताओं के साथ उनकी भागीदारी कायम

रहती हैं। उनके - 'आत्मपरक' (१९८३ ई.), केन्द्र और परिधि (१९८४ ई.), सर्जना और सन्दर्भ (१९८५ ई.) में निजी बोध का ढंग इस प्रकार का है कि इन्हें व्यक्ति परक ललित निबन्ध ही कहा जाता है।

इधर ललित निबन्धों को विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने ही सही रूप में विकसित एवं विस्तारित किया। नगेन्द्र का भी मत है कि - “विद्यानिवास मिश्रजी ने ललित निबन्ध को गम्भीरता से लिया है।”^(१६८) उनके निबन्धों में भारतीय संस्कृति और सामाजिक परिवेश का चित्रण हुआ है, वे भारतीय जन-जीवन की आत्मा को उद्घाटित करते हैं और संस्कृति के विभिन्न आयामों को भावना के रंग से उभारने लगते हैं।^(१६९) मिश्रजी के निबन्धों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं - वैयक्तिक निबन्ध और समीक्षात्मक निबन्ध, इनमें से 'चितवन की छाह, तुम चंदन हम पानी, आँगन का पंछी और बनजारामन, बसन्त आ गया पर कोई उत्कठा नहीं, मैंने सिल पहुँचाई' आदि संकलनों में संकलित निबन्ध वैयक्तिक है जिनमें ललित-निबन्ध का सौष्ठव विद्यमान है। साथ ही 'हिन्दी की शब्द सम्पदा', 'रीति-विज्ञान' इनमें संकलित निबन्ध समीक्षात्मक निबन्ध हैं।^(१७०)

श्री कुबेरनाथ राय का नाम अद्यतन ललित-निबन्धकारों की श्रेणी में लिया जाता है। आपने सेकंडो निबन्ध, लेख, रिपोर्टाज आदि लिखकर हिन्दी गद्य को समृद्ध किया है तथा अपनी लेखन-शैली द्वारा आधुनिक दृष्टि एवं नूतन युग बोध को मुखरित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।^(१७१) कुबेरनाथ राय पूरी तरह ललित निबन्ध की ही विधा को समर्पित है तथा उनके अब तक नौ से भी अधिक निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रिया निलकंठ, निषादयोग, निषाद बाँसुरी, कामधेनु आदि उल्लेखनीय हैं।^(१७२) इनके अलावा रस-आखेट, गंद्यमादन(१९८२), पर्व मुकुट, मन पवन की नौका(१९८२) प्रतिनिधि निबन्ध (१९९२) विशेष उल्लेखनीय हैं। आपका आगामी निबन्ध संग्रह 'लोहमृदंग' के नाम से आनेवाला है।

इधर विगत वर्षों में व्यंग्य-निबन्धों ने भी निबन्ध साहित्य को काफी समृद्ध किया

है। व्यंग्य साहित्य तो कई सालों से लिखा जाता रहा पर परसाईजी ने उसे विधा का दरज्जा दिलाया है डॉ.स्मिता विपलुणकर लिखती है कि - हिन्दी के उत्पन्न सजग तथा समाज के सच्चे हित-चिंतक शिरोमणि व्यंगकार हरिशंकर परसाई की अब तक प्रकाशित सभी पुस्तकें हिन्दी साहित्य की अमूल्य पूँजी हैं।^(१७३) अपने निबन्धों में परसाईजी ने सामाजिक और मानवीय यथार्थ की चरित्र-मूलक सृष्टि की हैं। उनके गद्य का यथार्थ न तो एकांगी है न अपवाद।^(१७४) परसाईजी के सोलह व्यंग्य-निबन्ध के संकलन प्रकाशित हुए हैं जिनमें से भूत के पाँव पीछे (१९६१), बेईमानी की परत (१९६५), सदाचार का तावीज (१९६७), ठिठुरता हुआ गणतंत्र (१९७०), काग भगोडा (१९८३) आदि प्रमुख हैं।

रमेशचन्द्र शाह के निबन्ध संग्रहों में 'समानान्तर', 'वागर्थ', 'शेतान के बहाने' आदि उल्लेखनीय हैं। "निबन्धों में इतिहास परम्परा और संस्कृति की चिन्ता अज्ञेयजी की भाँति शाह को मथती रहती है।"^(१७५) युवा निबन्धकारों में प्रभाकर क्षेत्रिय, चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, नन्दकिशोर आचार्य, बनवारी, कृष्णदत्त पालीवाल, प्रदीप मांडव, कर्णसिंह चौहान, चंचल चौहान, विजय मोहनसिंह, ज्ञानरंजन, जैसे बहुत से महत्वपूर्ण निबन्धकार हैं।^(१७६) इनके अलावा जो विगत वर्षों में निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनकी सूची कुछ इस प्रकार है

श्रीमती कमला संघवी - सबन्धों के घेरे (१९८१)

रमेशचन्द्र शाह - शैतान के बहाने (१९८१), लाडू का पेड (१९८४)

रघुवीर सहाय - वे और होंगे जो मारे जायेंगे (१९८३), उबे हुए सुख (१९८२)

रवीन्द्रनाथ त्यागी - भद्र पुरुष (१९८०), इस देश के लोग (१९८२), पदयात्रा (१९८५)

नरेन्द्र कोहली - त्रासदियाँ (१९८२), परेशानियाँ (१९८३)

इन्द्रनाथ मदान - विदा-अलविदा (१९८२)

अमृतराय - विज़िट इंडिया (१९८२)

मनोहरलाल - माटी मेरे गाँव की (१९८४)

विश्वनाथ अय्यर - उठता चाँद डूबता सूरज (१९८४) फूल और काँटे (१९९१)

शरद जोशी - यथासंभव (१९८५)

- भवानीप्रसाद मिश्र - कुछ नीति कुछ अनीति (१९८४), जिन्होंने मुजेरचा (१९८८)
 बरसानेलाल - चौबे की डायरी (१९८९)
 रामदरश मिश्र - कितने बजे हैं
 विश्वनाथ प्रसाद - आम आदमी की लालटेन
 विद्यानिवास - स्तवक
 श्रीलाल शुक्ल - कुछ जमीन पर कुछ हवा में (१९९०)
 लतीफ़ धोबी - नीरक्षीर (१९९२), टूटी टाँग पर चिंतन (१९९२)
 गोपालदास चतुर्वेदी - खंभों के खेल (१९९०), फाइल पढि-पढि (१९९१),
 अफसर की मौत (१९९२), दुमकी वापसी (१९९२)
 डॉ. दरवेश - भावचिंतन (१९९५)^(१७७)

निर्मल वर्मा ने 'शताब्दी के ढलते वर्षों में', 'कला का जोखिम' और 'शब्द और स्मृति' आदि निबन्ध रचे। यही बात रमेशचन्द्र शाह की पुस्तक 'छायावाद की प्रासंगिकता' को लेकर कही जा सकती हैं, अशोक बाजपायी ने जब 'फिलहाल' प्रकाशित किया तो पश्चिमी दृष्टि का एक नया आलोक हिन्दी के सृजन और आलोचना-लोक में प्रकट हुआ।^(१७८)

इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद, डॉ. नगेन्द्र, कुबेरनाथराय, हरिशंकर परसाई आदि मूर्धन्य लेखकों के मार्गदर्शन में हिन्दी निबन्ध साहित्य काफी विकसित व विस्तारित हुआ। आज भाव, भाषा और शिल्प सभी दृष्टियाँ से निबन्ध अत्यन्त समृद्ध हैं। आज उसमें जीवनी की यथार्थता, कहानी की संवेदना, उपन्यास की रमणीयता, नाटक की चित्रात्मकता, गद्य काव्य की भावशीलता, निबन्ध की सहज अनौपचारिकता एवं आत्मीयता आदि विशिष्टताएँ परिलक्षित होती हैं। स्वतंत्रता के बाद साहित्य में वैयक्तिकता ने जोर पकड़ा है। निबन्ध भी इस ओर अग्रसर हुआ है। व्यस्तता और संकुलता के इस युग में विचारों के प्रचार के लिए निबन्ध का उपयोग बढ़ा है उसमें रोज नवीन प्रयोग हो रहे हैं। आज का हिन्दी निबन्ध संपूर्ण विकसित है और उसका भविष्य उज्ज्वल है।

२.३ गुजराती निबंध उद्भव एवं विकास

२.३.१ प्रास्ताविक :-

आकाश में मंडरा रहे काले बादल बरसते हैं इसमें कोई नावीन्य नहीं, पर ये काले बादल बरसे नहीं और सिर्फ गडगडाहट से चारों दिशाओं में आवाज़ करके चले जाये तो कितना आश्चर्य होता है, ऐसा ही आश्चर्य अंग्रेजों के आने के बाद विभिन्न क्षेत्रों में जो परिवर्तन हुआ उनसे होता है। निबन्ध साहित्य का उद्भव इन आश्चर्यों में से एक है। इसलिए 'सुन्दरम्' ने लिखा है कि - “आपणा अर्वाचिन साहित्य मां बधा अंगोनी पेठे निबंध पण अंग्रेजी साहित्य नी तथा पश्चिम नी संस्कृति नी व्यापक असर हेठल विकस्यो छें।”^(१७९) इनसे स्पष्ट है कि 'निबन्ध' आधुनिक साहित्य की देन हैं। इसलिए उसे अर्वाचीन गुजराती साहित्य एवं उनके विकास के साथ जोड़कर देखना चाहिए।

गुजराती साहित्य को उसके उद्भव से आज तक देखेंतो उसे दो बड़े विभागों में बाँट सकते हैं 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य' और 'अर्वाचीन गुजराती साहित्य'। अब अर्वाचीन गुजराती साहित्य का आरम्भ कब हुआ यह स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य के ध्रुव समान कवि 'दयाराम' का देहावसान १८५२ में हुआ। इनके बाद नवीन परिवर्तन की लहर चली। वहीं से अर्वाचीन गुजराती साहित्य विकसित होने लगा। १८४५ में पच्चीस साल की उम्र में कवि 'दलपतराम' की 'बापा नी पीपर' नामक प्राकृतिक कविता बनी जिसको हम अर्वाचीन गुजराती साहित्य का प्रथम आविष्कार मान सकते हैं। इसलिए ही डॉ.रमेश एम. त्रिवेदी ने लिखा है कि - “अर्वाचीन गुजराती साहित्यनी समय रेखा १८४५ थी १९४० लगभग गणी शकाय। अर्वाचीन गुजराती साहित्य नो आ समय गालो त्रण कालखंड मां वहेंची शकाय।

(१) ई.स.१८५० थी ई.स.१८८५ संसार सुधार युग अथवा नर्मदयुग

(२) ई.स.१८८५ थी ई.स.१९१५ समन्वय युग अथवा पंडित युग अथवा गोवर्धन युग

(३) ई.स.१९१५ थी ई.स.१९५० मोहन युग अथवा गांधीयुग^(१८०)

(४) ई.स.१९५० से आज तक अनुगांधीयुग माना जाता है इसी विभाजन के साथ-साथ हम

निबन्ध साहित्य को जोड़कर उसके विकास की दिशाओं को देख सकते हैं कि-

गुजराती निबंध साहित्य का प्रारम्भ धीरे-धीरे होते हुए वो आधुनिक युगबोध के साथ कदम मिलाता हुआ अपनी उचित अभिव्यक्ति करते हुए सार्वत्रिक रूप से विकसित होता गया।

२.३.२ सुधारयुगीन निबन्ध साहित्य :-

गुजराती साहित्य में सुधारयुग का ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इस युग के साहित्य में मध्ययुगीन धर्म-प्रधान साहित्य में से निकलकर समाज-जीवन के प्रश्न स्पष्ट रूप से साहित्य में प्रतिबिम्बित होते हैं। इसलिए डॉ.रमेश त्रिवेदी लिखते हैं कि - “आ युगना साहित्य नुं महत्त्वनुं परिबल अंग्रेजी केलवणी अने सुधारक प्रवृत्ति गणाय। ऐनाथी प्रजामां नवीन जागृति अने नवीन जीवन दृष्टि आवी। प्रजामां परिवर्तन नो प्राणवायु उभरावा लाग्यो।”^(१८१) इसी माहोल का असर निबन्ध साहित्य में भी देखा जा सकता है। इस युग के साहित्यकारों में दलपतराम, नर्मद, नवलराम, महीपतराम, नन्दशंकर, करशनदास मूलजी आदि हैं। इन साहित्यकारों में जिन्होंने निबन्ध साहित्य को विकसित किया है। ऐसे साहित्यकारों में दलपतराम, नर्मद और नवलराम का योगदान विशेष उल्लेखनीय हैं।

उमाशंकर जोशी लिखते हैं कि - “गुजराती मां आर्वाचीनता ना उदय ना संकेत समु अंग्रेज शासन स्थपाय ते पछी दोढ़ेक वर्ष ई.स.१८२० जान्युआरी नी २१ मी तारीखे अर्वाचीन भावो जनहृदय मां रोंपवानुं जेमने माटे निर्मायु हतुं तेवा दलपतराम नो जन्म थयो ते विलक्षण संकेत हतो।”^(१८२) निबन्ध लेखकों में एवं गद्य लेखकों में प्रथम नाम ‘कवि दलपतराम’ का लिया जाता है। अंग्रेजी गद्य के किसी प्रभाव के बगैर गद्य ने नये युग में कैसा रूप लिया वह उसमें देखने को मिलता है। अंग्रेजी असर से मुक्त होने के कारण वह विशेष महत्त्व रखते हैं।

विनायक रावल लिखते हैं कि - “ई.स.१८५० मां ‘भूत निबन्ध’ द्वारा गुजराती निबंधनी कणक बाँधवाना मनसूबा साथे दलपतरामे कारकिर्दीना बे दायका लगातार

गद्यलेखन पछवाडे ध्यान केन्द्रितकरी विपुल प्रमाण मां निबन्ध लेखन कर्यु। ऐमना आ निबन्धात्मक लखाणो मां प्रेरणा ‘फार्बससाहेब’ नी अने संसार सुधारानी छें। भूत निबन्ध (१८५०), ज्ञाति निबन्ध (१८५७), पुर्नविवाह निबन्ध (१८५३), बालविवाह निबन्ध (१८५४), शहेरसुधराई नो निबन्ध (१८५८), परदेशगमन विशेषों निबन्ध अने कीमियागर चरित्र जेवी रचनाओं आपण ने दलपतराम पासे थी प्राप्त थाय छें।”^(१८३)

“सुन्दरम जेनो पहेला निबन्ध तरीके स्वीकार करे छे अने नानालाल जेने प्रथम स्वतंत्र गद्यलेखन तरीके ओलखावे छे ते ‘भूत निबन्ध’ विस्तृत फलक पर लखयेलो कालगणनानी दृष्टि ये आपणी भाषानो निबन्ध छे।”^(१८४)

“ ‘भूत-निबन्ध ऐटले गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीनी ग्रंथ-प्रकाशन मालानो प्रथम मणको, अर्वाचीन गुजरातनो प्रथम गद्य ग्रन्थ, लोक प्रसिद्धि पामेलो दलपतरामनो साहित्य विजय।”^(१८५) इस प्रकार दलपतराम का महत्व प्रारम्भिक निबन्धकार के रूप में विशेष हैं।

इस युग के श्रेष्ठ साहित्यकार ‘नर्मद’ ने जो ‘निबन्ध’ साहित्य प्रस्तुत किया है वह गणनापात्र हैं। निबन्ध स्वरूप का उचित प्रयोग ‘नर्मद’ ने किया। अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से उन्होंने निबन्ध के स्वरूप को द्रढ़ बनाया इसलिए उन्हें गुजराती के प्रथम निबन्धकार का सन्मान मिला। डॉ.प्रविण दरजी लिखते हैं कि - “नर्मद पूर्वनी दलपतरामनी निबन्ध प्रवृत्ति नोंधपात्र बनी रहेती होवा छतां, गुजराती भाषाना प्रथम निबन्धकारनुं स्थान अने मान संक्षिप्त शैलीनो सौ प्रथम निबन्ध ‘मंडली मलवाथी थतां लाभ’ (१८५०) लखनार नर्मदने मले छे।”^(१८६) उनके द्वारा लिखे निबन्धों में संप, सुख, काम, पुर्नविवाह, स्वदेशाभिमान, सुधारानुं विसर्जन, ब्रह्मतृष्णा, आर्योदबोधन, धर्मनी अगत्य, गुजराती भाषा, सुरतनी चडती-पडती, युरोपनी त्रण महान प्रजाना लक्षणों, महाभारतना पात्रोनी समालोचना, रणमां पाछापगला न करवा विशे आदि उल्लेखनीय निबन्ध हैं। डॉ.रमेश त्रिवेदी के अनुसार “नर्मदना निबन्धों स्पष्टपणे बे विभाग मां वहेंचाई जता जोवा मले छे। ऐना आरंभ कालना निबन्धो व्याख्यान शैलीना छे। नर्मद ना उत्तरकालना निबन्धों

सुधाराविषयक, धर्मविषयक, तत्त्वचिंतन ने लगता परिपक्व निबन्धों 'धर्मविचार' नामना पुस्तकमां संग्रहाया छें।"^(१८७) नर्मद के विभिन्न निबन्धों को पढ़ने से पता चलता है कि उन्होंने प्रमुख रूप से चार प्रकार की शैली का प्रयोग किया हैं। (१) व्याख्यान शैली (२) चिंतन शैली (३) पत्रकारत्त्व शैली (४) रूपक शैली - इस प्रकार नर्मद के निबन्धों में हमें शुद्ध साहित्यिकता मिलती हैं। इस सन्दर्भ में विनायकजी लिखते हैं कि - "कथन, वर्णन अने मननी त्रिपाद उपर उभा रहेला नर्मदना निबन्धों ए गुजराती गद्यनी कणक बांधवानुं उपयोगी कार्य कर्युं छें।" साहित्यिक दृष्टि से नर्मद के निबन्ध सौष्ठव-युक्त है सभी विषयों को उन्होंने छुआ है, इनमें शुद्ध साहित्यिक निबन्ध की सुगंध हैं।

नर्मद के बाद 'नवलराम' ने 'गुजराती' साहित्य को काफी परिमार्जित कर नवीन रूप दिया 'नवलराम आद्य विवेचक, भाषा साहित्य के परिमार्जक एवं सर्जक के रूप में गुजराती साहित्य में आदरयुक्त स्थान प्राप्त किये हुए हैं। 'नवलराम' ने 'नर्मद' के बताये उपवनो को समृद्ध करने में एक माली की भूमिका निभाई हैं। 'सुन्दरम्' के मतानुसार - ऐमना निबन्धोनुं मर्यादित रूप छतां पहेलू रूप बाँध्युं तेना लेखन घडतरमां ऐडिसने महत्त्वनो भाग भजव्यो।"^(१८८) वो सुधारयुग के एक विशिष्ट विवेचक है, उन्होंने विवेचन के साथ सभी विधाओं को छूआ है। इसलिए डॉ.प्रवीण दरजी लिखते हैं कि - "ऐमनी लेखनीय नाटक, चरित्र, इतिहास आदि विषयों ने स्पर्श कर्यो छे, छतां ऐमनुं यशोद्रायी सर्जन तो समाज, शिक्षण अने साहित्य ने लगता तेमना सुश्लिष्ट अने मिताक्षरी निबन्धों छे।"^(१८९) सरल एवं रसाल शैली में लिखे हुए, उनके निबन्धों में तटस्थता, समतुलता, निर्भीकता और सहृदयता जैसे गुण मिलते हैं ऐसे शुद्ध, संक्षिप्त निबन्ध नवलराम की उत्तम सिद्धि माने जाते हैं। इसलिए वि.म.भट्ट ने उनके निबन्धो को 'गुजराती साहित्य ना शणगार रूप' माना हैं।

सुधारा युग के दूसरे निबन्धकारों में करशनदास मूलजी, महिपतराम, रूपराम, नीलकंठ, हरगोविंद काँटावाला, अंबालाल, साकरलाल देसाई, मणीशंकर जटाशंकर

कीकाणी, रणछोडभाई उदयराम, मनसुखराम त्रिपाठी आदि सुधारकों का योगदान उल्लेखनीय रहा हैं। इन्होंने सौराष्ट्र में शिक्षा व केलवनी के प्रसार के लिए धर्म, समाज सुधार, भाषा, इतिहास, काव्यशास्त्र, व्याकरण, खगोल शास्त्र, ज्योतिष आदि विविध विषयों पर लेख लिखे। इन लेखकों को विकसित करने में विविध पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा हैं जिनमें 'ज्ञानसुधा', 'बुद्धिप्रकाश', 'तत्त्वप्रकाश', 'सत्यप्रकाश' साहित्य आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार इस युग के निबन्धों के बारे में कहें तो इसमें कलात्मकता कम है क्योंकि इस युग का निबन्धकार या तो शिक्षक था या तो समाज सेवी। इसलिए साहित्यिक दृष्टिकोण इसमें कम मिलता है। इस सन्दर्भ - डॉ. प्रवीण दरजी लिखते हैं कि - “आ गालाना निबन्ध लेखन ने शुद्ध साहित्य ना त्राजवे तोलवा बेसीए तो देखीतोज अन्याय थई रहे छे -”^(१९०) इसलिए ये स्पष्ट है कि साहित्यिक दृष्टि से इन सभी निबन्धों का मूल्य कम है मगर ये समय गुजराती निबन्धों के जन्म का समय था, इसलिए कुछ कमियाँ पाई जाती हैं जो निबन्धों के उद्देश्य व युग को देखने से सहज समझ में आ सकता हैं।

२.३.३ पंडितयुगीन निबन्ध साहित्य

ई. १८८५ से १९१५ तक के समय में जो साहित्य रचा गया वह पंडितयुग, गोवर्धनयुग, समन्वययुग या साक्षरयुग के नाम से जाना जाता है। “नर्मद नी पेढी अस्त पामी ते पहेला तेना करता वधु सत्त्वशाली एटलुज नहीं समग्र गुजराती साहित्य मां मांग मुंकावे ऐवी प्रतिभाशाली उच्च जीवन नेम अने अनोखी साहित्य छटा साथे उदय पामती हती ते पेढी ते पंडित युग”^(१९१) इस युग को ‘गोवर्धनयुग’ कहा गया इस युग के साहित्यकारों में विद्वत्ता एवं अभ्यासनिष्ठता होने के कारण इसे साक्षर एवं पंडितयुग का भी नामाभिधान मिला। गुजराती साहित्यना विकास मां साक्षरयुग अति महत्त्व नो तबक्को छे। साडा त्रण दायकाना ए समयगालाने गुजराती साहित्य अने संस्कृतिना स्वर्णयुग

तरीके ओलखावी शकाय एटली प्रगति ते दरम्यान थयेली जोई शकाय छे.”^(१९२) सुधारयुग के साहित्यकारोंने जो रास्ता बनाया था उसे राजमार्ग बनाने का कार्य पंडितयुग के साहित्यकारा ने किया। इस युग के साहित्यकारों ने पश्चिमी संस्कृति के शुभतत्त्वों के साथ समन्वय किया जिनसे ये समन्वययुग के नाम से भी जाना जाता हैं। इस युग में सभी विधाओं का विकास हुआ - “विषय, स्वरूप तेमज अभिव्यक्ति नी दृष्टि ए सुधारयुगमां जे जे नव प्रस्थानों थया हतां तेने जाणे आ युग मां पूर्ण कलारूप प्राप्त थयुं”^(१९३) इस युग के गद्य में ऐसे लक्षण हैं जो ध्यान आकर्षित करते हैं जिनमें निबन्ध के विकास के लिए अनुकूल माहौल तैयार हुआ हैं। इस युग में निबन्ध के लिए एक नया सोपान शुरु होता हैं।

इस युग के बारे में कहा जाता है कि पत्रकारिता और निबन्धकारों-दोनों की संख्या और गुणों में वृद्धि हुई हैं। इस युग में काफी मात्रा में समृद्ध एवं सुश्लिष्ट निबन्ध साहित्य लिखा गया। गुजराती गद्य का शिष्ट स्वरूप गोवर्धनराम, मनसुखराम, मणिलाल, रमणभाई, नरसिंहराव, आनंदशंकर, बलवंतराय, उत्तमलाल त्रिवेदी, न्हानालाल आदि के द्वारा काफी विकसित एवं विस्तारित हुआ हैं।

‘सरस्वतीचन्द्र’ जैसी श्रेष्ठ नवलकथा के रचयिता ‘गोवर्धनराम त्रिपाठी’ ने गुजराती एवं अंग्रेजी में अनेक निबन्ध लिखे हैं। - “गोवर्धनराम ना अंग्रेजी, गुजराती लेखों, व्याख्यान निबन्धों नी संख्यापण घणी मोटी थई जाय छे। एमांथी साहित्य विवेचन अने जोडणीविषयक कृतियों नो विचार ‘विवेचन’ ए स्तबक मां कर्यो छे। आ उपरांत धर्मतत्त्वज्ञान विषयक, समाजशास्त्र, राजकारण, अने कायदाशास्त्र विशे पण तेमणे लेखो लख्या छे।”^(१९४) गोवर्धनरामने संगम युग के द्रष्टा के समान जीवनदृष्टि रख के प्रवृत्ति की हैं। उनके लेखों में तटस्थ अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

इस समय के नव शिक्षितों में ‘मनसुखराम त्रिपाठी’ स्नातक न होने के बावजूद भी उनकी उम्र संस्कार और अभ्यास के बल पर प्रथम गिने जाते हैं। एक कुशल प्रशासक राजपुरुष के साथ-साथ साहित्यकार के रूप में ‘मनसुखराम त्रिपाठी’ का गुजराती में

विशिष्ट स्थान था उनका निबन्ध-साहित्य काफी समृद्ध हैं। “धर्म प्रकाश अने बुद्धिवर्धक जेवा सामयिको वडे मनसुखराम नी निबन्ध लेखन प्रवृत्ति पांगरी हती विपत्ति विशे निबंध’, ‘अस्तोदय’ ‘कालचक्र’ अने ‘सुखनुं महा रहस्य’ जेवा तेमना अनेक निबंधों प्राचीन संस्कृतिनो महिमा दर्शावती नेमथी लखायेला छे. आर्यसंस्कृति ना पुरस्कर्ता, देशहितचिंतक अने वेदांतना अभ्यासी ऐवा आ निबन्धकार ना निबन्धों विषयक पसंदगीमा ज एमनु विशिष्ट व्यक्तित्व परखाई आवे छे। समकालिन संसार ने स्पर्शता के गवाई गयेला विषयों पर लखवाने बदले तेमणे सुख, दुःख, उदय, अस्त, नीति, सत्य अने विद्या जेवा जीवन ने स्पर्शता अमूर्त अने तात्त्विक विषयों पर निबन्धों लख्या छे.”^(१९५)

इस युग के श्रेष्ठ निबन्धकार तो मणिलाल ही हैं। मणिलाल का मानस समृद्ध एवं स्वतंत्र है। विद्वत्ता, विशाल अनुभव और अवलोकन की गहराई उनके पास इतनी थी कि उनके निबन्धों की जहाँ भी चर्चा होती है उनमें कहीं अपूर्णता दिखाई नहीं देती। धीरुभाई ठाकर लिखते हैं कि - “मणिलाले सौथी विशेष खेडाण निबन्धनुं कर्युं छे। तेमने स्वभाविक रीतेज हाथ बेठेलो साहित्य प्रकार निबन्ध छे। तेमना व्यक्तित्वनो खरो उन्मेश तेमना निबन्धो बतावे छे। ‘बालविकास ना पाठो’ तथा ‘सुदर्शन गद्यावली’ मांना लेखो अनुक्रमे तेमना लघु तथा दीर्घ निबन्धना सुंदर नमूना छे.”^(१९६) नर्मद के समान ही मणिलाल ने व्याख्यान शैली का प्रयोग किया हैं। सत्यता, सचोटता, तटस्थता उनके निबन्धों के गुण हैं। - “विवेचक श्री विश्वनाथ भट्टे अर्वाचीन युगना त्रण श्रेष्ठ निबंधकारोमां नर्मद, मणिलाल अने काका साहेबने गणाव्या छे अने ‘सुदर्शन गद्यावली’ ना निबंधों ने गुजराती साहित्य ना उत्तम निबन्धो तरीके ओलखाव्या छे.”^(१९७) मणिलाल के निबन्ध, लोकशिक्षण कार्य में साधनरूप गिनाये गये थे ऐसी उनमें गहनता थी। इसलिए ‘विजयराज वैद्य’ ने कहा है कि “मणिलाल मनरूपी क्षीरसागरमां जीवन अने संस्कार सम्पन्न करतां विविध विषयो परत्वे बे दायका पर्यन्त मन्थन चाल्याकरतुं हतुं.”^(१९८) शिष्ट, प्रौढ़, चिंतनयुक्त, तेजस्वी, संस्कारी गद्य का रूप सर्वप्रथम मणिलाल के निबन्धों में देखा जा सकता है। जिनके कारण वे समर्थ गद्य स्वामी के रूप में विशिष्ट व आदरणीय स्थान

प्राप्त कर सके हैं।

नरसिंहरावजी वैसे तो एक भाषा-शास्त्री के रूप में जाने जाते हैं। पर उनका गद्य में भी विशिष्ट प्रदान है। उन्होंने कुछ विशिष्ट प्रकार के निबन्धों की भी अभिव्यक्ति की हैं। “विवर्तलीला मा नवी भातवाला लघु चिंतनात्मक निबंधो संग्रहायेला छे। ‘स्मरणमुकुर’ ऐ तेमना चरित्रात्मक निबन्धो नो संग्रह छे, तो ‘मनोमुकुर’ १ थी ४ मां रस कला अने केटलीक साहित्यिक कृतियों ने लगता विवेचनात्मक निबंधों छे。”^(१९९) उनके ये निबंध स्वानुभूति मूलक निबन्ध हैं। जिनमें कुछ वैयक्तिकता नजर आती हैं। उन्होंने जो निबंध लिखे वे ‘ज्ञानबाल’ के तखल्लुस से लिखे हैं।

पंडितयुग के जो कुछ तेजोमयी साहित्यकार हैं उनमें से एक रमणभाई नीलकंठ हैं। सोम्य, शांत, निराभिमानी, सालस, परगजु ये उनके स्वाभाविक गुण थे। “गांधीजी जीनको गुजरात के एक मात्र सज्जन कहते थे, आनन्दशंकर ध्रुव जिन्हें सकल पुरुष और प्रि.रोबर्टसन इसे अहमदावाद के सम्पूर्ण सद्ग्रहस्थ कहते हैं। - “तेमनी हाथे केटलाक नमूनेदार निबन्धो लखाया छे। ‘हास्यमंदिर’, ‘कविता अने साहित्य’ वो १ थी ४ तेमज धर्म अने समाज: पुस्तक १-२ मां तेमनो निबन्धकार तरीके नो परिचय मली रहे छे। रमणभाई नो एक निबन्धकार तरीके नो यथार्थ परिचय लगभग भुलाई गयेला एमना ‘धर्म अने समाज’ पुस्तक १-२ मां थाय छे।”^(२००) विद्यागौरी रमणभाई नीलकंठ ने भी इस दिशा में अपना कुछ योगदान देकर एक निबन्धकार के रूप में स्थान प्राप्त किया हैं।

आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव साक्षर पीढी के अनन्य भूषण रूप एक और साहित्यकार हैं। निबन्धकार ‘मणिलाल’ की याद दिलानेवाले इस युग के उच्च कोटि के निबन्धकार हैं। इस सन्दर्भ में सुन्दरम् लिखते हैं कि - “आनंद शंकर ऐ मणिलाल नभुभाईनी विकसेली, संस्कारेली अने धणी समृद्ध आवृत्ति जेवा छे।”^(२०१) जिनके बारे में ‘गांधीजी’ ने कहा हैं कि - “आनंद शंकरभाई नी सेवानुं वर्णन करनार हु कोण?..... (तेओ) सुधरेला अने सनातननी वच्चे ऐक सुंदर पुल छे।”^(२०२) “जुदी-जुदी परिषदों मां तेमणे आपेला

व्याख्यानो निबंधकारी बन्या छे. 'काव्यतत्त्व विचार', 'साहित्यविचार', 'दिग्दर्शन' अने 'विचारमाधुरी' - १-२ मां तेमणे साहित्य समाज तेमज शिक्षण ने लगता प्रश्नोनी विचारणा करी छे। 'नीतिशिक्षण', 'धर्मवर्णन', 'हिन्दुधर्म', अने 'हिन्दुधर्मनी बालपोथी' मां धर्म विषयक विचारणानो आकर ग्रंथ छे।^(२०३) इस प्रकार इस विद्यापुरुष के निबन्ध और पत्रकारित्व की लिखाबट हमें पंडित युग में हो रहे गांधीयुग के प्रवेश से अवगत करवा रही हैं।

उत्तमलाल त्रिवेदी पंडितयुग के गणनापात्र निबन्धकार हैं। आनन्दशंकर मानते हैं कि वे वाचन-ज्ञान-विचार के भंडार थे। उन्होंने शिष्ट शैली में सौष्ठवपूर्ण निबन्ध लिखे हैं। - "सरस्वतीचन्द्र अने आपणो गृह संसार', 'पश्चिमना सुधारनो दावो', 'लॉर्ड सोल्सबरी' अने 'हिन्दुस्तान' दीर्घ रचनाओं छे। गोवर्धनराम आचारसूत्रो, रंगभूमि, आपणु राजकिय समुद्रमंथन ए प्रमाणमां संक्षिप्त अने रसालशैली मां लेखायेलो निबन्धो छे।"^(२०४) इनके अलावा उन्होंने चरित्रात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। उनके निबंधों की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। एक तो विषयों का संपूर्ण सांगोपांग वर्णन और विषय को संपूर्ण गम्भीरता के साथ व्यक्त करना।

इनके अलावा "ब.क.ठाकोर, कवि न्हानालाल, रणजितराम, केशव ह. ध्रुव, वा.मो.शाह, श्रीमद राजचंद्र वगैरे गद्यकारो पासे थी भिन्न-भिन्न शैलीवाला निबन्धो सापडे छे. अतिसुख शंकर त्रिवेदी ना हलवा उर्मिकाव्य सदृश निबन्धोमां ललित निबन्धनी लय-लंचक जोवा मले छे।"^(२०५) ब.क.ठाकोर के पंचोत्तरमें, नवीन कविता विशे, विविध व्याख्यानोगुच्छ १-२-३ प्रसिद्ध हैं। तो न्हानालाल के संचारमंथन, साहित्य मंथन, प्रस्तावमाला, अर्धशताब्दीना अनुभवबोल, आपणा साक्षर रत्नों १-२, गुरुदक्षिणा, संबोधन, उद्बोधन, चित्रदर्शन के उनके व्याख्यान व लेख निबन्ध रूप हैं। 'रणजितरामना निबंधो-१' उनके लेखो का संग्रह है। अतिसुख त्रिवेदी के 'शिखामण', 'जुनू अने नवुं' निबन्ध हैं। इस प्रकार वा.मो.शाह ने भी 'शिक्षण नो पहेलो पाठ', 'सशक्त नी स्वतंत्रता', 'शिक्षण नो बीजोपाठ' आदि अनेक ऐसी निबन्धात्मक रचनाएँ लिखी।

इस प्रकार इस युग को समग्रतः देखा जाये तो इस युग में अन्य साहित्यिक विधाओं के मुकाबले निबन्ध विशेष मात्रा में लिखे गए हैं। “डॉ.प्रवीण दरजी के अनुसार समग्र रीते जोता निबन्धनुं शिस्तबद्ध स्वरूप पंडितयुग आपे छे। तर्कबद्ध विचारश्रेणी शास्त्रीय निरूपण अने सचोट असरकारक शैली एकंदरे आ युगना निबंधनी प्रमुख लाक्षणिकताओं रही छे。”^(२०६) गुजराती साहित्य के इतिहास का हर तरह से यह स्वर्णयुग बनकर रह गया हैं। क्योंकि सर्जना के साथ विवेचना और भाषा-शास्त्र की दृष्टि से भी इसमें काफी अच्छा कार्य हुआ हैं। इन सभी के पीछे इस युग के साहित्यकारों की सही समझ ही विशेष महत्वपूर्ण हैं।

२.३.४ गांधीयुगीन निबंध साहित्य :-

अर्वाचीन साहित्य के इतिहास में इ.स. १९१५ से १९५० तक के कालको ‘गांधीयुग’ के नाम से जाना जाता हैं। बीसवीं शताब्दी में केवल गुजरात पर ही नहीं पर समग्र भारतवर्ष के प्रजाजीवन व साहित्य पर इनका अपूर्व प्रभाव रहा। इस युग के बारे में डॉ.रमेश एम. त्रिवेदी लिखते हैं कि - “वातचीतनी भाषामां कहेवुं होय तो ऐम कहेवाय के नर्मदयुगे मुख्यत्वे फरतु जोयु, गोवर्धनयुगे फरतुं तेम उचु ने पाछु जोयु, मोहनयुगे सौथी वधारे फरतुं जोयुं, सीधु पण जोयुं, पाछु तो आ बन्ने नजरोंने संस्कारवाज जोयु ने उचुजोयु ते आत्रणयना अविरोधे जोवाय ऐटलु जोयु。”^(२०७) इस प्रकार ये युग काफी असरकारक रहा हैं। ‘निबन्ध’ के विकास के लिए भी ‘गांधीयुगीन’ माहौल हर तरह से अनुकूल था इसलिए ‘प्रवीण दरजी लिखते हैं कि - “आम आमूले बदलाई गयेली राजकीय अने सांस्कृतिक आबोहवाए साहित्यना अन्य स्वरूपनी जेम निबंध साहित्य पर घणी असर करी छे. निबन्धकारनुं जीवन तरफनुं दृष्टिबिंदु वधु गंभीर बने छे. गांधीजी नी असरे निबन्धकार जनभाषामां लखतो थाय छे。”^(२०८) गांधीजी ना प्रभाव नीचे निबन्ध लखनार गद्यकारोमां किशोरीलाल मशरुवाला पंडित सुखलालजी तथा स्वामी आनंद विशेष उल्लेखनीय छे. आ युग मां गांधीजी नां प्रभाव नीचे आव्या सिवाय निबन्ध क्षेत्रे

उल्लेखनीय प्रदान करनार निबंधकारों मा कनैयालाल मुनशी, विजयराज वैद्य, रा.वि.पाठक, धूमकेतु, र.व.देसाई, मेघाणी, नवलराम त्रिवेदी, रतिलाल त्रिवेदी, अंबालाल पुराणी, प्रभुलाल गांधी, लीलावती मुनशी अने किशनसिंह चावडा वगैरे गणावी शकाय।^(२०९) जिन्होंने इस युग में निबन्धों को विकसित करने का कार्य किया।

‘गांधीजी’ ने अपने साहित्यिक प्रदान में सबसे अधिक निबन्धात्मक साहित्य लिखा है। प्रवीण दरजी के अनुसार - “केवल निबन्धो ज लखीने पंडितयुगना समर्थ निबन्धकार अने साहित्यकार तरीकेनुं स्थान प्राप्त करनार आनंदशंकर ध्रुव नी माफक ‘गांधीयुगमां’, ‘गांधीजी’ अपवाद रूपे केवल निबन्धो लखिने उच्चकोटिना निबन्धकार अने साहित्यकार तरीकेनुं स्थान अने मान मेलवे छे.”^(२१०) धीरुभाई लिखते हैं कि - “तेमना समग्र जीवनकार्य नो अर्क तेमना साहित्य मां उतरेलो छे. निबन्ध तेमनुं मुख्य साहित्य साधन छे। तेमना मोटा भागना विचारोनुं वहन निबंध बने छे.”^(२११) उनके ग्रंथों में मंगल प्रभात, त्यागमूर्ति, अने बीजालेखों, परवाडाना अनुभव, नीतिनाशने मार्गे, सर्वोदय, खरी केलवणी, आरोग्यनी चाल, आश्रमजीवन, धर्ममंथन, गीताबोध, हिन्दी स्वराज्य प्रसिद्ध हैं। जिनमें निबन्धात्मक रूप देखने को मिलता हैं। उनके भाषण, वार्तालाप भी काफी हद तक निबन्धात्मक लगते हैं। उनकी संक्षिप्त और चोटदार रचनाओं के पीछे एक संस्कार संपन्न संत हृदय के दर्शन होते जो गांधीजी को गुजराती निबन्धों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी बना देते हैं।

गांधीयुग में गांधीजी के सिद्धांतों को समझ के प्रस्थापित करनेवाले काका साहेब कालेलकर का निबन्ध साहित्य में उत्कृष्ट प्रदान हैं। एक साहित्यकार के रूप में उनका व्यक्तित्व काफी भिन्न हैं। उनके पास जीवन में से सौंदर्य खोजने की विशिष्ट द्रष्टि हैं। इसलिए धीरुभाई लिखते हैं कि - “काका साहेब ने मुख्यत्वे निबंधकार तरीके लखाण कर्यु होवा छता शुद्ध सर्जनात्मक कोटीमां आवी शके तेवुं पुश्कल लखाण तेमनी पासेथी गुजरात ने मल्यु छे। तेमना निबन्धों ने उत्साही शिक्षक अने सौंदर्यदर्शी कवि उभय व्यक्तित्वनो एक साथे लाभ मल्यो छे।”^(२१२) उनके बारे में प्रसाद ब्रह्म भट्ट लिखते हैं

कि - “ललित निबंधना स्वरूप ने पूरी रीते न्याय आपे तेवी संतर्पक रचनाओं आपणने पहेलीवार काका साहेब आपे छे। शुद्ध सर्जन हेतु थी लखायेली आनंदपर्यवसाथी कृतियाँ ललित निबंधना स्वरूपमां रहेली अनेक विध शक्यताओं प्रगटावी आपे छे। भारतीय संस्कृतिना संदर्भो थी उभरातुं तेमनुं चित्त सौंदर्याभिमुख कवि प्रकृति, बाल सहज विस्मय, अभिजात विनोद अने आलंकारिक गद्य तेमना निबन्धोने रसावह बनावे छे। ‘रखडवानो आनंद’, ‘जीवननो आनंद’, ‘जीवनलीला’, ‘ओतरादी दिवालो’ वगैरे निबन्धोंमां शुद्ध प्रकार नो कल्पनाजन्य आनंद अर्पती अनेक कृतियाँ सापडें छे। तेमना प्रवास विषयक निबंधों मां पण ललित निबंधनुं अनेरु रूप दृष्टिगोचर थाय छे। ‘लुच्चो वरसाद’, ‘मध्याननुं काव्य’, ‘संध्यारस’ अने सखीमाकडी जेवा काव्योमय उत्कृष्ट निबंधो आपणी भाषाना नमणा आभुषणो छे।”^(२९३)

काका साहब के साथी किशोरीलालने विचार प्रधान निबन्ध लिखे हैं। उनके निबन्धों में तात्त्विक विचारणा विशेष पाई जाती है। वे किसी विचारणा का सूक्ष्मविश्लेषण करके उसे विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं। “केलवणीना पाया, केलवणी विवेक, केलवणी विकास मां केलवणी विषय ने स्पर्शता निबंधो छे। तो जीवनशोधन, समूलीक्रांति, संसार अने धर्म जेवा ग्रंथोमां धर्म अने तत्त्वज्ञान ने लगती तेमनी मूल्यवान विचार धाराओं निबंध रूपे संचित थयेली छे।”^(२९४)

स्वामी आनन्द के निबन्धों को आस्वाद्य बनानेवाले दो तत्व हैं, एकतो उनका व्यक्तित्व और दूसरा वे किसी भी विषय पर निबन्ध लिखते हैं। चरित्रात्मक, चिंतनात्मक, प्रवासविषयक, सभी निबन्ध उन्होंने लिखे हैं। उनके निबन्ध लेख- ‘मानवतानावेरी’, ‘अनंतकला’, ‘नवलादर्शन’ और ‘धरतीनुं लुण’ संग्रह में प्रकाशित हुए हैं।

इस युग में पंडित सुखलाल के चिंतनात्मक निबन्ध, महादेवभाई देसाई के कलामय निबन्ध, नरहरिचरित्र, व चंद्रशंकर शुक्ल के प्रसन्न शैली के सरल निबन्ध, मगनभाई देसाई, गोपालदास पटेल, मुकुलभाई के सामायिक धार्मिक निबन्ध और ‘दक्षिणामूर्ति’ के सक्रिय लेखक हरभाई, नानाभाई, गिजुभाई ने निबन्ध को समृद्ध किया हैं।

क.मा. मुनशी ने गुजराती साहित्य को काफी समृद्ध किया हैं। उनके निबन्ध लेखों में - “केटलाक लेखो १-२ (१९२६) थोडाक रसदर्शनो (१९३३) तथा गुजरातनी अस्मिता (१९३९) मां एमना निबंधों संचित थया छे।” (२१५) लीलावती मुनशी ने भी संक्षिप्त मधुर निबन्ध लिखे हैं।

विजयराय वैद्य का निबन्ध क्षेत्र में विशिष्ट प्रदान रहा हैं। प्रवीणजी लिखते हैं कि - “विनोदकांत उपनामधारी आ निबंधकारे निबंधनी पीठ पर ‘नाजुक सवारी करी’, ‘दरियावनी मीठी लहर माणी मणावी छे। आ प्रकारना हलवा नर्मोक्ति प्रधान निबंधोना अर्पणमां विजयरायनो फालो महत्वनो रहयो छे. - नाजुक सवारी, प्रभातनारंग, उडतापीन, पहेलुपानु, दरियावनी मीठी लहर, खुशकी अने तरी, वगेरे तेमना हलवा निबंधो ना संग्रहो छे।” (२१६) जयंत कोठारी के अनुसार निबंधना स्वरूपनुं विशुद्धभावे अनुशीलन करनारा आपणा लेखको मां विजयराय एक आगल पडता लेखक छे।” (२१७)

निबन्ध क्षेत्र में स्वैर-विहारी यानी रा.वी. पाठक का अमूल्य प्रदान रहा हैं जो गुजराती निबन्धोमें अमूल्य हैं। रमेश त्रिवेदी लिखते हैं कि - “निबंधकार रमनारायणनुं उत्तम अर्पण ‘स्वैर-विहारी’ ना निबंधो छे. ‘मनोविहार’ मां तेमना गंभिर प्रकारना निबंधो संग्रहाया छे. तो ‘स्वैर-विहारी’ मां यद्छाविहार करतां हलवा प्रकारना ललित निबंधो छे।” (२१८)

जिन्होंने सफल नवलीकाकार के रूप में स्थान प्राप्त किया है ऐसे धूमकेतुने नवलकथा के बाद उत्तम प्रकार के निबंध लिखे हैं। जिन्होंने विचारात्मक, चिन्तनप्रधान एवं हास्य निबन्ध लिखे हैं। पगदंडी, रजकण, जलबिंदु, पद्मरेणु पानगोष्ठी, जीवनविचारणा, साहित्य विचारणा में उनके निबंध संग्रहित हैं।

र.व. देसाई के ‘जीवन अने साहित्य’, ‘साहित्यदोष’, ‘साहित्य ; सामान्य दृष्टि ये’, ‘साहित्यनो मार्ग’, ‘साहित्यनु स्थान’ अने ‘साहित्य अने प्रगतिशीलपणु’ मां निबन्धात्मकता व्यक्त थाय छे। (२१९) अंबालाल पूराणी ने निबंधोमें अपना मौलिक चिंतन व्यक्त किया है तो मेघाणीने पत्रकारत्व परिभ्रमण १-२-३ वेरानमां एवं सांबेलाना सूर में उत्तम लेख लिखे

हैं, 'नवलराम' ने हास्य निबन्धों की अभिव्यक्ति कर एक निबन्धकार के रूप में भी विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है।

किशनसिंह चावडाने उत्तम निबन्ध दिए हैं। उनके 'अमास ना तारा', 'हिमालय नी यात्रा', 'समुद्र ना द्विप', 'तारा मैत्रक' काफी प्रसिद्ध है जो उसे समृद्ध सर्जक का रूप प्रदान करते हैं तो 'दर्शक' ने अपने साहित्य में भले ही निबन्ध को विशेष तवज्जो नहीं दी पर उनके विभिन्न लेखों में निबंधात्मक आस्वाद अवश्य मिल जाता है। उन्होंने 'वागीश्वरीना कर्णफूलो' में आनन्ददायक विवेचनात्मक निबन्ध दिये हैं।

प्रसाद ब्रह्मभट्ट लिखते हैं कि - “काका साहेब पछी ललित निबंधने शुद्ध स्वरूपे खीलववानो प्रयास 'विनोदीनी नीलकंठ' करेछे। 'रसद्वार', 'आरसनी भीतर' मां अने 'निजानंद' जेवा निबन्ध संग्रहोमां तेओ रसावह निबंधो आपेछे। उमाशंकर जोशीनो निबन्ध संग्रह 'गोष्ठी' पण निबंध क्षेत्रे तेमनुं महत्वनुं प्रदान छे। निबन्ध बे आत्मा वच्चेनी गोष्ठी छे। तेनो ख्याल 'वार्तालाप', 'मित्रतानी कला' जेवा तेमना निबंधो वाचता आवे छे। 'सुन्दरम्' दक्षिणायनना प्रवास निबन्धोमां भिन्न-भिन्न रीते निबंध सिद्ध करेछे। ज्योतिन्द्र दवेना हास्यनिबंधो ललित निबंधनुं एक नवुं ज रूप आपणी समक्ष प्रस्तुत करे छे।”^(२२०) इस प्रकार निबन्ध साहित्य इस युग में काफी विस्तारित होता हुआ पाया जाता है। ऐसा लगता है जैसे निबन्ध विधा इस युग की प्रमुख विधा बन गई हैं। डॉ.रमेश त्रिवेदी के अनुसार - “पंडितयुगथी गांधीयुगनुं साहित्य अवश्य थोडा कदम आगल गति करतुं प्रगतिशील साहित्य बनी रह्यु श्री उमाशंकर जोशीनी पंक्तियोंथी आपणी वात समाप्त करीशुं -

द्रढायु गोवर्धन थी बनीजे
अर्चेल कान्ते दलपतयुगे
ते गुर्जरी धन्य बनी ऋतंभरा
गांधीमुखे विश्वमांगल्यधात्री।”^(२२१)

२.३.५ आधुनिक निबन्ध साहित्य :-

नर्मदयुग से प्रारम्भ हुआ अर्वाचीन गुजराती साहित्य का युग-विभाजन यथायोग्य समय को ध्यान में रखते हुए किया गया जैसे सुधारयुग, पंडितयुग, गांधीयुग पर गांधीयुग के बाद जो साहित्य लिखा गया उसके विभाजन को लेकर आज भी अस्पष्टता है, विभाजन तो कर दिया पर उसके लिए निश्चित समय तै नहीं हो रहा है - गांधीयुग के बाद अनुगांधीयुग, स्वातंत्र्योत्तरयुग, आधुनिकयुग, अनुआधुनिकयुग आदि नाम प्रचलित हैं पर वैसे देखें तो इस विभाजन से साहित्य के अभिव्यक्तिक स्वभाव में खास अंतर नहीं दिखाई पड़ता इसलिए गांधीयुग के बाद के निबन्ध साहित्य को स्वातंत्र्योत्तर अथवा आधुनिक निबन्ध साहित्य कहना विशेष अनुकूल लगेगा। वैसे 'सुमनशाह' ठीक ही लिखते हैं कि - “१९५५ थी शरु थयेला गुजराती साहित्यना ‘आधुनिकयुग’ नाम निर्देश पाछलनो केन्द्रवर्ती संकेत आधुनिकता नो छे। आ गालामां साहित्यिक उन्मेशोमां व्यक्त थतो ‘आधुनिकता’ नी अर्थभावसंकुल विभावना एवडे बराबर सुचवाई छे। साहित्यना इतिहासमां आवा युगो कशी निश्चित साल-तारीखे शरु थईने अमुक दिवसे आथमी जनारा कोई मापेला कालखंडो नथी होता।”^(२२२)

गुजराती साहित्य में १९५० के बाद जो निबन्ध साहित्य का विकास हुआ वह काफी प्रशंसनीय हैं। निबन्ध के जनक माने जानेवाले ‘मोन्तेन’ व ‘बेकन’ ने निबन्ध के लिए जो कल्पना की थी वह अब सही रूप में साकार होती हुई नज़र आती है। अब निबन्ध वैयक्तिक व निजी बनता जा रहा था। इसलिए आधुनिक साहित्य की भावभूमि को व्यक्त करते हुए ‘हरीश पंडित’ ने लिखा है कि - “एक बाजु बरड़ लागणी वेडा अने सुक्ष्म वेदनाबोध, बीजीबाजु सर्जकने पण स्पर्श करवा लाग्यो छे त्यारे नवी लढ़णो, नवी तराहो, नवा काकूओ उपजावी लेवानी जवाबदारी आजना गद्यकार माथे आवी छे। सुरेश दलाल अने गुणवंत शाह जेवानां लखाणोमां आनी असर वर्ताय छे। परंतु तेओ एटला सावधान छे खरा? कशु रेढियाल हवे जाजो समय टकी शके तेम नथी तेवुं तारण सुरेश जोशी ए एकदा काढेलु ते आजे पण साचुज छे।”^(२२३) क्योंकि आज का पाठक सचेत है,

रसवाहक है, साहित्य की समज से वाकिफ है, उसकी आकांक्षाएँ बढ़ गई हैं इसलिए वह साहित्य में गहराई की, वैशिष्ट्य की, वैविध्य की, वास्तवदर्शन की खोज करता है इसलिए वही सफल होता है जो उनकी कसौटी में सही साबित हो सके।

इस युग में निबन्ध का सार्वत्रिक विकास होता हुआ नज़र आता है। इस युग के निबन्ध साहित्य में काफी विविधता दिखाई पड़ती है। सभी प्रकार के निबन्धों की अभिव्यक्ति हुई है। हालाँकि ललित निबन्धों की अभिव्यक्ति ही प्रमुखतः होने के बावजूद विवेचनात्मक, संस्मरणात्मक, यात्रासंबंधी, निबंध भी लिखे गये हैं पर मुख्यतः विवेचनात्मक और ललित निबन्ध ही इस युग के निबन्ध साहित्य का प्रमुख विषय रहा है। ललित निबन्धों में विशेष रूप से हास्य-व्यंग्य निबन्ध काफी मात्रा में लिखे गये हैं।

आधुनिक युग के प्रमुख निबन्धकार सुरेश जोशी है। निबन्ध के जरिये गहरी संवेदना की रहस्यमयी अनुभूति 'सुरेश जोशी' ने करवाई है। उनके आगमन से निबन्ध विकास का नया युग शुरू होता है। 'पटेल मणिलाल' के अनुसार - "सुरेश जोशीना निबन्धो एमना साहित्य सर्जनामां विशिष्ट स्थान धरावे छे निबंध ए सुरेशभाईनुं प्रियतम साहित्य स्वरूप रहयुं छे।"^(२२४) यह स्पष्ट है कि कविता, उपन्यास, कथा एवं कहानी भी निबंधों में उनकी प्रतिभा विशेष रूप से प्रतिष्ठित हुई है। सुमनशाह लिखते हैं कि - "सुरेश भाईना ग्रन्थस्थ निबन्धों 'जनान्तिके', 'इदम सर्वम्' अने 'अहो बत किम आश्चर्यम्' एवा त्रण संग्रहोने रूपे उपलब्ध थयेला छे। 'जनान्तिके' ना केटलांक निबंधो 'किंचित्' (१९६०) मां पहेलीवार ग्रन्थस्थ थया त्यारे एक नानकडा समूच्चये आपणु खास ऐवुं ध्यान खेचेलुं पछी अंगत निबंधो नी एमनी आ प्रवृत्ति फूली-फाली अने तेमना सर्जन नो एक अविनाभावी भाग बनी गई।"^(२२५)

निबन्ध साहित्य में ललित निबन्धों को पाश्चात्य 'पर्सनल ऐसे' की शैली में लिखनेवाले दूसरे लेखक 'दिगीश महेता' हैं। डॉ.रमेश त्रिवेदी लिखते हैं कि - "दिगीश महेताना निबंध संग्रह 'दूरना ऐ सूर' (१९७०) नी १९९३ मां नवी संवर्धित आवृत्ति प्रकाशन पामी छे। एमना निबंधो मां लेखन नो कोई अभिनिवेश नथी। सहज सर्जकता वहेती थाय

छे. तयारेज तेमनी पासेथी आवुं गद्य रूप मले छे।”^(२२६) इसलिए सुरेश महेता लिखते हैं कि - “दिगीशनुं गद्य काव्य मां सरे नहीं काव्य ने स्मरे खरु। स्मृति अने जागृति ए बन्नेनी वच्चेथी आविष्कार पामे दिगीशनुं गद्य गद्यकारनुं गद्य छे। सघनता अने वहनता बन्नेनो संस्पर्श अही अनुभवाय छे।”^(२२७) इससे ये स्पष्ट है कि दिगीशजी गुजराती निबंध के ऐसे पुरुषोमें से है जिनकी सुगंध से गुजराती निबंध साहित्य सुरभित हैं।

दिगीशजी के ‘दूरना अे सूर’ के बाद ध्यान आकर्षित कर सके ऐसा चन्द्रकांत शेठ ने ‘नंद सामवेदी’ के द्वारा जो निबंध दिये वो निराले है। “गुणवंत शाह आ अरसाना बीजा एक ध्यापात्र प्रयोगशील निबंधकार छे। तेमनी रचनाओं पण पत्रकारत्वनी पेदाश छे। तेमना ‘कार्डियोग्राम’, ‘रणतो लालाछम’, ‘वगडाने तरस टहुंकानी’, ‘झाकल भीना पारिजात’ ए चार निबन्ध संग्रहो १९७७ थी १९८२ दरम्यान प्रगट थयेला।”^(२२८)

काकासाहेब व सुन्दरम् के समान भोलाभाई भी अपने प्रवास वर्णन में सौन्दर्य के परम स्पर्श से अभिभूत होकर पाठकों को रसमग्न कर देते हैं। प्रसाद ब्रह्मभट्ट के अनुसार - भोलाभाई पटेल ‘विदिशा’, अने ‘कांचनजंघा’ मां पर्सनल एसे आपे छे। आ संग्रहोना निबंधोंमां मुख्य संवेदना भ्रमणनी छे। पण आ निबंधोमां आपणु ध्यान आकर्षे छे ते परिभ्रमण नहीं सर्जकनुं सौंदर्यभ्रमण।”^(२२९) भोलाभाई की सुकुमार एवं रमणीय गद्य छटाएँ उन्हें उत्तम ललित निबंधकार बनाती हैं।

अनिरुद्ध ब्रह्मभट्ट ने चरित्रात्मक निबन्ध दिये पर वे लालित्य सभर हैं, रमेश त्रिवेदी के अनुसार - “तेमना चरित्र निबन्धोनों संग्रह ‘नामरूप’ वली जुदीज भात पाडे छे तेमनी व्यक्ति चेतनाने स्पर्शी गयेला केटलाक विविध स्तरना मानवीयोंनो मेलो छे।”^(२३०) तो ‘सहारानी भव्यता’ में रघुवीर चौधरी ने पच्चीस व्यक्ति चित्रों को व्यक्त किये हैं जो मननीय है।

इनके अलावा वाडीलाल डगली कृत ‘शियालानी सवार नो तडको’, विष्णु पंड्या लिखित ‘हथेलीनुं आकाश’, भगवतीकुमार शर्मा ‘शब्दातीत’ हरीन्द्रदवे कृत ‘नीरव संवाद’,

सुरेशलाल कृत 'मारी बारीयेथी', अनिल जोशी कृत 'स्टेच्यु', मणिलाल ह. पटेल कृत 'कोई साद पाडेछे', प्रवीण दरजी कृत 'लीलापर्ण', 'दभाँकुर', 'घासनाफूल', 'वेणुरव', बकुल त्रिपाठी कृत 'मन साथे मैत्री', प्रीतीसेन गुप्त कृत 'दिकदिगंत' उत्तम ललित निबन्धों के रूप में व्यक्त हुए निबन्ध हैं।^(२३१)

इनके अलावा इस युग में जिन्होंने विशेष आकर्षण पैदा किया हो ऐसे हास्य-व्यंग्य निबन्ध काफी मात्रामें लिखे गये, जिनमें ज्योतिन्द्रदवे की राह को बढ़ानेवाले चीनुभाई, बकुल त्रिपाठी और विनोद भट्ट का विशेष उल्लेख किया जाता हैं। धीरुभाई के अनुसार - "चीनुभाई तथा बकुलना विनोदमां चालु बनावो विशे नुकतेचीनी करतो व्यंग्य होयछे। पण लेखकनी हलवी अने नरवी द्रष्टि तेने डंखीलो थवा देती नथी। विनोद भट्ट नी शैली मुकाबले मार्मिक ने चित्रात्मक होयछे तेमना निरीक्षण-विश्लेषणनुं निगमन हास्य होय छे।"^(२३२) इनमें राजकीय, सामाजिक, धार्मिक व साहित्यिक व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए काफी हास्य व्यंग्य साहित्य लिखा गया हैं। जो इस युग की एक नीजि उपज हैं। डॉ. रमेश त्रिवेदी लिखते हैं कि - "हास्य निबंधों आपणने आ दायकामां बकुल त्रिपाठी, विनोद भट्ट, मधुसुदन पारेख, तारक महेता, रतिलाल बोरी सागर, नरोत्तम वालंद, निरंजन त्रिवेदी, अशोक दवे, रमणलाल पाठक, चन्द्रकान्त शेठ वगैरे पासेथी मल्या छे। तेमां बकुल त्रिपाठी कृत 'वैकुंठ नथीजावुं' तेमज विनोद भट्टना 'विनोदनी नजरे' अने विनोदलक्षी 'व्यक्ति चित्रो ना निबंधोनी क्षमता उच्च कोटीनी छे। नवमा दायकाना गद्य सर्जकोमां चन्द्रकान्त शेठ, गुणवंतशाह, प्रवीण दरजी, बकुल त्रिपाठी, विनोद भट्ट नी सर्जकता महोरी उठेली जणाय छे।"^(२३३)

हास्य निबंध के साथ-साथ चिन्तनात्मक निबन्ध भी विशेष मात्रा में व्यक्त होते रहे हैं, सच्चिदानंद के लेख, फाधरवालेस के निबन्ध, अमृत याज्ञिक का गद्य मानवीय भाव व कुटुम्ब जीवन से प्रेरित हैं। इनके अलावा - "कान्तिलाल कालाणी, कुमारपाल देसाई, प्रवीण दरजी, रमेश भट्ट, सुरेश दलाल, गुणवंतशाह, राधेश्याम शर्मा, मोहम्मद मांकड,

भूपत वडोदरियाँ, सुमन शाह, शिरीष पंचाल, जयंत पंड्या, यशवंत त्रिवेदी, भोगीलाल गांधी, रमणलाल शाह, चन्द्रकान्त बक्षी, इश्वरभाई पटेल, मफत ओझा, विष्णु पंड्या, रमण पाठक, वगैरे अनेक निबंधकारों ये जीवन-जगतने स्पर्शता चिंतन प्रधान लखाणो आप्या छे।”^(२३४)

इस प्रकार इस युग में लालित्य सभर निबंधों में हास्य-व्यंग्यशैली के साथ-साथ, संस्मरणात्मक एवं नवीन शैली-सभर सर्जनात्मक, प्रवासवर्णन युक्त निबंध भी लिखे गये। दिसम्बर १९९० में साँवली गाँव में संपन्न हुए गुजराती ज्ञानसत्र में प्रा.महेन्द्र गोहिलने नवदशक के निबंधों को ‘सर्जनात्मक गद्य एवं अन्य गद्य लालित्य’ के दशक के रूप में गिना उन्होंने इस युग के गद्य को चार भागों में विभाजित किया (१) स्मरणवृत्त (२) भ्रमण वृत्त (३) हास्योनिबंध (४) सर्जनात्मक निबन्ध।^(२३५)

इस प्रकार आधुनिक युग का निबन्ध साहित्य काफी विकसित एवं विस्तारित लगता है जिसमें सही रूप से वैयक्तिक निबन्धों की अभिव्यक्ति हुई हैं। प्रवीण दरजी के अनुसार - “छेल्ला त्रण दायकामां संतोष लई शकाय तेवी बाबत ए छे के गुजराती गद्य निबंध ने निमित्ते विविध रूपे-रीते खीलतुं गयुं - खुलतुं गयु छे। ललित, भ्रमण, हास्य, चरित्र, चिंतन मां साचा अर्थ मां केटलीक आश्वासक कृतिओं मली छे।”^(२३६)

इस प्रकार नर्मद से सुरेशजोशी तक के गुजराती निबंध साहित्य को देखें तो उसका सफर काफी संतोष जनक रहा हैं। गुजराती निबंध के इस सफर को देखने से यह सहज अनुभूति होती है कि निबन्ध को विकसित करने में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है और निबंध का सहीरूप ‘गांधीयुग’ से विकसित होता हुआ दिखाई देता है, जिन्होंने गुजराती निबन्ध को विकसित, विस्तारित किया है ऐसे निबन्धकारों में नर्मद, नवलराम, मणिलाल, रमणभाई नीलकंठ, आनन्द शंकर ध्रुव, गांधीजी, काकासाहेब, किशोरीलाल, स्वामी आनन्द, विजयराज वैद्य, रा.वी. पाठक, विनोदिनी नीलकंठ, सुरेश जोशी, दिगीश महेता, गुणवंत शाह, भोलाभाई पटेल, बकुल त्रिपाठी, विनोदभाई भट्ट, प्रवीण दरजी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। नर्मद ने जो दौर शुरू किया उसे

सुरेश जोशी ने इस मुकाम तक पहुँचाया हैं कि वो इक्कीसवीं सदी के साहित्य के रूप में अवश्य स्थान बना सकता हैं। हम यही कामना करेंगे कि निबन्ध की सारी दिशाएँ खुल जाय और मुक्तरूप से वह फूले-फले-खिले वह पाठकों पर ऐसे बरसे कि अन्य विधाओं से उसे विशेष स्थान व सन्मान मिले।

संदर्भग्रंथ सूची

हिन्दी			
क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	१
२	भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य में युगीन चेतना की अभिव्यक्ति	डॉ.शकुंतला दुबे	१
३	हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शहा	१७
४	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१
५	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१
६	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	सं.जयंत कोठारी	१
७	साहित्य विवेचन	डॉ.क्षेमचन्द्र सुमन योगेन्द्र कुमार मल्लिक	२६९
८	साहित्य शास्त्र	डॉ.नवनीत गोस्वामी डॉ.ओमप्रकाश गुप्ता	१४४
९	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	२७६
१०	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१
११	काव्य के रूप	बाबु गुलाबराय	२११
१२	साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा	६०७
१३	शुक्लोत्तर निबन्ध में साहित्यिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	३०
१४	भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य में युगीन चेतना की अभिव्यक्ति	डॉ.शकुंतला दुबे	१३
१५	पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धांत	डॉ.जगदीश प्रसाद शर्मा	२५८
१६	एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, १९५६	रिचर्ड गार्लेट	७
१७	हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास	डबल्यू.इ. विलियम्स	५६
१८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	२७६
१९	काव्य के रूप	बाबु गुलाबराय	२११
२०	हिन्दी निबन्धकार	जयनाथ नलिन	१०

२१	साहित्य विवेचन	डॉ.क्षेमचन्द्र सुमन योगेन्द्र कुमार मल्लिक	२६७
२२	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	७१
२३	जूनं नर्मगद्य	नर्मदाशंकर	५
२४	सुदर्शनगद्यावली	मणीलाल	९७५
२५	बार साहित्य स्वरूपों	प्रसाद ब्रह्मभट्ट	९८
२६	निबन्धरीति	नवलराम	३
२७	बार साहित्य स्वरूपों	प्रसाद ब्रह्मभट्ट	१००
२८	जूई अने केतकी	वि.क.वैद्य	२२६
२९	प्रस्थान (सुन्दरम् कृत निबंध विषयक लेखनमाला)	सुन्दरम्	१६
३०	शैली अने स्वरूप	उमाशंकर जोषी	५७
३१	साहित्यिक निबंध	डॉ.राजनाथ शर्मा	६१०
३२	काव्य शास्त्र	डॉ.यतीन्द्र तिवारी	२४५
३३	पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धांत	डॉ.जगदीश प्रसाद शर्मा	३९०
३४	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	३४
३५	भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य	डॉ.शकुंतला दुबे	१७
३६	निबंध अने गुजराती निबंध	सं.जयंत कोठारी	५
३७	बार साहित्य स्वरूपों	प्रसाद ब्रह्मभट्ट	१००
३८	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	३
३९	हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शहा	३१
४०	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	३५
४१	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	४७
४२	पाश्चात्य काव्य शास्त्र	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	२६३
४३	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत	डॉ.मखनलाल शर्मा	३२५

४४	काव्यशास्त्र	यतीन्द्र तिवारी	२४६
४५	पाश्चात्य काव्य शास्त्र	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	३९२
४६	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	२४
४७	॥	॥	२२
४८	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	सं.डॉ.महेन्द्र भटनागर	१४४
४९	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	२६
५०	हिन्दी साहित्य का इतिहास (११ वा संस्करण)	डॉ.रामचन्द्र शुक्ल	४६४
५१	काव्य के रूप	गुलाबराय	२२२
५२	काव्यशास्त्र	यतीन्द्र तिवारी	२४८
५३	पाश्चात्य काव्य शास्त्र	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	
५४	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	३५
५५	बार साहित्य स्वरूपों	प्रसाद ब्रह्मभट्ट	१०१
५६	निबंध अने गुजराती निबंध	सं.जयंत कोठारी	१६
५७	निबंध : स्वरूप अने विकास	डॉ.प्रविण दरजी	३९
५८	समीक्षा सिद्धांत	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	३८५
५९	भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य में युगीन चेतना की अभिव्यक्ति	डॉ.शकुंतला दुबे	१८
६०	॥	॥	८
६१	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	८
६२	॥	॥	३
६३	भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य में युगीन चेतना की अभिव्यक्ति	डॉ.शकुंतला दुबे	८
६४	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	८-९
६५	साहित्यिक निबंध	डॉ.राजनाथ शर्मा	५५९
६६	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	४

६७	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४१-४२
६८	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९५
६९	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	४
७०	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९६
७१	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	२७
७२	काव्य के रूप	बाबु गुलाबराय	२२४
७३	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९६
७४	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४२-४३
७५	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	४७५/७६
७६	॥	॥	४७६
७७	साहित्यिक निबंध	डॉ.राजनाथ शर्मा	५६२
७८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	२७९
७९	काव्य के रूप	गुलाबराय	२२४
८०	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४४३
८१	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१६
८२	॥	॥	१६
८३	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	२७
८४	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९७
८५	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४४४
८६	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१६
८७	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	९
८८	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१६
८९	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	२७
९०	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४४४
९१	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९७

९२	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४४४
९३	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	२८
९४	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४३
९५	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४४५
९६	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१७
९७	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४३/४४
९८	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९७
९९	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९८
१००	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४४
१०१	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	९९
१०२	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९८
१०३	काव्य के रूप	गुलाबराय	२२५
१०४	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४५
१०५	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९७
१०६	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१७
१०७	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	५१७
१०८	आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास	डॉ.श्याम वर्मा	३१७
१०९	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	४
११०	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१७/१८
१११	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	४५
११२	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१८
११३	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	५१६
११४	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१८

११५	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	७७
११६	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१८
११७	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९९
११८	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९८/९९
११९	काव्य के रूप	गुलाबराय	२२६
१२०	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	३१
१२१	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९९
१२२	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४६
१२३	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिहरनाथ द्विवेदी	१८
१२४	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४४८
१२५	हिन्दी निबंध : शैलीगत अध्ययन	डॉ.मू.ब.शाह	९९
१२६	॥	॥	३३५
१२७	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४६
१२८	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	५
१२९	॥	॥	१२९
१३०	॥	॥	१२७
१३१	॥	॥	१९०
१३२	हिन्दी निबंध : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	५९९
१३३	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१६९/७०
१३४	॥	॥	१७३
१३५	॥	॥	२२५
१३६	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४५०/५१
१३७	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	३१३
१३८	काव्य के रूप	गुलाबराय	२२७
१३९	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	६००

१४०	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४७
१४१	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिशनाथ द्विवेदी	२०
१४२	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	३२
१४३	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	६९२
१४४	॥	॥	६९३
१४५	॥	॥	६९३
१४६	॥	॥	६९३
१४७	निबंध : सिद्धांत और प्रयोग	डॉ.हरिशनाथ द्विवेदी	२०
१४८	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४७
१४९	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	३२
१५०	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	२५५
१५१	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४७
१५२	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	६९४
१५३	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४८
१५४	॥	॥	४८
१५५	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	शिवकुमार शर्मा	६००
१५६	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	६९५
१५७	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४९
१५८	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	३९९
१५९	शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध में सांस्कृतिक चेतना	डॉ.बाबुराम मैहला	४८
१६०	॥	॥	४८

१६१	॥	॥	४९
१६२	॥	॥	४९
१६३	॥	॥	४९
१६४	॥	॥	४९
१६५	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	७६९
१६६	॥	॥	७७०
१६७	॥	॥	७७०
१६८	॥	॥	६९६
१६९	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ.श्रीनिवास शर्मा	३३
१७०	हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	३६४/६५
१७१	॥	॥	३९३
१७२	साहित्यिक निबंध	डॉ.गणपतचन्द्र गुप्त	४५५
१७३	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ.स्मिता चिपलुणकर	७६
१७४	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्गचेतना	कु.आभा भट्ट	४०
१७५	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.नगेन्द्र	७७५
१७६	॥	॥	७७६
१७७	साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ	डॉ.कैलाशचंद्र भाटियाँ	५४
१७८	मधुमती	सं.पूनम दर्श्या	३१
१७९	गुजराती साहित्य मां निबन्ध	सुन्दरम्	१११
१८०	अर्वाचीन गुजराती साहित्य नो इतिहास	डॉ.रमेश एम. त्रिवेदी	१०
१८१	॥	॥	१२
१८२	गुजराती साहित्य नो इतिहास	सं.उमाशंकर विगेरे	२१
१८३	गुजराती साहित्य : मध्यकालिन अने सुधारयुग	विनायक रावल	२६९
१८४	निबन्ध स्वरूप अने विकास	प्रवीण दरजी	५३
१८५	कविश्वर दलपतराम भाग-२		२९
१८६	निबन्ध स्वरूप अने विकास	प्रवीण दरजी	५८

૧૮૭	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૨૯/૩૦
૧૮૮	ગુજરાતી સાહિત્ય માં નિબન્ધ	સુન્દરમ્	૧૧૫
૧૮૯	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૬૬
૧૯૦			૭૬
૧૯૧	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૬૪
૧૯૨	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય ની વિકાસ રેખા	ધીરુભાઈ ઠાકર	૧
૧૯૩	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૧૪૫
૧૯૪	ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ : ગ્રંથ-૨	ઉમાશંકર જોશી તથા અન્ય	૨૬૮
૧૯૫	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૭૮
૧૯૬	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય ની વિકાસ રેખા	ધીરુભાઈ ઠાકર	૩૬
૧૯૭	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૭૭
૧૯૮			૭૭
૧૯૯	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૯૨
૨૦૦			૧૦૧
૨૦૧	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	જયંત કોઠારી	૧૨૨
૨૦૨	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૯૫
૨૦૩	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૦૮
૨૦૪			૧૧૬
૨૦૫	બાર સાહિત્ય સ્વરૂપો	પ્રસાદ બ્રહ્મભટ્ટ	૧૦૩
૨૦૬	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૩૯
૨૦૭	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૧૪૭
૨૦૮	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૪૧
૨૦૯	બાર સાહિત્ય સ્વરૂપો	પ્રસાદ બ્રહ્મભટ્ટ	૧૦૪
૨૧૦	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૪૨
૨૧૧	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય ની વિકાસ રેખા	ધીરુભાઈ ઠાકર	૮

૨૧૨			૨૮
૨૧૩	બાર સાહિત્ય સ્વરૂપો	પ્રસાદ બ્રહ્મભટ્ટ	૧૦૩/૧૦૪
૨૧૪	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૫૯/૬૦
૨૧૫	૨૭ સાહિત્યકારો	પ્રસાદ બ્રહ્મભટ્ટ	૨૬
૨૧૬	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૭૩
૨૧૭	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	જયંત કોઠારી	૧૩૯
૨૧૮	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૨૦૬
૨૧૯	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૧૮૩
૨૨૦	બાર સાહિત્ય સ્વરૂપો	પ્રસાદ બ્રહ્મભટ્ટ	૧૦૪
૨૨૧	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૨૬૪
૨૨૨	સાહિત્યમાં આધુનિકતા	ડૉ.સુમન શાહ	૧૭૪
૨૨૩	સાહિત્ય સંકેતો અને સિમાઓ	હરીશ પંડિત	૫૭/૫૮
૨૨૪	નિબન્ધકાર સુરેશ જોષીશી	મણિલાલ પટેલ	૧
૨૨૫	સુરેશ જોષીશી થી સુરેશ જોષીશી	સુમન શાહ	૧૮૯
૨૨૬	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૪૩૩
૨૨૭	આપણાં શ્રેષ્ઠ નિબન્ધો	સુરેશ દલાલ / જયા મેહતા	૧૯/૨૦
૨૨૮	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય ની વિકાસ રેખા -આધુનિક અને અનુઆધુનિક પ્રવાહો	ધીરુભાઈ ઠાકર	૧૮૫
૨૨૯	બાર સાહિત્ય સ્વરૂપો	પ્રસાદ બ્રહ્મભટ્ટ	૧૦૫
૨૩૦	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૪૩૫
૨૩૧			૪૩૫
૨૩૨	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય ની વિકાસ રેખા	ધીરુભાઈ ઠાકર	૧૮૯
૨૩૩	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૪૩૬
૨૩૪	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૨૬૭/૬૮
૨૩૫	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય નો ઇતિહાસ	ડૉ.રમેશ એમ. ત્રિવેદી	૪૩૬
૨૩૬	નિબન્ધ સ્વરૂપ અને વિકાસ	પ્રવીણ દરજી	૨૬૮

अध्याय : ३

हास्य-व्यंग्य स्वरूपविश्लेषण

३.१ हास्य स्वरूप विश्लेषण

३.१.१ प्रास्ताविक

३.१.२ हास्य की उत्पत्ति

३.१.३ हास्य का महत्त्व

३.१.४ हास्य की परिभाषा

३.१.५ हास्य के भेद

३.२ व्यंग्य-विधा स्वरूप विश्लेषण

३.२.१ प्रास्ताविक

३.२.२ व्यंग्य का अर्थ

३.२.३ व्यंग्य की उत्पत्ति

३.२.४ व्यंग्य की परिभाषा

३.२.५ व्यंग्य की विशेषताएँ एवं लक्षण

३.२.६ व्यंग्य के भेद

३.२.७ व्यंग्य की उपयुक्तता एवं उद्देश्य

३.२.८ व्यंग्य के तत्त्व

३.२.९ हास्य-व्यंग्य सम्बन्ध एवं साम्य-वैषम्य

३.२.१० श्रेष्ठ व्यंग्य का स्वरूप

३.२.११ निष्कर्ष

3.9 हास्य, स्वरूप विश्लेषण

3.9.9 प्रास्ताविक :-

हास्य मनुष्य की मनोरंजनवृत्ति के विकास का ही दूसरा नाम है। आदिमानव क्यों हँसा?..... इसका निर्धारण आज असम्भव हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि विनोदी मनकी अभिव्यक्त मुद्रा के रूप में हास्य मानव की एक अमूल्य निधि है। जीवन के परम और चरम आनन्द के रूप में हँसी मनुष्य की अनुपम उपलब्धि है। वास्तविकता तो यह है कि जीवन के आस्वाद के लिए हास्य अत्यन्त आवश्यक है। हास्य आनन्द की अनुभूति तो करवाता है, पर कभी वह औषध भी बन जाता है। इसी के द्वारा मनुष्य के हृदय में सरलता, सहानुभूति और सरसता की धारा प्रवाहित होती है। जीवन की जटिलताओं में उलझे मानव मस्तिष्क को हास्य ही शान्ति और शीतलता, सहृदयता, सौहार्द प्रदान करता है।

बालेन्दुशेखर के अनुसार -“मानव-जीवन सतत हास्य-प्रेमी रहा है और हँसना एक सहज मानवीय गुण है। जैसे मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियाँ काम और क्षुधा है, वैसे हास्य भी उसकी एक प्रारम्भिक मूल प्रवृत्ति हैं।”^(१) डॉ.ज्ञानप्रकाश मानते हैं कि - “हँसना और रोना मानव जगत की आदिम् स्वाभाविक क्रियाएँ हैं, सृष्टि के प्रारम्भ में ही आदिमानव चाहे अपनी भावनाओं को प्रगट करने के लिए भाषा की उत्पत्ति न कर पाया हो किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि अपने संवेगों के प्रकाशन में वह पूर्णतः मूक नहीं था।”^(२)

इसलिए मधुसुदन पारेख लिखते हैं कि - “हास्य ए मनुष्यनी नैसर्गिक अने विशिष्ट शक्ति छे, मनुष्येत्तर प्राणि सृष्टि मां हास्यवृत्ति ए मनुष्यनी विशेषता छे एम कही शकाय।”^(३) विनोद भट्ट के अनुसार - “हास्य माटे कहेवायुं छे के हास्य एक एवु वलण छे के ज्यारे आपणे तेना पर, तेने समजवा माटे बुद्धि कामे लगाडीये त्यारे ते अंतरध्यान थई जाय छे।”^(४)

इससे यह स्पष्ट है कि हास्य एक प्राकृतिक देन है, जिसका उदभव मनुष्य के उल्लास की सूचना देने के लिए स्वतः होता है। निश्चय ही हास्य से मानवी सुखी है,

जिसे हम बिना किसी संकोच से प्रगट करते हैं। हास्य की क्रिया केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं वह मानव-जीवन के सुख-संचारक माध्यम भी हैं।

३.१.२ हास्य की उत्पत्ति :-

हास्य को मानव जीवन के आनन्द का स्रोत बतानेवाले भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानोंने 'हास्य' को लेकर काफी कुछ चिंतन प्रस्तुत किया है। 'हास्य' के स्वरूप के बारे में काफी कुछ आलोचनाएँ मिलती रही है। विवेचकोने हास्य के स्वरूप की चर्चा के साथ-साथ हास्योत्पत्ति के स्रोत की भी पर्याप्त चर्चा की है, जिसमें अपनी-अपनी समझ के अनुसार हास्योत्पत्ति के कारण पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

'बालेन्दुजी' के अनुसार भरत, धनजंय, पंडितराज जगन्नाथ, मम्मट आदि आचार्यों से लेकर मध्यकालीन केशव, मनिराम आदि आचार्यों ने हास्यरस की परिभाषा करते हुए ही इनके उदगम के कारणों की ओर संकेत किया है। इन सबके मतानुसार वाणी, वेश, अभिनय आदि में असंगति या विकृति होने पर हास्य उत्पन्न होता है।^(५) इन प्राचीन विचारकों के साथ आधुनिक चिंतको ने बहुत कुछ इसी बात को स्वीकृत करते हुए अपना मत प्रगट किया है।

'सदाचार का ताबीज' में परसाईजी लिखते हैं कि - 'जैसे इतने बड़े शरीर में इतनी ही बड़ी नाक होनी चाहिए। उससे बड़ी होती है तो हँसी आती है। आदमी-आदमी की ही बोली बोले ऐसी संगति मानी गई है, पर वह कुत्ते जैसा भोंके तो यह विसंगति हुई, जो हास्य का कारण है।'^(६) जगदीश पाण्डेय मानते हैं कि-"हास्य का आलंबन जब सचेत हो जाता है, तब लज्जित हो जाता है। दो नेत्रवाले जब काने पर हँसते हैं, सीधी टाँगवाले जब किसी तैमूर लंग पर हँसते हैं, जिसमें यदि हम स्वयं होते तो लज्जित हो जाते हैं।'^(७) साधारणतः बेमेल चीज़ों को देखकर विनोद प्रकट होता है। जीवन व्यवहारों में हम बहुत सी ऐसी विसंगतियों से रुबरू होते हैं। डॉ.नगेन्द्र के अनुसार - "हास्य की उद्बुद्धि के लिए असंगति अथवा भेद की सुक्ष्म और तीव्र चेतना अनिवार्य है।"^(८)

मनुष्य के हृदय में विविध प्रकार के भाव पैदा होते रहेते हैं। उसी रूप में स्थायी भावों में 'हास' भी एक स्थायी भाव है। 'हास' में से हास्य उत्पन्न होता है। 'हास्य' मानवशरीर का व्यापार है। इसे शारीरिक प्रक्रिया के रूप में देखते हुए गुजराती साहित्य के हास्य-व्यंग्य लेखक 'रमणभाई निलकंठ' ने अपने 'हास्यमंदिर' में लिखा है कि - "हसवानी क्रिया वखते पेट अने छाती वच्चेना पड़दा उपरनु शरीर उपडी ने उचुं तेमज आडू, उभू हले छे। चेहरा नी तेमज खास करीने होठना स्नायुओं विशेष प्रकारे गतिमान थाय छे। आँखो मां एक जात नो चलकाट आवे छे. फेफसामांथी थडकातों, धडकातों उच्छ्वास निकले छे अने कंठ मांथी रस गलतो काइक रणकदार अने कांइक खखडाटवालों अवाज निकले छे"^(९) इस प्रकार उन्होंने हास्य को एक शारीरिक प्रक्रिया से किस तरह उत्पन्न होता है उन पर विशेषतः अपने विचारों को व्यक्त किए हैं। हास्योत्पत्ति में शारीरिक प्रक्रिया का भी विशेष योगदान रहेता है।

पाश्चात्य विचारकों की बात करें तो उनमें भी प्रारम्भिक चिन्तकों ने विकृति को ही हास्योत्पत्ति का कारण माना है जैसे 'अरस्तु के अनुसार हास्य रचना में मनुष्य का स्वरूप इतना विकृत कर दिया जाता है कि वह हास्य का साधन बन जाता है।"^(१०) 'एनसाइकलो पीडिया ब्रिटैनिका' में हास्याट्रेक के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है - "स्वाँग या विशेष असौष्टव को देखकर हास्य का जन्म होता है।"^(११) पर बाद के कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने हास्योत्पत्ति के लिए कुछ अलग नजरियाँ रखा है। जैसे 'हाब्स' का मानना है कि - "अपने में अनायास किसी उत्कर्ष को देखकर उसे पूर्व की दुर्बलताओं की समता में रखकर जो उत्कर्ष व्यंजक उल्लास होता है वही हास्य का कारण है।"^(१२) स्पेंसर के अनुसार - "हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति उस समय होती है, जब बोधज्ञान बड़ी वस्तु से छोटी वस्तु की ओर आकर्षित होता है जिसे हम अधोमुख असंगति कहेते हैं।"^(१३) इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा किए गए हास्योत्पत्ति के विश्लेषणों को नज़र में रखते हुए डॉ.बालेन्दु शेखर तिवारी ने हास्योत्पत्ति के बीस सिद्धांतों की चर्चा की है जैसे

- (१) यंत्रवत व्यवहार का सिद्धांत।
- (२) पुनरावृत्ति का सिद्धांत।
- (३) विपर्यय का सिद्धांत।
- (४) घटनाओं के पारस्परिक अवरोध का सिद्धांत।
- (५) अतिरिक्त शक्ति के प्रगटिकरण का सिद्धांत
- (६) अचेतन मन के भावों का सिद्धांत।
- (७) सहानुभूति-विरोधी सिद्धांत।
- (८) अवयात्मक सिद्धांत।
- (९) आत्मगत सिद्धांत।
- (१०) आत्मश्रेष्ठता और असम्बद्धता का सिद्धांत
- (११) उपहास सिद्धांत
- (१२) आकस्मिक प्रसन्नता का सिद्धांत।
- (१३) निराशा सिद्धांत।
- (१४) वैपरीत्य कल्पना सिद्धांत।
- (१५) क्षोभ शक्ति का सिद्धांत।
- (१६) स्वातंत्र्य सिद्धांत।
- (१७) सामाजिक शोधन का सिद्धांत।
- (१८) लज्जा का सिद्धांत।
- (१९) मनोविकारों का सिद्धांत।
- (२०) असंगति का सिद्धांत।^(१४)

हास्योत्पत्ति के इन बीस सिद्धांतों के अतिरिक्त और भी बहुत सी बातों का आधार बनाकर हास्योत्पत्ति के सन्दर्भ में अपनी राय कायम की है। हास्योत्पत्ति पर विचार करने पर चिन्तकों ने हास्य के आधारों की भी चर्चा की है जिसके सन्दर्भ में डॉ.एस.पी.खत्री ने हास्य आधारों की एक सूची दी है जिसमें उन्होंने सोलह आधारों को व्यक्त किया जैसे - “मारपीट के दृश्य, कार्यों अथवा इंगितों और शब्दों की पुनरावृत्ति, अनुकरण कला, छल-

प्रपंच, मन्दमति, मूर्खता दम्भ, छद्मवेश, विस्मरण-शीलता, फैशन प्रियता की नवीनता, आडम्बर, आचार-विचार, एकांगी मति, असाधारण मति, अस्वाभाविक कृत्रिमता, सामाजिक द्वन्द्व एवं मानवी कमजोरियाँ, पारिवारिक उलझने, नारी चरित्र की विषमताएँ, भोजन-मदिरा की प्रियता, वक्रोक्ति व्यंग्य उपहास, श्लेष अतिशयोक्ति, अशुद्ध असंयता, निरर्थक शब्द एवं भाषा का प्रयोग।”^(१५)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि घटना और काल के अनुसार हास्य के आलम्बनों में परिवर्तन होता रहता है। यदि एक भिखारी शीत से बचने के लिए अस्त-व्यस्त कपड़े पहन लेता है तो इस असंगति से हास्य का जन्म नहीं होगा। लेकिन एक धनी पुरुष ने यदि उल्टा कोट पहन रखा हो तो वह हँसी का कारण बन सकता है। इससे यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि हास्य की उत्पत्ति तभी होती है जब विकृति एवं अनौचित्य के साथ वाणी और रूप आदि विकारों के माध्यम से हम सजग होकर प्रहार करते हैं। पर यह भी निःसंदेह कहा जा सकता है कि हास्य मन की नैसर्गिक मस्ती का नाम है, उसके लिए कठोर वैज्ञानिक नियम बनाना कदापि सम्भव नहीं है।

३.१.३ हास्य का महत्व :-

हास्य मानव जीवन के लिए एक औषधि के समान है। हास्य मानव-जीवन में स्वस्थता प्रदान करता है, हास्य की महत्ता के बारे में कहें तो ‘हास्य’ का सामाजिक-साहित्यिक-मनोवैज्ञानिक-व्यावहारिक-वैयक्तिक एवं शारीरिक सभी दृष्टियों से विशेष महत्व है साहित्य की दृष्टि से देखें तो भारतीय साहित्य में नवरसों के मध्य हास्य को रस रूप में संस्थित किया गया है। भारतीय साहित्य शास्त्र की लम्बी परम्परा ने ‘रस’ रूप में हास्य की प्रवृत्ति को मान्यता दी है। वह - “वेदान्तर, स्पर्श-शून्यता एवं ब्रह्मानन्दसहोदरत्व की मर्यादा का अधिकारी है।”^(१६) अन्य रसों के मुकाबले हास्यरस ने सार्वभौमत्व रूप दिखलाया है, और साहित्यशास्त्रीयों को ‘रसरज’ के प्रश्न पर सोचने के लिए विवश कर दिया है। तिवारीजी के अनुसार - “हास्य बच्चों-बुढ़े सबको समान भाव

से तरबतर करता हैं। प्रायः सभी आयु और स्थितियों के मनुष्य इस रस का आनन्द उठाते है। अतएव व्यापकता की दृष्टि से 'हास्य' को 'रसराज' कहने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"^(१७) डॉ.चतुर्वेदी भी मानते है कि - "यदि रसराज किसी रस को बनाना ही अभीष्ट है तो 'हास्यरस' भी अपना नाम अन्यरसों के साथ चुनाव में भेजने का अधिकारी है और उनकी जीत में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए।"^(१८) इस प्रकार साहित्य शास्त्र में हास्यरस का विशेष स्थान व महत्त्व हैं।

मनोवैज्ञानिक रूप से देखे तो भी हास्य का महत्त्व एवं उपयोगीता विशेष द्रष्टव्य हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखे तो निरन्तर गंभीर रहेनेवाले इन्सान के दिमाग को स्वस्थ व हलका बनाने के लिए हास्य काफी कारगर सिद्ध होता है, इसी बात को नजर में रखते हुए विलियम एवं बुक्स ने लिखा है कि - "हास्य चेतन मन के उपरी तनाव को कम करता है उसका कार्य है मस्तिष्क का विश्रमन और मनोरंजन।"^(१९) क्योंकि हास्य एक पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक व्यापार है। हँसना मानसिक स्वास्थ्य का कारण है और न हँसना मानसिक रुग्णता का, मन के माध्यम से हास्य का प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। इनसे थकान कम हो जाती है और मन की स्फूर्ति फिर से जागृत हो जाती हैं। इसलिए विनोदभाई भी मानते है कि - "आखुय शरीरयंत्र हास्य नी क्रिया बाद प्रफूल्लित अने नव चेतनवंतु बने छे."^(२०) परसाईजी भी मानते है कि - 'आयुर्वेद में माना जाता है कि जिसकी पाचक शक्ति अच्छी हो वो मुक्त रूप से हँस सकता है। मनुष्य जब शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ होता है तब ही वो हँस सकता है।"^(२१) इसलिए हम कह सकते है कि हास्य का मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है वो मनुष्य के लिए एक स्पृहणीय एवं पोषक प्रक्रिया है।

सामाजिक द्रष्टि से भी हास्य का अपना एक विशेष महत्त्व रहा हैं। क्योंकि हास्य-जीवन व्यापार में प्रतिदिन उपयोगी सिद्ध होता है। हास्य भावात्मक स्तर पर सामाजिक जागरण के तत्व के रूप में सारी मानव-जाति से सम्बद्ध हैं। क्योंकि यदि मानव जीवन में से हास्य को निकाल दिया जाय तो यह दुःख-दर्द से भरा मरुस्थल बन जायेगा।

विनोदभाई लिखते हैं कि - “हास्यविनोद ने सामाजिक गुण गणाव्यो छे। तेनाथी बे व्यक्ति वच्चे नुं अन्तर ओछु थायछे। ऐटलुज नहीं, सामाजिक सदगुण तेमज समाजहित नी दृष्टि केलवाय छे। हास्य माटे कहेवायुं छे के हास्य ऐटले मानव स्वभाव नो स्वीकार।”^(२२) इसलिए बालेन्दुजी भी मानते हैं कि - “समाज में मनोरंजन के महत्व को किसी भी दृष्टि से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।”^(२३) डॉ.शान्तारानी ने भी ‘हास्य’ को ‘सामाजिक गुण’ माना है और समाज जीवन के लिए उसे विशेष महत्वपूर्ण समजा है। उन्होंने ‘हास्य’ को सामाजिक संदर्भ में देखते हुए कहा है कि - “समाज ने जिस प्रकार से न्याय, धैर्य, दया, दृढ़ता आदि गुणों को महत्व दिया है, उसी प्रकार हास्य प्रियता का अधिक महत्व है, क्योंकि हास्य के द्वारा ही समाज के जटिल प्रश्नों को सुलझाया जा सकता है। वो हमारी सामाजिक चेतना को जागृत करता है।”^(२४) इस प्रकार मानव जीवन, समाज, साहित्य, मनोविज्ञान, शरीरविज्ञान में हास्य का विशेष महत्व पाया जाता हैं। हास्य मानव-जीवन से सहज ही जुड़ा हुआ मिलता हैं। जीवन के एक अभिन्न अंग के रूप में वह सहज विकसीत हैं। विनोदभाई ने उनके महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - “हास्य लोकशाही नो आविष्कार छे अने ऐटले ए दैवी छे। लोकोनुं हास्य ए इश्वरनुं हास्य छे, हास्य ना सन्दर्भे अंतिम छेडे जइने ‘मेरिडिथ’ तो त्यां सुधी कहे छे के ज्यां हास्य नथी त्यां संस्कृति ज शक्य नथी।”^(२५) इन विधानों से स्पष्ट है कि हास्य मानव जीवन, समाज, संस्कृति में विशेष महत्व रखता है। हास्य मनुष्य की खुराक है, जिनकी भूख उसे सदैव रहती है, इसी से इन्सान स्वस्थ रह सकता हैं।

३.१.४ हास्य की परिभाषा :-

हास्य की परिभाषा करना आसान नहीं है। यह आज तक के साहित्यिक विश्लेषणों से सिद्ध हो चुका है। हास्य को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने काफी प्रयास किए। उसको निश्चित रूप से परिभाषित करने पर स्पष्ट, सटिक एवं सर्वमान्य व्याख्या नहीं हो पाई। क्योंकि - “हास्य जैसे अपरिभाषेय की परिभाषा और व्याख्येय की

व्याख्या का तो ब्रह्म से लेकर चींटी तक की परिभाषा और व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए बाध्य होना पड़ता हैं। हास्य को परिभाषित करना भी एक ऐसी ही टेढ़ी खीर हैं।”^(२६) क्योंकि जिस चिज़ का अनुभव मात्र किया जा सकता है, उसे परिभाषा में कैसे पीरोया जाय यह तो गुंगे के गुड समान असंभव सा लगता हैं। इसलिए विनोदभाई लिखते हैं कि - “१९३४ सुधीमां हास्य पर ३६९ शास्त्रीय ग्रंथों प्रगट थया हतां ते नोंधाया प्रमाणे हास्य नी थियरी समजावतुं ओछा मां ओछु एक पुस्तक दर महिने प्रगट थतुं रहे छे। पण आजनी तारीख मा य हास्य शुं छे ए अंगे विद्वानों एक मत थई शक्या नथी।”^(२७) फिर भी विद्वानों ने इसके बारे में काफी गम्भीरता के साथ उनका स्वरूप विवेचन किया है। पर यह तो स्पष्ट है कि हास्य के सम्बन्ध में ‘तुण्डे-तुण्डे मतिभिन्ना’ वाली कहावत पुरी तरह चरितार्थ होती हुई जान पड़ती हैं।

हास्य विषयक विश्लेषण के संदर्भ में भारतीय चिन्तन में निराशा जनक अभाव लगता है क्योंकि “भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर १९वीं सती के भारतीय विचारकों ने हास्य को लेकर विस्तृत व सुक्ष्म विवेचन प्रस्तुत नहीं किया।”^(२८) सिर्फ उन पर हलका सा नजरियाँ प्रस्तुत करते रहे।

“संस्कृत साहित्य में शृंगाररस का विवेचन प्रमुख हैं। हास्य की गम्भीरता पूर्ण विवेचना संस्कृत के मनिषियों ने नहीं की है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में चार रसों को प्राथमिकता दी थी। अग्निपूराण में भी चार रसों से शेष रसों की उत्पत्ति मानी गई हैं। उनके अनुसार शृंगार, रोद्र, वीर और बीभत्स इन चारों रसों से क्रमशः अन्य चार रसों की उत्पत्ति मानी गई है - हास्य, करुण, अद्भूत और भयानक।”^(२९)

‘शृंगाराज्जायते हासो रौद्रातु करुणोरसो :।

वीराच्याद्रभूत निष्पति : स्याद् बीभत्साद् भयानक :।।”^(३०)

भरतमुनि ने शृंगाररस से हास्य की उत्पत्ति वर्णित करते हुए कहा कि - “शृंगारानुकृतियाँ तु स हास्यस्तु प्रकीर्तित।”^(३१) भरतमुनि ने आगे लिखा है कि ‘हास्य’ का उर्द्रक विकृत आकार, विकृत वेश, विकृत आचरण, विकृतवाणी और विकृत अलंकारादि

द्वारा होता हैं।

‘धनंजय’ ने अपने ‘दशरूपक’ में हास्य की परिभाषा करते हुए भरतमुनि के विचारों को ही मजबूत बनाये हैं जैसे -

विकृताकृति वाग्विशेषैरात्मनोऽथ परस्य वा,
हासः स्यात् परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिस्मृतः ।।^(३२)

तो आचार्य ‘मम्मट’ ने भी इसी बात को आगे बढ़ाया है। उन्होंने भी वाणी, वेश आदि के विकार पर बल दिया हैं।

“रांतर्मनोऽनुकूलेऽर्थ मनसः प्रवणचितम्।
वागादिवै कृताच्चेतो विकसो हासउच्चते ।।”^(३३)

‘विश्वनाथ’ ने अपने ‘साहित्यदर्पण’ में हास्य के सबन्ध में लिखा है - “वागादिवै कृतैश्येतो विकासो हास इष्यते”^(३४) अर्थात् वाणी, रूप आदि के विकारों को देखकर चित्त का विकसित होना ‘हास’ कहा जाता है। इस प्रकार विश्वनाथ भी वाणी, वेश आदि के विकारों को हास्य की उत्पत्ति मानते हैं, तो ‘अभिनव गुप्त’ अनौचित्य को कारण रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि -

“अनौचित्य प्रवृत्ति कृतमेव हि हास्यविभावत्त्वम्
तथ्योनौचित्य सर्व रसानां विभावानुभावादौ संभाव्यते ।।”^(३५)

‘अभिनव गुप्त’ ने भी भरतमूनि के मत को ही विस्तृत किया है। अनौचित्य की सीमा में अनिष्टता, वैपरित्य एवं अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ सकती हैं। इस प्रकार संस्कृत के विद्वानों के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने हास्योत्पत्ति के लिए बाहरी हाव-भाव, चेष्टाएँ एवं विकृतिर्यों पर विशेष जोर दिया हैं और भरतमूनि से लेकर अभिनवगुप्त तक विशेष कोई अन्तर नहीं देखा जाता सभी काफी हद तक समान मत व्यक्त करते हैं।

‘बाद के युगों में भी हास्य के संदर्भ में कोई खास विवेचन या विश्लेषण नहीं हुआ इसलिए मध्यकालीन हिन्दी साहित्यकारों ने भी उसे उसी रूप में वर्णित किया जिस रूप

में संस्कृत में पाया जाता हैं। ‘ज्ञानप्रकाश’ के अनुसार - “संस्कृत के आचार्यों की विचारधारा को ही मध्यकालीन कवि-आचार्यों ने यथावत् ग्रहण किया हैं। मुख्यतः श्रृंगार पर केन्द्रीत होने के कारण केशव, रसनिधि, मतिराम, देव और चिंतामणि आदि ने हास्य को गम्भीर विवेचना का विषय नहीं बनाया।”^(३६) पर आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों व विवेचकों ने उसे काफी परिष्कृत किया। आधुनिक युग के नवीनतम माहौल में नवीन विधाएँ एवं नवीन भावधाराओं का आविर्भाव हुआ जिनमें हास्य-व्यंग्य के स्वरूप को लेकर भी काफी चर्चाएँ हुई, जिनका आरम्भ भारतेन्दु युग से ही हो गया था। आधुनिक मनीषियोंने ‘हास्य’ को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है। ‘आचार्य शुक्ल’ के अनुसार - “हास तो केवल मन का एक वेगमात्र है, पर भावों में जिस हास को स्थान दिया गया है, वह ऐसा है जिसके आश्रयगत होने पर श्रोता या दर्शक को भी इस रूप में हास की अनुभूति होती हैं।”^(३७)

डॉ.एस.पी.खत्री के अनुसार - “हास्य विशिष्ट आत्मा का विचरणक्षेत्र मानवी विचार-क्षेत्र रहा है और इसी क्षेत्र में वह फूले-फलेगा इस आत्मा से प्रेम करने के तथा उसे रुचिकर बनाने के लिए हमें जीवन से प्रेम करना पड़ेगा।..... हास्य हमारे इसी मानवी अनुसंधान का सहायक हैं।”^(३८)

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी के अनुसार - “इस का प्राण आनन्द में है, आनन्द का मूल प्रसन्नता है। प्रसन्नता हास्य में प्रत्यक्ष और मूर्तिमंत हो जाती है।”^(३९) पर डॉ. सावित्री सिन्हा ने इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - “किसी घटना, क्रिया, परिस्थिति लेख या विचारों की अभिव्यक्ति में निहित वह तत्व जो उनकी असम्बद्धता, बेढंगपन या मज़ा उत्पन्न करता हैं - वह हास्य या ह्युमर हैं।”^(४०)

इस परिभाषा में हमें संस्कृत विद्वानों की मान्यताएँ याद आ जाती हैं जिन्होंने हास्य को विकृतियों का वाहक माना हैं पर हास्य के स्वभाव का विवेचन करते हुए ‘सरोजखन्ना’ ने कहा है कि - “हास्य उल्लासमय एवं सुखमय जीवन की सहज अभिव्यक्ति हैं। स्वस्थ हृदय का स्वाभाविक उच्छलन हैं। स्वच्छ एवं निर्मल - किसी भी

प्रकार की कटूता एवं दंश से सर्वथा रहित।”^(४१) सरोजजी हास्य के अग्रणी विवेचक माने जाते हैं उन्होंने हास्य के संदर्भ में गहरा चिंतन प्रस्तुत किया है उनकी कोमलता को उन्होंने परखा है, उन्होंने हास्य के संदर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं को नजर में रखते हुए अपनी विशिष्ट एवं लाक्षणिक मान्यताओं को प्रस्थापित किया हैं। उन्होंने उनकी कोमलता, निर्मलता और रसमयता को नज़र में रखते हुए काफी उचित मान्यता व्यक्त की है।

डॉ.बलदेव मिश्र के अनुसार - “हास एक प्रीतिपरक भाव है जो चित्र की संचित गम्भीरता में आकस्मिक विस्फोट-सा उठाकर उसे कुछ क्षणों के लिए सात्त्विक प्रसन्नता से भर देता हैं।”^(४२) डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल कहते हैं कि - “माने हुए आचार, व्यवहार, वचन या चिन्तन से थोड़ा हट जाने पर दर्शकों को हसी आती हैं।”^(४३) पर डॉ. शेरगंज गर्ग मानते हैं कि - “शुद्ध हास्य वही है जिसमें आलम्बन को भी उतना ही आनन्द प्राप्त हो जितना कि अन्यजनों को।”^(४४) डॉ. गुलाबराय ने भी माना है कि - “हास्य में हँसी का प्राधान्य तो अवश्य है किन्तु उसकी शास्त्रीय और वैज्ञानिक व्याख्या करना हँसी-खेल नहीं हैं। प्रेम की भाँति उसके सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है, हास्य पयोनिधि में घँसिके-हँसिके कढ़िबो हँसी खेल नहीं।”^(४५)

गुजराती साहित्य के हास्य-व्यंग्य लेखक विनोदभाई भट्ट मानते हैं कि - “हास्य ए मनुष्य नी आगवी सम्पदा छे, हास्यनुं अधिष्ठान लागणी छे.”^(४६) स्वच्छ और स्वस्थ हास्य प्रकट करना यह बहुत बड़ा गुण है इस संदर्भ में उमाशंकर जोशी ने ‘प्रतिसाद’ में लिखा है कि - “स्वतंत्र समाजों मुक्त कंठे मोकले हृदये हँसी शके छे, जात सामे हँसवानी शक्ति ए हास्यवृत्तिनुं उत्तम लक्षण छे।”^(४७) तो मधुसुदन पारेख ने उसकी सुक्ष्मता को परखते हुए कहा है कि - “हास्य ए शारीरिक प्रक्रिया छे, पण हास्यरसनो अनुभव ए मानसिक प्रक्रिया छे.”^(४८) इस प्रकार गुजराती के अनेक विवेचकों व साहित्यकारों ने ‘हास्य’ को लेकर अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया हैं।

भारतीय चिन्तन के समान पाश्चात्य चिन्तकों ने भी 'हास्य' के बारे में यथायोग्य चिंतन प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसके सन्दर्भ में काफी छानबीन की है। जिनमें से कतिपय विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं।

टोमस हॉब्स के अनुसार - “हास्य अपने गौरव की अनुभूति से अद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है।”^(४९) पर मनुष्य की सदा यही प्रवृत्ति नहीं रहती कि वह औरों के पतन को देख आनन्द का अनुभव करता रहे।

प्रिस्टले का मानना है कि - “हास्य की सबसे अच्छी परिभाषा यह दी जा सकती है कि यह सहानुभूतिपूर्ण विनोद चिन्तन है।”^(५०)

स्टीफेन लीकाँक ने इस सन्दर्भ में काफी उचित मत व्यक्त करते हुए कहा है कि - “हास्य को जीवन की असंगतियों पर किए गए विचारों एवं उनकी कलात्मक अभिव्यंजना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।”^(५१)

इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों में प्लेटो, अरस्तु, सिसरो आदि ने हास्य को विशेष महत्व नहीं दिया पर हाब्स, प्रिस्टले, लीकाँक, जोन्सन, एडिसन, निकोल आदि अनेक विचारकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्या दी पर इनसे हास्य के संदर्भ में स्पष्टता नहीं हो पायी क्योंकि इनमें बहुत सी एकांगी है, तो किसी में आंशिक सत्य है तो, कई ऐसी है जो खुद हास्यास्पद बन गई है फिर भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा जो यथायोग्य प्रयास किया गया उससे हास्य का स्वरूप काफी कुछ स्पष्ट हो जाता है कि - “हास्य मानव-मन की अनिवार्य भूख है। हास्य व्यक्ति के हृदय में छिपी उस अधखिली कली की भाँति है, जो अनुकूल वातावरण में पुष्प की भाँति खिलकर अपने सौरभ व सौन्दर्य से समस्त परिवेश को आह्लाद की तरंगों में परिणित करने में समर्थ है।”^(५२) इन परिभाषाओं के आधार पर हास्य का स्वरूप कुछ इस रूप में स्पष्ट होता है।

- हास्य मनुष्य की मनोरंजनवृत्ति के विकास का प्रतीक है।
- हास्य मनुष्य की विशिष्ट संपदा है।
- हास्य मानव मन का वेग मात्र है।

- हास्य मानवीय अनुसंधान का सहायक है।
- हास्य मानव-जीवन के सुख-संचार का माध्यम है।
- हास्य मनुष्य की आदिम स्वाभाविक क्रिया है।
- हास्यानुभूति एक मानसिक प्रक्रिया है।
- हास्य से जीवन का परम आनन्द प्राप्त होता है।
- हास्य से प्रसन्नता विकसित होती है।
- हास्य उल्लासमयी एवं सुखमयी जीवन की सहज अभिव्यक्ति है।
- हास्य से शांति, शीतलता, सहृदयता एवं सौहार्द का प्रगटिकरण होता है।
- हास्य सहज मानवीय गुण है, मूल प्रवृत्ति है।
- हास्य एक शारीरिक प्रक्रिया है।
- हास्य स्वस्थ हृदय का स्वाभाविक उच्छलन है।
- हास्य से संकेतों का प्रकाशन होता है।
- हास्य एक संकोचरहित अभिव्यक्ति का रूप है।
- हास्य सहानुभूतिपूर्ण विनोद-चिंतन है।
- हास्य एक सुक्ष्मवृत्ति है।
- हास्य असंगतियों का कलात्मक चित्रण है।
- हास्य अद्भुत प्रसन्नता का प्रकाशन है।
- हास्योत्पत्ति विकृत आचरण, भाषा, रूप, व्यवहार से होती है।
- हास्य कटूता एवं दंश से सर्वथा रहित है।
- हास्य नैसर्गिक एवं विशिष्ट शक्ति है।

३.१.५ हास्य के भेद :-

हास्य के बारे में हम कह सकते हैं कि यह एक सुक्ष्मवृत्ति है यह असंगतियों का कलात्मक चित्रण है। हास्य नैसर्गिक भी होता है और सप्रयास भी प्रगट किया जाता है पर जिस किसी तरह से उनकी अभिव्यक्ति हो उनका प्रगटिकरण विभिन्न रूपों में होता

रहता हैं। ये सनातन सत्य है। इसलिए बालेन्दुजी लिखते हैं कि, “किसी भी कला की मूलभावना चाहे एक ही क्यों न हो, दृष्टि का अन्तर कलागत भेद उत्पन्न कर देता है। हास्य की भावना भी मूलतः एक ही है, परन्तु दृष्टिकोण के अनुसार उसमें अन्तर आ जाते हैं। यदि हम किसी युवती और दार्शनिक की हसन-क्रियाओं की तुलना करें तो यह अन्तर और अधिक स्पष्ट होता है। एक नवयुवती की मुस्कान में संकोच की आभा रहती है, जब कि दार्शनिक की हँसी निर्वेदपूर्ण होती है। किसी नराधिप की विजय-दर्पमिश्रित हँसी तथा शिशु की स्वाभाविक हँसी में विराट अन्तर होता है।”^(५३) इससे स्पष्ट है कि इस बात को नज़र में रखते हुए विद्वानों ने हास्य को अपने-अपने दृष्टिकोण से विभाजित करने का प्रयास किया है, इसीलिए जशवंतभाई भी मानते हैं कि - “हास्य कोई एक प्रकारनुं होतुं तथी तेमां भावनुं घणुं वैविध्य होय छे.”^(५४)

संस्कृत और हिन्दी के आचार्यों ने हास्य के भेद और उनमें निहित भिन्न-भिन्न अर्थों पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इसमें प्रथम प्रयास संस्कृत आचार्यों का रहा है। हास्य का प्राचीनतम वर्गीकरण आचार्य भरत ने किया था - “उन्होंने आश्रय के आधार पर हास्य के दो भेद किये हैं। जब कोई स्वयं हँसे तो ‘आत्मस्थ’ हास्य होगा पर जब वो दूसरो को हँसाये तो ‘परस्थ’ हास्य कहा जायेगा।”^(५५) पर हास्य के रूप को अधिक स्पष्ट करते हुए भरतमूनि ने नाट्यशास्त्र में उनको छः भागों में विभाजित किया है जैसे.....

“स्मितमय हसितं विहसित मुपहसितं चाप हसित मति हसितम्।

द्वौ द्वौ भेदो स्थातामुत्तममध्यमाधम प्रकृतौ।।”^(५६)

‘दशरूपककार’ ‘धनंजय’ ने इस विभाजन को यथावत ग्रहण किया है, परन्तु ‘पंडितजगन्नाथ’ ने इन दोनों भेदों को स्वीकार करते हुवे भी अपनी ओर से इनकी स्वतंत्र व्याख्या दी है। उनके अनुसार आत्मस्थ हास्य सीधे विभावो से उत्पन्न होता है और परस्थ हास्य हँसते हुए व्यक्ति या व्यक्तियों को देखने से पैदा होता है। उन्होंने लिखा है कि -

“आत्मस्थः परसंस्थश्चेत्पस्य भेदद्वयं मतम्।

आत्मस्यो दृष्टरुत्पन्नो विभावेक्षणमात्रतः ।।

हसंतमपरं दृष्ट्वा विभावश्योपजायते ।

षोडसो हास्यरसस्तज्ज्ञः परस्थ पर कीर्तितः ।।

उत्तमानां मध्यमानां नीचातामध्यसौ भवेत् ।

त्रयवस्थः कथितस्तस्य षड्भेदाः सन्ति चाडरे ।।^(५७)

आचार्य विश्वनाथ ने भी हास्य के भेदों के बारे में साहित्य दर्पण में लिखा है कि-

“येष्ठानां स्मित हसि ते मध्यानां विहसिताविहसितेय

नीचानां अपहसितं तथा तिहसितं तदेष षड्भेदः ।”^(५८)

इस प्रकार ‘साहित्य दर्पण’ में प्रकृति की दृष्टि से उत्तम, मध्यम् और अधम इन तीन कोटियों में हास्यभेदों को निम्नांकित क्रम में रखा। भारतीय आचार्यों द्वारा स्वीकृत हास्य का कुल वर्गीकरण भी इस प्रकार हुआ हैं।

स्वभावानुसार	शरीरानुसार	आश्रयानुसार
उत्तम	स्मित	आत्मस्थ
	हसित	परस्थ
मध्यम्	विहसित	आत्मस्थ
	उपहसित	परस्थ
अधम्	अपहसित	आत्मस्थ
	अतिहसित	परस्थ ^(५९)

इनके अलावा आचार्यों ने अपने अनुभव के आधार पर विभाजन के साथ-साथ उसे विश्लेषित करके उनकी विशेषता का निरूपण करके उनके पारस्परिक अन्तर को भी स्पष्ट किया हैं।

कुछ संस्कृत के आचार्यों ने इन छः भेदों में ‘आत्म’ ओर ‘पर’ का भेद दिखाते हुए पहले तीन भेदों को ‘आत्मसमत्थ’ और अन्तिम तीनों को ‘परसमत्थ’ बताया है, जो इस तारतम्य मूलक अन्तर करना अनुपयुक्त प्रतीत होता है।^(६०) इस प्रकार स्पष्टतः भरतमुनि के बाद जितने संस्कृत आचार्यों ने वर्गीकरण दिया वो ‘नाट्यशास्त्र’ के वर्गीकरण से

संपूर्णतः प्रभावित है, ऐसा प्रतीत होता है।

हिन्दी के परवर्ती मध्यकालीन रीति आचार्यों ने भी मुख्यतः संस्कृत आचार्य भरत आदि के विभाजन को ही अंगीकार किया है। केशवदास ने हास्य के चार भेद स्वीकार किए हैं। मन्दहास, कलहास, अतिहास और परिहास, उन्हो ने लिखा है

“बिकसहिं नयन कपोल कछु दसन-दसन के बास।

‘मन्दहास’ तसौं कहै कोविद केशवदास॥

जहाँ सुनिए कल ध्वनि कछु कोमल विमल विलास।

केशव तनमन मोहिए बरनहु कवि ‘कलहास’॥

जहँ हँसिए निरसंक है प्रकटहि सुख-मुख बास।

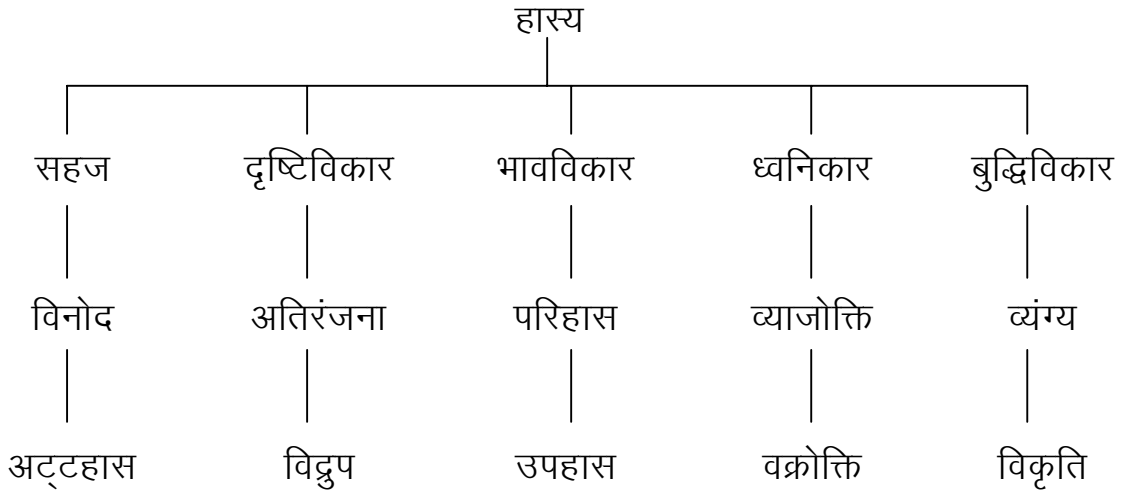
आधे-आधे बरन पर उपजि परत ‘अतिहास’॥

जहँ परिजन सब हँसि उठे तजि दम्पति की कानि।

केशव कौन हु बुद्धि बल सौ ‘परिहास’ बखानी॥^(६१)

तो डॉ.बलदेवप्रसाद मिश्र ने इस परम्परागत विभाजन के विकल्प में अपनी धारणा प्रस्तुत की है। “हांस या तो मृदुहास होगा या अट्हास, मृदुहास या तो गुप्तहास होगा जिसका आनन्द मन ही मन किया जाता है या स्कुटहास जिसकी अभिव्यक्ति मुश्कुराहट आदि के रूप में हो जाती है। अट्हास भी या तो मर्यादित कोटि का होगा जो परिस्थिति से नियंत्रित रहा करता है या अमर्यादित कोटि का जिसमें परिस्थिति-सापेक्षता भुला कर ठहाका लगाया जाता है।”^(६२) बलदेवजी का ये वर्गीकरण साहित्यदर्पणकार के वर्गीकरण का विकल्प बनने की क्षमता रखता है।

इस सन्दर्भ में हरिऔध की मान्यता रही है कि, “किसी-किसी ने स्थाई भाव हास के छः भेद माने हैं, यह युक्तिसंगत नहीं है। सभी स्थाईभाव वासनारूप हैं, अतः अन्तःकरण में उनका स्थान है, शरीर में नहीं। स्मित, हसित विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित के नाम और लक्षण बताते हैं कि उनका निवास स्थान देह है, अतः ये हसन क्रिया के भेद हैं।”^(६३) वो डॉ.रामकुमार वर्मा ने भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को नज़र में रखते हुए अपना वर्गीकरण कुछ इस प्रकार दिया है,



रामकुमार मानते हैं कि, “इस भाँति हास्य सहज विनोद से चलकर क्रमशः दृष्टि, भाव, ध्वनि और बुद्धि में नाना रूप ग्रहण करता हुआ विकृति में समाप्त होता है।”^(६४) फिर भी रामकुमारजी को ये विभाजन आधा-अधुरा लगता है इस सन्दर्भ में ‘हिन्दी साहित्यकोश’ की टिप्पणी काफी उपयोगी हैं। “हास्यरस को लेकर उसको विभाजित और वर्गीकृत करने का उहापोह स्वतन्त्र विवेचन की अपेक्षा रखता है। कुछ बातों पर सरलता से आपत्ति की जा सकती है जैसे विनोद और व्याजोक्ति जो ‘विट’ के रूप में माने गये हैं, उन्हें बुद्धि विकार से अलग मानना और ‘सहज’ तथा ‘ध्वनिविकार’ नामक वर्गों में रखना। वक्रोक्ति भी काव्यशास्त्र में दो प्रकार की मानी है - जैसे १-श्लेष, २-काकु। ध्वनि विकार के अन्तरगत केवल काफ़ू वक्रोक्ति ही आसकती है, श्लेष वक्रोक्ति नहीं। इस प्रकार ‘व्याजोक्ति’ जो वाच्यार्थका ही एक रूप है, ‘ध्वनिविकार’ के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती, क्योंकि ‘ध्वनिविकार’ उसका आधार नहीं है और न उसके लिए अनिवार्य ही है।”^(६५)

इस प्रकार हास्य के सन्दर्भ में अभी भी काफ़ी कुछ गहनतम विश्लेषण हो सकता है पर जहाँ तक भारतीय विचारधारा का प्रश्न है, ये स्पष्ट है कि भारतीय विद्वानों ने हास्य का विभाजन शारीरिक एवं अनुभावगत धरातल पर ही किया है, ये स्पष्टतः देखा जा सकता है। वैसे इसका विभाजन स्थूल आधार पर भी किया गया है,

(१) स्वभाव की दृष्टि से - कोमल, कठोर, निर्मम, उदासीन

- (२) हास्य चरित्रो के अनुसार - ज्ञातहास्य, अज्ञातहास्य
 (३) जाति के अनुसार - दित्य, किन्नरी, विथाधरी

इस प्रकार ये स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विचारधारा के अन्तर्गत हास्य का विवेचन अभी-भी विकासशील हैं।

भारतीय चिन्तकों के समान पाश्चात्य विचारकों ने भी हास्यभेदों के बारे में अपना गहन चिन्तन प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य विचारकों ने गुण, उद्देश्य, उपकरण आदि के आधार पर हास्य को विभाजित किया है। पाश्चात्य विचारकों ने हास्य का वर्गीकरण अभिनय या शारीरिक आधार पर नहीं किया पर हास्य का वर्गीकरण करते हुए उन्होंने मानसिकता एवं व्यावहारिकता को विशेष रूप से देखा है। इसीलिए “हेजलिट ने हास्य की तीन कोटियाँ मानी है। क्षणिक और हल्काहास्य, २, हास्यास्पंदता, ३, असंभाव्य और भेदसजन्य हास्य ‘बर्गसा’ ने हँसने के लिए तीन अनिवार्य शर्तें रखी है - १, आलम्बन का समाजप्रिय न होना, २, आलम्बन का अनभिज्ञ होना, ३, यान्त्रिक क्रिया।”^(६६)

पाश्चात्य विचारकों में एच.डबल्यू.फाउलर ने हास्य का जो वर्गीकरण दिया है, उसे ज्यादातर पाश्चात्य विचारकों ने स्वीकृत किया है क्योंकि इसमें उन्होंने हास्य से संबंधित विभिन्न मानसिकता को, भावों को सुक्ष्मतम रूप में विश्लेषित किया है, उनका वर्गीकरण अधोलिखित हैं।

	हास्य-भेद	उद्देश्य	क्षेत्र	साधन	समाज
१	विनोद	अन्वेषण	मानवप्रकृति	निरीक्षण	सहानुभूतिशील
२	वाग्देवध	प्रकाशक्षेपण	शब्दविचार	आश्चर्य	बुद्धिमान
३	व्यंग्य	सुधार	नीतिआचार	शब्दोच्चारण	आत्मसंतुष्ट
४	ताना	उत्पीडन	दोष	परिवर्तितवचन	समीपस्थ व्यक्ति संघेय
५	कूटूक्ति	अवमूल्यन	दूराचारण	पत्यनवचन	जनता
६	व्याजोक्ति	बहिष्कार	तथ्यनिरूपण	रहस्यारोपण	परिचित
७	छिद्रान्वेषण	आत्म	नीति	अनावरण	आदृत
८	उदासहसी	आत्मस्थापन	संकट	निराशावादिता	स्वयं ^(६७)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य विचारकों ने हास्य के सभी पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। हास्य को लेकर उनके शारीरिक और मानसिक

दोनो पक्ष को ध्यान में रख के उनका विशद् विवेचन प्रस्तुत किया है। हास्योद्रेक के कारणों, लक्षणों को नज़र में रखते हुए पाश्चात्य साहित्य में उनके प्रमुखतः चार भेद माने गये हैं,

१. ह्युमर (स्मितहास्य)
२. सेटायर (व्यंग्य)
३. विट (वाग्वैदग्ध्य)
४. आइरनी (वक्रोक्ति)

पर इनके अलावा 'पेराडी' (परिहास) एवं फार्स (प्रहसन) भी विशेषतः विकसित हैं। इस प्रकार समग्रतः देखा जाय तो पाश्चात्य विचारकों ने हास्य को गुण, उद्देश्य, उपकरण, मानसिकता एवं भावव्यंजना के आधार पर विभाजित किया है। पर एक तरह से देखा जाय तो हास्य-व्यंग्य विधा का विभाजन इतना सरल नहीं है, क्योंकि उसे विभिन्न दृष्टिकोण से देखना पड़ता है, विनोद मानसिक आनन्द का अमरकोष है। गरीब की कुटियाँ से लेकर राजा के महल तक इसका विस्तार देखा जा सकता है। मजाक, मसखरापन, ठिठोली आदि सभी की गणना इसी हास्य के अन्तर्गत की जाती हैं।

३.२ व्यंग्यविधा : स्वरूप विश्लेषण

३.२.१ प्रास्ताविक

इक्कीसवीं सदी की ओर जानेवाले भारत के विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में दिन ब दिन काफी कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन हो रहा है हरदिन एक नवीनता प्रकट होती है। वही सीलसीला साहित्य के क्षेत्र में भी पाया जाता है साहित्य में भी भाव, भाषा, शैली एवं विधाओं में नवीनता व्यक्त हो रही है। व्यंग्य साहित्य इसी नवीनता का एकरूप हैं। आधुनिक युग में अन्य नवीन विधाओं के साथ-साथ व्यंग्य विधा भी विकसित हुई।

हेरिस (६५ ई.पू.) के समकालिन रोम में अमर्यादित नाटकों के लिए एक शब्द प्रयुक्त होता था 'saturge' परिवर्तनकाल में लाटिन में यह 'satura' बनकर आया और अंग्रेजी में 'satire' बना। 'satire' इसी शब्द के पर्याप्त स्वरूप हिन्दी में व्यंग्य, व्यंग-

विकृति, उपहास - चार शब्द प्रचलित हैं। इनमें व्यंग्य सर्वाधिक प्रचलित संज्ञा है। संस्कृत व्यंग्य शब्द साधारण से कुछ भिन्न अर्थ में ही प्रयुक्त हो रहा है। इन्हीं में इसी अर्थ में व्यंग्य शब्द का प्रयोग होता है। “आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन भेद किये हैं,

(१) उत्तम काव्य

(२) मध्यम काव्य

(३) अधम काव्य

ये वर्गीकरण शब्दार्थ के वाचक, लाक्षणिक और व्यंग्य प्रयोग के आधार पर किया गया है। उत्तम काव्य को ही आज हम व्यंग्य कह सकते हैं, इसलिए व्यंग्य संस्कृत साहित्य से चला आ रहा एक परम्परागत भाव भी है और 'satire' शब्द के अर्थ बोध के रूप में भी व्यंग्य शब्द प्रयुक्त किया जाता है।^(६८)

‘व्यंग्य’ शब्द की व्युत्पत्ति वि + अंग से मानी गयी है। व्यक्ति, समाज, वस्तु का कोई भी अंग जब अपने उपयुक्त स्थान पर नहीं होता है, तब वह व्यंग्य का आलम्बन बन जाता है सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक, प्रभुत क्षेत्रों में व्याप्त विसंवादिता, विषमता, विद्रुपता एवं विकलांगता की पंकिल भूमि में व्यंग्य के कमल खिलते हैं।^(६९)

व्यंग्य ‘वि’ उपसर्गपूर्वक ‘अज्ज’ धातु में ‘ण्यन’ प्रत्यय लगाकर बनाया गया शब्द है।^(७०) स्मिताजी मानते हैं कि, “व्यंग्य शब्द भारतीय साहित्य में नया नहीं है। हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार ‘वि’ तथा ‘अंग’ के योग से ‘व्यंग’ तथा ‘व्यंग से व्यंग्य’ शब्द का निर्माण हुआ है।”^(७१) छविनाथ मिश्र ‘व्यंग्य’ शब्द की व्युत्पत्ति वि + अज + व्यत् से बताते हुए कहते हैं कि, “व्यंग्य विशेषण है और उपलक्षित अर्थ, व्यंग्योक्ति परोक्ष संकेत या सजेष्टिव मीनिंग भी कहते हैं।”^(७२)

उपरोक्त टिप्पणियों से स्पष्ट होता है कि, “व्यंग्य का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ व्यंजनावृत्ति से ध्वनित गूढ़ एवं सूक्ष्म अर्थ में गुम्फित हैं। अज्ज धातु में ‘वि’ उपसर्ग तथा ण्यत् प्रत्यय जोड़ने से व्यंग्य शब्द के सामान्य अर्थ से अलग वैशिष्ट्य को व्यक्त करता है।” नालन्दा विशाल शब्द सागर में शब्द की व्यंजनावृत्ति से प्रकट होनेवाले अर्थ को ही व्यंग्य की व्युत्पत्ति का उत्स माना गया है।^(७३)

३.२.२ व्यंग्य का अर्थ

व्यंग्य के अर्थ के बारे में कहे तो ये स्पष्ट है कि व्यंग्य का अर्थबोध हो जाता है। उनके सुक्ष्म अर्थ के अनुसार आज के समाज की समग्र विसंगतियाँ और विडम्बनाओं की अनुश्रुत पीड़ा की मार्मिक वेदना अनुभावित होती है। इस अनुभूतिमें व्यंग्य का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ जुड़ा हुआ है। भारतीय विद्वानों ने व्यंग्य के कई अर्थ प्रस्तुत किये हैं। अंग्रेजी में 'व्यंग्य' के लिए 'सेटायर' शब्द का प्रयोग होता है। अपने 'कॉमेडी' पुस्तक में श्री एल.जे.पाट्स ने 'सेटायर' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "सेटायर शब्द लेटिन शब्द 'satura' से विकसित हुआ है जिनका अर्थ है 'गडबडझाला'। 'सैतुरा' से कम से कम दो रूप विकसित हुए थे जिसका एक रूप बाद में भी प्रचलित रहा और यह रूप पद्य-निबंध के समान था। पुरातनकाल में 'सैतुरा' शब्द परनिन्दा के अर्थ में प्रयुक्त होता था और इस ऐतिहासिक अर्थ की छाया वर्तमान 'सेटायर' शब्द पर भी पड़ी हैं। अब 'सेटायर' में केवल परनिन्दा नहीं होती है। कुछ बातों में हेरफेर होती है, आलम्बन की खिंचाई होती है या आलम्बन की तुलना चिढ़ाने योग्य, बदनाम या काबील नफरत चीज से की जाती हैं या बात को उलटा दी जाती हैं या उसे बातों में उड़ा दिया जाता है।"^(९४) वैसे आज आधुनिक युग में व्यंग्य केवल सामाजिक रोग का अनुसंधान करनेवाला मात्र ही नहीं वरन उसके निदान का अनुसंधान भी प्रस्तुत करता है। आज वो 'गडबडझाला' नहीं पर आधुनिक अर्थ में वह जीवन की विद्रुपताओं पर तीखा प्रहार करने की समर्थ विधा के अर्थ में विकसित है।

डॉ.बरसानेलाल के अनुसार, "व्यंग्य शब्द भारतीय साहित्य शास्त्र में अपना एक निश्चित परम्परागत अर्थ रखता है जो सटायर से कही अधिक व्यापक है।"^(९५) संस्कृत आचार्यों ने 'व्यंग्य' का अर्थ व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "व्यंग्य यानी कि शब्द का व्यंजनावृत्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ।"^(९६) इस अर्थ बोधिता के बारे में डॉ.शेरजंग गर्ग लिखते हैं कि, "किसी भी शब्द का परतदार अर्थ या वृत्तानुगामी झंकारमय व्यंजना व्यंग्य होती है।"^(९७)

इस संदर्भ में डॉ.बालेन्दु शेखर तिवारी उनका सुक्ष्म निरीक्षणकर स्पष्ट कहते हैं

कि, “व्यंग्य ‘वि’ उपसर्गपूर्वक ‘अण्ज’ धातु में ‘ण्यत्’ प्रत्यय लगाकर बनाया गया शब्द है, जिसके कई अर्थ हैं - विविक्षा द्वारा निर्देश, गुढ अथवा अप्रत्यक्ष इंगित के द्वारा निर्देश, संकेतित अर्थ और शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना द्वारा निर्दिष्ट अर्थ। इन विभिन्न अर्थों से मिलते-जुलते किंचित उद्देश्य संवलिन विशिष्ट अर्थ में ‘व्यंग्य’ शब्द का प्रयोग आज हो रहा है।”^(७८) इनसे ये स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिककाल में व्यंग्य का अर्थ निष्ठुर व बेढंगी परिहास मूलक रचनाओं तक सीमित था पर आज के साहित्य में व्यंग्य का अर्थ व्यक्ति या समाज के दोषों, न्यूनताओं को सीधे न कहकर उनको अलग ढंग से सामाजिक, नैतिक, आर्थिक अन्याय अविचार, विसंगतियों, अनीविरोध आदि को अर्थपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है, इसलिए व्यंग्य का अर्थ काफी व्यापक हैं, इसलिए बापूराव देसाई कहते हैं कि, “इनके बहुत से अर्थ हैं जैसे विपक्षा के द्वारा निर्देश, गुढ या अप्रत्यक्षइंगित के द्वारा निर्देश, सांकेतिक अर्थ, व्यंजना शक्ति द्वारा निर्देशित अर्थ”^(७९) इनसे स्पष्ट है कि व्यंग्य का अर्थ काफी व्यापक है।

३.२.३ व्यंग्य की उत्पत्ति

व्यंग्य साहित्य की उत्पत्ति के बारे में कहे तो ये स्पष्ट है कि व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के बीज तो साहित्योत्पत्ति के साथ-साथ ही पाये जाते हैं, पर व्यंग्य साहित्य का वृक्ष आधुनिक युग में और खासकर स्वातंत्र्योत्तर युग में पला-बढ़ा, उनमें फल लगे, उनकी खेती होने लगी, वो अभिव्यक्ति का एक सशक्त जरियाँ बन गया। डॉ.बालेन्दु शेखर तिवारी लिखते हैं कि, “जब कोई परम्परागत माध्यम नए भावों, संवेदनाओं और क्रियाकलापों का वहन करने में असमर्थ साबित होता है, तब नए साहित्य-रूपों की तलाश नई विधाओं को जन्म देती हैं। जब कोई प्रातिभ अभिव्यक्ति रूप परम्परागम स्थिर निर्णायक तन्त्र से अपने को विलग महसूसता है और अपनी लोकप्रियता से अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है, तब यही नवोन्मेषशाली रूप विधा की तरह मान्य हो जाता है।”^(८०) इसलिए यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए की व्यंग्य नव्यतम खोज का एक समर्थ प्रस्थान है।

हिन्दी साहित्य में 'व्यंग्य' प्रायः 'सटायर' के पर्याय के रूप में जाना जाता है। भारतीय साहित्य में व्यंग्य का प्रादुर्भाव पाश्चात्य साहित्य की देन माना जाता है, यह पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य में व्यंग्य के आदि रूप को देखे तो वो हास्य के पर्याय के रूप में प्राप्त होता है। यह भी सही है कि आरम्भिक काल में व्यंग्य बड़ा भ्रामक एवं सम्मिश्रित था, पर इनकी अभिव्यक्ति जैसे-जैसे बढ़ती गई वैसे-वैसे उनका स्वरूप बदलता गया वो परिमार्जित होता गया।

भगवानदास कहार लिखते हैं कि, "पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन से ये ज्ञात होता है कि हास्य या प्रहसन के बाद ही व्यंग्य का अविर्भाव होता है। अपने प्रारम्भिक रूप में व्यंग्य प्रायः हास्य मिश्रित था। इसलिए प्राचीन पाश्चात्य मीमांसकों ने व्यंग्य की हास्य से अलग और स्वतंत्र कल्पना न करके उसे हास्य का एक प्रभेद माना है और यही कारन है कि व्यंग्य के पुराने पर्यायवाची शब्द प्रायः हास्य, परिहास अथवा प्रहसन जैसे अर्थ बोध को भी अपने में समालेते हैं।"^(८१) इनसे ये स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य का स्रोत प्रायः हास्य या प्रहसन को ही माना जा सकता है। युगीन परिस्थितियों और दृष्टियों के बदलते वही हास्य, परिहास, उपहास, वक्रोक्ति, वागवैदग्ध्य आदि रूप में आविर्भूत होते हुए कालान्तर में व्यंग्य के रूप में प्रस्थापित हो जाता है। डॉ.एस.पी.खत्री भी यही मानते हैं कि, "ज्यों-ज्यों हमारे विचारों, सिद्धांतों तथा आदर्शों में परिवर्तन होता गया त्यों-त्यों हास्य की तीव्रता, उसकी तीक्ष्णता और उसके प्रयोग में परिवर्तन होता गया।"^(८२)

कुछ विद्वानों का मत है कि व्यंग्य का प्रयोग सर्वप्रथम 'रोम' में हुआ, किन्तु अब इस मत के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि व्यंग्य का आरम्भ ग्रीक से हुआ था। ग्रीक साहित्य से प्रेरणा लेकर व्यंग्य रोम साहित्य में आया रोमन साहित्य से इसका प्रसार अन्य देशों के साहित्य में हुआ।^(८३)

ग्रीक साहित्य में व्यंग्य का आरम्भिक रूप 'ऑल्ड कॉमेडी ऑफ एथेन्स' में मिलता है। रोमन साहित्य में भी व्यंग्य का जन्म 'रोमन कॉमेडी' के रूप में हुआ। अंग्रेजी साहित्य में 'इसाई युग एवं मध्ययुग में व्यंग्य का प्रायः अभाव ही रहा। पाश्चात्य विद्वानों

की धारणा है कि आंग्ल साहित्य में व्यंग्य का प्रादुर्भाव बारहवीं शताब्दी में हुआ। 'स्वैकुलम स्टैलटोरम्' या 'फूल्स लुकिंग ग्लास' में व्यंग्य पाया जाता है।

डॉ.बरसानेलालजी के अनुसार, "पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य का जन्म दृश्य-काव्य से हुआ है। प्रारम्भिक काल में 'रंगरलियाँ' हँसी, दिल्लगी, पक्कडबाजी आदि जो पद्य में होने लगी थी 'नकलो' में प्रस्तुत करते थे। 'लिबोओण्डाबिकस' ने सर्व प्रथम उसको शुद्ध और शिष्ट बनाकर दृश्य-काव्य का पद देकर नाटक के रूप में रखा। यह यूनानी गुलाम था। इसके नाटकों में इसका प्रयोग किया। 'इनियस' ने सुन्दर पदों में इसका प्रथमबार प्रयोग किया। इसके बाद इस सम्प्रदाय को बढ़ानेवाले 'लोरेन्स' 'ओवनिल' और परसियस है। 'होरेस' के यहाँ समाज की उन तमाम कुरीतियों पर व्यंग्य है जो यूनानियों की बेढंगी नकल या उनके प्रभाव से हो गई है।"^(८४)

पाश्चात्य साहित्य के समान भारतीय साहित्य में भी व्यंग्य हास्य के पर्यायवाची के रूप में विकसित हुआ है। ये स्पष्ट है कि व्यंग्य का अस्तित्व भारतीय साहित्य में वैदिककाल से पाया जाता है। वैदिक साहित्य में अन्ध धार्मिकता एवं धर्म की आड़ में जो विसंगतियाँ फैली थी उस पर व्यंग्य मिलता है। संस्कृत साहित्य में व्यंग्य का सृजन हुआ किन्तु उनमें उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मिलता। पुराणों व आख्यानों में व्यंग्यात्मक प्रहार मिलते हैं। प्राकृत साहित्य में व्यंग्य का स्वरूप विकसित नहीं हुआ। अपभ्रंश साहित्य में फूटकर रचनाएँ पाई जाती हैं। व्यंग्य का सही रूप भक्तियुग में 'कबीरजी' की रचनाओं में मिलता है।

ऐसे तो व्यंग्यात्मक आवेश वेदों में मिल सकते हैं किन्तु नाट्यशास्त्र में व्यंग्यात्मकता के संकेत हैं। सिद्ध साहित्य में पूजापाठ करनेवाले पंडितों, गंगा-स्नान आदि को पूर्ण कर्म मानने वाले पौराणिक धर्मावलम्बियों पर व्यंग्य किये गये हैं।^(८५)

व्यंग्य का संबंध जीवन से है जीवन की विभिन्न भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। साहित्य में व्यंग्यात्मक भावधारा भी साहित्य के आरम्भ के साथ ही कभी मन्द तो कभी तीव्र गति से उनके साथ प्रवाहित होती हुई पाई जाती है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यंग्य की जलक दिखाई पड़ती है। पर वास्तविक रूप से व्यंग्य

साहित्य का आरम्भ स्वातंत्र्योत्तर युग में ही हुआ है, क्योंकि इस युग में व्यंग्य को आलम्बन बनाकर रचनाएँ लिखी गई हैं।

डॉ. उषा शर्मा के अनुसार, “धर्मग्रन्थों, नीति-शास्त्रों, पुराणों, आख्यानों में भी व्यंग्य के अंकुर प्रस्फुटित हुए हैं। ऋग्वेद में भी कहीं-कहीं व्यंग्य का आभास मिलता है। संस्कृति नाटकों में भी व्यंग्य की झलक है। सिद्ध, नाथ, जैन और अपभ्रंश साहित्य में भी व्यंग्य का समावेश है। कबीर, सूर, तुलसी साहित्य में व्यंग्य निहित हैं। रीतिकालीन कवियों के काव्य में भी यदा-कदा व्यंग्यात्मक कटाक्ष तथा छीटांकशी मिल जाती हैं। शेक्सपीयर के नाटको मिल्टन की कविताओं में भी उच्चकोटि की व्यंग्योक्तियाँ मिलती हैं किन्तु न तो ऋग्वेद व्यंग्य ग्रन्थ है और न हीं शुद्रक, कालिदास सरहपा, सूर, तुलसी, रहीम, बिहारी, बेनीकवि, शेक्सपीयर, मिल्टन आदि व्यंग्यकार हैं वास्तव में वे ही ग्रन्थ व्यंग्य-विधा का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिनमें व्यंग्य सर्वोपरि होता है। व्यंग्यकार वे ही लेखक या कवि होते हैं जिन्होंने उद्देश्य की पूर्ति लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनी रचनाओं में व्यंग्य को आलम्बन बनाया है इस रूप में आते हैं, एरिस्टोकैन्स, हॉरेंस, जुवैनल, बाल्टेयर, सर्वेन्टीज, ड्राईडन, पोप स्विफ्ट, वन्स, बायरन, माक्त्वेन आदि (पाश्चात्य साहित्य में) कबीर, भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, पद्मसिंह शर्मा, निराला, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, नरेन्द्र कोहली, सुदर्शन मजीठिया इन्द्रनाथ मदान आदि हिन्दी साहित्य में ^(८६) जिनके द्वारा ही सही रूप में व्यंग्य विधा का आरम्भ हुआ है, ऐसा हम स्पष्ट कह सकते हैं क्योंकि इन्होंने व्यंग्य को ही प्रमुख रूप से आलम्बन बनाकर लिखा है। उन्होंने विकृतियों व विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए व्यंग्य को चुना है पर ये स्पष्ट है कि भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्यात्मक भाव-मौजुद थे। ज्यों-ज्यों साहित्य का विकास होता गया त्यों-त्यों साहित्यिक विरोधाभास साहित्य में प्रतिबिम्बित होने लगा और साहित्यकार इन विकृतियों और विसंगतियों पर प्रहार करने लगे। यही साहित्यिक प्रहार क्रमशः व्यंग्य का रूप धारण करते गये।

३.२.४ व्यंग्य की परिभाषा :-

व्यंग्य की परिभाषा पर विचार किया जाय तो ये स्पष्ट है कि भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य का बाहुल्य है पर इस पर मतैक्य नहीं है। हरएक ने भिन्न-भिन्न ढंग से इसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। 'व्यंग्य' क्रोध, दुख, असमाधान, ग्लानी, असंतोष, क्रान्ति की भावना आदि विविध कारणों से होता है तथा इसे प्रकट करने के अलग-अलग ढंग भी हैं। कही बहोत तीखे तो कही करुणापूरित व्यंग्य के दर्शन होते हैं। इसलिए भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के मन अलग-अलग जान पड़ते हैं। भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने हास्यरस के वस्तु पक्ष पर अधिक जोर दिया है। पाश्चात्य विचारकों ने व्यंजना पक्ष पर इस संदर्भ में उनके मत कुछ निम्नलिखित है।

भारतीय आचार्यों ने व्यंग्य 'सटायर' को हास्य के अन्तर्गत माना है, "भरतमूनि ने व्यंग्य के मूलधर्म के रूप में दम्भ, पाखण्ड के चित्रण को स्वीकारा है। वास्तव में सटायर का जन्म ही दम्भ, पाखण्ड या आडम्बर के साक्षात्कार और उस पर प्रहार करने की आक्रोशपूर्ण मानसिक स्थिति से होता है।"^(८७)

दिनकरजी ने कहा है कि, "निन्दनीय व्यक्ति से विनोद नहीं किया जा सकता अपितु इस पर व्यंग्य का प्रयोग किया जाता है। यह मानव परम्परा है। जावा और बाली द्वीप समूहों में भी ऐसे नाटक प्रचलित हैं जिन्हें व्यंग्यताओरंग कहा जा सकता है। जिनका मूल संस्कृत का व्यंग्य है।"^(८८)

परसाईजी के अनुसार, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।"^(८९)

डॉ.बरसानेलरल के अनुसार, "आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़नेवाला हास्य व्यंग्य कहेलाता है।"^(९०)

व्यंग्य की सुधारात्मक आक्रमकता को देखकर हजारी प्रसादजी मानते हैं कि, "व्यंग्य वो है जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"^(९१)

बालेन्दुजी मानते हैं कि, “व्यंग्य एक विशिष्ट समाजधर्मी प्रेक्षणा विधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है। जिसका उद्भव अन्तर विरोधों के कारण होता हैं। जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्था विशेष के दौर्बल्य की अपेक्षात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभिष्ट पूर्ण होता है।”^(९२)

डॉ.एस.पी.खत्री ने व्यंग्य को घृणा का मूल मानकर कहा है, “जिस प्रकार समाजसुधारक समाज के दोषों पर अपनी दृष्टि एकाग्रकर उनकी अनैतिकता तथा उनकी अमानुषिकता पर आक्षेप कर उन्हें उच्च स्वर से घृणित प्रमाणित करने लगते हैं, उसी प्रकार उपहास की अपरिमार्जित दृष्टि अवगुणों और दोषों पर गड़ जाती है और जब तक वह उन्हें घृणास्पद सिद्ध नहीं कर लेती, उसे संतोष नहीं होता।”^(९३)

व्यंग्य को एक अस्त्र मानकर डॉ.प्रभाकर माचवे ने इसको परिभाषित करते हुए कहा है कि, “मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज, अंदाज लटका या बौद्धिक आयाम नहीं - पर एक आवश्यक अस्त्र है। सफाई करने के लिए किसी न किसी को अपने हाथ गंदे करने ही होंगे, किसी न किसी को बुराई अपने सिर लेनी होगी।”^(९४)

सार्थक और सशक्त व्यंग्य पर नरेन्द्र कोहली ने लिखा है कि, “कुछ अनुचित, अन्यायपूर्ण अथवा गलत देखकर जो आक्रोश जागता है, वह यदि काम में परिणत हो सकता है तो अपनी असहायता में कम होकर जब अपनी और दूसरों की पीड़ा पर हँसने लगता है। तो वह विकट व्यंग्य होता है। पाठक के मन को चुगलाता, सहलाता नहीं, कोड़े लगाता है अतः वह सार्थक और सशक्त व्यंग्य हैं।”^(९५)

शरद जोशी के अनुसार, “अब यदि उन्ही मूल्यों, विश्वासों और आस्थाओं से जुड़ा साहित्य सामान्य जीन्दगी से भी जूड़ा है तो वह ‘सेंस ऑफ ह्युमर’ साहित्य में आएगा ही जो अन्याय, अत्याचार और निराशा के विरुद्ध व्यंग्य में अभिव्यक्त होगा। व्यंग्य की पहचान है कि साहित्य कष्ट सहती सामान्य जिन्दगी के करीब है या उससे जुड़ा हुआ है। नहीं हो सका तो कही गड़बड़ हैं।”^(९६) अमृतराय भी मानते हैं कि, “व्यंग्य पाठक के क्षोभ या क्रोध को जताकर प्रकारांत से उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद करता है।”^(९७) गुजराती साहित्य के व्यंग्यकार विनोदभाई भट्ट मानते हैं कि -

“व्यंग्य ए गुस्सा नुं अहिंसक रूप छे! व्यंग्य लेखन संवेदनशील व्यंग्यकार माटे अनिवार्य बनी जाय छे।”^(९८)

रमणभाई नीलकंठ उसे हास्य के साथ जोड़ते हुए माना है कि - “सेटायर ए हास्य नो एवो एक प्रकार छे, जेमां उपहासनी साथे आक्षेप नो अंश रहेलो छे. कटाक्षकार व्यक्तिमां के समष्टिमां रहेली मूर्खता, दुष्टता, अन्याय वगैरे ने एवी विलक्षण बानी मां आलेखे छे के अनिष्ट छे एवी प्रतीति थायछे, अने साथे-साथे अनिष्टनी हास्यास्पदता प्रगट थायछे।”^(९९)

इनसे ये स्पष्ट है कि भारतीय व्यंग्य समीक्षकों के अनुसार व्यंग्य आक्रोश एवं पीड़ा की तीखी अभिव्यक्ति है। युगीन विसंगतियों की वैदगध्यपूर्ण शैली में तीखे प्रहारात्मक स्वर या मारक क्षमता में अभिव्यक्ति व्यंग्य मानव-जगत की विसंगतियों को प्रकाश में लाकर उनके उपहास्य या धृणात्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति हैं।

पाश्चात्य विचारकों ने भी व्यंग्य के बारे में काफी कुछ गहराचिन्तन प्रस्तुत किया हैं। इन विचारकों ने हास्य के व्यंजनापक्ष पर विशेष जोर दिया हैं। श्री रिचार्ड गार्नेट ने व्यंग्य के बारे में कहा है कि - “व्यंग्य मनो-विनोद, हास्यास्पद, असामान्य के प्रति हँसी उड़ाना अथवा क्षोभ के भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। बशर्ते कि हास्य स्पष्टतः पहचाना जा सके और वह उक्ति साहित्यिक रूप से युक्त हो। हास्यहीन व्यंग्य निंदा, आक्षेप, गाली-गलौच या महज़ एक भडैती-विदूषक की ठट्ठा मात्र हैं।”^(१००)

प्रसिद्ध व्यंग्यकार स्विफ्टने माना है कि - “व्यंग्य एक प्रकार का शीशा हैं, जिसमें देखनेवालों को अपने मुँह के अतिरिक्त प्रत्येक का मुँह दिखलाई पड़ता हैं। यही कारण है कि विश्व में व्यंग्य का स्वागत किया जाता हैं तथा बहुत कमलोग इससे अपने को पीड़ित अनुभव करते हैं।”^(१०१)

जोन.एम.बुलिट ने लिखा है कि - “मानव अथवा उसके आचारों की मूर्खताओं अथवा सदोषताओं पर किया गया साहित्यिक प्रकार भले ही वो अच्छा हो या बुरा,

सामान्य हो या विशिष्ट, सत्य हो या असत्य, क्रूर हो या हास्यास्पद, गद्यमय हो या पद्यमय सब व्यंग्य शब्द के अन्तर्गत आते हैं।”^(१०२)

ड्राइडन के अनुसार - “सत्य इस परिवार का अधिष्ठाता है, एवं सद्भावनाओं का पोषक हैं। उसका पुत्र वैदग्ध्य है जिसने आनन्द से विवाह किया तथा उसके बच्चे का नाम हास्य हैं।”^(१०३)

मेरीडिथ मानते हैं कि - “हास्यास्पद का मजाक इतना अधिक उड़ाया जाये कि हास्य-तत्त्व समाप्त हो जाए तब हम व्यंग्य की सीमाओं में प्रवेश कर सकते हैं।”^(१०४) प्रो.बारचेस्टर व्यंग्य को क्रोध का संवाहक मानते हैं, “क्रोध की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं।”^(१०५)

सारांश यह है कि व्यंग्य के सन्दर्भ में पाश्चात्य विचारक भी प्राचीन समय से विचारशील रहे हैं उन्होंने व्यंग्य की प्रहारात्मक शक्ति को भली प्रकार से पहचाना है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि व्यंग्य साहित्य रूपी समंदर की ऐसी उपज है जो अपने व्यापक धरातल पर समकालीन जीवन को समग्र विद्रुपताओं, विसंगतियों, अनास्थाओं तथा वृत्तियों पर तेजाबी कलम से आक्रमण करता है।

३.२.५ व्यंग्य की विशेषताएँ एवं लक्षण :-

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने जो परिभाषाएँ दी हैं, उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि व्यंग्य विधा को काफी विश्लेषित किया है। व्यंग्य साहित्य को सभी दृष्टियों से नापातोला व तराशा है। इन परिभाषाओं से व्यंग्य विधा की विशेषता, लक्षण व गुण सहज ही प्रस्फुटित हो जाता है। इन परिभाषाओं के आधार पर इसे हम कुछ इस प्रकार रख सकते हैं।

- व्यंग्य एक सशक्त विधा है।
- साहित्य की अन्य विधाओं से नया सृजनशील रूप-कथ्य और शिल्प में नयापन।
- व्यंग्य मनोरंजन, निन्दा, एवं विनोद की अभिव्यक्ति करता है।

- व्यंग्य जीवन का साक्षात्कार हैं।
- व्यंग्य में हास्य का पुट रहेता हैं।
- व्यंग्य मुखरता एवं दुर्गुणों को उद्घाटित करता हैं।
- व्यंग्य के द्वारा सत्य की स्पष्ट प्रतिष्ठा एवं अभिव्यक्ति होती हैं।
- व्यंग्यकार विकृतियों एवं विसंगतियों का पर्दाफाश करता हैं।
- व्यंग्य एक गुरुत्तर अस्त्र हैं।
- व्यंग्य शिष्ट समाज की मर्यादाओं की रक्षा करता हैं।
- व्यंग्य निर्ममतापूर्ण प्रहार करता हैं।
- व्यंग्य कथनी और करनी की समीक्षा करता हैं।
- व्यंग्य मर्यादा की रक्षा करवाता हैं।
- व्यंग्य मानव को मानव बने रहने की प्रेरणा देता है।
- व्यंग्य आलम्बन के प्रति घृणा विस्तृत करनेवाला हास्य हैं।
- व्यंग्य सामाजिक जीवन में सफाई करता हैं।
- व्यंग्य पीडा और आक्रोश का संपूर्ण सृजन हैं।
- व्यंग्य बाहरी रूप से हास्य पर आंतरिक रूप से चूभन बन जाता हैं।
- व्यंग्य स्तरगत प्रगति का प्रतीक है।
- व्यंग्य सच्चे अर्थों में विकासशील हिन्दी साहित्य का रूप है।

डॉ.बापूराव देसाई ने व्यंग्य की विशेषताओं एवं गुण की चर्चा की हैं। उन्होंने वास्तव, सहजभाव, आघात, समाजसुधार, थोड़े में बहुत कहना, प्रौढ़ एवं शिष्ट भाषा को उनकी विशेषता माना है।^(१०६) उन्होंने व्यंग्य का व्यापक फलक देखते हुए उनके कुछ गुण व्यक्त किए हैं, जैसे, (१)गागर में सागर, (२)नाँव के तीर, (३)सत्यनिष्ठा, (४)प्रभावी शास्त्र, (५)सोदेश्यता, (६)शक्तिशाली प्रेरणा, (७)चिर-प्रभाव, (८)विकृतियों का पर्दाफाश, (९)समाजाभिमूर्खता, (१०)गम्भीरता, (११)सहजभाव तथा उस्फूर्तता, (१२)मोहभंग।^(१०७)

इन विवरण से व्यंग्य का स्वरूप काफी कुछ स्पष्ट हो जाता है।

३.२.६ व्यंग्य के भेद :-

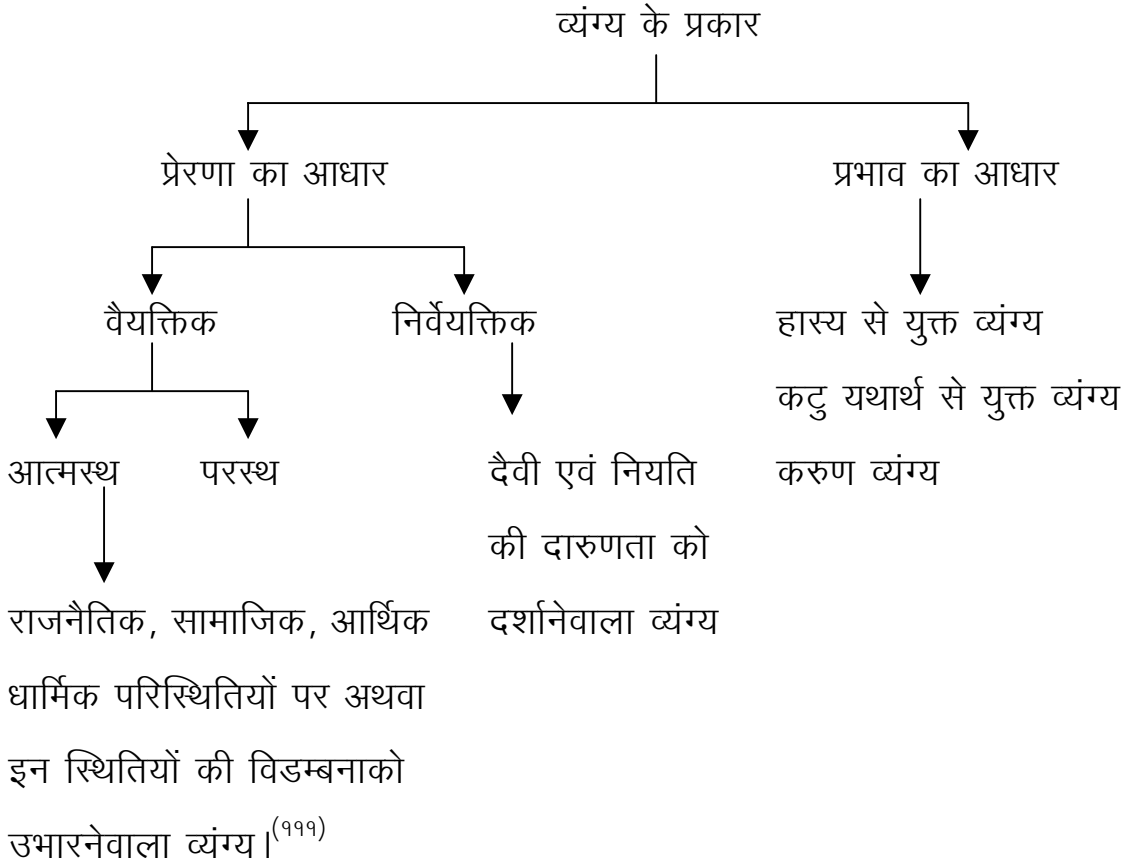
व्यंग्य जीवन की विद्रुपताओं की अभिव्यक्ति के जीवन्त ऐतिहासिक दस्तावेज के समान है। उनकी व्यंजना शक्ति में इतनी सुक्ष्मचेतना है कि उसे वर्गीकरण की स्थूल रेखाओं में विभक्त करना अत्यन्त कठिन है। डॉ.नन्दलाल कल्ला मानते हैं कि, “व्यंग्य की लीला भूमि की उर्वर शक्ति में अनंत जीवन की असीम दिशाओं की सम्पूर्ण असंगतियों की समर्थ अभिव्यक्ति के अंकुर विद्यमान है। अत एव व्यंग्य का वर्गीकरण हास्य की तुलना में अपेक्षाकृत कठिन है। क्योंकि हास्य का शरीर की स्थूल क्रियाओं से सम्बन्ध रहता है तथा वह बाह्य क्रिया है, जबकि व्यंग्य मन की आन्तरिक दशा पर प्रभाव डालता है इसीलिए व्यंग्य को वर्गीकरण की सिमाओं में सीमित करना अपेक्षाकृत कठिन है।”^(१०८)

इसलिए बालेन्दु शेखर लिखते हैं कि, “व्यंग्य को हास्य के प्रभेद के रूप में स्वीकृति देनेवाला हिन्दी का समीक्षक वर्ग व्यंग्य के स्वतंत्र वर्गीकरण से कतराता रहा है। हास्य के विभाजन प्रसंग में विनोद, व्यंग्य, व्याजोक्ति, चमत्कारिक विनोद वचन, ताना, उपहास आदि सब की एक साथ चर्चा करने की परम्परा रही है। पश्चिम के एच.डबल्यु.फाउलर से लेकर भारत के हास्य शास्त्री डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी तकने व्यंग्य के पृथक् वर्गीकरण की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया है।”^(१०९) फिर भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के आधार पर व्यंग्य को विभाजित करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने व्यंग्य को साहित्यिक, व्यावहारिक, मानसिक, प्रेरणात्मक एक प्रभाव के आधार पर विभाजित करने का प्रयास किया है जो कुछ निम्नलिखित हैं।

डॉ.बरसानेलाल ने कहा है कि, “वास्तव में व्यंग्य दो प्रकार का होता है १.व्यक्तिगत व्यंग्य और २.समष्टिगत व्यंग्य। समष्टिगत व्यंग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है, १.धर्म संबंधित २.समाज संबंधित ३.साहित्य संबंधित ४.राजनीति

संबंधित ५.मानवीय दुर्बलताओं से संबंधित।”^(११०)

डॉ.शेरजंग गर्ग ने प्रेरणा और प्रभाव के आधार पर व्यंग्य का विभाजन कुछ इस प्रकार किया है।



डॉ.नन्दलाल कल्ला मानते हैं कि, “विगत पृष्ठो में व्यंग्य का वर्गीकरण दो रूपों में वर्गीकृत किया गया था। प्रथम दृष्टि में व्यंग्य लिखने की प्रेरणा पर आधारित था जो अन्त में वैयक्तिक तथा निर्वैयक्तिक व्यंग्य की रचना को जन्म देती है। यही व्यंग्य आत्मस्थ एवं परस्थ व्यंग्यकी भी रचना करता है तथा अन्य रूप में परिवेशजन्य विद्रुपताओं से व्यंग्य की सृष्टि होती है। संक्षिप्त में इन सभी रूपों की विवेचना अपेक्षित हैं। डॉ.बालेन्दुशेखर तिवारी ने अपनी रचना ‘हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य’ में लिखा है कि, “व्यंग्य का चरित्र चमत्कारिक विनोद वचन, व्याजोक्ति, उपहास, व्याकृति और आक्षेप के अन्तर्गत भली भाँति प्रस्तुत हुआ है और व्यंग्य के यही प्रभेद समस्त व्यंग्य-विधान की मूल पीठिका भी हैं।”^(११२)

डॉ.बैरिस्टर सिंह यादव ने अपनी रचना ‘हिन्दी लोक साहित्य में हास्य और व्यंग्य’

में लिखा है कि, “विषयान्तर अथवा क्षेत्र भिन्नता के आधार पर व्यंग्य को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता हैं। (अ) आप्त व्यंग्य (आ) वैयक्तिक व्यंग्य (इ) सामाजिक व्यंग्य (ई) राजनीतिक व्यंग्य (उ) धार्मिक व्यंग्य।”^(११३)

डॉ.माँगीलाल उपाध्याय ने अपने “व्यंग्य और भारतेन्दु युगीन गद्य” नामक शोधप्रबन्ध में व्यंग्य के प्रमुख रूप से दो भेद माने हैं - १.व्यक्तिपरक, २.समाजपरक, समाजपरक व्यंग्य के अन्तर्गत पुनश्च तीन उपभेद दिये हैं, १.विनोदात्मक, २.सुधारात्मक, ३.ध्वंसात्मक। इस के साथ वह यह भी कहते हैं कि, “जब व्यक्ति परक व्यंग्य का उद्देश्य सामाजिक चेतना होगा तो उसमें भी ये तीनों भेद होंगे।”^(११४)

कु.आभा भट्ट के अनुसार, “व्यंग्य के मुख्य नौ रूप बनते हैं। अपने-अपने स्वभाव और सच्चाई के कारण ये नौ रूप, अरूप और अनुरूप के तीन वर्गों में बँट जाते हैं। ‘रूप’ तीन होते हैं - तीक्ष्ण वैदग्ध्य, विडम्बना और व्यंग्य, उपरूप भी तीन होते हैं - निन्दा, विनोद और हयहास। अनुरूप भी तीन होते हैं कटाक्ष, प्रभर्त्सना और आक्षेप।”^(११५)

गुजराती साहित्य के विवेचक डॉ.मधुसूदन पारेख मानते हैं कि, “सेटायर बहुरूपी छे. ए विविध स्वांग सजीने प्रगट थाय छे. सेटायर नो विचार करता ठठ्ठाचित्र, निंदालेख, कटुव्यंग्य, कडवी मजाक, वक्रवेण, हाजर जवाबी, ठठ्ठो, व्याजस्तुति, कटाक्ष, बनावट, प्रतिकृति, व्याजवीर वगैरे रूप-प्रभेदो स्मरण आवे छे।”^(११६)

व्यंग्य के भेदों के बारे में पाश्चात्य आलोचकों ने भी अपनी काफी आलोचनाएँ व्यक्त की हैं। “व्यंग्य के वर्गीकरण के विषय में ‘न्यू स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ दि इंगलिश लैंग्वेज’ में व्यंग्य के चार रूप व्यक्त किये गये हैं। बौद्धिक व्यंग्य, काल्पनिक व्यंग्य, नाटकी व्यंग्य, काव्यात्मक व्यंग्य। गोल्डस्मिथ ने ‘एटलांटिक मंथली’ में तीन प्रकार के व्यंग्य की चर्चा की है। भौतिक व्यंग्य, उदासीन व्यंग्य, अशिष्ट व्यंग्य, एडवर्ड डबल्यू रीजेनरिन ने अपनी पुस्तक ‘स्वीफ्ट एण्ड द सैटायरिस्ट आई’ नामक पुस्तक में १.प्युनिटिव सटायर, २.परस्यूसिव सटायर नामक दो प्रकार के व्यंग्य की चर्चा की है।”^(११७)

उपर्युक्त विवेचन से व्यंग्य के प्रेरणास्त्रोत, प्रभाव व साधनों पर पर्याप्त प्रकाश

पडता है। इस तरह व्यंग्य के भेदों को लेकर काफी कुछ विचार हुआ है। व्यंग्य को इस सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक रूप में भी हम बाट सकते हैं पर मूलतः देखा जाये तो व्यंग्यकार व्यंग्यात्मक प्रहार करने के लिए विविध साधनों का प्रयोग करता है और जैसा प्रहार करना हो, उसी प्रभाव से उसे ढालता है, इनसे उसके विविध रूप बन जाते हैं, जैसे उपहास, वैदग्ध्य, अतिशयता, विडम्बना, अपकर्ष आदि। सारांश यह है कि व्यंग्य के प्रकारों के सन्दर्भ में परिवेश और प्रभाव के आधार पर किए गए वर्गीकरण को स्वीकारना उचित होगा पर यह भी सही है कि व्यंग्य जीवन की व्यापकता को संस्पर्श करते हुए बहेता है, उनकी समस्त चेतना को स्वीकार करे तो उसे वर्गीकरण की स्थूलता में परिसीमित करना आसान नहीं हैं।

३.२.७ व्यंग्य की उपयुक्तता एवं उद्देश्य :-

व्यंग्य की उत्पत्ति के बारे में जान लेने के बाद व्यंग्य की उपयुक्तता एवं उद्देश्य को समझ लेना आसान होता हैं। व्यंग्य विसंगतियों पर प्रहार करता है, अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध विद्रोह करता है। जन सामान्य में न इतना धैर्य होता है नहीं उनके पास ऐसे साधन होते हैं जिनसे अव्यवस्था का विरोध किया जा सके। तब व्यंग्य एक हथियार के रूप में सामने आता है। युगीन वातावरण में जब समस्याएँ मँड़राने लगती हैं तब व्यंग्य ही उपयुक्त हथियार बन सकता हैं।

डॉ. रामगोपाल सिंह ने व्यंग्य को हिन्दी की प्राणवायु बताते हुए कहा है कि - “आधुनिक अर्थ में व्यंग्य एक साहित्यिक हथियार है क्योंकि व्यंग्य में प्रहारात्मक क्षमता अनिवार्य रूप से उपस्थिति होती है, फिर भी व्यंग्य की मारक क्षमता अचूक होते हुए भी आधुनिक हथियारों-अणुबमों, मिसाइलों आदि के समान यह विध्वंशात्मक नहीं है, हालांकि व्यंग्य का असर प्रभावात्मक दृष्टि से इन विध्वंशक हथियारों से कहीं अधिक हैं। अचूक असर की क्षमता रखने के बावजूद भी साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति प्राणवायु की तरह ही हैं।”^(११८)

व्यंग्य को प्राणवायु समान इसलिए माना जाता है क्योंकि व्यंग्यकार व्यक्ति और

समाज के जीवन से सम्पर्क स्थापित कर लेता हैं। उसकी समस्याओं उसके अन्तविरोधों, उसकी विषमताओं उसके मिथ्याचारों को समजकर उन्हें उद्घाटित करता है। उनसे व्यंग्य एवं व्यंग्यकार की सुधारात्मक दृष्टि सामने आती है पर परसाईजी मानते है कि - “कोई सुधर जाये तो मुझे क्या एतराज हैं। वैसे में सुधार के लिए नहीं बदलने के लिए लिखना चाहता हूँ। कोशीश करता हूँ। चेतना में हलचल हो जाए, कोई विसंगति नज़रों के सामने आ जाए इतना काफी हैं। सुधारनेवाले खुद अपनी चेतना से सुधरते हैं।”^(११९)

व्यंग्य की उपयुक्तता इसलिए भी माननी चाहिए कि व्यंग्य वो आईना है जिसमें व्यक्ति तथा समाज अपने आपको देख सकता है तथा अपनी कुरूपताओं, विकृतियों को स्पष्ट रूप से देखते हुए उनसे मुक्त होने का प्रयत्न कर सकता हैं। क्योंकि - “कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर गलती नहीं करता हैं, जिनके ज्ञान-चक्षु बन्द हो गए है उनकी आँख खुल सकती है।”^(१२०) इसलिए ये स्पष्ट है कि व्यंग्यकार सत्य कथन का दावा करता है तो वह व्यक्ति व समाज को दुराचारों और पापाचारों से सावधान करता है। उसके सत्य प्रकाशन से कुछ का कल्याण होता है तो कुछ आहत होते है। व्यंग्य के अस्त्र में अमोघ शक्ति उनकी सत्यता एवं यथार्थवादीता के कारण ही पैदा होती हैं, इसलिए उसे विशेष महत्व दिया जाता हैं।

व्यंग्य की उपयोगिता और सार्थकता सर्वमान्य हैं। व्यंग्य का अस्तित्व सर्वत्र विद्यमान हैं। प्रसिद्ध व्यंग्यकार रोशनलाल सुरीरवालाजी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि -

“बिन विद्या ब्राह्मण वृथा, छती जिन कर खंग।

वृथा बणिक बाणिज्य बिन, कवि-लेखक बिन व्यंग्य।”^(१२१)

वो व्यंग्य की उपयुक्तता को विशेष रूप से व्यक्त करते हुए कहते है कि -

“गहरी मस्ती भंग में, मन धौबे जल गंग

चोट-करारी जंग में जय गुनकारी व्यंग्य.....।”^(१२२)

व्यंग्य के काफी गुण है कई बार वो औषध के रूप में कार्य करता है, सामाजिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए व्यंग्य आवश्यक है। जन समाज में जागरुकता लाने का

काम व्यंग्यकार करता है। व्यंग्य से लेखक के मन को भी आराम मिलता है। व्यंग्य में आलोचना होने के कारण सुधार की सम्भावना बढ़ती है। परसाईजी ने इसी बात पर बल देते हुए लिखा है कि - “और व्यंग्य? हाँ व्यंग्य बरबस उठता था। मेरे डाक्टर ने ही कहा..... आप लिखवाईये इससे आपका मन अच्छा रहेगा। अस्पताल के अनुभव ही लिख डालिए। मैंने कहाँ..... डॉक्टर साहब, उसमें अस्पताल की कुछ आलोचना हो गयी तो ठीक नहीं होगा। डॉक्टर ने कहाँ..... आलोचना होने दीजिए। उससे अस्पताल में सुधार होगा।”^(१२३)

इस तरह व्यंग्य समाजोपयोगी सिद्ध हुआ है, व्यंग्य के बारे में कहे तो उनकी सबसे बड़ी उपयोगिता व्यंग्य के आलम्बन की सामाजिक प्रगति एवं विकास ही रहा है। जिस तरह मैले कपड़ों की गन्दगी साबुन से निकलती है उसी प्रकार समाज में व्याप्त गन्दगी को व्यंग्यकारों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। उन पर व्यंग्यात्मक प्रहार होने से वो अपने आप ठीक हो जाती है, जो व्यंग्यात्मक साहित्य की सबसे बड़ी उपयुक्तता हैं। क्योंकि व्यंग्य में जबान मौन और आँखे बन्द नहीं रहती सदैव चेतनता जागृत करती ही रहती है यही उनकी विशिष्ट उपयुक्तता हैं।

व्यंग्य के उद्देश्य के बारे में कहे तो सत्य का उद्घाटन, सुधार, सामाजिक क्रांति, जागरुकता युगीन समस्याओं एवं विसंगतियों का चित्रण करना उनका लक्ष्य रहेता है। बालेन्दुजी लिखते है कि - “निश्चय ही व्यंग्य सोदेश्य होता है और इसके पीछे एक बलवती प्रेरणा एवं पूर्वयोजना होती हैं। व्यंग्य की यह प्रयोजनशीलता ही उसे इमानदार, सच्चा और संवेदनशील सिद्ध करती हैं।”^(१२४) आचार्य मम्मटने काव्य प्रयोजन की चर्चा करते हुए जिसे ‘शिवतेरक्षतये’ कहा है वही प्रयोजन वहीं मंजिल, व्यंग्य की भी हैं। दुनिया में जो कुछ अशिव, अमंगल, असत् है उसके उच्छेदन के लिए पाठकों को तैयार करना व्यंग्यकार लक्ष्य है।^(१२५)

कुछ लोग मानते है कि ये तो हँसी-मज़ाक का एकरूप है, अपने आक्रोश को उसमें व्यक्त किया जाता हैं। पर व्यंग्यकार केवल हास्य या आक्रोश, करुणा ही प्रदान नहीं करता मगर वो वैचारिक युद्ध लड़ता है। चिंतनशील साहित्य का निर्माण करता है।

हिन्दी के व्यंग्यकारों ने अनेक ऐसी रचनाएँ दी हैं जो पाठकों को विशुद्ध चिन्तन की ओर अग्रसर करती हैं। जैसे - आधुनिकता का फैशन, विज्ञापन में बिकत नाही (हरिशंकर परसाई), अध्यक्ष महोदय (शरद जोशी), पुलिस प्रकरण की मानवता (बालेन्दुशेखर तिवारी), अंधे लोगों का देश (रविन्द्रनाथ त्यागी), भगवान और विद्वान (शंकर पूर्णतांबेकर) ये सारे व्यंग्य निबन्ध विशुद्ध चिन्तन की अभिव्यक्ति करते हैं जो आज के बुद्धिवादी समाज में काफी असरकारक सिद्ध हुए हैं।

व्यंग्य के इसी उद्देश्य के कारण आज उसका दायरा बढ़ता ही जाता है और यही आज के युग की माँग है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, शैक्षिक, धार्मिक असंगतियों पर प्रहार करना ही उनका उद्देश्य है, इसलिए इतना स्पष्ट है कि समसामायिक जटिल और भ्रष्ट स्थितियों में व्यंग्य ही वास्तविकता, नवनिर्माण और संभावनाओं का प्रदाता है इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वो कार्यान्वित हैं।

३.२.८ व्यंग्य के तत्त्व :-

हिन्दी साहित्य में अनेकों विधाएँ हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, कविता आदि इनमें सभी विधाओं के कुछ तत्त्व, कुछ विशेषताएँ लक्षण होते हैं जिनसे उस विधा की पहचान होती है। आज व्यंग्य भी एक विधा के रूप में विकसित हुआ है, इसलिए उनके भी कुछ तत्त्व निश्चित किए जा सकते हैं। एक प्रकार देखा जाए तो आज तो भले ही इन सभी विधाओं के तत्त्व निश्चित कर लिए गए हो पर आज संमिश्रण का युग है, आज कोई भी विधा ऐसी नहीं है कि उनके तत्त्व सिर्फ़ उन तक ही सिमित हो, उनकी ही पहचान हो, वो सभी विधाओं में पाएँ जाते हैं, उपन्यास के तत्त्व कहानी, नाटक, निबन्ध में भी पाए जाते हैं। आज गद्य-काव्य की भी रचना होती है तो नाटक में पद्य का आविर्भाव हुआ है। आज के साहित्य में तो भाषा भी मिश्रित सी पाई जाती है। इस हिसाब से आज के सन्दर्भ में व्यंग्य विधा की बात कहे तो उनके सहज स्वभाव के आधार पर विद्वानों ने उनके कुछ तत्त्व निर्धारित करने का प्रयास अवश्य किया है, पर समयानुसार इसमें परिवर्तन सम्भव है। जैसे प्राचीन साहित्य से आधुनिक साहित्य में

काफी परिवर्तन हुआ है। इसी तरह से आधुनिक युग से अत्याधुनिक युग की ओर जाते हुए किसी भी प्रकार के ऐसे निश्चित एवं स्थिर नियमों का पालन सम्भव नहीं है। फिर भी व्यंग्यकारों ने जिस तरह से व्यंग्य विधा के तत्त्वों की बात कही है वो काफी सराहनीय है। जिनके सन्दर्भ में विद्वानों के मत कुछ इस रूप में पाए जाते हैं।

डॉ. विरेन्द्र महेदीरता के अनुसार, “व्यंग्य में तीन मूल तत्त्व होने चाहिए, १. आलोचना, २. हास्य अथवा बीभत्सता और ३. सुधार।”^(१२६) ये व्यंग्य के मूल स्वभाव के आधार पर से बनाये गए तत्त्व हैं। डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी मानते हैं कि, “व्यंग्य में चार मूल तत्त्वों की आवश्यकता रहेती हैं।

१. साहित्यिकता और साहित्यविधा

२. दूसरों की अथवा मूर्खताओं की हँसी उड़ाना

३. व्यंग्य की दृष्टि के लिए हास्य, वक्रोक्ति, वचन विदग्धता सभी उपकरणों का प्रयोग

४. सुधार का उद्देश्य।”^(१२७)

डॉ. बरसानेलाल ने भी व्यंग्य के स्वभावानुरूप तत्त्व ही व्यक्त किए हैं। जो उनमें सहज आवश्यक है।

डॉ. हरिशंकर दुबे ने व्यंग्य विधा को सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषित करते हुए उनके बहोत से तत्त्व बताये हैं जैसे - “विसंगतियों का कथ्य, चरित्रांकन का वैशिष्ट्य, सत्यान्वेषण परक दृष्टि, भिन्नताओं का मिश्रित स्वभाव, भाषागत वैशिष्ट्य, फन्तासी के प्रयोग, बुद्धिपक्ष का प्राधान्य, तटस्थ विश्लेषणात्मकता, संवेदना की पृष्ठभूमि, संक्षिप्तता एवं संहिति।”^(१२८)

डॉ. बापूराव देसाई ने व्यंग्य-विधा का स्वरूप निर्धारित करते हुए उनके लिए निम्नलिखित मानदण्ड निश्चित किए हैं, जैसे - “मीठा प्रहार, चरित्र-चित्रण, सुधार, विविध गुण, देशकाल तथा वातावरण, शैली।”^(१२९) इन तत्त्वों में व्यंग्य का स्वरूप काफी कुछ स्पष्ट होता हुआ पाया जाता है।

डॉ. शेरगंज गर्ग व्यंग्य-विधा के तत्त्वों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि-“व्यंग्य

में निहित संवेदनशीलता, गम्भीरता, बौद्धिकता, सांकेतिकता एवं तटस्थ विश्लेषण ही व्यंग्य को सार्थक श्रेष्ठ तथा गहरा बनाता है।”^(१३०)

डॉ.सुरेश माहेश्वरी ने यथार्थता, संवेदनशीलता, गम्भीरता प्रौढभाषा, बौद्धिकता सांकेतिकता और तटस्थ विश्लेषण को व्यंग्य के तत्त्व रूप माना है, उनके मतानुसार, ‘जहाँ इन तत्त्वों की उपस्थिति अधिक होती है, वहीं व्यंग्य अधिक प्रखर बनता है।’^(१३१)

प्रा.समता पीयूषकान्त पहेल ने अपने शोधप्रबन्ध में लिखा है कि - “व्यंग्य साहित्य के अध्ययन द्वारा निष्कर्ष रूप में करीब-करीब सर्वमान्य तत्त्वों-यथा विसंगतियों का कथ्य, चरित्र-चित्रण, बौद्धिकता, तटस्थता, देशकाल-वातावरण, भाषा-शैली, सुधारवादी उद्देश्य आदि माने हैं।”^(१३२) इन उपरोक्त विभिन्न मतों को देखने से ये स्पष्ट होता है कि इन सन्दर्भ में एकरूपता कायम नहीं हो पाई है, पर इस सन्दर्भ में इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि व्यंग्य-विधा के तत्त्वों में कुछ विशेष परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं लगती, जिस तरह से उपन्यास, कहानी, नाटक के तत्त्वों में मूलतः कोई अन्तर नहीं है, कथा, पात्र, चरित्र, भाषा-शैली, उद्देश्य ये तत्त्व सभी में समान हैं पर उन तत्त्वों में आंतरिक रूप से उन विधा के स्वभावानुसार परिवर्तन हो जाता है उसी प्रकार व्यंग्य विधा के तत्त्वों को बिलकुल अलग रूप में रखकर उन्हीं तत्त्वों के साथ उनके वैशिष्ट्य के अनुसार जोड़कर देखे तो वो कुछ इस प्रकार बन सकते हैं।

- विसंगतियों से युक्त कथानक
- तटस्थ चरित्रांकन
- समसामायीक एवं यथार्थता सभर देशकाल-वातावरण
- बौद्धिक एवं प्रहारात्मक भाषाशैली एवं संवाद
- सुधारवादी एवं प्रगतिशील उद्देश्य

किसी भी व्यंग्य रचना में इन सारे तत्त्वों का उपयुक्त मिलन हो तो रचना की अभिव्यक्ति श्रेष्ठतम् रूप धारण कर लेती है। इन सारे तत्त्वों की समन्विति से ही व्यंग्य-लेखन सफल कहा जा सकता है।

३.२.९ हास्य-व्यंग्य का सम्बन्ध एवं साम्य-वैषम्य (पार्थक्य के धरातल) :-

जब से व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रस्थापित करने के सन्दर्भ में चिन्तन शुरू हुआ तब से हास्य और व्यंग्य के सम्बन्ध एवं साम्य-वैषम्य के बारे में चिन्तन होने लगा कि दोनों के बीच में कैसे और कितना सम्बन्ध है? दोनों किन दृष्टियों से अलग होते हैं?जिनमें बहोत से विद्वानों ने व्यंग्य को हास्य से जुड़ा हुआ माना है और कुछ मनीषियों ने व्यंग्य को हास्य से बिलकुल पृथक कर लिया है, उन पर विचार करने से पहले दोनों के मूल स्वभाव को जान लेना जरूरी है।

हास्य मानवजीवन का मरु उद्यान है, जहाँ पर थकाहारा मानव खोयी हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर अपनी राह पर दूगने वेग से चल पड़ता है। हास्य मानव जीवन के दुख दर्द से उत्पन्न विषादमयी निराशा के कोहरे को सूर्य की अरुणिम रश्मियों की भाँति भिन्न-भिन्न कर एक स्वस्थ वातावरण उपस्थित करता है और उसकी शिथिल क्रियाशीलता को नव शक्ति प्रदान कर निरन्तर विकासमान दिशा की ओर प्रेरित करता रहता है। इसीलिए हास्य के द्वारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के मध्य उत्पन्न अस्वास्थ्य पर प्रवृत्तियों का नियमन सम्भव होता है इसलिए हास्य का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।^(१३३)

उसी प्रकार व्यंग्य के मूलभूत स्वभाव को देखे तो व्यंग्य एक साहित्यिक अस्त्र है जिनसे जीवन की विसंगतियों पर प्रहार किया जाता है। व्यक्ति का निजी जीवन तथा उसकी सामाजिक परिस्थितियाँ विभिन्न अन्तर विरोधों को अपने में लिये हुए है, जिनसे उसे सुन्दर, अकलुषित बनने में बाधाएँ आती हैं। व्यंग्य के माध्यम से इन बाधाओं पर तीखा प्रहार होता है। इससे ये स्पष्ट है कि व्यक्ति तथा समाज के हित की भावना से की गई गहरी चोट ही व्यंग्य है। अनादर, अपेक्षा, बेईमानी, असत्य भाषण आदि के अनुभव से जीवन में असंतोष पैदा होता है। जिनसे क्रोध का जन्म होता है। जो साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति द्वारा प्रगट करते हैं। तब ऐसी परिस्थितिमें व्यंग्य का प्रादुर्भाव होता है।

हास्य एवं व्यंग्य के सन्दर्भ में इतनी स्पष्टता के बाद उन दोनों में कहा, किस तरह से पार्थक्य देखने को मिलता है क्या?..व्यंग्य में हास्य एवं व्यंग्य समाविष्ट रहेता है

कि नहीं उसे लेकर काफी चिन्तन प्रस्तुत हुवा है। मत-मतान्तर देखे जा सकते हैं जिनसे सारी बातें साफ हो जाती हैं। जिनके सन्दर्भ में विद्वानों के मत कुछ निम्नांकित हैं।

डॉ.शेरगंज गर्ग के अनुसार - “व्यंग्य और हास्य में अधिकार क्षेत्र को लेकर द्वन्द्व की स्थिति रही है। हिन्दी-समीक्षा में व्यंग्य के पृथक् अस्तित्व के लिए संघर्ष जारी है। उसे हास्य रूप से अधिक नहीं माना गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बेढब बनारसी और गुलाब अहमद फुरकत जैसे विद्वान अपनी परिभाषाओं में हास्य के बीना व्यंग्य की कल्पना ही नहीं करते।”^(१३४)

डॉ.बरसानेलाल मानते हैं कि - “हास्य का उद्देश्य विशुद्ध मनोरंजन करना होता है, जब की व्यंग्य का उद्देश्य सुधार करना होता है। हास्य में भावनात्मक तत्त्व प्रमुख होता है। व्यंग्य में बुद्धितत्त्व। व्यंग्यकार हर प्रकार की विकृतियों को गम्भीरता से देखता है, निर्ममता से उसका पर्दाफाश करता है, एवं समाज से अपेक्षा करता है कि उस व्यक्ति की भर्त्सना करे जबकि हास्यकार उस विकृतियों का वर्णन कर संतोष कर लेता है।”^(१३५)

डॉ.पारुकान्त देसाई ने लिखा है कि - “हास्य निर्देश होता है उसमें कटुता और निकटता नहीं होती, जबकि व्यंग्य में यह तीनों चीज़ें होती हैं। उसका उद्देश्य ही कईबार व्यक्ति के मनो-मस्तिष्क पर चोट पहुँचाकर तिलमिलाहट पैदा करना होता है। हास्य का उद्देश्य मानसिक तनाव कम करना है। विपरीत इसके व्यंग्य का उद्देश्य मानसिक तनाव पैदा करके विद्रोह की भूमिका को तैयार करना है।”^(१३६)

डॉ.शंकर पुणतांबेकरने सहजता से स्पष्ट किया है कि - “हास्य और व्यंग्य के फर्क को एक स्थूल उदाहरण से भी समझा जा सकता है। हास्य गिलास के आधेपन का मखोल उड़ाता है, तो व्यंग्य गिलास के आधेपन पर चौट करता है। हास्य बहुमुखी है, तो व्यंग्य अंतर्मुखी। हास्य दर्द भूलने का नशा जगाता है, तो व्यंग्य नशा भूलने का दर्द जगाता है।”^(१३७)

डॉ. राधेमोहन शर्मा लिखते हैं कि - “मानव अस्तित्व में हास्यास्पद तत्त्व सम्भवतः

निहित है। हमारी कतिपय मौलिक चेष्टाएँ एवं क्रियाएँ हमारे भावावेग और हमारे शारीरिक व्यक्तित्व के कई रूप हास्यास्पद है असंगतियों और अन्तरविरोधों मानव अस्तित्व में सदैव रहे हैं और शायद सदैव रहेंगे भी। इसलिए हास्य और व्यंग्य मानवता के साथ ही अस्तित्वमान रहेते आए हैं। मिथ्या आडम्बर, पाखण्ड और असंगति से प्रेरित होने के कारण हास्य और व्यंग्य दोनों सजातीय है, इनके रग-रेशे को एक-दूसरे से अलग करके देख पाना कठीन हैं।”^(१३८)

पाश्चात्य विद्वान भी हास्य-व्यंग्य को अलग न मानकर व्यंग्य को हास्य का ही एक रूप मानते हैं ‘ईश्वरइवान’ ने माना है कि - ‘व्यंग्य में जब हास्य का पुट मिला दिया जाता है तो व्यंग्य मनभावन और रुचिकर बन जाता हैं।’^(१३९) रिचर्ड गार्नेट भी मानते हैं कि, “हास्य के बिना व्यंग्य गाली का रूप धारण कर लेता है।”^(१४०) प्रो.पोट्स कहते हैं कि, “कोमेडी जीवन तथा मानव प्रकृति को सद्भावना एवं सहानुभूति के साथ ग्रहण करती है तथा कभी-कभी उसके प्रति क्षेभ का भाव भी होता है किन्तु दृष्टिकोण सदैव उदार एवं प्रेमपूर्ण होता है। इसके विपरीत व्यंग्य विकृति को नकारता ही नहीं है वरन उसका विध्वंस करके ही छोड़ता है।”^(१४१) इसी संदर्भ में डॉ.बरसानेलाल का कथन भी उल्लेखनीय है। वो मानते हैं कि, “हास्यकार अपने आलम्बन का मजाक सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उड़ाता है जबकि व्यंग्यकार का उद्देश्य हँसी द्वारा दंड देना होता हैं।”^(१४२)

इन उपरोक्त विवेचनों से हास्य एवं व्यंग्य के बीच की भेदरेखा काफी कुछ स्पष्ट हो जाती हैं, पर इस बात की अनुभूति भी होती है कि हास्य-व्यंग्य का आपसी रिश्ता काफी गहरा है। व्यंग्य के बीना हास्य अधूरा है हास्य के बीना व्यंग्य। यह भी मानना ही पड़ सकता है कि किसी रचना में भले ही किसी एक को नजर में रखते हुए लिखा गया हो पर दोनों का सामाजस्य कहीं न कहीं अवश्य हो जाता है। पर समसामायिक युग में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक विकृतियों इतनी बढ़ गई है कि आज ऐसी विकृतियों का पर्दाफाश करने के लिए जो व्यंग्य साहित्य लिखा जाता है उसमें हास्य गायब रहेता है फिर भी हम कह सकते हैं कि हास्य और व्यंग्य एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं। हास्य के बिना व्यंग्य में मज़ा नहीं और व्यंग्य के बिना हास्य में स्वाद नहीं आता। दोनों बराबर

एक-दूसरे का साथ दे तब ही जन-गन-मन की गाड़ी ठीक से चलती हैं।^(१४३)

वैसे देखा जाये तो हास्य एवं व्यंग्य का उद्देश्य भले अलग हो पर दोनों मूलतः विसंगतियों, विकृतियों के कारण ही है। हास्यकार सीधे हँसाते हैं और व्यंग्यकार जब मिथ्याचारों को पकड़ता है तो खुशी होती है। समय रहते ये खुशी हँसी में बदल जाती है। पर ये हँसी प्रसन्नता की नहीं होती कसक की होती है। वैसे दोनों की प्रेरणा, प्रयोजन, धर्म, प्रविधि, दृष्टिकोण यथार्थ सापेक्षता एवं अभिव्यक्ति के ढंग से भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ते हैं। जिनके कारण दोनों को अलग-अलग रूप में हम कुछ इस रूप से वर्गीकृत कर सकते हैं :

- हास्य शब्द एवं मसखरेपन से पैदा होता है, व्यंग्य गहरी विचारधारा से।
- हास्य का उद्देश्य विशुद्ध मनोरंजन होता है, व्यंग्य का सुधार।
- हास्य की मूल धर्मिता सहज होती है व्यंग्य की मूल धर्मिता सामाजिकता से जुड़ी हुई होती है।
- हास्य में भावतत्त्व का एवं व्यंग्य में बुद्धितत्त्व का महत्व रहेता है।
- हास्य में विकृतिका वर्णन कर संतोष लिया जाता है, व्यंग्य गम्भीरता से निर्ममता से पर्दाफाश करता है।
- हास्य में निर्देश, कटूता, तिक्तता नहीं होती, व्यंग्य में तीनों होते हैं।
- हास्य मानसिक तनाव दूर करता है, व्यंग्य पैदा करता है मनो-मस्तिष्क पर चोट करता है।
- हास्य मखोल उड़ाता है व्यंग्य विद्रोह करता है।
- हास्य बहुमुखी होता है व्यंग्य अर्न्तमुखी।
- हास्य दर्द भूलाने का नशा जगाता है, व्यंग्य नशा भूलाने का दर्द।
- हास्य का दृष्टिकोण उदार एवं सद्भावपूर्ण होता है, व्यंग्य हँसी द्वारा दंड देता है।
- हास्य में विकृतिका रस लेकर वर्णन होता है, व्यंग्य विकृति के विरुद्ध तीव्र बौद्धिक

प्रतिक्रिया देता हैं।

- हास्य कल्पना या यथार्थ के छिछले स्तर पर रहेता है, व्यंग्य यथार्थ की पूर्ण गहरेरई तक पहुँचता हैं।
- हास्य एक अस्थायी भाव है, क्षणिक आवेश है, व्यंग्य नहीं।
- हास्य स्थूल और सत ही होता है व्यंग्य सूक्ष्म और गहरा।
- हास्य आत्मस्थ और परस्थ होता है, व्यंग्य अधिकतर परस्थ होता हैं।
- हास्य में लक्ष्य के प्रति सहानुभूति होती है, व्यंग्य में इसका अभाव रहेता हैं।
- विशुद्ध हास्य द्वारा मुख प्रोत्साहित होता है, व्यंग्य में नष्ट होता हैं।
- हास्य केवल आनंदोत्पत्ति के लिए व्यंग्य का समाज के प्रति दाईत्व रहेता हैं।
- हास्य सुन्दर की कामना करता है, व्यंग्य लक्ष्य की पूकार।
- हास्य विनोदप्रियता का परिणाम है, व्यंग्य परिवर्तन का भी, चेतना का भी परिणाम।

इतना विश्लेषण करने के बाद ये सहज स्पष्ट है कि हास्य एवं व्यंग्य के बीच मुलभूत अन्तर तो है पर सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करे तो व्यंग्य हास्य से स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी हास्य के संस्पर्श से सर्वथा मुक्त नहीं होता है। अगर व्यंग्य बिलकुल हास्य मुक्त हो तो वो सिर्फ एक गम्भीर लेख ही कहेलाता है, उसी रूप से हास्य भले ही शुद्ध मज़ाक हो पर उसमें कहीं न कहीं व्यंग्यात्मक चोट अवश्य रहती है। फिर भी आज का अत्याधुनिक व्यंग्य ज्यादा से ज्यादा हास्य विचलित होता जा रहा है। ऐसा हम अवश्य कह सकते हैं।

३.२.१० श्रेष्ठ व्यंग्य का स्वरूप :-

व्यंग्य के स्वरूप को लेकर इतना विश्लेषण करने के बाद ये अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि श्रेष्ठ व्यंग्य किसको कहा जा सकता है। श्रेष्ठ व्यंग्य रचना में कोन सी ऐसी बात हो लक्षण हो तो वो उत्तमोत्तम बन सकता है। विद्वानों ने व्यंग्य के मूलतः स्वभाव

एवं उद्देश्य को लक्ष्य करते हुए उत्तम व्यंग्य के बारे में अपने विचार रखे हैं।

डॉ.द्विवेदी ने श्रेष्ठ व्यंग्य की और संकेत करते हुए लिखा है : “इसमें संदेह नहीं कि सरल सादी भाषा में चोट करनेवाली शैली ही व्यंग्य की उत्कृष्टता का लक्षण है। सीधी-सहज भाषा में तेज और धारदार बात कह डालने की क्षमता कुशल व्यंग्यकारों में ही होती है। वस्तुतः श्रेष्ठ एवं स्वस्थ व्यंग्य की पहचान अपने आप में एक समस्या है। हास्यरस की गुदगुदी से बौझिल व्यंग्य को स्वस्थ व्यंग्य नहीं कहा जा सकता। कुंठाग्रस्त और घोर निराशावादी मानस से उत्पन्न व्यंग्य भी स्वस्थ व्यंग्य नहीं कहा जा सकता है। व्यंग्यकार मानव-जीवन में पूरी आस्था रखता है और संभवतः इसी कारण वह गहरी संवेदनशीलता एवं तटस्थता के साथ जीवन की तृटियों का अन्वेषण भी कर पाता है। खण्डनात्मक एवं निषेधात्मक जीवन दृष्टि के अन्तरगत रचा गया व्यंग्य भी स्वस्थ नहीं माना जा सकता है। व्यंग्य का राग द्वेष मुक्त होना एक अनिवार्य शर्त है। पूर्वाग्रह और कुंठाओं के परिणाम स्वरूप किए गए व्यंग्य में बहुधा सौजन्य और गम्भीरता का औदात्य स्थिर नहीं रह पाता। कुंठाग्रस्त छीटांकशी निश्चय ही गाँजे की चिलम न पा सकनेवालों का आक्रोश है। इन छीटों से व्यंग्य की आत्मा का हनन होता है। व्यंग्यकार में उच्चकोटी की सांस्कृतिक रुचि और आंतरिक स्वस्थता होनी चाहिए। हृदय और बुद्धि के संतुलित समन्वय के फल स्वरूप व्यंग्य का चरित्र महान बनता है।”^(१४४)

डॉ.तिवारी के अनुसार, “व्यंग्य की प्रभावपूर्ण संरचना उनकी कथन शैली में निहित है। विरूपता कितनी ही ऊँची हो, यदी सपाट शैली में पेश है तो वह रचना व्यंग्य का दर्जा प्राप्त नहीं कर पाती।”^(१४५)

उषाशर्मा के अनुसार - “सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य वह होता है जिसमें व्यंग्यकार और पाठक की अनुभूति में तादात्म्य स्थापित हो जाए।”^(१४६)

डॉ.बरसानेलाल मानते हैं कि - “व्यंग्य को कलात्मक बनाने के लिए संयमित भाषा बिम्ब-विधान, प्रतीक योजना एवं संक्षिप्तता आवश्यक हैं।”^(१४७) डॉ.नामवरसिंह ने भी संक्षेप अथवा शाब्दिक मित व्ययिता को श्रेष्ठ व्यंग्य का प्रमुख लक्षण माना है।^(१४८) तो

डॉ.शेरगंज गर्ग ने माना है कि - “व्यंग्य में निहित संवेदनशीलता गम्भीरता, बौद्धिकता, सांकेतिकता, एवं तटस्थ विश्लेषण ही व्यंग्य को सार्थक, श्रेष्ठ और गहरा बनाता है।”^(१४९) डॉ.सुरेश माहेश्वरी ने भी स्पष्ट कहा है कि - “वहीं व्यंग्य श्रेष्ठ व्यंग्य होगा जिसमें समाज की सारी कुरूपता, विरूपता और बेढंगापन दर्पण में प्रतिबिम्बवत् नज़र आ जाए। जो टूटे मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होने के साथ-साथ बताये कि जो टूट तो चुका है वह जाने योग्य नहीं था, केवल सामाजिक विद्रुपता पर चोट न करते हुए उसकी गहराई में जाए जो मानव की नियति को देशकाल से परे ले जाती हैं।”^(१५०)

श्रेष्ठ व्यंग्य के सन्दर्भ में इन विचारों से स्पष्ट है कि वही व्यंग्य श्रेष्ठ माना जा सकता है, जिसमें.....

- गहरी संवेदनशीलता एवं तटस्थता हो।
- सरल-शादी भाषा एवं साफ चोट करनेवाली शैली हो।
- जीवन की तृटियों पर अन्वेषण हो।
- खण्डनात्मक एवं निषेधात्मक दृष्टि से रही हो।
- उच्चकोटी की सांस्कृतिकता एवं स्वस्थता हो।
- हृदय एवं बुद्धि का संतुलन हो जो सत्य से सारोकार रखता हो।

इन पर से ये स्पष्ट है कि आदर्श व्यंग्य में मनुष्य और जीवन की मात्र हँसी उड़ाने की ललक नहीं होती, अपितु उसका मूलकार्य प्रहार करना होता है। स्वस्थ व्यंग्य वहीं माना जा सकता है जो जीवन से निराश न हो, वो कुम्हार के समान हो जो उपर से फटकारे, पर भीतर से सवॉरे। परसाईजी के शब्दों में कहे तो - “व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, उसकी उसके प्रति निष्ठा होती है और वह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है।”^(१५१) वहीं ही श्रेष्ठ व्यंग्य माना जा सकता है।

३.२.११ निष्कर्ष :-

इन समस्त विवरणों से ये स्पष्ट है कि व्यंग्य एक सौदेश्यपूर्ण विधा है। वह छुपाई हुई कमजोरियों को खोल देता है। वो सत्य से सारोकार रखता है जो असंगत व असत्य

है उस पर प्रहार करता है। व्यंग्य नैतिकता, शोषण, आचार मान्यताओं के खिलाफ चेतना जागृत करता है। व्यंग्य में उच्छ्वकोटी की सामाजिक चेतना का संचार होता है जिसमें उत्तमोत्तम दृष्टिकोण का सृजन होता है। एवं सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक क्रांति का निर्माण होता है जिनसे रचनात्मकता, व्यावहारिकता एवं उत्तम दृष्टिकोण का विकास होता है। इसलिए ही डॉ.मलय ने माना है कि - “व्यंग्य के कारण दुश्मन हताश, मित्र गौरवान्वित एवं जन साधारण प्रसन्न और सुख का अनुभव करता है। इसलिए व्यंग्य की विजय समस्त समाज की विजय हैं।”^(१५२)

संदर्भ सूची

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	१६
२	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१
३	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधूसुदन पारेख	१
४	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	१७
५	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	२५
६	सदाचार का ताबीज़ा	हरिशंकर परसाई	७०
७	हास्य के सिद्धांत और मानस में हास्य	श्री जगदीश पाण्डेय	१
८	विचार और विवेचन	डॉ.नगेन्द्र	७४
९	हास्य मंदिर	रमणभाई निलकंठ	
१०	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	२५
११	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१४
१२	हिन्दी कविता में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	२५
१३	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१५
१४	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	२६से३१
१५	हरस्य की रूपरेखा	डॉ.एस.पी.खत्री	१९९
१६	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	४०
१७	॥	॥	४१
१८	हिन्दी साहित्य में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	३१
१९	लिटररी क्रिटिसिज्म-ए शॉर्ट हिस्ट्री	विलीयम विमसेट क्लीन्थ बुक्स	५७०

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
२०	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	५
२१	॥	॥	७
२२	॥	॥	९
२३	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	४४
२४	हिन्दी नाटकों में हास्य-तत्व	डॉ.शान्तारानी	९२
२५	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	९
२६	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	१८
२७	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	१७
२८	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	१८
२९	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	४
३०	अग्निपुराण	वेद्व्यास	४२३
३१	नाट्यशास्त्रम्	भरतमूनि	१३४
३२	दशरूपक	धनंजय	५७
३३	काव्यप्रकाश	मम्मटाचार्य	६६
३४	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ	३
३५	हिन्दी साहित्य कोश		९६५
३६	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	६
३७	रस मीमांसा	आ.रामचन्द्र शुक्ल	१९५
३८	हास्य की रूपरेखा	डॉ.एस.पी.खत्री	३२
३९	हिन्दी साहित्य में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	११
४०	व्यास अभिनन्दन ग्रंथ (व्यास के हास्य निबंध)	डॉ.सावित्री सिन्हा	१२०

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
४१	हिन्दी कविता में हास्य रस	सरोज खन्ना	३२
४२	हास्य का विवेचन	डॉ.बलदेव मिश्र	११
४३	विनोद और व्यंग्य	डॉ.पुतूलाल शुक्ल	३६
४४	स्वातंत्र्योत्तर कविता में व्यंग्य	डॉ.शेरजंग गर्ग	२९
४५	हिन्दी साहित्य में हास्य रस	डॉ.गुलाबराय	भूमिका से
४६	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	८/९
४७	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसुदन पारेख	२
४८	॥	॥	२
४९	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	२२
५०	इंग्लिश ह्युमर	जे.क.प्रिन्टले	१८
५१	हाउ टू राईट	स्टीफन लीकाँक	१८६
५२	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१०
५३	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	३३
५४	गुजराती कविता मां हास्य निरूपण (साहित्यालेख)	जशवंत शेखडरवाला	१४५
५५	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१०
५६	नाट्यशास्त्र	भरतमूनि	७१
५७	हिन्दी रसगंगाधर (भाग-१)	श्री पुरसोत्तम शर्मा	१२०
५८	साहित्य दर्पण	आ.विश्वनाथ	३८
५९	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	३४
६०	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१२

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
६१	रसप्रिया(हि.सा.कोश से उद्धृत)	केशवदास	३८
६२	हास्य का विवेचन	डॉ.बलदेव मिश्र	१०
६३	रसकलश	अयोध्यासिंह उपाध्या	२९२
६४	रिमझिम	डॉ.रामकुमार वर्मा	११
६५	हिन्दी साहित्यकोश भाग-१		९६६
६६	हिन्दी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन	डॉ.ज्ञानप्रकाश	१६
६७	ए डिक्शनरी ऑफ मॉडर्न इंग्लिश युसेज	एच.डबल्यु.फाउलर	२४१
६८	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	५०
६९	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य	किशोर सिंह राव	३९
७०	हिन्दी व्यंग्य विधाशास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	२३
७१	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	स्मिता चिपलुणकर	९
७२	आधुनिक व्यंग्य का स्त्रोत और स्वरूप	डॉ.छविनाथ मिश्र	७
७३	व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी	डॉ.नन्दलाल कल्ला	१३
७४	हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य	सं.प्रेमनारायण टंडन	३३
७५	आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१०
७६	स्वातंत्र्योत्तर कविता में व्यंग्य	डॉ.शेरजंग गर्ग	२२
७७	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	स्मिता चिपलुणकर	१०
७८	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	५०
७९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध और निबंधकार	डॉ.बापूराव देसाई	१९
८०	समकालीन हिन्दी व्यंग्य : एक परिदृश्य	सुदर्शन मजिठीया	१७३
८१	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	३५

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
८२	हास्य की रूपरेखा	डॉ.एस.पी.खत्री	१८०
८३	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	६२
८४	हिन्दी साहित्य में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१९
८५	हिन्दी साहित्य कोश (व्यंग्य गीति भाग-१)	रामखेलापन पाण्डे	३/८०५
८६	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	२१
८७	तिरछी रेखाएँ	हरिशंकर परसाई	भूमिका से
८८	हरिशंकर परसाई - व्यंग्य की पौराणिक पृष्ठभूमि	प्रो.राधेमोहन शर्मा	१४
८९	सदाचार का तावीज	हरिशंकर परसाई	१०
९०	हिन्दी साहित्य में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	४२
९१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध और निबंधकार	डॉ.बापूराव देसाई	२२
९२	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	५६
९३	हास्य की रूपरेखा	डॉ.एस.पी.खत्री	२०९
९४	तेल की पकोडिया	डॉ.प्रभाकर माचवे	५
९५	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	नरेन्द्र कोहली	७
९६	प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएँ	शरद जोशी	३२०
९७	हास्य-व्यंग्य भारती	सं.डॉ.राममोहन सिंह	१५
९८	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	७७
९९	सेटायर	डॉ.मधुसुदन पारेख	१०
१००	एनसाईक्लोपिडिया ब्रिटैनिका	रिचार्ड गार्लेट	५

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१०१	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य	किशोर सिंह राव	४२
१०२	जोनाथन स्विफ्ट एण्ड दि एनाटोमी ऑफ सटायर	जॉन. एम.बुलिट	३९
१०३	हास्य-व्यंग्य भारती	सं.डॉ.राममोहन सिंह	१४
१०४	व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी	डॉ.नन्दलाल कल्ला	१९
१०५			२०
१०६	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध और निबंधकार	डॉ.बापूराव देसाई	२५
१०७	हिन्दी व्यंग्य विधाशास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	२७
१०८	व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी	डॉ.नन्दलाल कल्ला	२२
१०९	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	६९
११०	आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	२४
१११	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य	डॉ.शेरजंग गर्ग	६९
११२	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	७३
११३	हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विनोद	डॉ.गणेशदत्त सारस्वत	१७
११४	व्यंग्य और भारतेन्दु युगीन गद्य	डॉ.माँगीलाल उपाध्याय	५२
११५	हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में वर्गचेतना	कु.आभा भट्ट	६५
११६	सेटायर	डॉ.मधुसुदन पारेख	२०
११७	व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी	डॉ.नन्दलाल कल्ला	२७
११८	हास्य-व्यंग्य भारती	सं.डॉ.रामगोपाल सिंह	६
११९	सदाचार का तावीज	हरिशंकर परसाई	११
१२०	हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	५
१२१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध और निबंधकार	डॉ.बापूराव देसाई	२८

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१२२	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ.स्मिता चिपलूणकर	२१
१२३	विकलांग श्रद्धा का दौर	डॉ.हरिशंकर परसाई	४५
१२४	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	६५
१२५	हिन्दी व्यंग्य और व्यंग्यकार	डॉ.बापूराव देसाई	१५
१२६	आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य	डॉ.विरेन्द्र महेदीरत्ता	१५/१६
१२७	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१२
१२८	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दूबे	२०/२५
१२९	हिन्दी व्यंग्य विधाशास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	२२
१३०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य	डॉ.शेरजंग गर्ग	६१
१३१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	३६
१३२	व्यंग्यकार शरद जोशी-व्यंग्य और शिल्प	प्रा.समता पी. पटेल	५
१३३	हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में वर्गचेतना	कु.आभा भट्ट	७१
१३४	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य	डॉ.शेरजंग गर्ग	२७
१३५	आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१२
१३६	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य	किशोर सिंह राव	५३
१३७	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ.स्मिता चिपलूणकर	१६
१३८	व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	डॉ.राधेमोहन शर्मा	१८
१३९	द ह्यूमर ऑफ ह्यूमर	ईसर ईवान	२०३
१४०	एनसाईक्लोपिडिया ब्रिटैनिका	रिचार्ड गार्लेट	८६-८८
१४१	हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में वर्गचेतना	कु.आभा भट्ट	७७
१४२	आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१२
१४३	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ.स्मिता चिपलूणकर	१७
१४४	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य व्यंग्य	बालेन्दु शेखर तिवारी	६६

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१४५	व्यंग्य चिंतना और शंकर पुणताम्बेकर	बालेन्दु शेखर तिवारी	१२६
१४६	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	५३
१४७	आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	२१
१४८	कविता के नये प्रतिमान	डॉ.नामवरसिंह	१६६
१४९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य	डॉ.शेरजंग गर्ग	८१
१५०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	४२
१५१	सदाचार का ताविज	हरिशंकर परसाई	६
१५२	व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र	डॉ.मलय	२८

अध्याय : ४

हिन्दी एवं गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा

४.१ हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा

४.१.१ प्रास्ताविक

४.१.२ भारतेन्दु युगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.१.३ द्विवेदीयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.१.४ शुक्लयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.१.५ शुक्लोत्तर हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.२ गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा

४.२.१ प्रास्ताविक

४.२.२ सुधारयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.२.३ पंडितयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.२.४ गांधीयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

४.२.५ आधुनिक हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य।

४.१ हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा

४.१.१ प्रास्ताविक :-

हिन्दी-गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्धों का परम्परागत अध्ययन एवं विवेचन अपने आपमें एक विशेष महत्व रखता हैं। किसी भी साहित्य की विधाओं के अध्ययन में उनका परम्परागत अध्ययन महत्वपूर्ण माना जाता हैं। इस सन्दर्भ में हम हिन्दी के हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य की बात कहें तो हास्य-व्यंग्य निबन्ध आधुनिक साहित्य की देन हैं क्योंकि गद्य-विधाओं का आरम्भ आधुनिक युग से ही हुआ है। पर यह सच है कि हास्य-व्यंग्य परम्परा काफी प्राचीन है, साहित्य के प्रादुर्भाव के साथ ही उसे जोड़ा जाता है। “प्रायः विश्व के साहित्य के समस्त मीमांसकों का यह मत है कि जिस से साहित्य रचना का आरम्भ हुआ, उसी समय से व्यंग्य का भी आरम्भ हो गया।”^(१) आदि कवि वाल्मीकि की वाणी :

“मा निसाद प्रतिष्ठाम त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् कौंच मिथुनादेक मवधीः काम मोहितम्।।”^(२)

इसमें करुणा तो है पर साथ ही साथ कुकृत्य के कारण भर्त्सना भी मिलती है। यहीं से व्यंग्य भी व्यक्त होता हुआ पाया जाता है क्योंकि व्यंग्य का सबन्ध जीवन से है इसलिए व्यंग्य की धारा सहज रूप से कभी मंथर तो कभी तीव्र गति से सदैव साहित्य के साथ चलती रही है। रामखेलावन पाण्डे के अनुसार - “ऐसे तो व्यंग्यात्मक आवेश वेदोंमें मिलते हैं किन्तु नाट्यशास्त्र में व्यंग्यात्मकता के स्पष्ट संकेत हैं। सिद्ध साहित्य में पूजा-पाठ करनेवाले पण्डितों, गंगा-स्नानादि को पूण्य-कर्म माननेवाले धर्मावलम्बियों पर व्यंग्य किये गये हैं।”^(३) इनसे स्पष्ट है कि हास्य-व्यंग्य परम्परा काफी प्राचीन हैं। सिद्धों तथा नाथों की रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की परम्परा पुरानी है। यह हास्य-व्यंग्य साहित्य प्रारम्भ में सिर्फ रचना की विशेषता के रूप में प्रयुक्त रहता था और आधुनिकाल से पहले वो सिर्फ काव्यात्मक रूप में ही पाया जाता है। नाथ सम्प्रदाय के काव्य में व्यंग्य का अस्तित्व मिलता है सरोजवज् (सरहया)

विद्वान कविने पाखंड और आडम्बर का विरोध कर वैदिक विधानों पर व्यंग्य प्रहार किये हैं।^(४) वैसे देखा जाये तो वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, प्राकृत अपभ्रंश साहित्य, विरगाथा साहित्य, भक्ति साहित्य एवं रीति साहित्य में हास्य-व्यंग्य का काव्यात्मक रूप मिलता है। विशेष रूप से मध्यकाल में कबीर जी ने सामाजिक विसंगति, जातिभेद, अंधश्रद्धा, हिन्दू-मुस्लिम धर्म का आडम्बर आदि कई द्वेषों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं जो काफी असरकारक हैं पर गद्यात्मक विधाओं का आरम्भ आधुनिक युग में हुआ इसलिए बापूराव ने लिखा है कि - “साहित्य विधा के रूप में निबन्ध की संभावना न आदिकाल में है, न मध्यकाल में अर्थात् भक्तिकाल एवं रीतिकाल में। अतः निबन्ध साहित्य की परम्परा आधुनिक युग में ही विचारणीय है।”^(५) स्पष्ट है कि जिस तरह से आधुनिक युग से ही सभी गद्य विधाओं का विकास माना जाता है उसी रूप में हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध का आरम्भ भी आधुनिक युग से ही माना जाता है। भारतेन्दु युग से ही हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध का आरम्भ हुआ माना जा सकता है, हिन्दी की हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध परम्परा को हम निम्नलिखित रूप से विभाजित कर सकते हैं :-

- भारतेन्दुयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध
- द्विवेदीयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध
- शुक्लयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध
- शुक्लोत्तर हास्य-व्यंग्य निबन्ध
- अद्यतन.....

४.१.२ भारतेन्दु युगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध :-

भारतेन्दुयुग आधुनिक युग का प्रवेशद्वार है, जहाँ से सभी नवीन गद्य-विधा का आरम्भ हुआ, उसी रूप में यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी के हास्य-व्यंग्य निबन्धों का प्रादुर्भाव भी यहीं से हुआ। भारतेन्दुजी ने ही हिन्दी व्यंग्य का श्रृंगार किया है। हिन्दी का पाठक आज हास्य-व्यंग्य का जो साक्षात्कार करता है उसे रूपायित करनेवाले भारतेन्दु

हरिचन्द्र थे। हिन्दी साहित्य का आधुनिककाल इस दृष्टि से भी आधुनिक और नया है कि हास्य और व्यंग्य ने आधुनिकता की अनुकूल लहर पाते ही विविध विधाओं में विस्तार ग्रहण किया। भारतेन्दु युग हिन्दी हास्य और व्यंग्य का यौवनकाल कहा जा सकता है। इसलिए श्याम मुरारी लिखते हैं कि - “हास्य-व्यंग्य की एक परम्परा के रूप में परिष्कृत एवं पुष्ट प्रवृत्ति आधुनिककाल की विशेषता है। भारतेन्दु युग हास्य-व्यंग्य का स्वर्णकाल था। भारतेन्दु की स्वयं और उनके समकालीन अन्य साहित्यकारों की सजीवता उस युग का सामान्य लक्षण हैं।”^(६)

भारतेन्दु-युग में गद्य और पद्य की विविध धाराओं में हास्य और व्यंग्य प्रवाहित हुआ। हास्य का रूपगत और विषयगत परिवर्तन करते हुए इस युग के साहित्यकारों ने व्यंग्य की आत्मा को भी पहचाना डॉ. हरिशंकर दुबे के अनुसार - “भारतेन्दु-युग में व्यंग्य के लिए विसंगतियों की उर्वश पृष्ठभूमि विद्यमान थी। एक ओर अंग्रेजों की व्यापारिक शोषण-परक मनोवृत्ति, प्रथम भारतीय महाक्रांति की असफलता और तदजन्य स्वातंत्र्यकामी चेतना थी तो दूसरी ओर भारतीय समाज व्यवस्था की मूढ़-मान्यताएँ, प्रचलित कुप्रथाएँ, अन्धविश्वास आदि थे, जिन पर नवीन शिक्षा प्राप्त भारतीय मनीषी एवं युवा-वर्ग चिन्तनकर समाज की जड़ता को दूर करने के लिए प्रयत्नशील थे। सुधारवादी सामाजिक आंदोलनों की धुम थी गरीबी, दैन्य और शोषण का हाहाकार था। भारतेन्दु और उनके समकालीन रचनाकार इस स्थिति के न केवल निकटवर्ती दृष्टा थे, अपितु भोक्ता भी थे। परिणामतः सार्थक व्यंग्य की सृष्टि हुई।”^(७)

इस युग के साहित्यकारों ने व्यंग्य को मारक बनाने के लिए गद्य विधाओं को विशेषकर चूना क्योंकि अब तक काव्यरूप ही प्रचलित थे। भारतेन्दुजी तथा उसके समकालीन साहित्यकारों ने सार्थक व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए गद्य की ‘निबन्ध’ विधा को चूना है इसलिए डॉ. दीक्षित लिखते हैं कि - “उस समय के सजीव लेखक ने निबन्ध को एक रोचक और उपयोगी माध्यम बनाया था। समाज, देश, धर्म-नीति सभी के प्रति असंतोष तथा विरोध-प्रदर्शन करने का एक मात्र साधन उनके पास व्यंग्यात्मक निबन्ध

था।”^(८) यह सत्य है कि इस युग के साहित्यकारों को जितनी सफलता निबन्ध रचना में प्राप्त हुई उतनी कविता एवं नाटक के क्षेत्र में नहीं मिली। वास्तव में गद्य-साहित्य की प्रौढ़तम विधा निबन्ध व्यंग्य के लिये सर्वोत्तम रूप से प्रयुक्त की जा सकती है। क्योंकि इसके द्वारा निबन्ध को कोई शिल्पगत बन्धन न होने के कारण व्यंग्यकार अपनी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति सरल रूप में सफलतापूर्वक कर सकता है। एवं निबन्ध में विश्लेषण व विवेचन करने के लिए व्यापक क्षेत्र होता है इसलिए इस युग के साहित्यकारों ने निबन्ध विधा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया।

भारतेन्दु युग के प्रमुख हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों के रूप में भारतेन्दुजी हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गौस्वामी, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमधन बालमुकुन्द गुप्त उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने श्री हरिचन्द्र-चन्द्रिका, ब्राह्मण, हिन्दी प्रदीप और भारतेन्दु जैसे पत्रों का सम्पादन भी किया है। उतने इन पत्रों के माध्यम से उन्होंने व्यापक रूप से हास्य और व्यंग्य निबन्धों को विकसित किया।

भारतेन्दुजी के हास्य-व्यंग्य निबन्ध युगीन परिस्थिति की प्रतिक्रिया के रूप में लिखे हैं। भारतेन्दुजी ने समय के साथ चलते हुए व्यंग्य प्रहारकर देशहित को बचाया हैं। बापूराव लिखते हैं कि - “भारतेन्दुजी ने अंग्रेजों की नीति, स्वार्थ, लूटारारूप, शासकों की प्रवृत्ति पर अपने निबन्धों में व्यंग्य किया हैं, तत्कालीन नारी की दुरावस्था पर भी तीखा व्यंग्य किया हैं। भारतेन्दुजी ने व्यंग्यात्मक निबन्धों में धार्मिक कर्मकांड, पाखंडपन, छुआछूत रुढ़िप्रियता, भूत-प्रेतादी की पूजा आदि कुप्रवृत्तियों पर जबरदस्त आघात किया हैं। मदिरा प्राशनकर होनेवाले दुष्परिणामों पर भी व्यंग्य किया हैं।”^(९) भारतेन्दुजी के व्यंग्य-निबन्धों भारतेन्दु ग्रन्थावली में मिल जाते हैं ‘कंकड-स्त्रोत’, ‘अंग्रेज स्त्रोत’, ‘वेश्या-स्तवराज’, ‘स्त्री-सेवा पद्धति’, ‘पाँचवा पैगम्बर’, ‘लंबी प्राणलेवी’, ‘स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन’, ‘इश्वर बड़ा विलक्षण हैं’, ‘भाँति-भाँति का जानवर मुशायरा’ अर्थात् ‘चिड़ियाघर का टीला’, ‘सच मत बोलो’, ‘उर्दू का स्यापा’, ‘आप ही होते’ आदि उनके प्रमुख निबन्ध हैं।

भारतेन्दु के निबन्धों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी बात जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए उन्होंने सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, जिनके कारण उनके निबन्ध गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। हम यह अवश्य कह सकते हैं कि भारतेन्दुजी हास्य-व्यंग्य की कला में निपुण थे।

भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों में भट्टजी का नाम सर्वोपरी हैं। भट्टजी युगीन स्थितियों को अच्छी तरह से समजते थे, उसे युग दृष्टा कहना अधिक उचित होगा। भारतेन्दु युग में संख्या की दृष्टि से भट्टजी ने सर्वाधिक निबन्ध लिखे हैं। कुछ आलोचक उन्हें हिन्दी का सर्वप्रथम निबन्धकार मानते हैं। जयनाथ 'नलिन' के अनुसार - "भारतेन्दुजी के प्रौढ़ व्यक्तित्वने पण्डित बालकृष्ण भट्ट में आकार पाया गम्भीरता और व्यंग्य की प्रभावशाली मिश्रण भट्टजी में हैं।"^(१०) भट्टजी के सन्दर्भ में ये स्पष्ट है कि सभी प्रकार के अभावों के बीच में उन्होंने साहित्य की सेवा की। डॉ.गौतम के अनुसार - "भट्टजी के व्यंग्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है, उनका व्यंग्य जीवन के सभी क्षेत्रों तक व्याप्त है। 'पुरातन और आधुनिक सभ्यता', 'अफिल अजीरन होगा', 'दिल बहलाने के जुदे-जुदे तरीके', 'ईश्वर क्या ही ठठोल है', 'नाक निगोडी भी बूरी बला है', 'खटका', 'गदहे में गदहापन क्या है', 'चली सो चली', 'हाकिम', 'पत्नीस्तव', 'चलन की गुलामी', 'इंगलिश पढ़े सो बाबू होय' आदि भट्टजी के व्यंग्य निबन्ध हैं।"^(११) भट्टजी की गणना हिन्दी के श्रेष्ठतम निबन्धकारों में होती है।

प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु युग के ऐसे हास्य-व्यंग्य निबन्धकार हैं जो उसी रंग में रंगकर साहित्य निर्माण के कार्य में लगे रहे इस युग का हास-परिहास, चुभीले व्यंग्य, गुद-गुदीभरा विनोद मिश्रजी में घुल-मिल गये थे। उनका हास्य-व्यंग्य लेखन कार्य होली के अवसर पर ही अवतरित हुआ था, इसलिए वो ऐसी ही कुछ छटा लेकर आया - "मिश्रजी ने १५ मार्च १८८३ को ब्राह्मण पत्र निकाला, जिसमें निबन्ध प्रकाशित किये जाते थे। मिश्रजी के निबन्धों का संकलन है - प्रताप पियुष, प्रताप समीक्षा, निबन्ध नवनीत, प्रताप नारायण ग्रन्थावली आदि।"^(१२) इन निबन्ध संग्रहों द्वारा उन्होंने जीवन और समाज

से सबन्धी अनेकानेक असंगतियाँ विसंगतियों पर प्रहार किये हैं। उन्होंने गम्भीर विषयों को व्यंग्य विनोद के माध्यम से इस रूप में व्यक्त किये कि पढ़नेवाला मनोरंजन के साथ सोचनेपर मजबूर हो जाता है - “खुशामद, तिल, धोखा, आप, होली, घूरे का लता बिना कनाततन् के ढीले बाँधे भौंह और फूटी सहे न आंजी न सहे आदि उनके निबन्ध स्वच्छन्द हास्य के प्रमाण हैं। उनका ‘धोखा’ निबन्ध तो उत्तम संयत हास्य तथा गम्भीरता का सर्वोत्कृष्ट मिश्रण है।”^(१३)

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमधन’ ने भी खास उद्देश्य से हास्य-व्यंग्य निबन्धों की रचना की। वो युगीन परिस्थितियों से वाकिफ़ करवाते हुए समाज में जागृति लाना चाहते थे - “‘प्रेमधन’ सर्वस्व भाग-२’ में बदरीनारायण चौधरी के निबन्धों का संकलन हैं। ‘समय’, ‘दृश्यरूप’, ‘विधवा विपत्तिवर्षा’, ‘पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार’, ‘नवीन वर्षारम्भ’, ‘दिल्ली दरबार’, ‘भारत के लुटेरे’ आदि उनके स्मरणीय हास्य-व्यंग्य निबन्ध है। “बदरीनारायण चौधरी ने आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक विषयों की विकृति, कमजोरी आदि पर प्रहार किये हैं। यहाँ मीठा प्रहार, सुधार, विशिष्ट शैली आदि व्यंग्य विधा के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं।”^(१४)

भारतेन्दु युगीन हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों में राधाचरण गौस्वामी एक जागरुक लेखक हैं जिनके व्यंग्य में अधिक प्रखरता एवं तीक्ष्णता है। उन्होंने भारतेन्दु नामक पत्रिका से अपनी लेखनी को धारदार बनाया डॉ.चौहान के मतानुसार - “आपके व्यंग्य में एक नया आलोक है जो पुरातन रूढ़ियाँ विश्वासों की जड़े हिलाकर नये जीवन की लालिमा बिखेरता है।”^(१५) गौस्वामीजी का व्यंग्य शहद में डूबा हँसी में लिपटा और कल्पना से रंगीन है। इन्द्रनाथ मदान ने गौस्वामीजी के व्यंग्य निबन्ध को कुछ इसी रूप में देखा है उनका मानना है कि - ‘गौस्वामीजी के व्यंग्य में कबीर के व्यंग्य का तीखापन और कडुवाहट नहीं है, यह हँसी में लिपटा हुआ है।’^(१६) गौस्वामीजी के हास्य-व्यंग्य निबन्धों की बात करे तो गौस्वामीजी ने संस्कृत की स्त्रोत शैली के आधार पर भुषक-

स्त्रोत, वैद्यराज-स्त्रोत, रेलवे-स्त्रोत, मिस्टर बूट आदि अनेक व्यंग्य निबन्धों की रचना की उनके होली, यमपुरी की यात्रा, तुम्हें क्या आदि प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य निबन्ध है।

बालमुकुन्द गुप्तजी ने भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग के बीच में पुल का काम किया जो भारतेन्दु युग के अन्तिम व द्विवेदी युग के प्रारम्भिक साहित्यकार माने जाते हैं। वो अखबारों एवं पत्रिकाओं से काफी जुड़े रहे मथुरा, अखबारे चुनार, कोहिनूर, हिन्दूस्तान, हिन्दी बंगवासी, भारतमित्र, भारतप्रताप, अवधपंच तथा नया जमाना आदि पत्रों से वे जुड़े रहे। डॉ.मु.बु.शहाने उनके बारे में लिखा है कि - “स्वभाव से सरल, धुन के पक्के, हास्य और व्यंग्य के अवतार, स्पष्ट वक्ता, निर्भीक साहसी विशुद्ध वैष्णव, विद्वान और प्रतिभाशाली गुप्तजी अपने निबन्धों में अलग-अलग रूप में आते हैं।”^(१७) गुप्तजी अपने समय के प्रखर एवं प्रबुद्ध व्यंग्य लेखक थे। उनके निबन्ध गुप्त निबन्धावली भाग-१ ‘शिवशंभु के चिट्ठ’ नामक ग्रन्थ में लगभग १०० के आसपास उनके व्यंग्यात्मक निबन्ध हैं। उनके व्यंग्य-निबन्धों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। उनके निबन्धों में ‘मेले का ऊँट’, ‘भारतवासीयों की दुर्दशा’, ‘आशीर्वाद’ आदि प्रसिद्ध निबन्ध हैं। उनके ये व्यंग्यात्मक निबन्ध काफी सशक्त हैं जिनमें तीक्ष्णता विशेष रूप में देखी जा सकती है।

इस प्रकार भारतेन्दुजी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, और बालमुकुन्द गुप्त के हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्य की सहायता से ही इन्होंने अंग्रेजी शासकों पर हमला किया है। राजनैतिक व्यंग्यात्मक निबन्ध इस युग की विशेषता है। गुप्तजी ने इस शस्त्र का उपयोग विशेष रूप से किया है। इस युग में हास्य और व्यंग्य का प्रयोग मुख्यतः राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण को नजर में रखते हुए ही किया गया। डॉ. बरसानेलाल के अनुसार लेखकों के मनको टटोले तो उनका मानना है कि - “मानसिक अवस्थान की दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन लेखकों के मन में एक घुटन थी और वह चाहती थी निकलना। ब्रिटिश शासन में खुशामदियों का बोलबाला था,

धार्मिक ठेकेदारों की तूती बोलती थी, प्रेस एकट का भूत हरदम सिर पर सवार रहता था, हास्य एवं व्यंग्य के सहारे उन लोगों ने अपने मन का असंतोष प्रकट किया।”^(१८)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतेन्दुयुगीन व्यंग्य-निबन्ध हिन्दी में प्रचलित किसी अविच्छिन्न व्यंग्य परम्परा का परिणाम न होकर अपने समय की परिस्थितियों से जन्मा था। इस युग के निबन्धकारों ने अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर जन समाज में जागृति और चेतना लाने के उद्देश्य से व्यंग्य का सहारा लिया। अपने समय में व्याप्त विकृतियों व विसंगतियों को लक्ष्य कर इन निबन्धकारों ने हलके से हास्य के साथ तीखे व्यंग्य प्रहार किये हैं। इस प्रकार इस युग के हास्य-व्यंग्य निबन्ध कहीं परिहास तो कहीं आघात करते हुए बाल्यावस्था से किशोरवस्था में आये जहाँ से उन्होंने डटकर चलना सीख लिया।

४.१.३ द्विवेदीयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध :-

यह तो सर्वविदित है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग की समाप्ति के पश्चात् द्वितीय चरण के रूप में द्विवेदीयुग का आविर्भाव होता है। हिन्दी गद्य को नवीन ताज़गी संचार एवं परिष्कार आचार्य द्विवेदी से मिले। इस युग का द्विवेदीजी ने व्यवस्थित रूप से सजाया-सवॉरा इसलिए ही वो आधुनिक हिन्दी गद्य के जनक समझे जाते हैं। पर डॉ.हरिशंकरजी का मानना है कि - “हिन्दी व्यंग्य को जो ठोस भावभूमि भारतेन्दु युग में प्राप्त हुई थी उसका बाद के वर्षों में वैसा अपेक्षित विकास न हो सका। द्विवेदीजी से लेकर मुंशी प्रेमचन्द तक अनेक रचनामधन्य साहित्यकारों का योगदान है, किन्तु व्यंग्य को उसका उचित उत्तराधिकारी प्राप्त न हो सका।”^(१९)

डॉ.उषा शर्मा भी मानती है कि - “द्विवेदीजी का ध्यान भाषा के संस्कार एवं परिष्कार की ओर आकृष्ट हो गया। आपने पूरा ध्यान भाषा के व्याकरण सबन्धी सुधारों की ओर केन्द्रित कर दिया। आपने भाषा का एक निश्चित स्वरूप स्थापित करने तथा आलोचना लेखन में अपना ध्यान एकाग्र कर लिया। इस प्रकार की राजनैतिक,

सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थिति में व्यंग्य का सर्वथा लोप तो नहीं हुआ किन्तु भारतेन्दु युग के समान व्यंग्य का स्थान महत्वपूर्ण नहीं रह सका।^(२०) इनका कारण खुद द्विवेदीजी का व्यक्तित्व एवं रुची भी है। उन्होंने हास्य-व्यंग्य को कुछ हद तक नजर अंदाज कर रखा था। वो खुद लिखते हैं कि - “प्रहसनो और हँसी-मजाक के खेलों से मनोरंजन ही नहीं होता, यदि लेखक विज्ञ और योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज और साहित्य के दोषों को दूर करने की चेष्टा करना और उनके द्वारा उन्हें लाभ पहुँचा सकता है और दण्डनीय व्यक्तियों का शमन भी कर सकता है। हिन्दी में साहित्य के इस अंश की बहोत कमी है।”^(२१)

यह स्पष्ट है कि ऐसी टिप्पणियों से हास्य-व्यंग्य के सन्दर्भ में इस युग के लेखकों का नजरिया स्पष्ट हो जाता है। यह सही है कि इस युग के साहित्यकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर काफी निबन्धों की रचना की पर यह युग विशेषकर हिन्दी भाषा के परिष्कार-परिवर्तन और प्रतिष्ठा का युग था। अतः इस युग में भारतेन्दु-युग जैसी व्यंग्य शैली का खुलकर प्रयोग नहीं के बराबर दिखाई देता है। इस युग के निबन्धकारों ने केवल भावप्रधान एवं विचार प्रधान निबन्धों के बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य का पुट मात्र दिया है। सिर्फ चंद्रधर शर्मा ‘गुलेरी’, पं.जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और गुलाबराय को छोड़कर अन्य किसी साहित्यकारों ने विशुद्ध रूप से एक भी व्यंग्य प्रधान निबन्ध की रचना नहीं की क्योंकि भाषा परिष्कार के साथ-साथ द्विवेदीजी ने नैतिकता और आदर्श पर विशेष रूप से बल दिया। इसके परिणाम स्वरूप साहित्य में व्यक्त होनेवाली मानव की सहज, सरस और उन्मुक्त भावनाओं पर प्रतिबंध लग गया फिर भी हम इतना तो अवश्य मान सकते हैं कि द्विवेदीयुग के निबन्धकारों ने हास्य-व्यंग्य की धारा को अवश्य जीवन्त रखा है।

इस युग में निबन्ध साहित्य तो काफी लिखा गया। गद्य साहित्य की ये विधा इस युग में विशेषतः विकसित हुई, पर अधिकतर निबन्धकारों ने हास्य-व्यंग्य को विशेष रूप में न देखते हुए उसे सिर्फ विशेषता के रूप में अभिव्यक्त किया। उनको आधार बनाकर नहीं लिखा गया इस दृष्टि से गुलेरीजी, गुलाबराय तथा जगन्नाथ प्रसादजीने उनका

उचित प्रयोग किया हैं। खुद द्विवेदीजी और अन्य निबन्धकारों ने उसे प्रमुख रूप से व्यक्त नहीं किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार एवं प्रेरणास्रोत है। द्विवेदीजी ने लगभग २५० के आसपास निबन्ध लिखे हैं। जो विभिन्न विषयों पर आधारित हैं। जो विशेषतः विचार-विमर्श, साहित्य-सीकर, साहित्य-सन्दर्भ, समालोचना, समुच्चय, रसज्ञ रंजन, लेखांजलि और आलोचनांजलि में संग्रहित हैं। पर उसमें अधिकतर विचार-प्रधान एवं भावप्रधान निबन्ध हैं जो नैतिकता, शिक्षा व उपदेश की बात करते हैं, इसलिए डॉ.मु.बु.शहा लिखते हैं कि - “द्विवेदीजी ने हास्य-व्यंग्यात्मक लेख नहीं लिखे हैं, पर आवश्यकतानुसार अपने निबन्धों में उनका प्रयोग जरूर किया। निश्छल विनोद उसमें प्राप्त नहीं होता, पर व्यंग्य जरूर प्राप्त होता है। यह व्यंग्य भी सोदेश्य है, सुधार की दृष्टि से किया गया।”^(२२) यह सही है कि द्विवेदीजी की प्रकृति हास्य और व्यंग्य के लिए अनुकूल नहीं थी, वे स्वभावतः गम्भीर थे। उनके साहित्य में प्राप्त हास्य-व्यंग्य के उदाहरण आपतः आये हुए ही मानने चाहिए। जो हमें उनके निबन्ध ‘म्युनिसिपैलिटी के कारनामों,’ नामक निबन्ध में सहज ही मिल जाता है। महावीरप्रसादजी ने हास्य-व्यंग्य का भरपूर प्रयोग नहीं किया।

मिश्रजी के अनेक निबन्धों में व्यंग्य हैं। मगर संपूर्णतः हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध उन्होंने एक भी नहीं लिखा। निश्छल हास्य तो उनके निबन्धों में है ही प्रतिपक्षियों की टीका करते समय कई बार उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया हैं।

निबन्धकार सरदार पूर्णसिंह की बात करे तो वो इस युग के प्रमुख निबन्धकार रहे हैं, पर हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध उन्होंने काफी कम लिखे हैं। बापूराव मानते हैं कि - “आपके सिर्फ छःसात ही निबन्ध रहे किन्तु वे पूरे उचित, उद्देश्यपूर्ण, व्यंग्ययुक्त अर्थ भरे रहे। यही आपके निबन्धका वैशिष्ट्य है।”^(२३) आपके निबन्धों में शिष्ट और संयत भाषा दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अंग्रेजी-भाषा पर, बनारस के पंडितों पर समाज के निर्धुम व्यवहार पर, जाति व धर्मों पर व्यंग्य व्यंग्य किया है। पूर्णसिंहजी ने “मजदूरी और

प्रेम' में आर्थिक समस्या के सन्दर्भ में मशीनों की भस्मासुरी प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया है।^(२४) पूर्णसिंह ने हास्य-व्यंग्य को भले ही कम मगर अर्थपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है।

हास्य-व्यंग्य को अभिव्यक्ति देने में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' विशेषतः याद किये जाते हैं। उनके कुछ निबन्धों को पाठकों ने विशेषतः पसन्द किया। डॉ. विजयशंकर मानते हैं कि - "गुलेरीजी का व्यंग्य उनके युग में सबसे अधिक प्राणवान और जोरदार था। इनके हाथों में पडकर व्यंग्य भारतेन्दु युग की अपेक्षा अधिक परिमार्जन और द्विवेदीयुग के अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक वीर्यवान और भास्वर हुआ।"^(२५) गुलेरीजी के निबन्धों में 'कुछुआधरम्' सोहम्, मोरेसि मोहि कुठाऊँ आदि बहु चर्चित रहे। इन निबन्धों में व्यंग्य-शैली का निखार देखा जा सकता है। इन निबन्धों के माध्यम से गुलेरीजी ने भारतवासियों की अन्धी रूढ़िवादिता, पलायन-प्रियता, ऊँच-नीच आदि पर प्रहार किये हैं और यह प्रहार भी शिष्टता के साथ किये गये हैं। इसलिए डॉ. शंकरदयाल लिखते हैं कि - "भारतेन्दु युग के ठेठ सीधे एवम् ग्रामीण व्यंग्य और कटाक्ष गुलेरीजी के पाण्डित्यपूर्ण स्पर्श से संस्कृत और शिष्ट हो गये हैं। साथ ही उनकी प्रखरता और संधातक शक्ति में भी वृद्धि हुई है।"^(२६) इससे ये स्पष्ट है कि चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्विवेदीयुगीन हिन्दी-व्यंग्य निबन्धकारों में सर्वप्रमुख हैं।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने भी हास्य-व्यंग्य को बखूबी अभिव्यक्ति दी है। जिन पर बालमुकुन्द गुप्त का प्रभाव था। उन्होंने विभिन्न विषयों पर व्यंग्य-निबन्ध लिखे 'अनुप्रास का अन्वेषण' चतुर्वेदीजी का प्रसिद्ध निबन्ध है। वो अपनी आलंकारिक शैली के कारण जाने जाते हैं। हास्य-रस के लेखकों का अपना विशेष गुण होता है। कुशल हास्य-व्यंग्य लेखक इस ढंग से अपना व्यंग्यबाण चलाता है कि जिसे वह बाण लग जाये, वह भी मुस्कुरा उठे और चुभे हुए बाण को निकालकर चूम ले और कर उठे वाह ! चतुर्वेदीजी इसमें सफल हुए हैं चाहे आचार्य शुक्लजी को उनके लेख भाषण ही लगते हैं।"^(२७)

बाबू गुलाबराय भले ही आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। पर मूलतः उनके साहित्यिक व्यक्तित्व ने पहले-पहल निबन्धकार के रूप में आकार प्राप्त किया था। उनके निबन्धों में जो आत्मकथानात्मक रचनाएँ हैं, वो विशेषतः व्यंग्य प्रधान ही हैं - बाबू गुलाबराय एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार रहे हैं। समाजपोश लोगों में विशेषतः वैज्ञानिक, डॉक्टर, समालोचक, वकील, नेता, बीमा एजन्ट, व्यापारी, छुआछूत करनेवाले आदि के काले कारनामों का पर्दाफाश गुलाबराय ने किया है। डॉ. बापूराव लिखते हैं कि - “बाबूजी का व्यंग्य व्यक्ति, काल, समाज सापेक्ष रहा हैं। परिवेश की परिधि में व्यंग्य विधा की भाषा, विचार, प्रहार, शैली को अपनाते रहे हैं। अतः इनका व्यंग्य कभी व्यक्तिगत तो कभी समष्टिगत रहा है।”^(२८) गुलाबराय के व्यंग्य निबन्धों में ‘ठलुआकलब’ और ‘मेरी असफलताएँ’ संग्रह काफी प्रचलित रहे। वो एक सम्पन्न हास्य-व्यंग्य लेखक रहे। वो गुदगुदाते हैं, तीव्र प्रहार नहीं करते। मृदुता, ऋजुता और सरलता उनके हास्य के अलंकार हैं उनमें देश से आवृत्त खिल्ली उड़ाने की भावना ही नहीं, उनके अधिकांश हास्य-व्यंग्य परक निबन्धों के कर्ता स्वयं वे ही हैं। अपने पर वो दिल-खोलकर हँसे साथ में औरों को भी हँसाया।

इस प्रकार उपर्युक्त चिंतन के बाद यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भारतेन्दुयुगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य का जो स्वस्थ स्वरूप दिखाई देता है, उसका कुछ हद तक द्विवेदीयुग में अभाव सा ही है। द्विवेदीयुगीन निबन्धकारों में वो आक्रोश देखने को नहीं मिलता, जो भारतेन्दुयुगीन निबन्धकारों में था। इस युग का व्यंग्य इतना आक्रमक नहीं है जितना पूर्ववर्ती युग में था। इस युग के निबन्धों में एक विशेष बात रही कि इस युग के व्यंग्य निबन्ध समाज की अपेक्षा साहित्य की ओर अधिक झुके हुए मिलते हैं। उनकी भाषा-शैली में विशेष नवीनता व परिमार्जन देखने को मिलता है। डॉ. स्मिताजी मानती हैं कि - “भारतेन्दुयुग का व्यंग्य प्रहारक तथा प्रखर था। तो द्विवेदीयुगीन व्यंग्य में वैविध्य था और प्रखर न सही, वह चुटीला अवश्य था। वह व्यंग्य अत्यधिक तीखा न सही रोचक तो था।”^(२९) पर यह तो मानना पड़ेगा कि इस युग में

व्यंग्य को इतनी जगह नहीं मिली इस युग में मूलतः गम्भीर एवं चिंतनात्मक साहित्यिक निबन्धों की और विशेष झुकाव रहा। उषाशर्मा मानती है कि - “द्विवेदीयुग के निबन्धकारों ने प्रमुख रूप में साहित्यिक, सरस, गम्भीर विरूपों एवं आलोचना को ही उसने निबन्धों का माध्यम चुना है। साथ ही कहीं-कहीं व्यंग्य युक्त चटपटापन, मीठी चुटकियाँ, झिडफियाँ, तथा शैली में अर्थ गर्भित वक्रता का प्रयोग भी अति पटुता के साथ किया है। इन निबन्धकारों को जहाँ भी अवसर मिला है व्यंग्य की चिकोटी काटने से वे नहीं चूके हैं।”^(३०) हम कह सकते हैं कि भारतेन्दुयुग में जो व्यंग्य निबन्ध साहित्य जो प्रस्थान हुआ वो इस युग में अवश्य ही विकासोन्मुख रहा हैं। हास्य-व्यंग्य सबन्धी भले ही कम रचनाएँ हो पर जो मिलती है वो सटीक है, प्रभावपूर्ण हैं। वो अपने युग की प्रतिभा को अवश्य बढ़ाती है।

४.१.४ शुक्ल युगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध :-

सन् १९२१ से भारतीय स्वातंत्र्य की प्राप्ति तक का जो समय रहा वो निबन्ध साहित्य की विकास यात्रा में शुक्ल युग के नाम से जाना जाता है। शुक्लयुग का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रहा है। शुक्लजी का हिन्दी साहित्य के विकास में विशेष योगदान माना जाता है। इस युग का निबन्ध साहित्य भी काफी विकसित रहा पर जहाँ तक हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध साहित्य का सवाल है, उस सन्दर्भ में इस युग में केवल निराशा ही हाथ लगी है। डॉ.आनन्द प्रकाश मानते हैं कि - “शुक्ल-युग’ में आकर तो हास्य-व्यंग्य निबन्ध रचना के प्रति साहित्यकारों का दृष्टिकोण पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है। निबन्धों में हास्य-व्यंग्य के स्थान पर वैचारिकता, गम्भीरता और विचार-विश्लेषण की प्रवृत्ति भी बढ़ने लगती है, साथ ही निबन्ध समाजभिमुख होने के स्थान पर साहित्यिक प्रौढ़ता को प्राप्त करके विकसित होने लगा। परिणाम स्वरूप इस युग में एक भी ऐसा निबन्धकार नहीं दिखाई देता, जिसने विशुद्ध रूप से एक भी व्यंग्य-प्रधान निबन्ध की रचना की हो।”^(३१) इन विचारों से ये स्पष्ट होता है कि निबन्धों में शुक्लजी

गम्भीरता, विचारतत्त्व, चिन्तनगत प्रौढ़ता और मनन को ही प्रमुखता देते थे। हास्य-व्यंग्य को नहीं। शुक्लजी की चिन्तन प्रधानवृत्ति और गम्भीर प्रकृति के कारण इस युग के निबन्धों में हास्य-व्यंग्य का प्रयोग कम ही दिखाई देता है।

शुक्लयुग में हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध तो अधिक नहीं लिखे गये, उसके बहोत से कारण है। जैसी मान्यता है कि उसे नजरअंदाज किया ऐसा कहना जल्दबाजी हो सकती है। शायद ऐसा हो उसकी संभावना कम है, पर किसी भी युग का साहित्य हो उसमें समय की माँग ज्यादा प्रभावी रहती है। इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध कम लिखे गये उनके बहोत से कारण है, उसके सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि - (१) शुक्लयुग में चिन्तन को प्रधानता दी गई थी। (२) आचार्य शुक्लजी की मानसिकता भी कुछ हद तक ऐसी थी। (३) साथ ही इस समय युगीन परिस्थितियाँ बदल रही थी। (४) हिन्दी निबन्ध सामाजिकता की अपेक्षा साहित्यिक प्रौढ़ता प्राप्त करता जा रहा था। (५) राजनैतिक दृष्टि से उथल-पुथल का समय था। (६) छायावादी कवियों ने अपनी कोमल कल्पना से सभी को सराबोर किया हुआ था। (७) इस समय साहित्यिकता का प्रभाव संपूर्णतः रहा। जिनसे हास्य-व्यंग्य के स्थान पर चिंतन-मनन और विचार-मंथन की प्रधानता होती चली गई इसलिए निबन्ध हास्य-व्यंग्य के स्थान पर गम्भीर होता चला गया इसलिए डॉ. दुबे लिखते हैं कि - “एक ओर राष्ट्रीयता थी, देश प्रेम की भावना थी, स्वाधीनता प्रेमियों की छटपटाहट थी, तो दूसरी ओर छायावादी कोमल कल्पनाओं का रूप विस्तार था, पश्चिमी सभ्यता व शिक्षा का प्रभाव और बाबूवर्ग की मानसिकता भी थी। रुस की क्रांति का नया जोश भी था और प्रगतिशील लेखक संघ का लुभावना आकर्षण था।”^(३२) ऐसी राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक स्थिति के कारण शायद हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में अभाव-सा रहा।

उपर्युक्त कथन का मतलब यह कदापि नहीं है कि शुक्लयुग में हास्य-व्यंग्य का प्रभाव बिलकुल नहीं था। भले ही इस युग के निबन्धकारों ने व्यंग्य से सराबोर निबन्ध न लिखे हो, पर उनकी चितनात्मक-गम्भीर रचनाओं में हास्य-व्यंग्य की आभा अवश्य

दिखाई पड़ती हैं। जिनसे आचार्य शुक्लजी के निबन्ध भी अछूते नहीं हैं। इस युग के प्रतिनिधि निबन्धकारों में आचार्य शुक्लजी, माचानलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, वियोगी हरि, पदुमलाल पुत्रालाल बख्शी, बेढ़ब बनारसी, हरिशंकर शर्मा आदि माने जाते हैं जिनके विचारप्रधान एवं भावप्रधान निबन्धों के बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य की आभा व तेज के दर्शन किये जा सकते हैं।

शुक्लजी वैसे तो आलोचक के रूप में जाने जाते हैं, पर निबन्धों में भी उनका विशेष योगदान रहा है। वो गम्भीर व चिन्तनात्मक निबन्धों के रचयिता के रूप में प्रख्यात है पर यह - “विनोद प्रियता शुक्लजी के स्वभाव में थी, पर निबन्धों में उनकी अभिव्यक्ति क्षीण रूप में हुई है।”^(३३) हास्य की अभिव्यक्ति शुक्लजी में अत्यंत संयत है। किबहुना वह हास्य भी नहीं कहा जा सकेगा। वे बड़े मीठे रिमार्क है।^(३४) शुक्लजी के निबन्ध संग्रह चिंतामणि भागत में हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध पाये जाते हैं। लोभ और प्रीति, श्रद्धाभक्ति आदि निबन्धों में उनकी इस शैली का परिचय मिलता है। “धार्मिक आडम्बर, शास्त्र संगीत, मशीन के दुष्परिणाम, ढोंगी देशप्रेमी, लोभी प्रवृत्ति, कविता-कवि धर्म, कंजूस लोग आदि विभिन्न विषयों पर शुक्लजी ने व्यंग्यात्मक निबन्धों में साहित्य सृजन किया है।”^(३५) इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शुक्लजी के व्यंग्य में तीव्रता है, उपालंभता है कहीं वो गम्भीर तो कहीं चुटिला है। शुक्लजी ने भले ही हास्य-व्यंग्य का संपत प्रयोग किया हो पर वो प्रभावपूर्ण अवश्य हैं।

माखनलालजी ने भी इस युग में हास्य-व्यंग्य निबन्ध लिखे हैं। माखनलाल के निबन्ध संग्रहों में साहित्यदेवता, अमीर गरीब, समय के पाँव, चिंतन की लाचारी प्रमुख माने जाते हैं। जिसमें उन्होंने काफी सुक्ष्मता से हास्य-व्यंग्यात्मकता का प्रसार किया है। उन्होंने समाज व साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर लिखा है।

शुक्लयुग में पदुमलालजी के हास्य-व्यंग्य निबन्ध भी प्राप्त होते हैं। पदुमलालजी ने समाज, सामाजिक अंधश्रद्धा, धर्म-रूढ़ि, जातिभेद आदि पर हास्य-व्यंग्यात्मक लेख

लिखे हैं, उनके लेख कुछ हद तक अन्तरमन पर आधारित हैं उनका निबन्ध 'उत्सव की महत्ता' काफी प्रसिद्ध रहा।

सियाराम शरण गुप्त का 'झुठ-सच' इस युग का उल्लेखनीय निबन्ध संग्रह है। इसमें 'घोडाशाही' उन्होंने मशीनी युगपर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। जिनके माध्यम से उन्होंने मनुष्य की कठोर एवं पाशवी, अमानवीय प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। इनके अलावा घूँघट, बहस की बात, अन्यभाषा मोह निबन्धों में काफी कड़ाई से अपनी भावना को व्यक्त किया है।

शुक्लयुग के निबन्धकारों में वियोगी हरि एवं हरिशंकर शर्मा का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। वियोगी हरि की 'दीनों पर प्रेम' और हरिशंकर शर्मा 'पिंजरापोल' काफी प्रसिद्ध रहे हैं। वियोगीजी ने लाचार व दीन लोगों की बात कही है, तो हरिशंकरजी ने ज्यादातर साहित्य व साहित्यकारों पर हास्य-व्यंग्यात्मक लेख लिखे हैं।

इस युग में 'कृष्णदेव प्रसाद गौड़' (बेढ़ब बनारसी) का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। उन्होंने अपने हास्य-व्यंग्यात्मक विचारों को निबन्ध व काव्यात्मक रूप में व्यक्त किये हैं। 'बेढ़बजी' का 'हुक्का-पानी' निबन्ध संग्रह १९४७ में प्रकाशित हुआ, जिनमें ३० निबन्ध संकलित हैं। उन्होंने कवि, नेता, साहूकार, अध्यापक, सेनापति, समाचारपत्र, अफसर आदि पर लिखा है उन्होंने सभी वर्ग व सभी विषयों को लेकर लिखा है इस युग में बेढ़बजी का योगदान विशेष रहा है।

इस प्रकार हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध के विकासक्रम में शुक्लयुग का विशेष योगदान रहा है। हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तरकाल के कवि, लेखक, समाजसुधारक, नेता आदि को चेतना देने का काम इन्हीं युग के हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों ने किया है। वैसे इस बात को भी मानना पड़ेगा कि शुक्लजी के गाम्भीर्य के कारण उतनी खुलकर बात नहीं हो सकी, पर उचित अभिव्यक्ति अवश्य हुई है। इस दृष्टि से शुक्लयुग का विशेष महत्व माना जा सकता है।

४.१.५ शुक्लोत्तर हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्ध :-

हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का सही विकास शुक्लोत्तर युग में ही हुआ है यानी कि स्वातंत्र्योत्तर युग में ही हुआ है जिनको अद्यतन युग भी कहा जा सकता है। इस समय हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्यकारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रमुख साधन बन गये जिनके कारण हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का सभी दृष्टियों से विकास, व विस्तार हुआ। भाव, भाषाशैली व विषय की दृष्टि से वह संपूर्ण विकसित हुए। सशक्त व समृद्ध हुए। “स्वातंत्र्योत्तरकाल में व्यंग्य निबन्ध साहित्य स्वातंत्र्यपूर्व काल की तुलना में अधिक विकसित हुआ हैं। स्वातंत्र्यपूर्व काल में व्यंग्य-निबन्ध, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि प्रकारों में प्राप्त हैं, किन्तु स्वातंत्र्योत्तरकाल में जीवन के अनेक नये क्षेत्र उद्घाटित हुए हैं। विषय, व्याप्ति, शैली जीवन के विभिन्न आयाम इन सभी क्षेत्रों में वह प्रगति के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है। स्वातंत्र्योत्तरकाल में व्यंग्य निबन्धकारों की पैनी दृष्टि सर्वत्र पहुँच रही है और व्यंग्य के लिए उचित सामग्री विविध क्षेत्रों में उन्हें प्राप्त हुई हैं।”^(३६)

यह सच हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ वर्षों तक निबन्ध साहित्य में विशेष सृजन नहीं हुआ, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति का दशक पुरा होते-होते तत्कालिन स्थितियाँ इतनी विषमताओं से भर गई कि उन्होंने साहित्य में एक नई क्रांति को जन्म दिया जो व्यंग्यात्मकता का रूप धारण करके आई। उषाशर्मा के अनुसार - “इस काल को व्यंग्य-युग नाम देना सार्थक रहेगा। यों तो स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्य की सभी विधाओं में व्यंग्य प्राप्त है किन्तु निबन्ध साहित्य की विशिष्ट बात है कि यह विधावादों के जमेले से बचकर निकली है।”^(३७) यकी कारण है कि इस युग का व्यंग्य प्रभावपूर्ण बन सका। इस युग के व्यंग्यकारों ने विसंगतिपूर्ण वातावरण में नवजागरण का नारा लगाकर व्यंग्य का अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है। जो इस युग की परिस्थितियों के फूल स्वरूप हुआ हैं। इस काल के अध्ययन से ये स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वो स्वातंत्र्योत्तर कालीन व्यंग्य के लिए ये परिस्थितियाँ प्रेरक बनी रही जैसे - “मोहभंग, भौतिकता का प्रभाव,

कथनी और करनी में भेद, नैतिकता के स्तर में और गिरावट, समाज के विविध क्षेत्रों में अवनति^(३८) ऐसी स्थिती से पैदा होनेवाली भयंकर विसंगतियों ने हिन्दी के साहित्यकारों को व्यंग्य रचना के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। कहना असंगत न होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी-साहित्य का मूल स्वर व्यंग्य का ही हैं। व्यंग्य अपने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा अधिकाधिक प्रभावकारी रूपसे हमारे सामने आता हैं। बालेन्दुजी के अनुसार - “आज का व्यंग्य अनुभूति की जिन गहराईयों और अन्तविरोधों के जिस संघर्ष से जन्मा है, बिता हुआ व्यंग्य लेखन उसके सामने परिहास मात्र हैं।”^(३९) इन से ये सहज स्पष्ट हो जाता है कि हास्य-व्यंग्य साहित्य को विकास स्वतंत्रता के बाद ही सही रूप में मालूम पड़ता है, क्योंकि उसी समय उसे अनुकूल भूमि मिलती है। जिनसे वो विभिन्न विसंगतियों की काफी कठोरता के साथ खुला कर सके एवं उसे अपनी ऐसी अभिव्यक्ति के कारण सामाजिक स्वीकृति भी मिली क्योंकि युग की माँग भी वही थी जिनके कारण हास्य-व्यंग्य साहित्य सार्वत्रिक रूप से विकसित हुआ।

शुक्लोत्तर हास्य-व्यंग्य साहित्य में सबसे ज्यादा हास्य-व्यंग्य को निबन्धों के लिए उचित विधा थी। निबन्ध के माध्यम से ही अपने मुक्त एवं स्पष्ट विचारों को वो सही दिशा प्रदान कर सकते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी-व्यंग्य निबन्धों की धारा को विकसित करने उसे प्रवाह प्रदान करने में अनेकानेक व्यंग्यकारों ने सहयोग दिया है। हिन्दी-व्यंग्य निबन्धकारों की एक लम्बी परम्परा दिखाई देती है। हम कह सकते हैं कि छोटे-बड़े निबन्धकारों के अनगिनत निबन्ध-संग्रहों के साथ-साथ अनेकों पत्रिकाओं में व्यंग्य-निबन्ध और लेख मिलते थे। शायद ही ऐसी कोई पत्रिका हो जिसमें निबन्ध या लेख प्रकाशित न होता हो, हाँ ऐसा कह सकते हैं कि निबन्ध इस युग के हास्य-व्यंग्य साहित्यकारों के लिए प्रिय साहित्य विधा थी जिनका उन्होंने अस्त्र के रूप में प्रयोग किया ऐसे अनेक निबन्धकार हैं, जिनमें से प्रमुख एवं प्रतिनिधि निबन्धकारों की बात कहे तो - “इन्द्रनाथ मदान, केशवचन्द्र वर्मा, आत्मानन्द, अमृतराय ने व्यंग्य निबन्ध लिखे। परन्तु व्यंग्य की आत्मा को पहचानकर लिखनेवाले व्यंग्यकारों में महत्वपूर्ण हैं - हरिशंकर

परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल और रवीन्द्रनाथ त्यागी। इसके बाद दूसरी पीढ़ी के व्यंग्य निबन्धकारों में नरेन्द्र कोहली, लतीफ़ धोबी, प्रेम जनमेजय, बालेन्दुशेखर तिवारी आदि का नाम आता है। तीसरी पीढ़ी में अजानशत्रु, रोशनलाल सुरीरवाला श्रीराम आयंगर, सुरेश कान्त, हरिनवल, मधुसुदन पाटील, सन्तोष खरे, संतोष दीक्षित, कृष्ण चराटे आदि आते हैं।^(४०) इनके अलावा जो ऐसे निबन्धकार हैं, जिन्होंने एक-दो निबन्ध संग्रह लिखे हैं। बापूराव के अनुसार ऐसे निबन्धकारों में “देवराज दिनेश, धर्मवीर भारती, भारतभूषण अग्रवाल, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, अमृतलाल नागर, श्याम गोईका, बालेन्दुशेखर तिवारी, शंकरपूर्णतांबेकर, सुबोधकुमार श्रीवास्तव, प्रेमजनमेजय, कन्हैयालाल कपूर, कृष्णचन्द्र, प्रकाश पंडित, नारयण चतुर्वेदी, सुदर्शन मजीठियाँ, कृष्णचन्द्र, विजय द्विवेदी, श्रीराम ठाकुर, दादा, र.श.केलकर, काका हाथरसी, श्यामनारायण बैजल, रामप्रसाद मिश्र, सरोजिनी महिषी, राजेन्दुलाल हाँडा आदि हैं।”^(४१) पर इनमें से प्रमुख ऐसे निबन्धकारों की बात करें तो जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध को दिशा दी है, विकसित किया है ऐसे निबन्धकारों में जो नाम गिनाये जाते हैं वो कुछ इस प्रकार हैं:-

१. हरिशंकर परसाई
२. रवीन्द्रनाथ त्यागी
३. प्रभाकर माचवे
४. गोपाल प्रसाद व्यास
५. बरसानेलाल चतुर्वेदी
६. शरद जोशी
७. श्रीलाल शुक्ल
८. रोशनलाल सुरीरवाला
९. लतीफ़ धोबी
१०. नरेन्द्र कोहली
११. संसारचन्द्र

१२. इन्द्रनाथ मदान

१३. अमृतराय

१४. आत्मानन्द

आदि प्रमुख हैं। जिनका परिचय निम्नांकित हैं।

हरिशंकर परसाई :-

स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी व्यंग्य निबन्धों को कुलीन बताने का सबसे अधिक श्रेय परसाईजी को जाता है। परसाईजी शीर्षस्थ व्यंग्यकार हैं। उन्होंने व्यंग्य के विस्तार व परिष्कार के साथ-साथ उसे सशक्त भी बनाया है। अपने युग की शायद ही ऐसी कोई विसंगति हो, जिस पर परसाईजी की दृष्टि न पड़ी हो। आपका प्रारम्भिक व्यंग्य निबन्ध लेखन अखबारों के माध्यम से हुआ है। अखबारों में प्रकाशित ये सभी रचनाएँ 'सुनोभाईसाधो' में संग्रहित हैं। इनके अतिरिक्त व्यंग्य निबन्धों की संग्रहात्मक पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनकी सूची निम्नानुसार है।

- | | |
|-------------------------|--------|
| १. तब की बात और थी | (१९५६) |
| २. भूत के पाँव पीछे | (१९६१) |
| ३. बेईमानी की परत | (१९६५) |
| ४. सुनो भाई साधो | (१९६५) |
| ५. पगदंडियों का जमाना | (१९६६) |
| ६. सदाचार का तावीज | (१९६७) |
| ७. निठल्ले की डायरी | (१९६८) |
| ८. और अन्त में | (१९६८) |
| ९. शिकायत मुझे भी है | (१९७०) |
| १०. ठिठुरता हुआ गणतंत्र | (१९७०) |
| ११. तिच्छी रेखाएँ | (१९७२) |

- | | | |
|-----|-----------------------------|--------|
| १२. | अपनी-अपनी बीमारी | (१९७२) |
| १३. | वैष्णव की फिसलन | (१९७६) |
| १४. | मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ | (१९७७) |
| १५. | विकलांग श्रद्धा का दौर | (१९८०) |
| १६. | प्रतिनिधि व्यंग्य | (१९८३) |
| १७. | काग भगोड़ा | (१९८३) |

परसाईजी के व्यंग्य निबन्ध हिन्दी व्यंग्य साहित्य की अमूल्य पूंजी है। साहित्य की दृष्टि से भी परसाईजी के व्यंग्य निबन्ध उल्लेखनीय है। उनकी आंतरिक बनावट में परसाईजी ने वैदग्ध्यता का अच्छा प्रयोग किया है। संक्षेप में हिन्दी-व्यंग्य निबन्धों में परसाईजी का कोई सानी नहीं है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी :-

व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने आदर से लिया जाता है। आप अर्थशास्त्र में एम.ए. हैं, इसलिए आर्थिक दृष्टि से जहाँ विसंगतियाँ दिखाई दी वहाँ आप की पैनी दृष्टि पहुँच गई। त्यागीजी सरकारी पद पर भी रह चुके हैं, इसलिए प्रशासनिक कमियाँ भी वो आसानी से ढूँढ सके। त्यागीजी का हास्य-व्यंग्य संसार काफी विस्तृत है उनके लगभग २५० के आस-पास हास्य-व्यंग्य निबन्ध प्रकाशित हुए हैं, इनके संग्रहों की सूची कुछ इस प्रकार है।

- | | | |
|----|---------------------|--------|
| १. | खुली धूप में नाव पर | (१९६३) |
| २. | भित्तिचित्र | (१९६६) |
| ३. | मल्लिनाथ की परम्परा | (१९६९) |
| ४. | कृष्णवाहन की कथा | (१९७७) |
| ५. | देवदार के पेड़ | (१९७३) |
| ६. | शोकसभा | (१९७४) |
| ७. | फूटकर | (१९७६) |

- | | | |
|-----|-----------------------------|--------|
| ८. | अतिथि कक्ष | (१९७७) |
| ९. | मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ | (१९७७) |
| १०. | फूलोंवाले कैकट्स | (१९७८) |
| ११. | सुंदरकली | (१९७८) |

त्यागीजी के निबन्धों को देखकर कह सकते हैं, कि वो हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों को व्यक्त करने में काफी सफल रहे हैं। डॉ.गौतम मानते हैं कि - “त्यागीजी के पास सरस व्यंग्य-प्रतिभा और सतर्क दृष्टि है। किसी विषय वस्तु पर व्यंग्य करते समय उनका रुख जर्जर की तरह नहीं होता, उसमें एक संवेदनशीलता और सहानुभूति पूर्ण हृदय स्पंदित रहेता हैं।”^(४२) यही कारण है कि वो व्यंग्य-निबन्ध साहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान बना सके।

प्रभाकर माचवे :-

प्रभाकरजी वैसे तो प्रयोगवादी कवि के रूप में पाये जाते हैं, पर हास्य-व्यंग्य साहित्य में भी उन्होंने अपनी विशेष छाप छोड़ी है। उन्होंने ज्यादा निबन्ध नहीं लिखे पर जो लिखे गये हैं वो विशेष उल्लेखनीय हैं। माचवेजी ने - “(१) खरगोश के सींग-१९५०, (२) बैरंग-१९५३ और (३) तेल की पकोडियाँ-१९६३ उनके हास्य-व्यंग्यात्मक के लेखों व निबन्धों के संग्रह हैं।”^(४३) माचवेजी का प्रत्येक निबन्ध उनकी बहुज्ञता अध्ययनशीलता, चिन्तन और मननशीलता का परिचय देता है, इसलिए हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने कहा है कि - “काज-कल ऐसे कम साहित्यकार मिलते हैं, जिनमें चिन्तन, मनन, अध्ययन और सरसता का ऐसा मणिकांचन योग हो।”^(४४)

गोपालप्रसाद व्यास :-

गोपालजी वैसे तो हास्य कवि हैं, उन्होंने एक उत्कृष्ट कवि के रूप में अपनी पहेचान बनाई है, पर हास्य-व्यंग्यात्मक गद्यकार के रूप में भी उन्होंने अपना विशेष

योगदान दिया है। उन्होंने अपने हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुई असंगतियाँ एवं विषमताओं को अपना विषय बनाया हैं। उनके चार निबन्ध संग्रह मिलते हैं। 'मैने कहाँ' (१९५१), 'कुछ सच झुठ' (१९५८), 'तो क्या होता?' (१९६६), और 'हलो हलो' (१९६९) उनके इन निबन्ध संग्रह में जीवन की विभिन्न विषमताओं को व्यक्त किया गया है। गोपालजी ने काफी हलके ढंग से जीवन सत्य को प्रस्तुत किया हैं।

बरसानेलाल चतुर्वेदी :-

बरसानेलाल का संपूर्णतः हास्य-व्यंग्य साहित्य को समर्पित व्यक्ति हैं। चतुर्वेदीजी ने 'हास्यरस' पर पी.एचडी. किया एवं व्यंग्य पर डी.लिट्. आप आन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त साहित्यकार हैं। आपको राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया हैं। उनके निबन्धों के बारे में कहा गया है कि - "चतुर्वेदीजी के व्यंग्य निबन्धों पर दृष्टिपात करने से इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि उनके निबन्धों के विषय ऐसे हैं जिन्हें अपने आसपास हम देखते हैं, लेकिन बन्द आँखों से देखना तो कोई देखना नहीं हुआ। चतुर्वेदीजी हमारी आँखों को पूरी तरह से खोलकर अपने उद्देश्य तक हमें ले जाते हैं।"^(४५)

आपकी ग्रंथ संपदा की सूची निम्नानुसार हैं। :-

१. महामति चाणक्य राजदूत बने (१९६२)
२. बूरे फँसे (१९७५)
३. भोला पंडित की बैठक (१९७५)
४. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ (१९७७)
५. टालू मिकस्वर (१९७८)
६. मिस्टर चोखेलाल (१९८०)
७. मुसीबत है (१९८३)

८. नेताओं की नुमाईश (१९८३)

तत्कालीन व्यंग्यकारों में चतुर्वेदीजी के व्यंग्य-निबन्ध काफी सशक्त एवं समृद्ध हैं।

शरद जोशी :-

स्वातंत्र्योत्तरकाल में हास्य-व्यंग्य को विकसित करने में जोशीजी का विशिष्ट योगदान है। शरद जोशी हिन्दी के विख्यात व्यंग्य लेखकों में से एक हैं। व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करनेवालों में जोशीजी का भी बहुमूल्य योगदान है। आपके निबन्धों को अखबारों एवं पत्रिकाओं में काफी स्थान मिला। जोशीजी के निबन्ध संग्रहों की सूची इस प्रकार हैं।

१. परिक्रमा (१९५२)
२. जीप पर सवॉर इल्लियाँ (१९७१)
३. किसी बहाने (१९७१)
४. रहा किनारे बैठ (१९७२)
५. निलस्म (१९७३)
६. दूसरी सतह (१९७८)
७. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ (१९८०)

शरद जोशी का महत्व इसलिए भी है कि उन्होंने व्यंग्य शिल्प की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। जिनसे काफी नवीन दिशाएँ मिली हैं। तिवारीजी मानते हैं कि - “शरद जोशीने हिन्दी की व्यंग्य-विधा को शिल्प की सर्वाधिक कलात्मकता प्रदान की हैं। उनके व्यंग्य-शिल्प ने रचना विधान ही नहीं, अभिव्यंजना की दिशा में भी नये गवाक्षों को खोला है।”^(४६)

श्रीलालशुक्ल :-

हिन्दी व्यंग्य-निबन्धों में श्रीलालजी का नाम आदर से लिया जाता है, स्वातंत्र्योत्तर

युग में व्यंग्य को सशक्त बनाने में उनका विशेष योगदान है। श्रीलालजी अपने समकालीन व्यंग्यकारों से भिन्न हैं। उन्होंने समकालीन युग की विभिन्न परिस्थितियों को लक्ष्यकर व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखे हैं। १९७० में आपको अपने 'रागदरबारी' व्यंग्यात्मक उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है। उनके निबन्ध संग्रहों की बात कहे तो वो कुछ इस प्रकार हैं। (१) यहाँ से वहाँ (१९६९) (२) मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ (१९७८) (३) अंगद का पाँव (१९८०) श्रीलालशुक्ल के व्यंग्य निबन्धों की खास बात यह है कि उनके निबन्धों का स्वरूप काफी मंजा हुआ है। उनके निबन्धों में मनोरंजन की सस्ती भावना को नजरअंदाज किया गया है। उनके व्यंग्य निबन्धों में जागरूकता साफ दिखाई देती है।

केशवचंद्र वर्मा :-

जिन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक के कारण निर्भीक होकर चले हैं, ऐसे केशवचंद्र व्यंग्यनिबन्धकार के रूप में काफी सफल रहे हैं। केशवचंद्र युगानुरूपता के साथ अपनी बात रखने में भी माहिर हैं। उनका हर शब्द मंजा हुआ पाया जाता है। उनके व्यंग्य-निबन्धों की सूची निम्नलिखित हैं।

१. मुर्ग छाप हीरो (१९५९)
२. आधुनिक हास्य-व्यंग्य (१९६१)
३. अनुवाद: गधे की बात (१९६१)
४. अफलातुनों का शहर (१९७४)
५. बृहन्नला का वक्तव्य (१९७४)
६. ज्यादातर गलत (१९७५)

इन निबन्धों में केशवचंद्र की शैली आहत करनेवाली है, इसलिए वो जाने जाते हैं। उनके लिए विशेष बात यह है कि किसी भी निबन्धों का सृजन करने से पहले उनका सूक्ष्म अध्ययन कर लेते हैं, वो एक सूत्रबद्धता के साथ बात रखते हैं, उनके निबन्धों की बोलचाल की भाषा ने भी उनका कद बढ़ा दिया।

रोशनलाल सुरीरवाला :-

रोशनलाल ने अपनी अनेक रचनाओं के माध्यम से व्यंग्य साहित्य को समृद्ध किया है। वह उत्तरप्रदेश के मथुरा जिले के 'सुरीर' नामक गाँव में जन्मे होने के कारण सुरीरवाला नाम से पहचाने जाते हैं। सुरीरवाला स्पष्ट वक्ता के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अपने व्यंग्य-निबन्धों की आंतरिक एवं बाह्य क्रियाविधि पर उचित ध्यान दिया है। उनकी निबन्ध-ग्रन्थ सम्पदा कुछ इस प्रकार हैं :-

१. खाट पर हजामत (१९५९)
२. डॉ.एम.ए., पी.एचडी. (१९६८)
३. मंच के विक्रमादित्य (१९६९)
४. शंख और मूर्ख (१९७१)
५. पत्नी शरणम् गच्छामि (१९७६)
६. ये माँगनेवाले (१९७६)
७. मूर्ख शिरोमणी (१९७६)

रोशनलाल के व्यंग्य निबन्धों की सफलता के पीछे एक कारण यह भी है कि वो एक कुशल रेखाचित्रकार भी थे, इसलिए उनके निबन्धों में एक अलग ही पहचान बनती है।

लतीफ़ धोबी :-

हिन्दी हास्य-व्यंग्य साहित्य में लतीफ़ धोबी का नाम भी बहुत बड़ा है। स्वातंत्र्योत्तर हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में उनका प्रदान भी विशेष रहा है। लतीफ़ धोबी पत्रिकाओं से विशेषतः जुड़े रहे हैं। उनके लेख हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं में भी अनुदित होकर प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने हिन्दी व्यंग्य-निबन्ध को समृद्ध करने का कार्य किया है। व्यंग्य-निबन्ध की ओर जो उपेक्षा की जाती थी उसे देख उन्होंने निबन्ध को सम्पन्न व सफल बनाने का प्रयास किया है। उनके निबन्ध निम्नलिखित संग्रहों में व्यंग्य-निबन्ध प्राप्त होते हैं -

१. बीमार होने का दुःख (१९७७)
२. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ (१९७९)
३. बब्बूमियाँ कब्रस्तान में (१९७९)
४. किस्सा दाढ़ी का (१९८०)
५. उड़ते उल्लू के पंख (१९६७) (हास्य-व्यंग्य संग्रह)
६. मृतक से क्षमायाचना सहित (१९७१) (व्यंग्य संग्रह)
७. संकटलाल जिन्दाबाद (१९७८) (व्यंग्य संग्रह)
८. तीसरे बन्दर की कथा (१९७७) व्यंग्य संग्रह

इनके अलावा भी उन्होंने बहोत से व्यंग्य संकलन लिखे हैं। शिवानंद कामडे के अनुसार - “हिन्दी व्यंग्य लेखन को समृद्ध बनाने में हिन्दी के जिन लेखकों ने अपना योगदान दिया है, उसमें लतीफ़ धोबी एक ऐसा नाम है जो हिन्दी के आम पाठक की जुबान पर है।”^(४७)

नरेन्द्र कोहली :-

विसंगतियों पर सार्थक आक्रमण करनेवाले व्यंग्यकारों की सूची में डॉ.नरेन्द्र कोहली का बहुत आदरणीय स्थान है। उन्होंने व्यंग्य-क्षेत्र में एक व्यंग्य-निबन्ध के द्वारा प्रवेश किया। ‘मैं बच्चे से धृणा करता हूँ।’ यह उनका प्रथम व्यंग्य निबन्ध है। व्यंग्य के प्रति डॉ.कोहली की निष्ठा गंभीरता प्रशंसनीय है। उन्होंने विभिन्न विषयों पर व्यंग्यात्मक लेख लिखे हैं। वो सामाजिक सच्चाई का अनुभव करने के उपरांत ही व्यंग्य लिखते हैं, इसलिए इनमें विनोद कम गंभीरता ज्यादा होती है। नरेन्द्रजी ने व्यंग्य निबन्ध साहित्य को सशक्त करने के लिए काफी योगदान दिया उनके ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है।

१. एक और लाल निकोन (१९७०)
२. जगाने का अपराध (१९७३)
३. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ (१९७७)

४. आधुनिक लडकी की पीडा (१९७८)

उनके निबन्धों के बारे में उन्होंने कहा है कि - “मैंने परिहास पूर्ण हलकी मनःस्थिति में नहीं लिखा है, किसी मानसिक यातना के भीतर ही भीतर एँठते हुए अत्यंत पीडा की अवस्था में इन रचनाओं का सृजन हुआ है।”^(४८)

संसारचन्द्र :-

संसारचन्द्रजी की हिन्दी व्यंग्य-निबन्ध साहित्य में एक अलग पहचान है। उनको सात बार पुरस्कार मिला है। वो एक सफल अध्यापक व आचार्य रह चुके हैं। उन्होंने सशक्त भाषा में व्यंग्य-निबन्धों का सृजन किया है। आपके निबन्धों की ग्रन्थ-सूची इस प्रकार है।

१. सटक सीताराम (१९५८)
२. सोने का दाँत (१९६२)
३. अपनी डाली के काँटे (१९६८)
४. बांते ये झूठी हैं (१९७४)
५. गंगा जब उल्टी बहें (१९८१)

इस प्रकार व्यंग्य-निबन्ध साहित्य में संसारचन्द्र का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने एक सुंदर संकलन - ‘हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्ध रूपयात्रा’ (१९६९) संपादित किया जिनमें भारतेन्दुजी से लेकर आजतक के निबन्धकारों को स्थान मिला है।

अमृतराय :-

प्रेमचन्द के पुत्र होने के नाते अमृतराय की साहित्यिक क्षमता के बारे में चर्चा करना जरूरी नहीं है ये उनकी जन्मजात शक्ति हैं। आधुनिक युग में व्यंग्य-निबन्ध को सशक्त करने में अमृतरायजी का विशेष योगदान माना जाता है। उनके (१) बरसात (१९७३), (२) मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (१९७७) और (३) विजिट इंडिया (१९८२)

उल्लेखनीय संग्रह है। उन्होंने विविध विषयों पर व्यंग्य किया है उनके व्यंग्य-विनोद का स्वरूप शिष्ट और परिष्कृत हैं।

आत्मानंद मिश्र :-

आत्मानंदजी शिक्षा के साथ जुड़े हुए व्यक्ति हैं। उन्होंने शिक्षा के संदर्भ में गहरा चिंतन प्रस्तुत किया है, शिक्षा शास्त्र के संदर्भ में आपकी २० से अधिक किताबें प्रकाशित हुई हैं। व्यंग्य-निबन्धकार के रूप में आत्मानंदजी ने स्वयं को निशाना बनाते हुए आत्मव्यंग्य लिखे हैं। आपके निबन्धों को निम्नांकित ग्रन्थों में स्थान मिला हुआ है।

- | | |
|------------------------|--------|
| १. मजे में तो हैं? | (१९५९) |
| २. नमस्ते | (१९६१) |
| ३. जो है सो | (१९६३) |
| ४. बे बात की बात | (१९६७) |
| ५. बात का बतंगड | (१९७०) |
| ६. मुश्किल में पड़ गये | (१९७२) |

इस प्रकार मिश्रजी का आधुनिक व्यंग्य-निबन्धों में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

इन्द्रनाथ मदान :-

इन्द्रनाथजी का व्यवसाय भी पढ़ना-पढ़ाना है, इसलिए साहित्य में भी उनकी उपस्थिति सराहनीय मानी जाती है। व्यंग्य-निबन्ध के क्षेत्र में उनका योगदान सराहनीय रहा है। डॉ. तिवारी के अनुसार - “जीवन की गहरी व्यथा को व्यक्तिगत सन्दर्भों के सहारे डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने व्यंग्य का माध्यम बनाया है। इसी कारण उनकी व्यंग्य रचनाओं में वैयक्तिक व्यंग्य निबन्धों के गुण अधिक उपलब्ध हैं।”^(४९) उनके निबन्ध निम्नांकित ग्रंथों में संग्रहित है - (१) निबन्ध और निबन्ध (१९६६) (२) कुछ उथले कुछ गहरे (१९६८) (३) रानी और कानी (१९७४) (४) बहानेबाजी (१९७८) (५) विदा-अलविदा (१९८२)

डॉ. मदान वैसे तो आलोचक के रूप में जाने जाते हैं किन्तु गत दो दशकों में उन्होंने निबन्धकार के रूप में अपने को प्रस्थापित किया है, जिनके सहारे समाज में व्याप्त विसंगतियों का पर्दाफाश किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तरकाल में निबन्धकारों ने हास्य-व्यंग्य निबन्ध के क्षेत्र को उर्वर करने का प्रयास किया है। वैसे स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-निबन्धकारों की परम्परा यहीं समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि इस प्रतिनिधि-निबन्धकारों के अलावा अनेक साहित्यकारों ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों को लक्ष्य करके व्यंग्य निबन्धों की रचना की है। पं.हरिशंकर शर्मा, केशवचन्द्र वर्मा, रामनारायण उपाध्याय, प्रकाश पण्डित, सुबोधकुमार, प्रेमजनमेजय, प्रदीप पंत आदि विद्ववानों की लम्बी परम्परा है, जिन्होंने अपनी लेखनी से हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा को समृद्ध किया है। इतना ही नहीं उसे सशक्त एवं विकासशील बनाया है, आज इन विद्ववानों ने हास्य-व्यंग्य निबन्ध विधा को सबसे अधिक समाजोन्मुख विधा के रूप में प्रस्थापित कर दिया है। यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद हास्य-व्यंग्य निबन्धों ने हिन्दी कवि, समीक्षक, उपन्यासकार आदि विभिन्न कोटी के रचनाकारों को आकर्षित किया है एवं पाठक वर्ग भी निबन्ध साहित्य को ज्यादा पसन्द करने लगा है, निबन्ध विधा हास्य-व्यंग्य साहित्य के उद्देश्य को साकारित करने के लिए सही एवं सटीक विधा है, जो स्वातंत्र्योत्तर युग में मजबूत रूप से उभरकर चली है।

४.२ गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा एक परिदृश्य :-

४.२.१ प्रास्ताविक :-

गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य साहित्य की परम्परा काफी प्राचीन है। सदियों से गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य उनका अंग रहा है। हास्य-व्यंग्य साहित्य प्राचिन समय से गुजराती साहित्य में प्राप्त होता है, उनके एकाधिक उदाहरण प्राप्त होते हैं। पर यह सही है कि ऐसा साहित्य प्रारम्भ में कम ही लिखा गया और जो लिखा गया वो पद्य में ही लिखा गया है। गद्य साहित्य में हास्य-व्यंग्य अल्प मात्रा में लिखा गया है।

मध्यकालीन साहित्य की अभिव्यक्ति विशेषतः पद्य में है, इसलिए हास्य-व्यंग्य पद्य के रूप में ही उस समय विकसित हुआ।

जहाँ तक गद्य साहित्य में हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति की बात है तो वो भी काफी प्राचिन है। मधुसुदन पारेख मानते हैं कि - “हेमचंद्राचार्य पूर्वे पण अपभ्रंशमां हास्य-रसनी कथाओं मले छे। आठमी सदीमा ‘भरडक बत्रीसी’ रचाई छे। तद्उपरांत हास्य नी अनेक कथानकों बालावबोध पर थी उतरी आव्या छे। धूर्तकथाओं, मूर्खामी कथाओं, संप्रदायना उपहासनी कथाओं, शिथिल चारित्र्यवाली पतिने छेतरनारी स्त्रीओंनी चार्तुय कथाओं वगैरे प्राचिनकाल थी रचाती आवे छे। गद्यमां ‘मूर्खशतक स्तबक’ ए हास्य कृतिनों निर्देश मोहनलाल दलीचंद देसाईए ‘जैन गुर्जर कविओं’ मां कर्यो छे, ए कृति सवंत १७१० मां रचाई होवानुं तेमणे जणाव्यु छे।”^(५०)

इस प्रकार इन बातों से यह स्पष्ट है कि गुजराती साहित्य में भी हिन्दी के समान हास्य-व्यंग्य साहित्य के जन्म के साथ-साथ उनके प्रारम्भिक समय से ही अभिव्यक्ति का ज़रियाँ रहा है। जो प्रारम्भ में पद्य के रूप में विशेष रूप में पाया जाता है। पर गद्य में भी उनकी अभिव्यक्ति होती रही हैं। इसलिए ये सही है कि प्रारम्भ में वो एक साहित्यिक विशेषता के रूप में अभिव्यक्त होती रही बाद में धीरे-धीरे उनका दायरा बढ़ा। गद्य में भी निबन्ध साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा की बात करे तो वो आधुनिक साहित्य की देन हैं।

आधुनिक गुजराती साहित्य में साहित्य की अनेक विधाओं के समान निबन्ध भी पाश्चात्य साहित्य की देन समजा गया है। ऐसे निबन्धों का प्रारम्भ नर्मद के द्वारा हुआ पर नर्मद ने जो निबन्ध लिखे वो गंभीर व विचार-प्रधान निबन्ध रहे। जिनमें नैतिकता, शिक्षा व उद्देशात्मकता का भाव विशेष रहता था। बाद में समय रहते गुजराती साहित्य में रसलक्ष्मी ललित निबन्धों का आरम्भ हुआ जिनमें वैयक्तिक रूप से मुक्त विचारों को बगैर किसी बन्धन से व्यक्त किये जाते, जिनमें लेखक उपदेशकगुरु या शिक्षक की भूमिका में नहीं पर मित्र की भूमिका में रहता था और वह किसी भी प्रकार के क्षोभ के

बगैर व्यक्त होता था ऐसे रसलक्षी ललित निबन्धों में से ही हलके-फूलके हास्य-व्यंग्य निबन्धों का आरम्भ हुआ माना जाता है। जिनमें लेखक पाठक के साथ विनोद गोष्ठी के साथ-साथ सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष भी करता हैं।

गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य किस तरह से विकसित एवं विस्तारित हुआ ये देखना है तो उसे आधुनिक गुजराती साहित्य के हर युग में टटोलकर देखना पड़ेगा। नर्मदयुग यानी कि जागृतिकाल से लेकर आधुनिककाल तक के निबन्ध साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध किस तरह से पाया जाता है ये जानना जरूरी हैं। गुजराती निबन्ध साहित्य को कुछ इस तरह से विश्लेषित किया गया हैं। -

- सुधारयुग अथवा नर्मदयुग
- समन्वययुग अथवा पंडितयुग
- गांधीयुग
- आधुनिकयुग

इसी क्रम से गुजराती हास्य व्यंग्य निबन्ध साहित्य के विकासक्रम को देख सकते हैं।

४.२.२ सुधारयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य :-

गुजराती साहित्य के सुधारयुग से निबन्ध साहित्य का प्रारम्भ होता हुआ पाया जाता है। इसी युग से निबन्धविधा धीरे-धीरे प्रारम्भ हुई, सुधारयुग के प्रमुख निबन्धकार नर्मद हैं, जो गम्भीर प्रकृति के साहित्यकार है। जिनका प्रभाव इस युग के छोटे-बड़े सभी निबन्धकारों पर पाया जाता है इसलिए इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों को बहोत ही कम स्थान मिला है, यही कारण है कि इस युग के निबन्धकारों में हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों की रचना करने का साहस कम लोग ही जूटा पाये। ज्यादातर हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति निबन्ध की विशेषता के रूप में होती हुई पाई जाती है। फिर भी प्रारम्भिक समय होने के कारण शायद इस युग के निबन्धकारों ने खुलकर हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों की रचना नहीं कि पर इतना तो हम अवश्य कह सकते हैं कि

हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध परम्परा का निर्वाहन कर सके ऐसे कुछ निबन्ध अवश्य लिखे गये हैं।

गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्ध का प्रारम्भ नवलराम के 'ओथारियो हडकवा' से माना जाता है। मधुसुदन पारेख मानते हैं कि - "गुजराती साहित्य में हलवा निबन्धनुं सुभग स्वरूप प्रथमवार नवलराम पंड्या ना 'ओथारियो हडकवा' में थाय छे। नवलरामनी कटाक्ष शक्ति नो ऐमां सरस अनुभव थाय छे।"^(५१) नवलराम सुधारयुग के महत्वपूर्ण निबन्धकार हैं। उन्होंने विवेचनात्मक निबन्ध ही ज्यादा लिखे हैं। उन्होंने निबन्धों में पृथकरणात्मक रीति को अपनाया है उन्होंने वास्तविकता को नज़रअंदाज़ नहीं किया।

नर्मद के बारे में कहा जाता है कि वो गम्भीर लेखक है। उसे हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्य कम रुचिकर रहे पर नर्मद दोस्तों के बीच में सामान्य व्यवहार में मज़ाक मस्ती किया करते थे। डॉ. प्रवीण दरजी लिखते हैं कि - "नर्मद स्वभाव से कौतुक प्रिय व्यक्ति हैं।"^(५२) उनके ऐसे व्यक्तित्व की जलक उनके 'डॉडियाँ' निबन्ध में मिल जाती है - "नर्मद के निबन्धों में 'डॉडियाँ' एक अलग प्रकार की रचना है जिनमें तत्कालिन समसामयिकता के दर्शन होते हैं, जिनमें हास्य-व्यंग्य का भरपूर मात्रा में प्रयोग देखा जा सकता है, जिनमें वो काफी सफल रहे हैं। इसमें उन्होंने प्रहारात्मक शैली का प्रयोग किया है। नर्मद के अलावा 'डॉडियाँ' में लिखनेवाले अन्य लेखक गिरधरलाल, नगीनदास, केशवलाल, आत्माराम, श्रीधर नारायण, एवं ठाकोरदास के लेखों में भी व्यंग्य के उदाहरण मिल जाते हैं।

सुधारयुग में दलपतराम को विशेष स्थान मिला है। भले ही नर्मद को हम निबन्ध साहित्य के जनक के रूप में देखें पर उनसे पहले दलपतराम के गद्य लेखों में निबन्धतत्त्व सहज ही मिलता रहा है। हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों के रूप में दलपतराम नर्मद के समान गम्भीर प्रकृति के नहीं हैं, उनके निबन्धों में वनोद तत्त्व सहज ही

समाविष्ट हो गया हैं। डॉ. प्रवीण दरजी मानते हैं कि - “नर्मद ना निबन्धों मां जे विनोद तत्त्वनों बहुधा अभाव देखाय छे, तेवो अभाव दलपतराम ना निबन्धों मा नथी। तेमनी कवितानी जेम तेमनां निबन्धों मां पण अनेक स्थले विनोद आवतो रहे छे। ‘भूत’ निबन्ध मां आवती गुजरातीनी हिम्मतनुं द्रष्टांत अने काचिंडो पेट मां पेठानो भ्रम जेवी वार्ताओ एमनी ठावकाई भरेली विनोदवृत्ति ना समर्थ दृष्टांतों छे।”^(५३) उनके अन्य निबन्धों में भी विनोदवृत्ति सहज व्यक्त होती हुई दिखाई पड़ती हैं।

इनके अलावा महीपतराम के निबन्धों में भी व्यंग्यात्मक उदाहरण मिल जाते हैं। महिपतराम सुधारक है, वो शिक्षक होने के नाते विभिन्न प्रवृत्तियों के द्वारा सुधारलाने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने खास करके समाज व धर्म पर विशेष रूप से लिखा है। उनकी सदाभक्ति और सदाचरण नामक रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। जिनमें उन्होंने धर्म में व्याप्त बाह्याआडम्बर पर काफी व्यंग्य किया हैं।

इस प्रकार समग्रतः सुधारयुग को देखने से यह स्पष्ट है कि, सही में इस युग के निबन्धकार सुधारवादी प्रवृत्तियों से जुड़े रहे। इनमें से ज्यादातर निबन्धकार मूलतः शिक्षक थे जिनमें नैतिकता, शिक्षा की बात सहज ही आती रही और नर्मद के गाम्भीर्य का भी प्रभाव रहा फिर भी जहाँ तक हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का सवाल है, तो इनका प्रारम्भिक स्वरूप ठोस रूप से इस युग में मिलता है, खास करके जहाँ सामाजिक या धार्मिक रूप से भटकाव दिखाई पड़ा वहाँ इन सुधारवादी लेखकों ने अवश्य ही व्यंग्य कसा है। इस समय पूर्णतः हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध को जन्म देना भले ही किसी ने न सोचा हो पर नर्मद, दलपतराम, नवलराम, महीपतराम के सुधारवादी निबन्धों में हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध की जलक अवश्य मिल जाती हैं। जिनसे हम कह सकते हैं कि हास्य-व्यंग्य निबन्ध की परम्परा का बीज इस युग में बोया गया जिनको पाठकों की ओर से भी समर्थन हाँसिल हुआ।

४.२.३ पंडितयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य :-

गुजराती साहित्य में पंडितयुग का विशेष महत्व रहा हैं। जिसे साक्षरयुग एवं समन्वयुग भी कहा जाता हैं। पंडितयुग का समय गुजराती साहित्य के लिए अति महत्वपूर्ण समय रहा हैं। इस युग में गुजराती साहित्य की सभी विधाओं का विकास हुआ। गुजराती साहित्य वैचारिक दृष्टि से भी इस युग में सशक्त एवं समृद्ध होता हुआ पाया जाता है। हम कह सकते हैं कि गुजराती साहित्य में भाव-भाषा एवं शैली की दृष्टि से इस युग की विधाएँ काफी समृद्ध एवं परिवर्धित हैं।

इस युग में प्राप्त निबन्ध साहित्य की बात कहे तो इस युग का निबन्ध साहित्य काफी विकासशील दिखाई पड़ता हैं। निबन्धों की जो परंपरा सुधारयुग में प्रारम्भ हुई वो पंडितयुग तक आते-आते काफी मजबूती के साथ नवीनता सम्पन्न करने लगी। निबन्ध का स्वरूप पूर्णरूपेण विकसित हुआ, इस युग के लगभग सभी साहित्यकारों ने निबन्ध अवश्य लिखे हैं। जिनमें विविध विषयों के संदर्भ में विचारों को क्रमबद्ध रूप से व्यक्त किये गये हैं। इस संदर्भ में हम हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों की बात करें तो भले ही अन्य निबन्धों से उसे कम जगह मिली हो पर इतना तो हम स्पष्ट कह सकते हैं कि सुधारयुग में जो हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का झरना बहता हुआ देखा था, वो अब धीरे-धीरे नदी का रूप लेता हुआ पाया जाता है। प्रारम्भिक समय में वो विभिन्न निबन्धों के बीच विशेषता के रूप में निबन्ध के अलंकार के रूप में लिया जाता था। जिनका मकसद पाठकों को सिर्फ मनोरंजन प्रदान करना था। पर अब इस पंडितयुग के निबन्धकारों ने हास्य-व्यंग्य निबन्धों को एक विशिष्ट उद्देश्य के साथ अपनाया था, वो सिर्फ अपनी रचना के विषय को या तो भावों को सिर्फ परिवर्तित करना नहीं चाहते थे पर कुछ ऐसी निश्चित बात को व्यक्त करने के लिए निश्चित भावों को प्रश्रय देने के लिए हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों की रचना की। संक्षेप में कहें तो भले ही इस युग में अन्य निबन्धों के मुकाबले हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध कम मिलते हो पर इतना तो स्पष्ट है कि इस युग का निबन्धकार हास्य-व्यंग्य पर स्वतंत्र चिंतन करता हुआ पाया जाता हैं।

मणिलाल नभुभाई इस युग के प्रमुख निबन्धकारों में से हैं, जिन्होंने ज्यादातर साहित्य समाज एवं धर्म के सबन्ध में निबन्ध लिखे हैं, पर क्योंकि वो गम्भीर प्रकृति के

इन्सान है इसलिए हास्य-व्यंग्य को वो पसन्द नहीं करते। पर ऐसे गम्भीर निबन्धों के साथ एक हास्य-व्यंग्य से भरा हुआ निबन्ध 'इत्यादी नी आत्मकथा' मिलता हैं, जिनमें वो काफी सफल रहे। डॉ.मधुसुदन मानते है कि - "नवलराम पछी गम्भीर प्रकृति ना विचारक मणिलाल नभुभाई पासे थी सम खावा पुरतो एकाद हलवो निबन्ध 'इत्यादी नी आत्मकथा' मले छे। एमा पण पांडित्य नो आडम्बर करनारा वकता उपर हलवो कटाक्ष छे।"^(५४) इस प्रकार हास्य-व्यंग्य निबन्ध का स्वतंत्र रूप इस निबन्ध में मिलता हैं।

नरसिंहराव दीवेटिया ने भी अपने निबन्धों में हास्य-व्यंग्यात्मक शैली की अभिव्यक्ति आवश्यकतानुसार की है। उनके निबन्धों में 'विवर्तलीला' निबन्ध पाठकों को अलग प्रकार के स्वरूप की अनुभूति करवाता है, जिनके बारे में हम कह सकते है कि उनमें स्थान-स्थान पर प्रकट हो रहा, नर्म-मर्म हास्य एवं रोचक दृष्टांत मनको मुग्ध करनेवाला हैं। डॉ.प्रवीण दरजी मानते है कि - "विवर्तलीला ना निबन्धों हलवी मार्मिक शैली मां लखायेल छे। आ प्रकारनी रचना नी शुरुआत कइंक अंशे नर्मद ना 'डॉडियाँ' थी थई हती, अने 'ओथारियों हडकवा' तेमज 'मनना विचारों' जेवी नवलराम नी रचनाओं मां एनुं सातत्य जलवाई रह्युं हतुं।"^(५५) विवर्तलीला के माध्यम से अलग ही प्रकार के गम्भीर विषय पर हलकी-फूलकी शैली में उसे व्यक्त कर एक उत्तम उदाहरण के रूप में नरसिंहराव ने निबन्ध की अभिव्यक्ति की है, जिसे गुजराती साहित्य में विशिष्ट प्रदान समजा जायेगा।

रमणभाई निलकंठ ने हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य को विशेष रूप से प्रश्रय दिया है, विकसित किया है, वैसे तो उन्होंने बहोत से साहित्य रूपों पर कलम चलाई है पर निबन्धों से उनकी विशेष पहचान बनी है। रमणभाई के हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध को देख के ऐसा लगता है कि पहलीबार किसी गुजराती निबन्धकार ने उसे पूर्णतः अपनाया हैं। रमणभाई स्वभावगत विनोदी व्यक्ति है, इसलिए उनके आस-पास की दुनिया में व्याप्त विनोदी एवं विसंगति युक्त चरित्रों को उन्होंने अपनी रचना के विषय बनाये। रमणभाई ने

सिर्फ हास्य के बारे में लिखा है, ऐसा नहीं है उन्होंने हास्य के तत्वज्ञान को अच्छी तरह से आत्मसात किया है। उनकी रचना 'हास्यमंदिर' में व्यक्त हास्यरस' लेख उनकी साक्षी है। तोछडाईनी कला, कारभारनो शिकार, हुन्नर, कौशल्य, दर्पण, प्रकाश, 'थोभी आ' पाटियाँ वाचनारा, मानपत्र विशे पदार्थपाठ, चिट्ठी, भोमिया ने दीधेली, कागडानो मंदवाड, धोलीदाढी, भूल थाय आदि निबन्धों में रमणभाई ने हास्य-यंग्यात्मक शैली को व्यवस्थित रूप से व्यक्त की है। जिनमें वो सफल भी रहे है। डॉ.प्रवीण दरजी ने माना है कि-“आ विषय मां एमनी प्रतिभा एटली खीलेली छे के तेओ सर्वत्र पोतीकी मुद्रा उपसावी शक्या छे। पुस्तकना अर्पणमां ज एमनी लाक्षणिक विनोदवृत्ति ना दर्शन थाय छे।”^(५६) इस बात को मधुसुदनजी ने भी माना है कि उनके अनुसार - “रमणभाई ना 'हास्यमंदिर' मां पण केटलांक हास्यलेखों हलवा निबन्धों ऐमनी नर्म-मर्म प्रगट करवानी शक्ति नो परिचय करावनारा छे।”^(५७) रमणभाई के ऐसे निबन्ध इसलिए प्रसिद्ध रहे क्योंकि इनमें उन्होंने कल्पना का वैविध्य, विभिन्न दृष्टांत, तरह-तरह के वर्णनों एवं काव्यात्मकता व आलंकारिकता से भरे हुए उनके निबन्ध किसी भी प्रकार के विषय को वैविध्य सभर बना सकते है उनमें हास्यरस उसे और भी रसयुक्त बना देता हैं। यही कारण हैं कि उनके महत्व को समजते हुए विनोदभाई ने लिखा है कि - “रमणभाईए अस्पृश्य गणाता एवा हास्यरस ने साहित्य मंदिरमां विधिवत् अने व्यवस्थित रीते प्रवेश कराव्यों। हास्यरस परनुं साचु काम रमणभाई द्वारा शरु थयुं। हास्यनी प्रतिष्ठा करावनार ते पहेला सर्जक छे।”^(५८)

इस शैली का अनुसरण कर लिखनेवाले रमणभाई की धर्म पत्नी 'विद्यागौरी' ने भी हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में अपना यथायोग्य योगदान दिया है। इस क्षेत्र में उनकी भी विशिष्ट गणना समजी जाती हैं। विद्याजी निर्दोष हास्य के साथ-साथ हलका सा कटाक्ष भी रख देती है। उनके निबन्ध में 'दांत कहाढवानो संचो', 'वखत गुमाववानी कला', 'व्याकरण मां एक नवी शोध', उनके प्रचलित हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध रहे हैं। डॉ.प्रवीण

दरजी मानते हैं कि - “हास्य-प्रधान निबन्धों नी रमणभाई ये उघाडी आपेल दिशामां ते अरसामां ज गति करी विद्यागौरी नीलकंठ केटलांक सफल हास्यप्रधान निबन्धों आपेछे।”^(५९) इनसे इतना तो स्पष्ट है की पंडितयुग की गम्भीर वैचारिकता से मुक्त होकर उन्होंने सहज भाव से अपने निबन्धों को वाचा दी हैं। सामान्य पाठको तक पहुँचाया हैं।

इनके अलावा इस युग में बलवंतभाई ठाकोर ने जो निबन्ध लिखे उनमें कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य की जलक स्पष्ट देखी जा सकती है। उनके निबन्ध ‘गांडी गुजरात’ में उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया हैं। इस बारे में कहा जाता है कि - “क्यारेक तेओ हसावे छे, तो क्यारेक व्यंग्य करे छे।”^(६०) इनके अलावा अन्य लेखकों में शंभुप्रसाद छेलशंकर जोशीपुरा ने भी हास्यलेख लिखे हैं। मूलतः वो कवि है, पर हास्य-साहित्य में भी लेखों के माध्यम से वो पाठकों से रूबरू हुए हैं। अतिसुख त्रिवेदी पंडितयुग एवं गांधीयुग के संधिकालिन लेखक हैं। जिनकी निबन्ध साहित्य में विशेष गणना होती है, उन्होंने गम्भीर निबन्धों के साथ-साथ हास्यप्रेरक निबन्ध भी लिखे हैं, उनके निबन्ध संग्रहों में ‘निवृत्तिनो विनोद’, ‘साहित्य विनोद’, ‘प्रवासविनोद’, ‘आत्मविनोद’ प्रसिद्ध रहे हैं।

इनसे ये स्पष्ट है कि, सुधारयुग के मुकाबले पंडितयुग में हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य की अभिव्यक्ति में निखार आया हैं। इस युग के निबन्धकारों ने इस ओर पाठकों की रुची को भी सम्पन्न किया है। उनकी शक्ति को समजते हुए उनके माध्यम से लेखकों ने अपने साहित्य को समृद्ध किया है, इसलिए सुधारयुग में जिस प्रकार से हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य को नजर अंदाज किया जाता रहा था वो इस युग में दिखाई नहीं देता हैं। क्योंकि रमणभाई ने हास्य-व्यंग्य निबन्धों को इस रूप में संस्कारित किए कि हरकोई पाठक अपने आपको उनके साथ जोड़ लेता है। उनके अभिव्यक्ति कौशल, असरकारकता एवं सामाजिक संप्रेषणियता के कारण वो अब खुदबखुद अपने पैरो पर चलने के लायक हो गया हैं। संक्षेप में कहे तो पंडितयुग हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य का समृद्धियुग माना जा सकता हैं।

४.२.४ गांधीयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य

गांधीयुग गुजराती साहित्य के लिए एक गतिशील युग माना जाता है। गुजराती साहित्य की सभी विधाओं का आन्तरिक एवं बाह्य विकास इस युग में सम्पन्न होता हुआ जान पड़ता है। संपूर्णतः बदलती हुई राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आबोहवा ने साहित्य के अन्य स्वरूप के समान निबन्ध साहित्य लेखन की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गई। इस युग में निबन्ध साहित्य एक नये ही अन्दाज में देखा जा सकता है। निबन्ध के विकास के लिए इस युग में काफी अच्छा माहोल बनता हुआ नज़र आता है।

हास्य-व्यंग्य निबन्धों के बारे में कहे तो जो आजतक खुलकर व्यक्त नहीं हुआ था, जो सुधारयुग में सिर्फ विशेषता मात्र बनकर रह गया था। पंडितयुग में जिन्होंने धीरे-धीरे विकसित होने का प्रारम्भ किया था, उन्होंने गांधीयुग में आकर अपनी वैयक्तिक पहचान बनाई है। इस युग के निबन्धकारों में से ज्यादातर निबन्धकारों ने हास्य-व्यंग्य निबन्ध लिखना पसन्द किया है। स्वतंत्रता का चिंतन हावी होने के बावजूद भी पाठकों की रुची के कारण उनकी गति अविरत चलती रही थी।

अतिसुख त्रिवेदी जो पंडितयुग में लिखते रहे उनकी लेखनी इस युग में भी अविरत चलती रही है। कहा जाता है कि, “गांधीयुग ना निबन्ध साहित्य मां शैली परिवर्तन करनार ते अतिसुख त्रिवेदी छे. गंभीर निबन्ध मां उर्मिरसित प्रवाही शैली गुजराती निबन्ध मां सौथी पहेली “निवृत्तिविनोद” मांज जोवा मले छे.”^(६९) इसलिए निबन्ध साहित्य में उनका विशिष्ट महत्त्व माना जा सकता है।

काका साहेब का निबन्ध साहित्य समृद्ध है, उनके निबन्धों में जीवन सत्य की गहराई होती है पर उस गहराई को नापने के लिए उन्होंने अपने निबन्धों में बहोतबार विनोदवृत्ति का सहारा लिया है। भले ही सउद्देश्य उन्होंने हास्य-व्याग्यात्मक निबन्ध न लिखे हो पर इस भावना से वो अवश्य जुड़े रहे हैं। वो जीवन का अवलोकन हलके ढंग से करते हैं। धीरुभाई मानते है कि, “गांधीयुगनी नम्रता अने अहिंसक भावना ने छाजे तेवी उष्माभरी प्रेमलत्ता नो स्पर्श करावतो, प्रत्यक्ष जीवनमांथी उद्भवतो शुद्ध मानवतालक्षी विनोद ए आधुनिक साहित्यनुं खास लक्षण छे, अने तेने उत्तम रीते खीलवनार काका

कालेलकर छे. तेमना हलवा लेखो पाछण जीवनना कोई गंभीर अने व्यापक सत्य नो रणको होय छे.”^(६२)

गांधीयुग में इस सूक्ष्म, निच्छल व सहज हास्य की परम्परा को आगे-बढ़ानेवाले सशक्त निबन्धकार के रूप में रामनारायण वि. पाठक - स्वैरविहारी का नाम लिया जा सकता हैं। विनोदभाई के अनुसार, “वधु सूक्ष्म साहित्यिक, ऊँचा अने साचा हास्य नों अनुभव स्वैरविहारी द्वारा थाय छे. स्वैरविहारी ना उपनामें तेमणे व्यंग्य दर्शननी मदद थी अनेक कलात्मक निबन्धों आप्या छे. तेमना कटाक्ष पाछण उंडु चिंतन जोवा मले छे.”^(६३) उनके निबन्धों की सूक्ष्मता, विविधता, तीक्ष्णता, तर्कबद्धता, रसमयता पाठकों को अपनी ओर खींचती है, उनके निबन्धों में “कई क्रियामां माणस सौथी वधु बेवकुफ देखाई?, हिन्दुओनुं खास सायन्स, खराब करवानी कला, तखल्लुस मीमांसा, जेल विहार, स्वैरविहार, फोटोग्राफ पाडवा विषे, मांदगी विशे, शांकुन्तल नो गूढ़ार्थ आदि हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों से उनका सही परिचय मिलता है। उनके व्यंग्य के पीछे चिंतन मिलता है। नवलराम के अनुसार, “हसवानी खातर हसवुं एवुं स्वैरविहारी मानता नथी. तेमां खडखडाट हास्य नी निखालसता नथी पण व्यवहार कुशल चिंतक नो कटाक्ष छे.”^(६४)

स्वैरविहारी के निबन्धों को देख कहा जा सकता है कि वह हास्य-व्यंग्य साहित्य के कुशल चितेरे हैं। निबन्ध साहित्य की नब्ज को वो जानते हैं, पाठकों की आकांक्षा को उन्होंने सही पहचाना है। एक जागरुक साहित्यकार की दृष्टि एवं सभानता से की गई अभिव्यक्ति के कारण गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य में न मिटनेवाली लकीर खींच दी है। उनके इस प्रभावशाली प्रदान को देख के धीरुभाई लिखते हैं कि, “स्वैरविहारी मां अनेक प्रसंगे फिलसुफ नु हास्य प्रवर्ते छे। श्लेष, कटाक्ष, तर्क, इतिहास, लोकोक्ति, कहेवत आदि थी पुष्ट नर्मोक्तिओं अने व्यवहारना निरीक्षण मांथी तेम कल्पना थी उपजावेला द्रष्टांतरूप प्रसंगों मांथी समर्म हास्य तेओ निष्पन्न करे छे। तेमानी घणी सामग्री हास्य ने ताजु राखे एवी छे। मलकाट थी मुक्त हास्य सुधीनी विभिन्न कक्षाओं ते सर करे

छे। तेमना निबन्धों ना विषयों गांधीयुग ना अस्त साथे कदाच भूलाई जवा पामे, परंतु पाठक नुं हास्य तो पेढ़ीओ सुधी संभलाया करशे।”^(६५)

गांधीयुगीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध बिना थमे अविरत विकसित होते रहे, इस युग में अंतिम चरण में जोतीन्द्रजी का आविर्भाव होता है, पर स्वैरविहारी से ज्योतिन्द्रजी तक के सफर के बीच में बहोत से ऐसे निबन्धकार मिल जाते हैं, जिन्होंने इस विधा की ज्योत को जलाए रखने का यत्न किया है, जिनमें उसे काफी सफलता भी मिली है। ऐसे निबन्धकारों में विजयराय, मोहनलाल पी. दवे, जयेन्द्रराय, नवलराम त्रिवेदी, धूमकेतु, रमणलाल महेता, मुनिकुमार भट्ट, नटवरलाल बूच, मेघाणी, धनसुखलाल महेता, चिनुभाई पटवा, उमाशंकर जोशी आदि निबन्धकारों ने सफल निबन्ध लेखों का निर्माण किया है।

विजयराज ने अपना उपनाम ‘विनोदकान्त’ रखा था। वो उसी रूप में अभिव्यक्त होते रहे। उनके विनोदी व्यक्तित्व का परिचय नाजुक सवारी, प्रभातना रंग, उडता पान, खुशकी अने तरी, अमारा देव, शरीर महिमा ना स्त्रोत, प्रोफेसरों पिंजरा मां, माया अने ब्रह्म, तावे करेली वात, एक अद्भुत अवतारलीला आदि निबन्धों से मिल जाती हैं।

मोहनलाल ने अपने हास्य को हलका बनाके व्यक्त किया है, उन्होंने काव्यात्मक शैली का भी सहारा लिया है। उनके निबन्धों में ‘कलहरसिकता’ के विशेष रूप से पसन्द किया गया उनके हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध ‘तरंग’ संग्रह में संग्रहित है। जो रसाल शैली में अभिव्यक्त हैं। जयेन्द्रराय भ. दूरकाल भी उनके साथ रहते हुए रसाल शैली में निबन्ध लिखते रहे, जयन्त कोठारी के अनुसार, “तेमणे रमतियाल शैली मां निबंधिकाओं लखी छे, अगंभीर निबंधनी प्रवृत्ति तेमणे बहु गंभीर भावे खेडी छे.”^(६६) थोड़ाक छूटा फूल, पोयणा, अमी जैसे संग्रह उनकी विनोद शक्ति का परिचय करवाते हैं।

नवलराम त्रिवेदी ने समाज सुधारकों नज़र में रखते हुए लिखा है। उनके संग्रह ‘केतकी ना पुष्पों’ एवं ‘परिहास’ में उनकी विनोदवृत्ति का परिचय मिलता है। तो धूमकेतु ने ‘पानगोष्ठी’, रमणलाल महेता ने ‘पंचाजीरी’, नटवरलाल बूच ने ‘रामरोटी’ तो मेघाणी ने ‘सांबेलानां सूर’ के माध्यम से हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य की परम्परा को बनाये

रखा है, इस निबंधिकाओं में हास्य के साथ-साथ व्यंग्य को भी बराबर स्थान मिला हुआ है।

इस युग में कुछ ऐसे निबन्धकार भी हुए जिन्होंने हास्य-व्यंग्य को अपनाया है पर उनका लक्ष्य कुछ गम्भीर चिंतन प्रस्तुत करना रहा है। जब ऐसी रचनाएँ बनती हैं तो वो विशेष उत्तम व महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। इस युग के हास्य लेखकों की ऐसी भी कुछ रचनाएँ हैं। ऐसे लेखकों में मुनिकुमार भट्ट, गगन विहारी महेता, धनसुखलाल महेता, ज्योतीन्द्र दवे और किशोरीलाल घ. मशरुवाला विशिष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

मुनिकुमार भट्ट का संग्रह 'ठंडे पहोरे' प्रसिद्ध है। जिनमें बाईस गद्यलेख संग्रहित हैं। जिनमें कुछ आस्वाद्य रचनाएँ मिल जाती हैं। वो रसाल शैली में लिखते हैं पर कई बार बहोत गंभीर हो जाते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि वो प्रयास करके हास्य को शामिल कर रहे हैं। 'एक ऐतिहासिक मृत्यु', 'एक उपयोगी विनाश' उनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। जिनके जरिये वो हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धकार के रूप में पहचाने जाने लगे। गगनविहारी महेता ने भी हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य में 'आकाश ना पुष्पों एवम् 'अवली गंगा' के माध्यम से विशिष्ट प्रदान किया है। मधुसुदनजी मानते हैं कि, "हास्य निष्पन्न करवानी तेनामां नैसर्गिक शक्ति छे, हास्य अनायासे एमनी वाणी मांथी प्रगटी नीकले छे, सूक्ष्म अने शिष्ट मुखमलकाट प्रेरे तेवुं हास्य तेमनी निबंधिकाओं नों विशिष्ट गुण छे।"^(६७) 'माखी अने मनुष्य', 'विश्व साहित्य मां मारु स्थान', 'हुं उपकुलपति केम न थयो', 'अवसान नोंध', ये उनके लेखों के उत्तम उदाहरण हैं।

किशोरलाल सुप्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक हैं, वो गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे पर फिर भी उनके अन्तर मन में विनोद की भावनाएँ पलती थीं। जिनकी प्रतीति हमें उनकी रचना "कागड़ा नी नजरे" पढ़ने के बाद होती है। जिन में उनका ये सहज व्यक्तित्व व्यक्त हुआ है। पर उनका विनोद स्थूल नहीं है, वो सिर्फ विनोद व्यक्त नहीं करता पर उत्तम विचार भी व्यक्त करता हैं। उस समय चिनुभाई पटवाने भी वर्तमानपत्रों में व्यंग्यात्मक लेख लिखा करते थे। फिर उनके लेख पुस्तककार के रूप में प्रसिद्ध हुए 'पान-सोपारी', 'फिल सुफाणी', 'चालो सजोड़े सुखी थईए', 'हलवुं गांभीर्य' उनके ये हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों

को काफी पसंद किया गया था। इनमें व्यंग्य विशेष रूप से पाया जाता है। उमाशंकर मुलतः कवि है, पर वो उनको 'गोष्ठी' निबन्ध संग्रह से भी प्रसिद्ध हुए हैं जिनमें दो तीन हास्य-व्यंग्य निबन्ध मिल जाते हैं। 'पड़ोशीओ', 'बटुकराज', 'धि मंगलाष्टक लिमिटेड' में वो इस रूप में व्यक्त होते हैं। इन रचनाओं को देखकर हम कह सकते हैं कि अगर उमाशंकरजी ने इस दिशा में कुछ विशेष ध्यान दिया होता तो इस विधा को एक और निबन्धकार प्राप्त होता।

धनसुखलाल महेता का हास्य लेखक के रूप में बड़ा नाम रहा है। उन्होंने ज्योतीन्द्र दवे के साथ 'अमे बधा' नामक रचना लिखी हैं। जिसे विशेष सम्मान मिला। जयन्त कोठारी मानते हैं कि, "धनसुखलाल अने ज्योतीन्द्र आपणा साहित्य नुं प्रथम लेखक जुगल छे। एमनुं प्रथम सहकारी लेखन 'अमे बधा' आपणा हास्य साहित्य नुं 'भद्रंभद्र' पछी बीजुं उचुं शिखर छे।"^(६८) धनसुखलाल ने जो हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखे हैं, वो 'मीठी नजरे' एवं 'आराम खुरशीएथी', 'सासुजी' में संग्रहीत हैं। उनकी विनोदशक्ति का परिचय हमें 'हवाफेर', 'बालउछेर महेमानों', 'स्व.सर रमणभाई' आदि निबन्धों से मिलता है। इन निबन्धों पर से लगता है कि उनमें इतनी गहराई नहीं है। उनके निबन्धों में विषय संकलन की कमी पाई जाती है। फिर भी उन्होंने किसी व्यक्ति या वस्तु में से कोई ऐसी कमी को निकालकर उसे हास्य का विषय बनाया हैं। मधुसूदनजी मानते हैं कि, "एमना हास्य-निबन्धों मां उंडाण ओछु होय छे. मोटे भागे आसपास ना वातावरण मां थी विषय शोधी ने तेनुं ते हलवाश थी निरुपण करे छे।"^(६९) पर वो किसी भी विषय या प्रसंग में से हास्य के तत्त्व को पकड़ना बखूबी जानते हैं। इस कारण वो सफल रहे।

गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों में ज्योतीन्द्र दवे ने भी काफी कुछ प्रदान किया है। उनके द्वारा हास्य का शुद्ध रूप विकसित होता हुआ दिखाई पड़ता है। उन्होंने किसी भी प्रकार के अतिरेक के बगैर हास्य को साकार रूप प्रदान किया है। वह संपूर्ण रूप से हास्य के साथ तरबतर होनेवाले लेखक है। वह जैसा लिखते हैं वैसा बोल भी सकते हैं विनोदभाई मानते हैं कि, "हास्य ए घणी गंभीर बाबत छे. ए वातनी प्रतीति ज्योतीन्द्र दवे

ए ज करावी।”^(७०) उन्होंने साहित्य के विभिन्न रूपों पर कलम चलाई है, उनके निबन्धों की बात करें तो उन्होंने ‘रंगतरंग’ के छः भाग, के अलावा ‘रेतीनी रोटली’, ‘पानना बीड़ा’, ‘नज़र लांबी अने टूकी’, ‘मारी नोंधपोथी’, ‘अल्पात्मानुं आत्मपुराण’, ‘ज्यां त्यां पड़े नज़र मारी’, आदि निबन्ध संग्रह दिये हैं।

ज्योतीन्द्र दवे इतने सफल क्यों रहे? इस सन्दर्भ में अपनी मान्यताओं को व्यक्त करते हुए डॉ.रमेश त्रिवेदी ने लिखा है कि, “जीवन ने जोवानी चकोर दृष्टि जन्म थी ज स्वभाव मां पडेलुं सुरतीपणु, साहित्य अलंकारशास्त्र, इतिहास नों अभ्यास अने जातने ओगाली दर्ई ने एक फिलसुफनी तटस्थ अदाथी जोवानी दृष्टि द्वारा ते हास्य सर्जे छे।”^(७१) जिनके कारण उनके हास्य में असरकारकता पैदा होती है। उनके हास्य-निबन्ध विविध शैली में व्यक्त होते रहे हैं। जिन में वार्तात्मक, नाट्यात्मक, संवादप्रधान, पत्रात्मक, काव्यात्मक एवं कथनात्मक शैली का विशेष प्रयोग हुआ है। ज्योतीन्द्रजी ने अपने निबन्धों में विभिन्न भाषाओं का भी प्रयोग किया है। गुजराती, पारसी, अरबी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी भाषा के शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। जिनसे उनके निबन्ध वैविध्य सभर नज़र आते हैं। जयन्त कोठारी मानते हैं कि, “ज्योतीन्द्र उपर हास्य देवी ना जाणे चारे हाथ उतर्या छे..... ज्योतीन्द्र ना हास्य नुं उत्तम लक्षण ए छे, ते निर्दोष छे, प्रसन्न छे अने शिष्ट छे।”^(७२) इन-से ये स्पष्ट हो जाता है कि, ज्योतीन्द्र ने अपनी समस्त शक्ति को हास्य के पीछे लगादी। इनमें भी हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में उनकी शक्ति विशेषतः निखर उठती हैं। निबन्धों में उनका प्रदान अपूर्व, विपुल, वैविध्यसभर एवं विशिष्ट हैं।

इतनी चर्चा के पश्चात हम अवश्य कह सकते हैं कि गांधीयुग में आकार हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य का विकास उनके चरम तक पहुँच सका है। अब लगता है कि उसे गति मिल चुकी है, अब ऐसा नहीं लगता कि उसे अछूत माना जाता है। अब हर कोई उसे गले लगाना चाहता है और इस परम्परा में खुद भी शामिल होकर अपना नाम बनाना चाहते हैं। गांधीयुग के हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि हास्य से भी शिष्टता पैदा हो सकती है, उनसे गम्भीर चिंतन को भी व्यक्त किया जा सकता है। इस युग के ज्यादातर निबन्धकारों ने गम्भीरता के साथ हास्य को अभिव्यक्ति

दी है, जिनमें रसाल शैली का प्रयोग हुआ है। गांधीयुग का हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य को प्रारम्भ में स्वैरविहारी के हाथों गति मिली तो अन्त में ज्योतीन्द्रजी ने उसे वैविध्यसभर बनाकर उसकी लोकप्रियता बढ़ा दी। इस युग के अन्य निबन्धकारों ने भी अपनी गहरी सोच एवं सूक्ष्म निरिक्षण शक्ति के सहारे इस युग के हास्य-व्यंग्य निबन्धों का सार्वत्रिक विकास संभव हो सका है।

४.२.५ आधुनिक हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य :-

गुजराती साहित्य के विकासक्रम को देखते हुए इतना तो स्पष्ट है कि वो उत्तरोत्तर समृद्ध होता रहा है। उन में भी निबन्ध साहित्य काफी संवेदनशील रहा है और हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य तो आधुनिक निबन्ध साहित्य में प्रमुख रूप से आकर्षण का केन्द्र रहा है। क्योंकि वो इस युग में काफी कुछ विकसित, विस्तरित एवं प्रयोगधर्मी रहा है। उन्होंने आधुनिक युग की मानसिकता के अनुसार पाठकों की नब्ज को समजते हुए हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्धों के कथ्य एवं शिल्प को नवीन रूपों में प्रतिबंधित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात उनके स्वरूप में आमूल परिवर्तन की नितांत नई दिशाएँ उद्घाटित हुई हैं। कहना होगा कि तथाकथित नवीन एवं क्रांतिकारी वैचारिक उपलब्धियों ने जीवन और जगत को देखने-परखने के लिए नूतन दृष्टि प्रधान की है। भगवानदास के अनुसार, “आज के जीवन और परिवेश की इसी नवीनता के कारण स्वातंत्र्योत्तर साहित्य के सभी रूपों में संरचनात्मक नया परिवर्तन उपस्थित हो पाया है। आज का साहित्यकार चाहे वह किसी भाषा का क्यों न हो, वस्तु और शिल्प दोनों ही स्तरों पर प्रयोगधर्मी नई-नई भंगिमाओं को आत्मसात करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।”^(७३)

आधुनिक हास्य-व्यंग्य निबन्ध अब कुछ विशेषतः प्रौढ़ व गम्भीर पाया जाता है। फलतः आजतक उनका प्रधान स्वर हास्य का रहता था पर अब इसीके साथ-साथ व्यंग्य को प्रधानता मिली हुई है। इसलिए लगता है कि वो सशक्त व प्रौढ़ होता जा रहा है। आधुनिक निबन्धकारों ने आज के समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं खोखलेपन को बहोत करिब से आत्मसात किया है जिनसे उसे हँसी नहीं आती है, पर उन पर प्रहार करने

की इच्छा होती है। आज के विषाक्त एवं विषम परिवेश, अनेक बाधाएँ और प्रतिगामी शक्तियों की प्रबलता के कारण व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। आधुनिक गुजराती निबन्धों में परिवेशीय विसंगतियों, विकृतियों की स्थिति की अभिव्यक्ति व्यंग्य के माध्यम से हुई है। यही कारण है कि आधुनिक गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्धों में भाव-भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से बहोत कुछ नावीन्य देखने को मिलता है।

आधुनिक गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य को विशेषतः पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित होता हुआ देख सकते हैं। आधुनिक युग में बहोत से ऐसे पत्र थे जिनमें हास्य-व्यंग्य निबन्ध को स्थान मिला। मणिलाल पटेल मानते हैं कि, “सामायिको अने कोलमो नी वात करीए तो वधुमां वधु निबंधो-लेखो हास्य लेखको वडे लखाता व्यंग्य लेखो ज छे। नवचेतन, गुजरात दिपोत्सवी थी मांडी ने साप्ताहिक दैनिक कोलमो मां विनोद भट्ट, बकुल त्रिपाठी, अशोक दवे, रतिलाल बोरीसागर अने मधुसूदन पारेख नी कलमे लखाता लेखो मां क्यारेक तो घणु समृद्ध अने साहित्यिक गुणवत्ता सन्दर्भ उच्च कोटी नुं हास्य आपण ने मले छे।”^(७४) पत्रों के अलावा कंकावटी, परब, नवनीत समर्पण, शब्दसृष्टि आदि सामायिकों में हास्य व्यंग्य निबन्धों को विशेष स्थान मिला एवं उनकी आलोचना भी होती रही। इस दृष्टि से देखें तो आधुनिक युग में वर्तमानपत्रों एवं सामायिकों का माध्यम अपनाकर इस युग के हास्य-व्यंग्य निबन्ध सभी दृष्टियों से सशक्त व समृद्ध होते रहे। इनके महत्त्व को समजते हुए मधुसूदन पारेख ने लिखा है कि, “गुजराती वर्तमानपत्रों ए हास्य कटारोनो विभाग शरु करीने गुजरात ने घणा हास्य-लेखको थी समृद्ध कर्युं छे। एनी नोंध लेवी जोईए। सामायिको नो पण हास्यलेखकों ने बहार आणवामां नानो सूनो फालो नथी।”^(७५) वर्तमानपत्रों के माध्यम से आधुनिक युग में बहोत से लेखकों ने हास्य-व्यंग्य निबन्धों की अभिव्यक्ति की है। मधुसूदन पारेख मानते हैं कि, “गुजराती वर्तमानपत्रों एमनी पूर्तिओं द्वारा चिनुभाई पटवा, बकुल त्रिपाठी, विनोद भट्ट, रघुवीर चौधरी, मधुसूदन पारेख, निरंजन त्रिवेदी, अशोक दवे, रमणभाई पाठक एम अनेक हास्य लेखकों प्रकाश मां आव्या छे।”^(७६) इन लेखकों ने विपुल मात्रा में हास्य-व्यंग्य निबन्ध लिखे हैं। पर वर्तमानपत्रों के माध्यम से उनके निबन्ध आम लोगों

तक पहुँच सके हैं, ज्यादा से ज्यादा पाठक उसे जान सके हैं। इन लेखकों के अलावा चुनिलाल मडिया, रतिलाल बोरिसागर, सुरेश दलाल का विशेष योगदान रहा है। आधुनिक युग के हास्य-व्यंग्य निबन्धों को समृद्ध करने में उशनस, जयन्त दलाल, इश्वरचंद्र भट्ट, रमेश भट्ट, नरोत्तम वाणंद, महेश धोलकिया, हरेश धोलकिया, कृष्ण पंडित, प्रद्युमन जोशीपुरा, प्रवीण ठक्कर, शांतिलाल, मुकुंद शाह ने अपना यथोचित योगदान देकर हास्य-व्यंग्य निबन्ध के विकास को गति प्रदान की है।

आधुनिक युग के निबन्ध साहित्य को पहला स्पर्श चुनिलाल मडिया ने दिया। चुनिलाल मडिया वैसे तो प्रसिद्ध नवलकथाकार के रूप में जाने जाते हैं पर उन्होंने अपने साहित्य में हास्य-व्यंग्य को भी विशेष स्थान दिया है। उन्होंने हास्य की विविध रूप में अभिव्यक्ति की है। मडिया 'वक्रगति' उपनाम से 'संस्कृति' में विभिन्न लेख लिखते थे। वो पुस्तकाकार रूप में १९५० के बाद 'चोपाटी ने बाकडे थी' नामक निबन्ध संग्रह में स्थानान्तरित हुए। जिनमें उन्होंने हास्य के साथ-साथ व्यंग्य को भी विशेष रूप से व्यक्त किया है। 'माहिम थी मुंबई', 'सप्ताह नी जयन्ती स्पर्धाओं', 'प्रास को त्रास' उनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। जयन्त कोठारी मानते हैं कि, "मडिया ए निबन्धों मां वकृतादृष्टि दाखवी छे। एमां एमणे साहित्य अने शिक्षण तेमज प्रजा जीवननी केटलीक घेलछाओं ने कटाक्ष निशान बनाव्या छे। धारदार, सचोट, मार्मिक, विधानों आपवामां तेमनी पारंगतता नोंधपात्र छे। "मडिया ए आ लेखो मां वढ़ दृष्टि द्वारा सत्य शोध्यु छे."^(७७) मडिया ने हास्य-व्यंग्य को काफी सुक्ष्मता प्रदान की है, जिनकी अभिव्यक्ति के पीछे उनका यही लक्ष्य रहा कि संस्कृति एवं सामाजिक व्यवहारों में जो अभद्रता पेठ गई है, उसे खुला किया जाय जिसे उन्होंने कठोर वक्रता एवं श्लेष के माध्यम से धारदार बनाकर व्यक्त किया उनके ऐसे निबन्धों को काफी पसंद किया गया। तभी तो विनोद भाईने उचित ही कहा है, "मडिया मां एक मजबूत व्यंग्यकार बेठेलो छे."^(७८)

आधुनिक युग के महत्त्वपूर्ण हास्य-व्यंग्य निबन्धकारों में बकुल त्रिपाठी का विशेष योगदान रहा है। "गुजराती निबन्धिका क्षेत्र मां विलक्षण अने विचक्षण व्यक्तित्व तेमज नरवी सूक्ष्म विनोदवृत्ति धरावनारा बकुल त्रिपाठी विद्वानों मां तेमज विशाल जनसमुदाय

मां एक सरखा प्रसंशापात्र बनी रह्या छे।”^(७९) उन्होंने राजनीति, समाज, एवं शिक्षा पर विशेष रूप से व्यंग्य किया है। भ्रष्टाचार एवं राजनेताओं को उन्होंने काफी लताड़ा हैं। उन्होंने अपने लेखों में प्रवर्तमान विसंगतियों पर व्यंग्य कसा है, रोज-बरोज की घटनाओं को नज़र में रखते हुए उसे अपने निबन्धों का विषय बनाया है। विनोदभाई मानते हैं कि, “दर अठवाडिये ते लगभग दसेक जेटला हास्यलेखों लखे छे ने तो ये धोरण-कक्षा-जालवी ने लखे छे। कोई गुजराती हास्य लेखके आटली मोटी संख्या मां हास्यलेखो नहि लख्या होय।”^(८०) ‘गुजरात समाचार’ में ‘सोमवार नी सवारे’, ‘कक्को बारखड़ी’ में उन्होंने बहोत से लेख लिखे हैं। ‘कुमार’ में भी उनकी निबंधिकाएँ मिलती हैं। उनके निबन्ध संग्रह में ‘सचराचर’, ‘सोमवार नी सवारे’, ‘वैकुठ नथी जावुं’, ‘द्रौणाचार्य नुं सिंहासन’, ‘गोविंद माडी गोठड़ी’ उनके प्रमुख निबन्ध संग्रह माने जाते हैं। जिनमें शिष्ट एवं सूक्ष्म हास्य निष्पन्न होता हैं। जिनमें उन्होंने रसाल शैली का प्रयोग करते हुए कलात्मक निबन्ध लिखे हैं। उनका व्यंग्य तीखा जरूर है पर कटू नहीं है। बकुलजी ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य को विविध रूपों में व्यक्त करते हुए हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य को समृद्ध किया है। वे हास्य रहित व्यंग्य को श्रेष्ठ कोटि का नहीं मानते उनके हास्य में कटाक्ष होते हुए भी वह शिष्ट एवं निर्दश हैं।

गुजराती हास्य-व्यंग्य साहित्य के विकास में विनोदभाई का विशिष्ट योगदान रहा है। जिस प्रकार से हिन्दी हास्य-व्यंग्य साहित्य परसाईजी के बिना अधुरा रहा है, उसी प्रकार गुजराती हास्य-व्यंग्य साहित्य विनोदभाई भट्ट के बगैर अधुरा हैं। स्वातंत्र्योत्तर हास्य-व्यंग्य साहित्य में से विनोद भट्ट को निकाल दिया जाय तो पीछे कुछ बचता नहीं है, ऐसा आभास हमें अवश्य ही होता है। भगवानदास मानते हैं कि, “गुजराती हास्य-व्यंग्य के उच्चासन पर समादृत श्री विनोदभाई भट्ट का नाम स्वातंत्र्योत्तर हास्यकारों में श्री गणेश की भाँति सर्वप्रथम लिया जाता हैं। उन्हे आज के हास्य मार्ग के विघ्नहर्ता कहने में अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। आज सर्वाधिक रूप से गुजरती हास्य-व्यंग्य की पुस्तकों में नवोदित हास्यकारों के लिए उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन के दो शब्दों को अवश्य ही पढ़ा जा सकता हैं।”^(८१) विनोदभाई ने विपुल मात्रा में हास्य-व्यंग्य निबन्धों की

अभिव्यक्ति की है। उनके निबन्ध वैविध्यसभर होते हैं, वह भिन्न-भिन्न प्रकार से भाव, भाषा, शैली का प्रयोग करते रहते हैं। उन्होंने गुजराती साहित्य के साथ-साथ अन्य भाषा साहित्य में भी लिखा है। जिनसे उसे विशेष प्रसिद्धि मिल सकी है। वह 'संदेश' एवं 'गुजरात समाचार' की पुर्तियों में अपने लेख निरंतर लिखते रहे हैं, इसलिए आज भी पाठक वर्ग के बीच वह एक लाईव वायर के रूप में झंकृत हो रहे हैं। उन्होंने कुमार एवं अभिषेक पत्रिकाओं में अपने लेख लिखे हैं। इनके अलावा हिन्दी पत्रिकाओं में भी उनके काफी लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने विविध विधाओं पर अपनी कलम चलाई है। 'जिनमें पहेलुं सुख ते मूँगी नार' (१९६६), 'सुनोभाई साधो' (१९७८), 'विनोद नी नज़रे' (१९७९), 'अने हवे इतिहास' (१९८१), 'ग्रन्थ नी गरबड' (१९८३), 'नरो वा कुंजरो वा' (१९८४), 'विनोद भट्ट नां प्रेमपत्रों' (१९७२), 'अमदावाद एटले अमदावाद' (१९८५) आदि उनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह माने जाते हैं।

इन निबन्धों में विशेष रूप से राजकारण, धर्म, समाज, शिक्षा, साहित्य उनके व्यंग्य के विषय रहे हैं। उन्होंने व्यक्ति की मानसिकता को परखते हुए कई ऐसे व्यक्तिचित्र भी अंकित किए हैं। मनुष्य की व्यक्तिगत आदतों पर भी उन्होंने ने व्यंग्य कसा है। उनकी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति अत्यन्त विस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण रही है। उनके पैने और चुभते बाणों ने किसी को नहीं बखा है। परसाईजी के समान उनका प्रमुख लक्ष्य राजकारण रहा है। यह भी स्पष्ट है कि उनकी हास्य-व्यंग्य रचनाएँ मूल्यों की रक्षा और प्रतिष्ठा का सतत प्रयास करती रही है।

आधुनिक गुजराती हास्य-व्यंग्य परम्परा में डॉ.मधुसूदन पारेख का योगदान भी सराहनीय रहा है। वो प्रथम श्रेणी के हास्यकार तो है ही, साथ-साथ एक समीक्षक के रूप में भी अपना उचित स्थान बनाया है। वो "प्रियदर्शी" नाम से लिखते हैं, सही में वो कठोर नहीं बन सके हैं, इसलिए विनोदभाई ने लिखा है कि, "मधुर ने प्रसन्नकर हास्य पिरसनार डॉ.मधुसूदन पारेख 'प्रियदर्शी' ने हुं 'फेमिली ह्युमिस्ट' तरीके आलेखु छु। आ सुरती लाला मां कटाक्ष करवानी प्रवृत्ति मुख्यत्वे नथी, एटले तेमना विनोद मां व्यंग्य नुं प्रमाण खास नज़रे चड़तुं नथी।"^(८२) मधुसूदनजी के विनोद में तीक्ष्णता नहीं होती वह

छोटी-छोटी विसंगतियों पर हलका सा हँसीमजाक कर लेते हैं। पर इनमें सुक्ष्मदर्शिता, नाट्यात्मकता, मनोवैज्ञानिकता के कारन वो विशेष गहराई से भरा हुआ है, ऐसा लगता है। वो 'बुद्धिप्रकाश' नामक पत्रिका में कई सालों तक सम्पादक के रूप में कार्यरत रहे तो आज कई सालों से वो गुजरात समाचार की पूर्ति में 'हुं शाणी अने शकराभाई' शीर्षक से हास्य कॉलम लिख रहे हैं, जिनसे उन्हें विशेष लोकप्रियता मिली है। 'सूडी सोपारी', 'पेथाभाई पुराण', 'विनोदायन' आदि उनके हास्य-व्यंग्य निबन्ध संग्रह हैं। जिसमें उसे विशेषतः सफलता मिली है।

उनके निबन्धों के विषयों के बारे में कहें तो यह स्पष्ट है कि उनका फलक व्यापक एवं वैविध्यसमर है। उन्होंने आधुनिक छात्र, महिला, पति-पत्नी, नेता अध्यापक, लेखक, पंडित, पारिवारिक एवं पासपडोस के चरित्र की कमजोरियों पर से हास्य निष्पन्न किया है। उनके निबन्धों में व्यंग्य की अपेक्षा हास-परिहास की मात्रा अधिक है। वो हास्य उत्पन्न करने की कलात्मक रीतियों से वाकीफ हैं। उनकी सुरती, अहमदाबादी भाषा का प्रयोग विशेष मनभावन लगता है।

इस समय व्यंग्य लेखक के रूप में रमणभाई पाठक (वाचस्पति) के लेखों को भी पाठकों ने बहोत पसन्द किए। उन्होंने खासकर साहित्य एवं साहित्यकार पर व्यंग्य कसा है। आधुनिक युग के बदलते परिवेश में पाश्चात्य प्रभाव स्वरूप की रचनाएँ बनाई जाती थी। उनमें कोई व्यवस्थितता नहीं रहती थी, इसे लक्ष्य करते हुए ऐसी नई फैशन का उपहास किया है। उनके संग्रहों में 'व्यंग्य वाङ्मय', 'हास्यलोक', 'हास्योपनिषद' व्यंग्य निबन्ध संग्रह है, जिनमें उन्होंने साहित्य एवं साहित्याभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों पर व्यंग्य किया है। विनोदभाई लिखते हैं कि, "रमणभाई पाठक वाचस्पति नुं हास्य विलक्षण प्रकार नुं छे। केवल साहित्य अने साहित्यकारों ने लक्ष्य मां लई ने 'व्यंग्य वाङ्मय' नामें एक विशिष्ट प्रकारनों लेख संग्रह तेमणे आप्यो छे।"^(८३) इस तरह रमणभाई ने अलग रूप से अपने व्यंग्य के विषय को परिवर्तित करते हुए साहित्य एवं साहित्यकारों पर कलम चलाकर उन पर कुछ नियंत्रण लाने का प्रयत्न किया है, क्योंकि आधुनिकता के नाम पर हो रही विचित्र अभिव्यक्तियों पर उन्होंने आक्रोश व्यक्त किया है।

सफल व्यंग्याभिव्यक्ति के जनक के रूप में 'जयंती दलाल' का नाम भी भूला नहीं जा सकता। उन्होंने हास्य के बजाय व्यंग्य को विशेष महत्त्व दिया है। 'मनमां आव्यु' निबन्ध संग्रह में उन्होंने काफी व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। जयंती कोठारी ने उनके व्यंग्य को अखा के व्यंग्य के समान बताया है, "दलाल अखा जेवा आखाबोला छे, अखा नी जेम धारदार कटाक्ष तेमनी विशेषता छे।"^(८४) तो विनोदभाई भट्ट ने जयंती दलाल, रघुवीर चौधरी, एवं मडिया के व्यंग्य के समान माना हैं। जयंती दलाल के व्यंग्य के बारे में विनोदभाई ने कहा है कि, "तेमनी कलम मां शाहुड़ी ना पीछा जेवी जे तीक्ष्णता छे एवी बहु ओछा व्यंग्याकारों मां जोवा मले छे।"^(८५)

आधुनिक युग के हास्य-व्यंग्य साहित्य को सशक्त एवं समृद्ध बनाने में निरंजनभाई त्रिवेदी, रतिलाल बोरिसागर एवं युवापीढ़ी के हास्य लेखक अशोक दवे का विशिष्ट योगदान रहा है, हम कह सकते हैं कि गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य की पहचान को बनाये रखने में इनका विशेष योगदान रहा है। निरंजन त्रिवेदी के लेखों में विविधता के दर्शन होते हैं, विषय को परख के उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति देने की शक्ति उनमें विशेष रूप से मिलती है। उनके हास्य-व्यंग्य में नैसर्गिकता के दर्शन होते हैं। संदेश दैनिक में 'अवली गंगा' शीर्षक से उनके लेख प्रकाशित होते रहे, जिनसे उनको पाठक वर्ग काफी विशाल संख्या में जानने लगा। उनके निबन्ध संग्रहों में 'पहेलु सुख ते जाते हस्या', 'विनोद भट्ट मारी नज़रे', 'निरख-निरंजन' को काफी पसंद किया गया। जयंत कोठारी के अनुसार, "एमनी रचनाओं केटलीक वार चीनुभाई पटवानी कृतियों नु स्मरण करावे छे। कोईकवार ज्योतीन्द्रनी याद आपे छे, तो विनोदभट्ट नी शैली नु पण ते स्मरण करावे छे।"^(८६) इनसे स्पष्ट होता है कि निरंजन त्रिवेदी का हास्य, भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से कितना सटीक था, वो एक अलग तरह के ही हास्य लेखक थे।

रतिलाल बोरिसागर की हास्याभिव्यक्ति काफी सरल व तरल गति से प्रवाहित होती हुई एवं ठोस रूप से आगे बढ़ती हुई जान पड़ती हैं। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं मानव स्वभाव को परख के उन पर मीठा प्रहार करने की क्षमता के कारण उनके लेख विशेषरूप से पसंद किये जाने लगे। खुद अपने आप को उन्होंने हास्य के साथ

शामिल करके उन्होंने हास्य निष्पन्न किया है। 'मरक-मरक' और 'आनन्दलोक' उनके प्रसिद्ध संग्रह रहे हैं। विनोदभाई ने माना है कि, "ज्योतीन्द्र पछी एज शैली मां निबन्ध लेखन रतिलाल बोरिसागरे शरु कर्यु छे। तेमना परनां अंगतपत्र मां लख्यु हतु; रसनिर्मित माटे आवश्यक एवी दर्शन नी सर्जननी उभय शक्ति तमारा मां सहज रीते रहेली प्रतीत थाय छे।"^(८७) जिनसे उनकी हास्य लेखन की उत्तम अभिव्यक्ति सहज स्पष्ट हो जाती है।

'बुधवार नी बपोरे' कॉलम द्वारा अशोक दवे ने हास्य-व्यंग्य क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया है। अशोकभाई ने व्यावहारिक एवं बोलचाल की भाषा को अपनाया है, जिनसे पाठक वर्ग उसे विशेष पसन्द करता है। उन्होंने ने अपने लेखों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं पर व्यंग्य किया हैं। विनोदभाई ने लिखा है कि, "जेन्ती जोखम अने परवीनभाई जेवा मानव पात्रो सर्जी ने अशोक दवे ए ईश्वरना सर्जन नी मोनोपोली तोड़ी छे। बोलचाल नी भाषा मां लखता होई प्रजा पासे ते सहेलाई थी पहोंची शक्या छे।"^(८८) अशोकभाई को युवापीढ़ी के हास्यकार माना जाता हैं, उनके लेखों में आधुनिक युग के विकसित हास्य-साहित्य के दर्शन होते हैं।

ये सभी ऐसे हास्य-व्यंग्यकार हैं, जो वर्तमानपत्रों के कारन विशेषतः पहचाने जाते रहे। इस दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान पत्रों में लिखनेवाले साहित्यकारों में सबसे ज्यादा प्रसिद्धि 'तारक महेता' को मिली हैं। वो 'चित्रलेखा' में एक कॉलम लिखते थे - 'दुनियाना उंधा चश्मा' जिसे हर परिवार ने पसन्द किया, जिनसे उसे विशेष सम्मान मिला। उनके द्वारा जीवंत पात्रों का सृजन हुआ हैं। इसलिए विनोदभाई मानते हैं कि, "रमणभाई ए 'भद्रंभद्र' अने 'हरप्रसाद व्यास', 'बकोर पटेल' जेवा चिरायु भोगवता पात्रों नु सर्जन कर्यु छे ए रीते तारके 'तोफानी टपुड़ा' नुं सर्जन कर्यु छे।"^(८९)

ललित निबन्धों के सर्जक के रूप में अपनी पहचान बना चूके 'सुरेश दलाल' एवं ईश्वरचन्द्र भट्ट ने अपने लालित्य सम काव्यात्मक निबन्धों के साथ-साथ कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। जिनमें उसे विशेष सफलता मिली हैं, एवं पाठकवर्ग ने भी उसे सहारा है। मधुसूदनजी के अनुसार, "‘पगला मांथी पंथ एक फूट्यो’ अने

‘समीसांज नां समियाणा’ ए ललित निबन्धों ना संग्रहों मां एमणे भले अल्प संख्या मां पण जे हलवा निबन्धों आप्या छे ते एमनी उच्च विनोदवृत्ति नी साख पूरे छे।^(९०) सुरेशजी के द्वारा इस दिशा में कदम बढ़ने से ये स्पष्ट हो जाता है कि आज हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र ने अपनी काफी कुछ प्रतिष्ठा बढ़ा ली हैं। इश्वरचंद्र भट्ट के हास्य-व्यंग्य निबन्धों में ‘कन्दकुमार’, ‘कायली’, ‘आरामखुरशी’ विशेष रूप से प्रचलित हैं।

इनके अलावा आधुनिक युग के बहोत से ऐसे हास्यव्यंग्यकार हुए जिन्होंने अपनी उचित अभिव्यक्ति के माध्यम से हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा को गतिमान एवं जीवन्त रखा है। जिनमें रमेशभट्ट ने ‘मोज-मजाक अने महेफिल’, ‘गपगोष्ठी’ एवं ‘हाथ ने कहो चढ़ावे बाँय’, संग्रहों में वार्ताओं के साथ-साथ निबन्धों की भी रचना की हैं। तो प्रवाहयुक्त शैली में दिनकर देसाई ने ‘जोयु हलवी नज़रे’ निबन्ध संग्रह की रचना की है। “छोटे-छोटे चूटकुलों” का प्रयोग करते हुए नरोत्तम वालंद ने ‘परोपदेशपांडित्यम्’ एवं ‘मफतिया मेन्टालीटी’ नामक संग्रह दिये जिसे विशेषतः पसन्द किया गया। उन्होंने गम्भीर चिंतन में से भी हास्य प्रकट किया हैं। ‘ठंडों सूरज’ निबन्ध संग्रह में महेश धोलकिया के प्रयास को काफी सराहा गया है। कृष्ण पंडित द्वारा हास्य-व्यंग्य में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया हैं। उनका ‘हास्योत्सव’ साहित्यिक दृष्टि से विशिष्टताओं से भरा पड़ा है। उनके प्रयोगात्मक नज़रिये के कारण हास्य-व्यंग्य साहित्य को एक प्रकार से गति प्रदान हुई हैं। ‘जल्पन’ निबन्ध संग्रह में प्रद्युमन जोशीपुरा ने परम्परागत व्यवहारों में मनुष्य की जीवनशैली में से कई ऐसी घटनाओं को उठाकर सहज भाव से हास्योत्पन्न किया हैं।

इनके अलावा ‘हलवातीर’, ‘तातांतीर’ एवं ‘वक्रबाण’ के माध्यम से तरुलता बहेन ने अपनी हास्याभिव्यक्ति को योग्यता प्रदान की हैं। तो नटवरलाल जोषी ‘मुक्त विहार’, हरेण धोलकिया रचित ‘तघलख नो पुनर्जन्म’, जयंतीभाई गांधी रचित ‘साह्यबो मारों कह्यागरो कंथ’, पोपटलाल पंचाल की ‘विनोदिका’ के कारण हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य समृद्ध हुआ है। आज भी सामायिकों में विभिन्न लेखों के द्वारा इनकी अभिव्यक्ति हो रही हैं। चन्द्रकान्त शेठ, उशनस, रघुवीर चौधरी आदि के लेखों में उत्तम रूपमें हास्य-व्यंग्य साहित्य प्रकट हुआ हैं। इन्होंने साहित्य के अन्य रूपों के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य क्षेत्र में

भी अपनी मौजूदगी दर्ज करवाई है। इनके अलावा वक्रचक्षु, वनमाली वांकों, प्रवीण ठक्कर, शांतिलाल मेराई, मुकुंद शाह आदि ने भी उचित योगदान दिया है। तो प्रवीण दरजी के ललीत निबन्धों में भी हास्य तत्त्व अवश्य है, उनके 'वेणु रव' में कुछ निबन्ध अवश्य ही ऐसे मिल जाते हैं, जिन में हास्य-व्यंग्य की छाया पड़ी हुई है। तो दामू सांगाणी, बाबूभाई व्यास, जतीन वैद्य, धीरज ब्रह्मभट्ट जैसे अनेक लेखक हैं, जो अभी अपना मार्ग प्रशस्त करने में लगे हुए हैं। जो आनेवाले कल के प्रहरी हैं, जिनके हाथों हास्य-व्यंग्य साहित्य को समृद्धि की दिशा मिल सकती है।

इस प्रकार गुजराती साहित्य की हास्य-व्यंग्य निबन्ध परम्परा को देखने से ये स्पष्ट है कि वो स्वाभाविक रूप से अपनी गति को बढ़ाते हुए धीरे-धीरे पर ठोस कदमों से विकसित, विस्तारित, परिवर्तित एवं परिवर्धित हुआ है। उन्होंने बाहरी प्रभाव को अवश्य ग्रहण किया है, पर अपने आन्तरिक सौन्दर्य को सांस्कृतिक धरोहरों को नहीं छोड़ा है। उनकी हँसी के पीछे हार्द छिपा हुआ है, उनके व्यंग्य में सिर्फ वाक्चातुर्य या वाणी विलास नहीं है, पर वो वास्तविकता को व्यक्त करते हुए सत्य से साक्षात्कार करवाना चाहते हैं। सुधारयुग में नवलराम के 'ओथारियो हड़कवा' में उनका प्रारम्भिक रूप स्पष्ट हुआ है तब वो अपनी शैशवावस्था में था, बाद में पंडितयुग में रमणभाई के रुहानी स्पर्श से उन्होंने धीरे-धीरे चलना सीख लिया तो गांधीयुग में स्वैर विहारी ने उसे सही में उसकी अंगुली पकड़ के विहार करना सीखाया। उन्होंने आसपास के प्रभावों को ग्रहण कर गति ग्रहण की और ज्योतीन्द्रजी के हाथों वो जगमगाया उसी जगमगाहट को आधुनिक युग में विनोदभाई भट्ट ने विशाल एवं वैशिष्ट्यता प्रदान की, और बकुलभाई ने उसे बलवत्तर बनाया। इस परम्परा को मजबूती प्रदान करने में मधुसूदन पारेख, रमणभाई पाठक, जयंती दलाल, निरंजन त्रिवेदी, रतिलाल बोरिसागर, सुरेशभाई दलाल के साथ-साथ अन्य ऐसे बहोत से लेखकों का सहयोग मिला, जिनसे आज गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य को भारतीय साहित्य में विशिष्ट नज़रिये से देखा जाता है, एवं वैश्विक साहित्य के साथ उनकी गणना की जाती है। इस प्रकार गुजराती हास्य-

व्यंग्य निबन्ध साहित्य की अपनी एक समृद्ध परम्परा है जिन्होंने उत्तम साहित्य का निर्माण कर अपनी युग प्रवर्तकता को साकारित किया है।

संदर्भ सूची

क्रम	ग्रन्थ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	डॉ.उषा शर्मा	६१
२	वाल्मीकि रामायण-१,२,१५	उत्तरराम चरितम् (नाटक)	२/५
३	हिन्दी साहित्य कोश (व्यंग्यगीत भाग-१)	रामखेलावन पाण्डे	८०५
४	हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दुशेखर तिवारी	८१
५	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	५१
६	जी.पी.श्रीवास्तव की कृतियों में हास्यविनोद	श्याम मुरारी जैसवाल	५१
७	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	३८
८	हास्यरस तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य	त्रिलोकी नारायण दीक्षित	१६९/७०
९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	५२/५३
१०	हिन्दी निबन्धकार	जयनाथ नलिन	६६
११	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	आनन्द प्रकाश गौतम	२९
१२	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	५४
१३	हिन्दी निबन्ध का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मु.ब.शहा	१८३
१४	हिन्दी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	९६
१५	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	डॉ.आनन्द प्रकाश गौतम	३२
१६	हिन्दी का हास्य और व्यंग्य विधा स्वरूप और विकार	इन्द्रनाथ मदान	४१
१७	हिन्दी निबन्ध का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मु.ब.शहा	१९०
१८	हिन्दी साहित्य में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१६४

क्रम	ग्रन्थ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	४३
२०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	डॉ.उषा शर्मा	९४
२१	हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य	महावीर प्रसाद द्विवेदी	३३७
२२	हिन्दी निबन्ध का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मु.ब.शहा	२५५
२३	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य एवं निबंधकार	डॉ.बापूराव देसाई	५८
२४	हिन्दी गद्य निर्माण	सं.लक्ष्मीधर वाजपेयी	१५२
२५	हिन्दी निबन्ध का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मु.ब.शहा	२५७
२६	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	डॉ.आनन्द प्रकाश गौतम	६५
२७	हिन्दी साहित्य में हास्यरस	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	१७६
२८	हिन्दी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	१०३
२९	हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार	डॉ.स्मिता चिपलूणकर	४७
३०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	डॉ.उषा शर्मा	९७
३१	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	डॉ.आनन्द प्रकाश गौतम	८६
३२	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	४७
३३	हिन्दी निबन्ध का शैलीगत अध्ययन	डॉ.मु.ब.शहा	३२८
३४	॥	॥	३२८
३५	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	६१
३६	॥	॥	६९
३७	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	डॉ.उषा शर्मा	१०५
३८	हिन्दी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	११०/१११
३९	हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दुशेखर तिवारी	८०
४०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	८८-८९

क्रम	ग्रन्थ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
४१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	७०
४२	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	डॉ.आनन्द प्रकाश गौतम	९९
४३	॥	॥	९७
४४	॥	॥	९७
४५	हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार	डॉ.स्मिता चिपलूणकर	१०७
४६	हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दुशेखर तिवारी	२०७
४७	समकालीन हिन्दी व्यंग्य - एक परिदृश्य	डॉ.सुदर्शन मजीठियाँ	९५
४८	एक और लाल निकोन की भूमिका से	नरेन्द्र कोहली	१
४९	हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	बालेन्दुशेखर तिवारी	२१८
५०	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१८
५१	॥	॥	१५६
५२	निबन्ध : स्वरूप अने विकास	डॉ.प्रवीण दरजी	६६
५३	॥	॥	५४-५५
५४	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१५६
५५	निबन्ध : स्वरूप अने विकास	डॉ.प्रवीण दरजी	९२
५६	॥	॥	१०६
५७	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१५६-५७
५८	विनोद विमर्श	विनोदभाई भट्ट	१९४
५९	निबन्ध : स्वरूप अने विकास	डॉ.प्रवीण दरजी	१०७
६०	॥	॥	१२१
६१	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१६०
६२	अर्वाचीन गुजराती साहित्यनी विकासरेखा (गांधीयुग)	धीरुभाई ठाकर	३०

क्रम	ग्रन्थ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
६३	विनोद विमर्श	विनोदभाई भट्ट	१९८
६४	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१५७
६५	अर्वाचीन गुजराती साहित्यनी विकासरेखा (गांधीयुग)	धीरुभाई ठाकर	१०५
६६	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	जयंत कोठारी	१४२
६७	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१६९
६८	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	जयंत कोठारी	१४३
६९	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१६४
७०	विनोद विमर्श	विनोदभाई भट्ट	१९८
७१	अर्वाचीन गुजराती साहित्यनो इतिहास	डॉ.रमेश एम. त्रिवेदी	३६९
७२	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	जयंत कोठारी	१४४
७३	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	२०७
७४	सन्धान	सुमन शाह	४५
७५	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	जयंत कोठारी	१८४
७६	गुजराती मां हास्य अने कटाक्ष	मधुसूदन पारेख	१८८
७७	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	जयंत कोठारी	१७५
७८	विनोद विमर्श	विनोदभाई भट्ट	२०२
७९	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	जयंत कोठारी	१७५-७६
८०	विनोद विमर्श	विनोदभाई भट्ट	२०३
८१	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	४४१
८२	विनोद विमर्श	विनोदभाई भट्ट	२०४
८३	॥	॥	२०५

ક્રમ	ગ્રન્થ / ઉપન્યાસ	લેખક / સંપાદક	પૃ.ક્રમાંક
૮૪	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	જયંત કોઠારી	૧૭૫
૮૫	પરબ	સં.ભોલાભાઈ પટેલ	૨૬
૮૬	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	જયંત કોઠારી	૧૮૧
૮૭	વિનોદ વિમર્શ	વિનોદભાઈ ભટ્ટ	૨૦૭
૮૮			૨૦૮
૮૯			૨૦૬
૯૦	ગુજરાતી માં હાસ્ય અને કટાક્ષ	મધુસૂદન પારેખ	૧૮૫

अध्याय : ५

परसाईजी एवं विनोद भट्ट का जीवन कवन एवं साहित्य

- ५.१ परसाईजी का जीवन एवं साहित्य
 - ५.१.१ जन्म, परिवार एवं शिक्षा
 - ५.१.२ जीवन संघर्ष
 - ५.१.३ व्यक्तित्व
 - ५.१.४ परसाईजी का प्रेरणास्त्रोत
 - ५.१.५ परसाईजी की जीवन दृष्टि एवं दार्शनिक आस्था
- ५.२ परसाईजी की साहित्य समृद्धि
 - ५.२.१ परसाईजी का उपन्यास साहित्य
 - ५.२.२ परसाईजी की कथाएँ एवं कहानी साहित्य
 - ५.२.३ परसाईजी का निबन्ध साहित्य
 - ५.२.४ परसाईजी के संस्मरण एवं रेखाचित्र
 - ५.२.५ परसाईजी का स्तंभ लेखन
- ५.३ विनोदभाई का जीवन एवं साहित्य
 - ५.३.१ जन्म, परिवार एवं शिक्षा
 - ५.३.२ जीवन संघर्ष
 - ५.३.३ व्यक्तित्व
 - ५.३.४ विनोदभाई के प्रेरणास्त्रोत
 - ५.३.५ विनोदभाई की जीवन दृष्टि एवं दार्शनिक आस्था
- ५.४ विनोदभाई की साहित्य समृद्धि
 - ५.४.१ विनोद भट्ट का कथा-साहित्य
 - ५.४.२ विनोद भट्ट के संस्मरण एवं रेखाचित्र
 - ५.४.३ विनोद भट्ट का निबन्ध-साहित्य
 - ५.४.४ विनोद भट्ट की हास्य मीमांसा एवं आत्मकथा
 - ५.४.५ विनोद भट्ट का स्तंभ लेखन

परसाईजी एवं विनोद भट्ट का जीवन-कवन एवं साहित्य

५.१ परसाईजी का जीवन एवं साहित्य :-

किसी भी रचनाकार की रचना पर उनके जीवन व व्यक्तित्व का प्रभाव सहज ही हावी रहता है। उनकी परछाई उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से मिल जाती है। इसलिए किसी भी रचनाकार के बारे में संशोधन करते समय उनके जीवन व व्यक्तित्व से अवगत होना जरूरी बन पड़ता है, क्योंकि वही उसे इस मकाम पर पहुँचाने के लिए कारणभूत होता है। “व्यक्तित्व समाज से बनी व्यक्ति की ऐसी निजी इकाई है, जिसमें विशिष्टता की भरपूर गूंजाईश होती है।”^(१) इसी से कोई कालिदास बनता है, तो कोई तुलसीदास, कोई प्रेमचंद बनता है तो कोई परसाई। कोई भी साहित्यकार ऐसा नहीं होता जिनकी रचनाओं में निजता न हो। परसाई को परसाई बनाने में उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं परिस्थितियों एवं उनके व्यक्तित्व का विशेष योगदान होता है, इसलिए इन सारी स्थितियों से अवगत होना जरूरी है। व्यक्तित्व स्वयं उपार्जित तत्त्व है एवं उनकी ही परछाई समस्त घटनाओं एवं सबन्धों पर रहती है, परसाईजी के सन्दर्भ में तो यह धारणा विशेषतः प्रभावशाली रही है।

५.१.१ जन्म, परिवार एवं शिक्षा :-

श्री हरिशंकर परसाई का जन्म २२, अगस्त १९२४ को इटारसी मध्यप्रदेश में हुआ था^(२) ऐसा माना जाता है। पर परसाईजीने इस सन्दर्भ में स्पष्टता करते हुए कहा है कि - “यह भूल है। तारीख ठीक है, सही सन् १९२२ हैं। मुझे पता नहीं मैट्रिक के सर्टिफिकेट में क्या है। मेरे पिताजी ने स्कूल में मेरी उम्र दो साल कम लिखवाई थी।”^(३) इससे स्पष्ट है कि परसाईजी का जन्म २२ अगस्त १९२२ में हुआ। हरिशंकर परसाई एक श्रमजीवी आदमी की संतान है उनके परिवार में उनके माता-पिता के अलावा दो भाई और तीन बहनें थीं, स्वयं अविवाहित थे, परिवार में भानजे और भानजीयाँ थी।

परसाई ने प्राथमिक शिक्षा अपने ही गाँव में काफी कठिनाईयों के बीच पूर्ण की। फिर हाईस्कूल पास करके उन्होंने जंगल विभाग में नोकरी की और फिर थोड़ी बहोत अध्यापकीय भी की, फिर वह भी छोड़ के नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. व्यक्तिगत छात्र के रूप में किया। साथ डिप्लोमाइन टीचिंग भी किया।^(४)

५.१.२ जीवन संघर्ष :-

साहित्यकारों के बारे में मान्यता रही है कि साहित्यकार बनता नहीं है, पैदा होता है। ये संस्कार उसे जन्मजात शक्ति के रूप में मिलते हैं, यह सनातन सत्य है। पर इन जन्मगत संस्कार के साथ-साथ जो साहित्यकार अपने जीवन में संघर्षों से गुजरते हैं, वे प्रखर साहित्यकार बन जाते हैं। जो भी युग प्रवर्तक साहित्यकार मिलते हैं, उनके वैयक्तिक जीवन में झँकने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने अपने जीवन में काफी संघर्षों को झेला है, अभावों को सहा है दुःखों को देखा है। मानसिक एवं शारीरिक संघर्षों का सामना किया है।

परसाईजी का जीवन संघर्ष जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। उनका जन्म एक श्रमजीवी परिवार में हुआ था। “उनके पिता झूमकलाल परसाई-जंगल में कोयला बनाने और बेचने के काम में लगे हुए थे। यह काम एक जगह नहीं चलता अतः जिस जगह काम की संभावनाएँ समाप्त हो जाती उसे छोड़ देना पड़ता था। जैसे जमानी, रहटगाँव आदि छोड़ते हुए टिमरनी में जा बसे।”^(५) यहीं से परसाईजी का जीवन संघर्ष प्रारम्भ होता है।

हरिशंकरजी ठीक तरह से खेलना भी नहीं सीखे थे, कि तेरह-चौदह वर्ष की उम्र में उनकी माता प्लेग की बीमारी के कारण साथ छोड़ गई। जिनके कारण घर-परिवार की चिंता पिता एवं बड़ेभाई होने के नाते परसाईजी पर आ पड़ी। माता के अवसान के कारण पिता भी अब भीतर से टूट गये थे। ऐसे हालात में हरिशंकरजी की बुआ का स्नेह परिवार को मिलता रहा, जो उनके लिए डूबते को सहारे के समान था। पर परसाईजी को अपना रास्ता स्वयं बनाना था, इसलिए उन्होंने हाईस्कूल पास करके

तुरन्त जंगल विभाग में नोकरी कर ली। सत्य, श्रेष्ठ एवं सादाई के पक्षधर होने के कारण उसे काफी थपेड़े खाने पड़े। यही कारण है कि चार साल फोरेस्ट डिपो में नौकरी करने के पश्चात खंडवा में छः महिने एवं जबलपुर हाईस्कूल में शिक्षक के पद से त्यागपत्र देना पड़ा। जिसका कारण उसका लेख था फिर स्वनिर्भर स्कूल एवं कॉलेजों में नौकरी की एवं साथ-साथ उनका लेखनकार्य निर्बाध गति से जारी रहा। जीवन के इन संघर्षों की परछाई इनकी रचनाओं में साफ झलकती हैं। “वे कहते हैं कि परसाईजी डरो मत। डरे कि मरे। सीने को उपर-उपर कड़ा कर लो। भीतर तुम जो भी हो, जिम्मेदारी को गैर जिम्मेदारी के साथ निभाओं। जिम्मेदारी को अगर जिम्मेदारी के साथ निभाओगे तो नष्ट हो जाओगे।”^(६) इनसे स्पष्ट है कि संघर्षों से ही वह ताकतवर बने, माता का अवसान, पिता की असाध्य बीमारी, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, आर्थिक अभाव यही उनका वास्तविक जीवन संघर्ष है जिसने उन्हें ताकत भी दी और दुनियादारी की शिक्षा भी। “बचपन में दुःख सहे और अभावों में रहे, पर उन्होंने इन बातों की चर्चा कर करुणा नहीं उपजाई, धीरे-धीरे उसकी आँख दुनिया का दुःख देखने लगी।”^(७)

५.१.३ व्यक्तित्व :-

यह तो सहज स्पष्ट है कि हर किसी इन्सान के लिए उनका व्यक्तित्व ही वह प्रमुख आधार होता है, जिनके जरिये ही वे पहचाने जाते हैं। क्योंकि व्यक्तित्व ही व्यक्ति की पहचान होती है। उनकी ही परछाई उनके विभिन्न क्रिया-कलापों पर देखी जा सकती है। जो न चाहते हुए भी व्यक्त हो जाता है। ऐसा व्यक्तित्व भी जन्मगत संस्कार, पारिवारिक मानसिकता एवं आसपास के माहोल से प्रभावित रहेता है। इन परिबलों के आधार पर ही व्यक्तित्व बनता है। साहित्यकारों के सन्दर्भ में भी यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वैसे “व्यक्तित्व बना बनाया नहीं मिलता। हमें जो कुछ प्राप्त होता है वह केवल अस्तित्व है। इस मानवीय अस्तित्व को जीवन यथार्थ से टकराकर एक विशेष रूप प्राप्त होता है किन्तु विशेष प्रतिभाशाली और चेतना सम्पन्न व्यक्ति अपनी प्रतिभा और

विचार, अध्ययन और आत्म संघर्ष की प्रक्रिया में उसे एक विशिष्ट व्यक्तित्व में बदलता हैं।”^(८)

परसाईजी का व्यक्तित्व जीवनगत संघर्षों से बना है, उन्होंने अपने भीतर और बाहर के व्यक्तित्व को अलग-अलग नहीं रखा है। उनकी स्वयं की लेखनी ने ही उनके भोगे हुए यथार्थ की तस्वीर प्रस्तुत की है। लेखक एक स्थिति में साधारण सा व्यक्ति होता है, किन्तु उस असाधारण व्यक्ति के अन्तः स्थल में समष्टिगत संवेदना का सिंधु लहराता है।^(९) परसाईजी के सन्दर्भ में यह बहोत स्पष्ट है कि उनका साहित्य ही उनके व्यक्तित्व का परिचायक है। उनके साहित्य से ही उस असाधारण व्यक्तित्व की पहचान हो जाती है कि वह स्पष्ट भाषी है, परिश्रमी है, सत्यता से जुड़े हुए है, परिस्थितियों से जुजनेवाले है, किसी के दबाव में नहीं आते, साथ-साथ वो संवेदनशील एवं आत्मीय भी है, उनका हृदय करुणा सभर है, उन्होंने दुःखों को देखा है कष्टों को झेला है संघर्षों का सामना किया है इसलिए उनका व्यक्तित्व सत्य, निष्ठा, निडरता, परिश्रम, सहानुभूति, संवेदना का पक्षघर हैं। “परसाईजी स्वभाव से बहुत भावुक, संवेदनशील, मस्त और बेचैन तबीयत के आदमी हैं।”^(१०) परसाईजी ने जीवन की किसी भी विडम्बना से अनचाहा समझौता नहीं किया है। वह हर स्थिति में हर मुसीबत में अडिग खड़े रहे, कभी भी विचलित नहीं हुए। जो बात उन्होंने अपने पिताजी से पाई थी, इसलिए पिताजी की मृत्यु के बाद वह सारी जिम्मेदारियों को वहन कर सके, इनसे स्पष्ट है कि “परसाईजी निर्भिक थे वो परिस्थितियों से हार माननेवाले नहीं वे स्पष्ट भाषी एवं स्वतंत्र विचारों के धनी थे, इसलिए ही वे नौकरी के लिए किसी एक स्थान पर नहीं रह सके।”^(११) सत्य, निष्ठा, परिश्रमी एवं स्पष्टभाषी होने के कारण उसे कई लोगों के साथ संघर्ष हुआ। शायद इसी कारण उसे जिंदगी को काफी करीब से देखने का अनुभव मिला, वे परेशान नहीं हुए क्योंकि - “परसाई को उनके माता-पिता तथा परिवेशने एक आजाद नागरिक की तरह तैयार किया था। साफ-साफ देखना, कहेना और सबके साथ भाईचारा निभाना, श्रम की शक्ति से बड़ी किसीको न समजना, किसीको न बड़ा

समजना न छोटा और भविष्य की चिंता में घूट-घूट कर न मरना।”^(१२) ऐसे संघर्षों से लड़ने के लिए उन्होंने लेखन को अपनाया वो मानते हैं कि - “मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। इसमें मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा।”^(१३) यह स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति की विशिष्ट प्रतिभा के कारण उनके व्यक्तित्व को वे असाधारण लेखक के रूप में ढाल सके। बाहरी संघर्षों के साथ-साथ आत्मीक संघर्षों ने उनके अभिव्यक्ति कौशल को निखार दिया।

ऐसे संघर्षों के बावजूद भी उनका अन्तरमन कभी कठोर नहीं हुआ। उनके व्यंग्य में भले ही कठोरता से विसंगतियों का पर्दाफाश किया हो पर उनका हृदय भावुक था। वे संवेदनशील थे। इसी संवेदनात्मक व्यक्तित्व के कारण ही वे यथार्थ का आकलन कर सके हैं, उनकी अपनी इमानदारी भी सभी को स्पर्श कर गई है क्योंकि उन्होंने अपने जीवन या लेखनी में इमानदारी को नहीं छोड़ा जिनके कारण उनका चरित्र काफी ऊँचा उठ गया। बापुराव मानते हैं कि - “हरिशंकर परसाई का नाम ही है इमानदारी और बेबाकी का।”^(१४) इस प्रकार परसाईजी परिस्थितियों से जुजनेवाले परिश्रमी निर्भिक एवं निष्ठावान थे, स्पष्टभाषी व सत्यप्रियता उनके व्यक्तित्व के वह पहेलू हैं जिनसे उन्होंने जीवन यथार्थ को करीब से देखा, पर उन्होंने आत्मीयता एवं संवेदनशीलता को कभी भी नहीं छोड़ा इसलिए ही वे अपने जीवन व साहित्य में इस ऊँचाई को छू सके।

५.१.४ परसाईजी का प्रेरणास्त्रोत :-

हम कभी भी किसी भी प्रकार का कोई भी कार्य करते हैं तो वह वैसे ही प्रारंभ नहीं हो जाता उस कार्य के पीछे कोई न कोई भाव अवश्य होता है, जिनसे प्रेरित होकर हम उस कार्य को अंजाम देने में लग जाते हैं। आचार्य मम्मट की यह उक्ति “अनुदिश्य मन्दः अपि न प्रवर्तते।”^(१५) में यही बात पाई जाती है। मनुष्य कहीं न कहीं से प्रेरित होकर ही कार्यान्वित होता है - “जो भी मनुष्य गढ़ता है उसमें उसकी प्रेरणाओं द्वारा रचित रचनाएँ होती हैं और ये प्रेरणा उसे अपने आसपास के जीवन से प्राप्त होती हैं।

यह नहीं कि वह अपने ही द्वारा प्रेरणा प्राप्त करता है, बल्कि दूसरों के द्वारा भी प्रेरणा प्राप्त करता है। जिस समाज में वह रहता है उसी समाज की अच्छी या बुरी बातें व्यक्ति के मन, दिमाग, दिल में प्रवेश कर जाती है और जब वह निकलती है तो एक रचना के माध्यम से निकलती हैं।”^(१६)

परसाईजी के प्रेरणा स्रोत की बात करें तो उन्होंने अपने जीवन संघर्ष से, विद्रोही मानस से, भोगे हुए यथार्थ से, श्रेष्ठ साहित्य एवं साहित्यकारों से, संतो से, समाजशास्त्रीयों एवं राजनैतिक आंदोलनों से प्रेरणा प्राप्त की है। परसाईजी वैसे तो खुद ही प्रतिभाशाली थे, पर परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए इस विरल प्रतिभा ने अपने आपको कड़ा कर लिया और अपने आप को विस्तार दे दिया उन्होंने सोचा कि - “दुःखी और भी है। अन्याय पीड़ित और भी है। अनगणित शोषित है। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना संपन्न हूँ।”^(१७) मैंने सोचा होगा - “रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब सही ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औधुंध व्यक्तित्व बनाया और गंभीरता से लिखना शुरू कर दिया।”^(१८) इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी को लेखन की प्रेरणा खुद के जीवन संघर्षों से मिली है। उनका विद्रोही व्यक्तित्व भी उनकी प्रेरणा का एक अंग है। उनकी स्वयं की लेखनी ने ही उनके भोगे हुए यथार्थ की तसवीर प्रस्तुत की हैं।

परसाईजी की प्रेरणा का दूसरा पड़ाव समाज है, तत्कालीन समाज में फैली अव्यवस्था ने परसाईजी को प्रेरित किया। जहाँ मनुष्य ही मनुष्य का शोषण करता था, जहाँ राजनैतिक दाँव-पेच चलते थे, जिसके चलते उन्होंने मनुष्य को जागृत करने का संकल्प लिया। समाज के बेरुखेपन से प्रेरित होकर ही वह व्यंग्य लेखक बने है। जिसने उसे भी अनेकों बार डस लिया था। इसी के चलते वे मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित हुए। वह स्पष्ट मानते है कि - “मैंने जाना कि जीवन की सबसे सही व्याख्या कार्लमार्क्स ने की है - “मनुष्य की नियति को बदलनेवाला सबसे श्रेष्ठ और अंतिम दर्शन मार्क्सवाद ही

है। इस दर्शन को अनुभव से जोड़ना जरूरी है।^(१९) यही कारण है कि मध्यमवर्गीय त्रस्त मानवता परसाईजी के साहित्य से नव विचार प्राप्त करती है। अधिकार चेतना को जागृत करने में परसाईजी के साहित्य का विशेष योगदान रहा है। दिमागी गुलामी से लेकर भीड़तन्त्री लोकशाही का सारा लंगड़ापन उनके साहित्य में मौजूद हैं।

परसाईजी को कबीर के दर्शन ने भी विशेषतः प्रेरित किया हैं। वैसे कबीरदास को हिन्दी का पहला व्यंग्य लेखक माना जाता है वो बिना लाग लपेट के तीखी बात करते हैं। वे समस्त भेद-भाव एवं बाह्याडम्बर को हटाकर सत्य का प्रतिस्थापन करने के लिए उपस्थित हुए थे। उसमें अपने आपको प्रतिष्ठित करने की कोई कामना नहीं थी। परसाईजी के जीवन व साहित्य में कबीरजी की ही परछाई पाई जाती हैं। कबीरजी से प्रेरित होकर ही उन्होंने समाज की दुर्दशा का वर्णन अपनी लेखनी में किया है। परसाईजी स्वयं को कबीरदास का भक्त घोषित करते हुए कहते हैं कि - “कबीर के सीधे, बेलहांस, बखिया उधेड़, उतार मस्ती और फक्कड़पन से भरे व्यंग्यों का मैं भक्त हूँ।”^(२०) हमें मानना पड़ेगा कि कबीर का प्रभाव परसाईजी के जीवन पर बेहद आंतरिक रूप से पड़ा। परसाईजी की आत्मा में कबीर पूरी संजीदगी से मौजूद है।

परसाईजी पर कुछ राजनैतिक प्रभाव भी पाया जाता है, वैसे वे किसी राजनैतिक दल के सदस्य नहीं थे मगर कम्युनिस्ट पार्टी में उनकी गहरी आस्था रही। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं बुर्जुवावर्ग के प्रति आक्रोश पाया जाता है उन्होंने माना है कि - “अध्ययन से और साम्यवादीयों के सम्पर्क से मैंने बहोत कुछ सीखा। अब मेरी दृष्टि साफ है। मैं श्रमिक आंदोलन से तभी सम्बद्ध हो गया। मेरा अनुमान है कि सन् ५३-५४ में मार्क्सवादी के प्रभाव में आ गया। तभी मेरा सम्पर्क मुक्तिबोधजी से हुआ और उन्होंने मेरे मार्क्सवादी विश्वास को मजबूत किया तथा दृष्टि को बिलकुल साफ और सही कर दिया।”^(२१)

परसाईजी के प्रेरणास्त्रोत के बारे में विस्तार से अपनी बात रखते हुए श्री हनुमानप्रसाद वर्मा लिखते हैं कि - “तुलसी की रामायण ने जहाँ परसाई को मर्यादा का

पाठ पढ़ाया वहाँ कबीर और सुकरात ने उन्हें मिथ्या तत्त्व पर प्रहार करने का जोरदार सम्बल दिया। प्लेटों से क्रिकेगार्ड तक, वेदव्यास से प्रेमचंद तक और चोसइ तथा सरवान्तेज से चेखव एवं बर्नाडशो तक सभी परसाई के लिए अपनी-अपनी झोली से कुछ न कुछ निकालकर देने लगे। पं.भवानी तिवारी के सम्पर्क से समाजवाद के पक्षधर बने पर भारतीय समाजवादियों की रीति-नीति से उनका विरोध सन् १९५२ के प्रथम आम चुनाव के बाद ही शुरू हो गया। और तब उनका सम्पर्क स्थानीय ने साम्यवादी नेताओं से हुआ। जिनमें सृष्टिधर मुकर्जी और पी.के.ठाकुर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उसी काल में प्रगतिशील लेखक संघ के लेखकों और आलोचकों ने भी परसाई को विशेष प्रभावित किया। डॉ.रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, अमृतराय एवं मुक्तिबोध ने परसाईजी की विचारधारा को पुख्ता बनाया।^(२२) कुछ विदेशी लेखकों एवं विचारधाराओं ने भी परसाईजी को विशेषतः प्रभावित किया है। इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी का प्रेरणा स्रोत काफी फैला हुआ है। समय-समय पर उसे विभिन्न विचारधाराओं ने प्रभावित किया पर विशेषतः खुद के जीवन-संघर्ष, मार्क्सवादी विचारधारा, कबीर के चिन्तन एवं प्रगतिशील लेखक संघ की प्रवृत्तियों ने काफी हद तक प्रभावित किया है।

५.१.५ परसाईजी की जीवनदृष्टि एवं दार्शनिक आस्था :-

हर लेखक समाज से जुड़ा हुआ रहता है पर जिसने समाज की हर उठा-पटक को करीब से देखा हो उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्मात्तर मानसिकता को महसूस किया हो उनकी जीवनदृष्टि काफी स्पष्ट एवं साफ होती है। परसाईजी की जीवनदृष्टि में उनके भोगे हुए यथार्थ का साया है जिनसे वे वास्तविकता से काफी करीब है। खुद की जिन्दगी के अभावों, संघर्षों, अदम्य जिजीविषा और प्रखर स्वाभिमान के कारण परसाईजी के लिए जीवन को उसके अनेक कोणों से, अनेक आयामों से समझने-बुझने का मौका मिला है - “रोटी-कपड़े के लिए बिलबिलाती इन्सानियत से लेकर वातानुकूलित कमरों में शराब की बोतल में डूबे पूंजीपतियों तक को, हल चलानेवाले मूर्ख किसानों से लेकर

इन्सानों का खून चुस-चुसकर पीनेवाले मुनाफाखोरों को, उद्योगपतियों को, धर्म की ठेकेदारी करनेवाले ढोंगियों को बड़े करीब से परसाईजी ने देखा परखा हैं।”^(२३) इसलिए जीवन के वास्तविक चहेंरे से वाकिफ हैं। समाज में फैली विसंगतियों से वे परेशान हैं। उनका मानना है कि ऐसी स्थिति हमारी समाज-व्यवस्था, राजनैतिक एवं आर्थिक कार्य पद्धति के कारण पैदा हुई है। जिनकी दिशाहीनता के कारण समाज की शकल बीगड़ी हैं। उसमें सुधार लाना नामुमकीन नहीं पर कठीन अवश्य है। इसलिए वे सुधार की अपेक्षा बदलाव के पक्षपाती थे, इसलिए उनकी सृजनदृष्टि परिवर्तन की ओर मुड़ी। वे स्पष्ट कहते हैं कि - “मैं सुधार के लिए नहीं, बदलने के लिए लिखता हूँ।”^(२४) वे बदलाव इसलिए लाना चाहते हैं क्योंकि परसाईजी की दृष्टि मानवतावादी है वो मनुष्यता के प्रति किये जानेवाले हर षड़यंत्र के विरुद्ध दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने अपने व्याख्यान में स्पष्ट कहा था कि - “हम मानवतावादी हैं। मनुष्य के जीवन से हमारा सारोकार है इसलिए हम यथार्थवादी हैं मगर वैज्ञानिक यथार्थवादी हैं क्योंकि हम जीवन के प्रति केवल भावात्मक प्रतिक्रिया न करके वैज्ञानिक व्याख्या और विश्लेषण करते हैं। शुभकामना से अर्थशास्त्र के नियम नहीं बदलते, विलाप से अन्याय समाप्त नहीं होता, किर्तन से हृदय परिवर्तन नहीं होता क्योंकि वहाँ हृदय है ही नहीं।”^(२५)

परसाईजी की लेखनी से ये स्पष्ट झलकता है कि वो समाजशास्त्रीय चिन्तन की ओर अग्रसर हैं। उन्होंने समाज में समानता, सोहार्द बनाये रखने के लिए मार्क्स के चिन्तन को माना है। उनके अनुसार मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाया जाय तो जीवन में से असमानता एवं ज्यादातर विसंगतियों मिट सकती है, उनका मानना है कि - “इस चिन्तन में यही प्रमुख बात है कि जीवन को उनके विभिन्न कोणों से देखकर सभी कोणोंको समानता से सज्जीत कर उसमें सारोकार का सूर निर्माण किया जाय इसका अर्थ यह नहीं कि परसाईजी मार्क्स के प्रचारक थे पर अपने आसपास के माहोल को देखते हुए अपने चिन्तन को अनुभवों से जोड़कर जो प्राप्त होता है उसे उनके व्यक्तित्व एवं साहित्यधर्मी प्रतिभा ने अभिव्यक्ति दी है। परसाईजी प्रतिबद्ध शोध के बावजूद दर्शन

के समाधान को रचना पर सीधेलागू नहीं करते। अपने संवेदनशील अनुभवों को वे उस दार्शनिक आस्था में समवेत कर देते हैं। इसलिए परसाईजी मानते हैं कि - “दर्शन को अनुभव से जोड़ना जरूरी है, अनुभव ही लेखक का इश्वर होता है।”^(२६)

स्पष्ट है कि परसाईजी अपनी दार्शनिक आस्था से घटनाओं और स्थितियों का मानवीय संदर्भ में अर्थ तलाशने के लिए दर्शन से मदद लेते हैं और उसके समाधान को संवेदना से जोड़कर एक रचनाकार की हैसियत से उस संवेदनीय अनुभवों को सम्प्रेषित कर देते हैं। इसी से वह एक सार्थक बोध एवं प्रामाणिक यथार्थ को प्रस्तुत कर सकते हैं। यही कारण है कि परसाईजी का व्यंग्य सर्वप्टीज, बर्नाड शो और मार्कट्वेन से तो मिलता है पर चेखव से नहीं। परसाईजी की जीवन दृष्टि एवं दार्शनिक आस्था काफी स्पष्ट एवं प्रमाणभूत हैं।

५.२ परसाईजी की साहित्य समृद्धि :-

यह सनातन सत्य है कि महान साहित्यकार बनता नहीं है, पैदा होता है। साहित्य के संस्कार जन्मगत ही मिलते हैं जो प्रयास करने से प्राप्त नहीं होते ये शक्ति संस्कारतः मिलती है, जैसे आचार्य मम्मट की मान्यता है कि - “शक्ति कवित्व बीज रूपं तेवीना काव्यना प्रसुते।”^(२७) ऐसी प्रतिभा परसाईजी को संस्कारतः मिली हुई थी अभिव्यक्ति की विशेष प्रतिभा ने उनके व्यक्तित्व को एक असाधारण लेखक का रूप दिया। - “अपनी अनुभूति में जगत के दुःख की व्याप्ति का अनुभव करनेवाले भवभूति ने कहा था कि करुणरस ही सृजन का बुनियादी रस हैं। हरिशंकर परसाई के आत्मविस्तार में यही परम्परा विकसित होती है।”^(२८) परसाईजी के सन्दर्भ में कहना सही होगा कि जीवन-जगत की परिस्थितियों ने उन्हें एक गम्भीर व्यंग्य लेखक बनाया - “समाज के संघर्ष ने उन्हें अनुभव दिया और अनुभव के विश्लेषण ने उन्हें दृष्टि दी। आत्म-संघर्ष ने उन्हें लेखक बनाया और उन्होंने अपनी इस असाधारण उपलब्धि को लेखक के रूप में समाज को ही वापिस लौटा दी। यह समाज के सच्चे लेखक की जीवन भूमि का दस्तावेज है।”^(२९)

परसाईजी ने सन् १९४८ के आसपास लिखने का प्रारम्भ किया था मगर १९५०-५१ में उन्होंने जमकर लिखना प्रारम्भ किया। १९४९-५० में जबलपुर से प्रकाशित हुए साप्ताहिक 'प्रहरी' में उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व १९५५ के करीब 'वसुधा' के माध्यम से प्रकाश में आया। इनसे वे एक सशक्त व्यंग्यकार के रूप में ही नहीं उभरे बल्कि अखिल भारतीय साहित्यिक सम्पादनों में भी वे प्रस्थापित हुए। परसाईजी के अभिन्न मित्र मायाराम सुरज ने लिखा है कि - "दरअसल परसाई का रचनाधर्मी व्यक्तित्व 'वसुधा' के प्रकाशन में आया। श्रीरामेश्वर गुरु, प्रमोद वर्मा, श्रीवाल पांडे, हनुमानप्रसाद वर्मा, डॉ.रामशंकर मिश्र आदि कुछ मित्रों ने सहयोग कर 'वसुधा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। कहना होगा कि 'वसुधा' न सिर्फ अपने जमाने की वरन् अभीतक प्रकाशित साहित्यिक पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ठ नहीं तो श्रेष्ठतम में एक जरूर थी।"^(३०) परसाईजी की साहित्यिक यात्रा का श्रीगणेश 'वसुधा' से ही मानना चाहिए, उनकी रचनाओं का विकास एवं विस्तार उनके कारण ही माना जा सकता है। परसाईजी ने अपने लेखनकार्य का प्रारम्भ 'छद्म' नामक उपनाम से किया। सन् १९६५ से 'जनयुग' में प्रसारित हुए लेखों में वे 'आद्म' उपनाम से लिखते थे, तो 'सुनोभाईसाधो' साप्ताहिक लेख माला में उन्होंने 'कबीर' नाम से लिखा पर इन सभी नामों के पीछे उनका गहरा चिन्तन व्यक्त हुआ है। अन्ततः वे कबीर उपनाम से ही लिखते रहे परसाईजी का मानना है कि - "कबीर की वाणी तमाम बाह्याडम्बरों का विरोध करती है इसलिए मुझे उसका व्यक्तित्व विशेष रुचिकर है। फिर कबीर के पास बहुत सक्षम ताकतवर भाषा है इसलिए भी वे मुझे पसंद है यही कारण है कि मैंने जगह-जगह कबीर का 'छद्म' नाम अपनाकर लिखा है।"^(३१)

इस बात का स्वीकार करना पड़ेगा कि परसाईजी ने पिछले कई वर्षों में सामान्य जन को प्रगतिशील जीवन मूल्यों के प्रति सजग एवं समाज और राजनैतिक पाखंडों को उद्घाटित करने का जितना कार्य किया है शायद ही प्रेमचंदजी के बाद किसी हिन्दी लेखक ने किया हो। - "प्रेमचंद की परम्परा को बढ़ानेवाले जो साहित्यकार स्वतंत्र भारत

में साहित्यिक रचना कर रहे हैं उनमें हरिशंकर परसाई सबसे आगे हैं।”^(३२) रवीन्द्रनाथ त्यागी ने माना है कि - “आजादी के पहले का हिन्दुस्तान जानने के लिए जैसे सिर्फ प्रेमचंद ही पढ़ना काफी है उसी तरह से आजादी के बाद के भारत का पुरा दस्तावेज परसाई की रचनाओं में सुरक्षित है।”^(३३) इनसे उनके महत्त्व को समजा जा सकता है, परसाईजी के साहित्य सृजन एवं परिष्कार से प्रभावित होकर डॉ.गंगा प्रसाद विमल ने बेबाक शब्दों में लिखा है कि - “एक तरह से उनका काम पिछली शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काम की तरह महत्वपूर्ण है। यह संयोग है कि भारतेन्दु भी उत्तर शती में रचनारत दिखते हैं, और परसाईजी भी। वे गद्य की प्रतिष्ठा के उन्नायक हैं और परसाई गद्य की अर्थवान सत्ता प्रतिष्ठित करनेवाले हैं।”^(३४)

इससे स्पष्ट है कि परसाईजी साहित्यकार की भूमिका में काफी आगे निकलचूके हैं, उन्होंने १९४७ में जबलपुर के ‘प्रहरी’ में छपी कहानी ‘पैसे का खेल’ से लिखना प्रारम्भ किया बाद में निरंतर लिखते रहे हैं परसाईजी अपने युग का ‘बेरोमीटर’ है वो उनकी नब्ज को जानते थे। उन्होंने अपने युग में ‘रडार’ के रूप में काम किया और अपने ही हाथों भविष्य की ‘ब्ल्यू-प्रिन्ट’ भी तैयार की उनकी ‘प्रहरी’ से करंट तक की रचना यात्रा एक उस पहरदार के राउण्ड की तरह है जो अपनी ‘वीट’ पर निरन्तर जागते हुए ‘जागते रहो’ की आवाज़ लगाते हुए सीटी बजाते हुए और हाल्ट-हुकुम सदर-फंडर को खबरदार कौन आ रहा है, दोस्त या दुश्मन पूछते हुए चौकन्ना रहेता है।”^(३५) परसाईजी का व्यंग्यफलक काफी विस्तृत और व्यापक है, वे कलम के मजदूर और सिपाही दोनों रूप में पाये गये उन्होंने सुनो भाई साधो, कबीरा खड़ा बाजार में, माटी कहे कुम्हार से आदि कॉलम में काफी कुछ लिखा, नई दुनिया, नवीन दुनिया, अमर उजाला, जनयुग में नियमित उनके लेख निकलते थे। ‘धर्मयुग’, ‘सारिका’, ‘हिन्दुस्तान’ ने जबलपुर के इस निवासी को खोजा था।

परसाईजी की रचनाओं के बारे में यह विडम्बना रही कि उनका सृजन एवं प्रकाशन क्रमिक रूप से नहीं हुआ है। जो रचनाएँ बहोत पहले लिखी जा चुकी थी वो

प्रकाशित नहीं हो पाई, बाद की रचनाएँ प्रकाशित होती रही। वह अपनी रुचि अनुसार रचनाओं को भेजते थे एवं उनकी जीविका के साधन रूप भी होने के कारण प्रकाशक की पसन्द भी उनपर रहती थी। इनकी स्पष्टता करते हुए परसाईजी बताते हैं कि - “मैं छोटी रचनाएँ लिखता हूँ और पत्रिकाओं में भेजता हूँ इसलिए प्रकाशन तो होता है पर संकलन, सृजन एवं प्रकाशन के आधार पर क्रमशः नहीं होता बल्कि अपनी रुचि के अनुसार संकलित करता हूँ। पत्रिकाओं में मेरी रचनाओं का प्रकाशन इसलिए जल्दी होता है कि एक तो ये पत्रिकाओं के योग्य संक्षिप्त होती है, दूसरे यह मेरी जीविका भी हैं।”^(३६)

परसाईजी के लेखन को पाठक की हैसियत से हम तीन दौर में बाँट सकते हैं - “पहला दौर तो वह था जब हिन्दी का सामान्य पाठक और समीक्षक भी यह कहते हुए पाये जाते थे कि परसाईजी ‘इज ए फनी राईटर’ यह दौर १९६० तक चला होगा दूसरा दौर १९७० तक चला जब उसे समीक्षक मन ही मन स्वीकार करने लगे पर प्रत्यक्ष रूप से यह कहते हुए कि क्या लिखता है? नई पीढ़ी को बर्बाद कर देगा। पर तीसरे दौर में परसाईजी को सर्वमान्य एवं व्यापक प्रतिष्ठा मिली आज जन-जीवन में जागृति पैदा करनेवाले प्रेमचन्दजी के बाद दूसरे सर्वाधिक पढ़ेजानेवाले साहित्यकार हैं। परसाईजी की अब तक कई पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। उनको संकलित करके ‘परसाई रचनावली’ के रूप में छः भाग में प्रकाशित किया गया है, पर अब तक पुस्तकाकार के रूप में उनकी जो रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं उनका ब्योरा क्रमशः कुछ इस प्रकार है।

१. हँसते हैं रोते हैं	- १९५१
२. तट की खोज	- १९५५ (उपन्यास)
३. तब की बात और थी	- १९५६
४. भूत के पाँव पीछे	- १९६२
५. रानी नागफनी की कहानी	- १९६२ (उपन्यास)
६. जैसे उसके दिन फिरे	- १९६३
७. बेईमानी की परत	- १९६५

८. सुनोभाई साधो	-	१९६५
९. पग डंडियों का जमाना	-	१९६६
१०. सदाचार का तावीज़	-	१९६७
११. निठल्ले की डायरी	-	१९६८
१२. उल्टी-सीधी	-	१९६८
१३. और अंत में	-	१९६८
१४. बोलती रेखाएँ	-	१९६९
१५. शिकायत मुझे भी है	-	१९७०
१६. ठिठुरता हुआ गणतंत्र	-	१९७०
१७. अपनी अपनी बीमारी	-	१९७२
१८. तिरछी रेखाएँ	-	१९७२
१९. वैष्णवों की फिसलन	-	१९७६
२०. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	-	१९७६
२१. रिटायर्ड भगवान की कथा	-	१९७९ (उपन्यास)
२२. एक लड़की पाँच दिवाने	-	१९८०
२३. विकलांग श्रद्धा का दौर	-	१९८१
२४. पाखंड का आध्यात्म	-	१९८२
२५. प्रतिनिधि व्यंग्य	-	१९८३
२६. दो नाकवाले लोग	-	१९८३
२७. काग भगोड़ा	-	१९८३
२८. तुलसीदास चंदन घिसे	-	१९८६
२९. कहत कबीर	-	१९८६
३०. जाने पहचाने लोग	-	१९९१
३१. ऐसा भी सोचा जाता है	-	२००१
३२. ज्वाला और जल	-	२००३ (उपन्यास)

परसाईजी की इन व्यंग्य रचनाओं में तीन उपन्यासों को छोड़कर जो छोटी-छोटी व्यंग्य रचनाओं के संकलन हैं, उनमें ज्यादातर निबन्ध एवं कहानी के स्वरूपों को अपनाया गया है, साथ-साथ रेखाचित्र एवं स्तंभलेख भी पाये जाते हैं। डॉ.भगवानदास कहारने उनका विभाजन कुछ इस रूप में किया है - “हँसते हैं रोते हैं तब की बात और थी, सदाचार का ताबीज, जैसे उनके दिन फिरे (कहानी संग्रह) रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज, ज्वाला और जल (उपन्यास), भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पग डंडियों का जमाना, शिकायत मुझे भी है, और अन्त में अपनी-अपनी बीमारी, ठिठुरता हुआ गणतंत्र (व्यंग्य निबन्ध व कथासंग्रह), तिच्छी रेखाएँ, बोलती रेखाएँ (व्यंग्य संकलन), दो नाकवाले लोग, काग भगोड़ा, तुलसीदास चंदन घिसे, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, वैष्णवों की फिसलन, सुनो भाई साधो (सामायिक टिप्पणियाँ एवं निबन्ध) आदि।”^(३७) इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी का जो हास्य-व्यंग्य साहित्य मिलता है उसमें उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र एवं स्तंभलेखों का समावेश होता है। परसाईजी के कई संग्रह ऐसे हैं जिनमें निबन्ध, कहानी, रेखाचित्र आपस में घूल-मिल गये हैं, जिसे अलग करना कठिन है। परसाईजी के साहित्य में प्राप्त इन विभिन्न स्वरूपों को अलग-अलग देखना अधिक उचित होगा।

५.२.१ परसाईजी का उपन्यास साहित्य :-

परसाईजी ने चार लघु उपन्यासों की रचना की है। लगता है कि परसाईजी ने अपनी कहानियों को थोड़ा लंबा खींच के औपन्यासिक रूप देने का प्रयास किया है। जिसमें उसे उचित सफलता मिली है। उनके ये चारों उपन्यास का कथ्य सामाजिक विषमताओं के आसपास ही घूमता हुआ नजर आता है। १९५५ में प्रकाशित ‘तट की खोज’ परसाईजी का पहला लघु उपन्यास है। जो नायिका प्रधान उपन्यास है। शीला उनकी नायिका है जो मध्यमवर्ग की मिथ्या नैतिकता से पीड़ित नारी है। उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को नज़र में रखकर कथा का विकास किया गया है। शीला पूरे समाज को चुनौती देती है, वह अपने व्यक्तित्व को कभी झुकने नहीं देती है। इस

उपन्यास में एक निम्न मध्यमवर्गीय प्रबुद्ध लड़की के माध्यम से समाज में व्याप्त नर-नारी के आपसी खोखले रिश्तों, दहेज प्रथा, झूठी नैतिकता, झूठी करुणा का पर्दाफाश किया गया है। शीला समाज में व्याप्त दोगलेपन का विरोध करती हैं। इसलिए न तो वह महेन्द्रनाथ से शादी करती है, ना ही मनोहर के विवाह प्रस्ताव को मंजूर करती है क्योंकि - “शीला प्रेमचंद की सुमन या शरदचन्द्र की कमला या जैनेन्द्र की मृणाल से हटकर गढ़ा हुआ चरित्र है।”^(३८) शीला समाज से विद्रोह करती है। वह किसी की दया और सहानुभूति भी स्वीकार नहीं करती वह स्वयं नये जीवन की खोज में निकल जाती है। वो स्पष्ट कहती है कि - “मैं जीवन को फिर से आरम्भ करने जा रही हूँ। यहाँ की परिस्थितियों में जीवन फिर आरम्भ नहीं कर सकती। यहाँ की ज़मीन विषाक्त हो गई है। मैं दूसरी जमीन में जाकर जीवन का रोपा लगाऊँगी। मैं पलायन नहीं कर रही नये जीवन की खोज में जा रही हूँ।”^(३९) इस तरह परसाईजी ने नारी की वेदना को बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त करके आज के आधुनिक जीवन में व्याप्त दोगलेपन, खोखलेपन और कृत्रिमता को उजागर किया है।

‘रानी नागफनी’ की कहानी इन्शाअल्लाखा की रानी केतकी की कहानी की तर्ज पर लिखा गया एक लघु व्यंग्य उपन्यास है। इस उपन्यास की भूमिका में एक स्थान पर परसाई ने लिखा है कि - “फैंटसी के माध्यम से मैंने आज की वास्तविकता के कुछ पहेलुओं की आलोचना की है।”^(४०) लेखक के इस बयान से उपन्यास का मर्म काफी हद तक समझ में आ जाता है। फैंटसी के बावजूद भी रानी नागफनी की कहानी समकालीन भारतीय जीवन के यथार्थ और उसकी बहुविधि विडम्बनाओं का सजीव दस्तावेज बन जाती है। पौराणिक भारतीय साहित्य में फैंटसी का विशेषतः प्रयोग किया गया है प्रस्तुत उपन्यास में उसी शैली का प्रयोग करके आज की वास्तविकता को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन कथ्य एवं शिल्प का प्रयोग कर समकालीन प्रश्नों को वाचा दी गई है। उपन्यास को देखने से ऐसा लगता है कि जैसे - “मध्यकालीन सामन्ती पात्रों की कहानी है। इसमें पात्र वातावरण, संवाद और माहोल सामन्ती परिवेश से लिए गये हैं,

किन्तु जो यथार्थ उपन्यास की परख करना चाहता है वह हमारा समकालीन सामाजिक यथार्थ है।”^(४१) लेखक ने हमारे देश की अर्थव्यवस्था, शिक्षा प्रणाली, राजनैतिक आचरण, सामाजिक जीवन मूल्य एवं इन समस्त व्यवस्था को अजगर के समान जडकनेवाले भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया है। यही आज की यथार्थ स्थिति है। इस काम को कुँवर अस्तभान, रानी नागफनी, मुफ्तलाल, करेलामुखी, राजा निर्बलसिंह, जोगी प्रपंचगिरी, मुख्य अमात्य, गोबरधनदास, भयभीत सिंह, राखड़ सिंह आदि चरित्रों के माध्यम से पूर्ण किया है। इस लम्बी फैंटसी में सामंती परिवेश और पात्रों के माध्यम से हमारे समय की वास्तविक दास्तान व्यक्त हुई है।

‘रिटायर्ड भगवान की कथा’ नाम से परसाईजी ने एक लम्बी फन्सासी लिखने की योजना बनायी थी। इसका बहोत विस्तृत आयाम कल्पना में था - विश्व-राजनीति, शीतयुद्ध, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, नवसाम्राज्यवाद आदि। इसे सन् १९७९ में ‘कथायात्रा’ मासिक में आरम्भ किया था पर पत्रिका छठे अंक के बाद बन्द हो गई। इस कृति के केवल चार अध्याय प्रकाशित हो सके।^(४२)

‘ज्वाला और जल’ परसाईजी की एक ऐसी उपन्यासिका है, जो धृणा पर प्रेम की विजय को बड़ी आत्मीयता और सहजता से रंखांकित करती है। “यह उपन्यासिका ‘अमृत पत्रिका’ के दीपावली विशेषांक में कभी छपी थी। मुद्रित प्रति में कहीं भी प्रकाशन वर्ष का उल्लेख नहीं है। परन्तु यह परसाईजी के युवाकाल की एक महत्त्वपूर्ण रचना प्रतीत होती है।”^(४३) इस उपन्यास का नायक ‘विनोद’ है जिनके आसपास ही पूरे उपन्यास का कथ्य घूमता रहता है। “हमारे समाज में ‘विनोद’ जैसे सनकी चरित्रों का अभाव नहीं। वह एक संवेदनशील युवक है। शराबी बाप के हाथों से उसने अपनी माँ को पिटते देखा है। उसकी माँ यह कष्ट सहते-सहते अन्त में आत्महत्या करके मर जाती है। विनोद अपने पिता से नफ़रत करने लगता है और यहीं से उसके मन में एक प्रतिहिंसा का जन्म होता है। वह अपने पास एक छुरी रखकर शहर में गुंडागर्दी करने लगता है। वकील साहब और उसकी माँ के दबाव या प्रभाव में आकर वह अपने आपको

बदलता है। सुष्मा से प्रेम और प्रणय की वेदी पर 'प्रतिहिंसा की छुरी' को त्याग देता है और जीवन को एक नये ढंग से शुरू करता है यहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है।"^(४४)

इनसे स्पष्ट है कि उपन्यास का केन्द्र एक ऐसा नवयुवक है जो समाज के निर्मम थपेड़ों के कारण अमानवीय अस्तित्व के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मगर प्रेम और सहानुभूति के कारण वह एकबार फिर उस कोमल मानवीय सबन्धों की ओर लौटता है। विनोद एक अनाथ-आवारा बालक के रूप में व्यक्त हुआ हैं। इस हृदयस्पर्शी कथ्य को परसाईजी की कालजयी कलम से ऐसी ऊँचाई मिली जो उस समय के हिन्दी साहित्य में दुर्लभ थी। "उपन्यासिका में फलैशबैक का सटीक उपयोग हुआ है जिससे नायक विनोद के विषय में पाठकों की जिज्ञासा लगातार बनी रहती है।"^(४५) इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू जो आज भी पाठकों को आकर्षित करता है वह यह है कि रचना के किसी मोड़ पर कोई भी पात्र जिस रूप में भी सामने आता है, उससे अन्त तक पाठक धृणा नहीं कर सकते।

परसाईजी ने अपने चारों उपन्यासों की रचना व्यक्ति एवं समाज को केन्द्र में रखते हुए की हैं। परसाईजी प्रेमचन्द की शैली को दोहराना नहीं चाहते बल्कि वो समकालीन यथार्थ को व्यक्तकर उसे नई दिशा देना चाहते हैं। पर परसाईजी को उपन्यास विधा अनुकूल नहीं आई क्योंकि यह उनकी प्रतिभा एवं लेखन की आवश्यकता के अनुरूप नहीं थी फलतः उन्होंने चार उपन्यासिकाओं की ही रचना की हैं।

५.२.२ परसाईजी की कथाएँ एवं कहानी साहित्य :-

परसाईजी ने जिन साहित्य स्वरूप को विशेषकर चुना है उसमें कहानी साहित्य को भी स्थान मिलता हैं। परसाईजी ने लघुकथाएँ एवं कहानियों की विशेष अभिव्यक्ति की है। माना जाता है कि उन्होंने प्रेमचन्द की परम्परा को जीवंत रखा है। कपिलजी के अनुसार - "नई कहानी में यथार्थवादी कथादृष्टि का विकास और मानवीय संवेदना के जिस बिन्दु से प्रेमचन्द ने 'कफन' कहानी लिखकर विदा ली थी, वहाँ से नई कहानी ने अपनी असली यात्रा शुरू की थी। नये कहानीकारों ने अपनी कहानी के यथार्थ की

शुरुआत 'कफन' और 'पुस की रात' से की है। परम्परा के इस सूत्र को उन्होंने पकड़ा है, परसाईजी भी इस परम्परा के कथाकार है।^(४६) पर यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी कहानियों के स्वरूप में परम्परागत स्वरूप को नहीं अपनाया पर अपनी कहानियों में विभिन्न रूपों को प्रश्रय दिया है। जिस तरह से निरालाजी ने छन्द के बन्धन को तोड़ा था उसी प्रकार परसाईजी ने विविधोन्मुखी अभिव्यक्ति की हैं - “पुराणकथा, दंतकथा, मिथक, वेतालकथा, तिलस्मी और एप्यारी कथाएँ, प्रेमाख्यान और लोककथाएँ, लोकवार्ता, कपोल कल्पना और कथा मूलक फेंटसी, लघुकथाएँ, लम्बी कहानियाँ, औपन्यासिक और ऐतिहासिक दस्तावेज, नाटकीय विन्यास और केरीकेचर, पैरोडी और अन्योक्ति, दृष्टांत और प्रतीक कथा, रूपक और सादृश्य आदिकाल से लेकर अब तक कहानी की विकासयात्रा का कौन-सा ऐसा रूप है जो उनमें नहीं है।”^(४७)

परसाईजी के व्यंग्य संकलनों में कहानी स्वरूप को प्रमुखतः स्थान मिला हुआ है। उनके सभी संकलनों में कहानी पाई जाती है पर विशेषकर हँसते हैं रोते हैं, तब की बात और थी, सदाचार का ताबीज, जैसे उसके दिन फिरे, वैष्णवों की फिसलन आदि में ये स्वरूप काफी विकसित हुआ है। हम कह सकते हैं कि - “नई कहानी के बाद से लगभग तीन-चार दशको तक फैली कहानी यात्रा में किसी एक ही कहानीकार ने कहानी के रूप और उनकी संरचना में इतने प्रयोग नहीं किये हैं, जितने अकेले हरिशंकर परसाई ने।”^(४८) परसाईजी की हास्य-व्यंग्य कहानियों का क्षेत्र विकसित एवं विस्तारित है। उनमें विविधता भी है और व्यापकता भी। दरअसल हमारे समकालीन यथार्थ के बारे में परसाईजी ने जो प्रश्न अपनी कहानियों में उठाये, वो प्रश्न इकहरे और सीमित प्रश्न नहीं थे। समाज, राजनीति, धर्म, परिवार तथा समसामायिक घटनाचक्रों एवं समस्याओं का यथार्थ अंकन उनकी व्यंग्य-कहानियों में किया गया हैं। उनकी ऐसी कहानियों की बात करे तो “वैष्णव की फिसलन, साहब महत्वकांक्षी, चूहा और मैं, अकाल उत्सव प्राईवेट कॉलेज का घोषणा-पत्र, समय पर मिलनेवाले, वो जरा वाइफ हैंन, चावल से हीरे तक, बेचारा भला आदमी, पगडंडियों का जमाना, इति श्री रिसर्चाय,

अपने-अपने इष्टदेव, मौलाना का लड़का, पादरी की लड़की, बेताल की छब्बीसवीं कथा, राग-विराग दो कथाएँ, आमरण अनशन, अपनी-अपनी बीमारी, समय काटनेवाले, बुद्धिवादी, प्रेम की बिरादरी, जिसको छोड़ भागी है, इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर, असुविधा भोगी, बरात की वापसी, न्याय का दरवाजा, एक और जन्मदिन, परमात्मा का लौटा, गुड की चाय, दूसरे के ईमान के रखवाले, उखेड़े खंभे, भगत की गत, चर्च बेचनेवाले, मन्नूभैया की बारात, भोलाराम का जीव, आत्मज्ञान क्लब अमरता, उपदेश, दवा, देवभक्ति, दण्ड, मित्रता और जाति।”^(४९) आदि कहानियों में समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। परसाईजी ने बहुत सी कथाएँ भी लिखी हैं जो काफी सहज भाव से विकसित होती हुई जान पड़ती हैं। जिनमें विभिन्न घटनाओं सबन्धों, स्थितियों की धारदार अभिव्यक्ति की है। सरल, सहज भाषा एवं रसयुक्त वर्णन के कारण उनकी कथाएँ स्मरणीय बन गई हैं। परसाईजी की प्रमुख लघुकथाओं में “बदचलन, सुअर, सर्वे और सुन्दरी समाजवादी चाय, अफसर कवि, पुलिस मंत्री का पुतला, कबीर की बकरी, अयोध्या में खातावही, संसद और मंत्री की मूछ, अनुशासन, आफटर आल आदमी, बाप बादल, क्रांतिकारी की कथा, ईडन के सेंव, नहुष का निष्कासन, देवभक्ति, जाति, लिफ्ट, खेती, रोटी, दुःख, दंड, दवा, होनहार, अमरता, हृदय, उपदेश, अश्लील पुस्तकें, प्रथम स्मगलर, चौबेजी की कथा, लडाई, सुशील आजादी की धारा, मित्रता, राम और भरत, खोटा रूपया, साला पिये था, शेर और कुत्ता, सलाहकार, भगवान और ट्रैक्टर, जनता की गोली।”^(५०) आदि का समावेश किया जा सकता है। परसाईजी का यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण वो स्मरणीय कथाओं का निर्माण कर सके हैं। परसाईजी के कथा-साहित्य का युगान्तकारी महत्व है, यही कारण है कि कथा-साहित्य में प्रेमचंदजी के बाद परसाईजी का नाम लिया जाता है।

५.२.३ परसाईजी का निबन्ध साहित्य :-

परसाईजी के रचना संसार पर द्रष्टिपात करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि

उन्होंने ज्यादा से ज्यादा निबन्ध लिखे हैं। उन्होंने अपने अनुभव और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए निबन्ध विधा को ही विशेष रूप से पसन्द किया है। “निबन्ध उनके लिए ज्यादा अनुकूल रहा हैं। कितनी अच्छी बात है कि जो गद्य-विधा लेखकों के लिए कसौटी है, वही उनकी प्रकृति के अनुकूल है। रामचन्द्र शुक्ल अक्सर ‘गद्य कवीनां निकषं वदन्ति’ दोहराते थे। जीवनभर इस कसौटी पर खरे उतरने का संघर्ष वे झेलते रहे। क्रोध, करुणा, श्रद्धा, और भक्ति जैसी मानवीय प्रवृत्तियों को खोजते हुए वे निरपेक्ष पाण्डित्य से जूझे। जीवन और ज्ञान के जीवित यथार्थमूलक अनुशासनों की सहायता से वे मनुष्य के स्वभाव को जान पाये। उसी स्वभाव को उन्होंने निबन्धों में व्यक्त किया। दरसल बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी की निबन्ध परम्परा को रामचन्द्र शुक्ल ने काफी विकसित किया। आजादी के बाद उसी उत्तराधिकारी को निभाने की जिम्मेदारी परसाईजी ने ली हैं।”^(५१)

परसाईजी ने विशेषतः हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध लिखे हैं, पर उनके निबन्ध साहित्य में ललित, आत्मपरक, विश्लेषणात्मक, विचारप्रधान, समीक्षात्मक एवं पत्रात्मक निबन्धों की भी कमी नहीं हैं। इनसे ये स्पष्ट हो जाता है कि, “परसाईजी के महत्त्व को केवल व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करने की जल्दबाजी में उनकी उस भूमिका को छोटा बनाने की चेष्टा काम करती रही हैं।”^(५२) हरिशंकर परसाई का पहला आत्मपरक विश्लेषणात्मक निबन्ध ‘इण्डियन टाइम’ नामक शीर्षक से २० दिसम्बर, १९४७ के जबलपुर से प्रकाशित ‘प्रहरी’ साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था। तब से वे लिख ही नहीं रहे उनका लेखन निरन्तर विकासोन्मुखी होता गया, अधिक धारदार और मूल्यवान होता गया हैं। १९४७ में २३ साल की उम्र से अपने जीवन के ६५ वे वर्ष में और अपने लेखन में छत्तीस वर्ष के इतने लम्बे सफर में उनके लेखन का विश्वसनीय आकलन किया जाय तो उनकी सक्रियता, व्यापकता एवं प्राणवान सार्थकता को देखकर हमें मानना पड़ेगा कि वह इतने महान लेखक क्यों माने जाते हैं। नामवरसिंह ने भी माना है कि - “परसाईजी को आज भी याद किया जाएगा तो उनके तेज-तर्रार चुटीले निबन्धों के कारण किया

जाएगा।”^(५३) इसे यशपाल की परम्परा के साथ जोड़कर देखते हैं।

परसाईजी के निबन्ध उनके विभिन्न संकलनों में दर्ज हैं, पर उनके साथ कहानियाँ, रिपोर्टाज, रेखाचित्र, स्तंभलेख इतने घुलमिल गये हैं कि उसे अलग करके देखने में जरूर परेशानी होती है। फिर भी विशेषतः भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, सुनोभाई साधो, पगडंडियों का जमाना, निठल्ले की डायरी, और अन्त में, शिकायत मुझे भी है, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, तिरछी रेखाएँ, अपनी-अपनी बीमारी, मेरीश्रेष्ठ-व्यंग्य रचनाएँ, विकलांग श्रद्धा का दौर आदि उनके निबन्ध संग्रह माने जा सकते हैं। परसाईजी का निबन्ध साहित्य रचनावली भाग-३ और भाग-४ में संग्रहित है। रचनावली भाग-३ में ललित, विचारपरक तथा पत्रात्मक निबन्धों को लिया गया है और भाग-४ में हास्य-व्यंग्य निबन्ध समाविष्ट हैं। जिसमें ढाईसौं (२५०) के आसपास विभिन्न विषयों से जुड़े निबन्ध संग्रहीत हैं। परसाईजी के निबन्धों का स्वभाव परम्परागत निबन्धों से अलग है उसे किसी एक रूप में बाँधा नहीं जा सकता - “उनके निबन्धों में कहानी, कविता और रेखाचित्रों जैसे लगते अंश एक-दूसरे से गुँथे रहते हैं। निबन्ध के भीतर कहानी और कहानी के भीतर निबन्ध का होना तो आम बात है। वे किसी चरित्र को शब्दों से उकेर रहे होते हैं कि इस बीच अपनी ओर से उसके टाईप का आकलन भी करते हैं। इस तरह रेखाचित्र के भीतर निबन्ध घुस जाता है। कहानी की रचना में निबन्ध की जरूरत आ पड़ती है। अनुभव और विचारों की परिणति प्रायः बिम्बों में हो जाने से निबन्ध कविता की तरह ढल जाते हैं। खुद परसाईजी ने स्वीकारा भी कि - “मेरे लगभग ५० निबन्ध कविताएँ हैं क्योंकि उनमें लगातार बिम्ब हैं।”^(५४) जिनसे उत्तम प्रकार के निबन्धों की सर्जना हो सकी है।

परसाईजी के निबन्धों को विषय सबन्धी रूप से देखा जाय तो उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। पर उनके लिए यह वर्गीकरण भी स्थूल ही माना जायेगा। मूलतः उन्होंने राजनीति एवं समाज के विभिन्न घटकों के अन्तर विरोधों को व्यक्त किया है। वो समाज व व्यक्ति जीवन के प्रमुख समीक्षक रहे हैं। उन्होंने वर्गबोध, इतिहास बोध, धर्म, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, प्रेम,

अर्थजगत, राजनीति, आंतरराष्ट्रीय राजनीति, परिवारों में पीढ़ियों के फर्क, आदमी के निजी चरित्र-अन्तर्विरोध, समाजसेवी संस्थाओं का दोगलापन आदि अनेकानेक विषयों को लेकर अपनी चिताएँ व्यक्त कि है उनके निबन्ध रूपी सागर का अध्ययन करने से जाना जा सकता है कि उन्होंने अपने युगबोध, पाठकों की मानसिकता एवं युग की माँग के अनुसार ही विभिन्न विषयों को स्पर्श करते हुए निबन्धों की रचना की हैं।

परसाईजी ने सभी क्षेत्रों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया हैं। उनके निबन्धों को पढ़कर व्यक्ति मुस्कुरा भले ही दे परन्तु उसके अन्तरमन को ये निबन्ध कहीं दूर तक स्पर्श कर जाते हैं। कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से उनके निबन्ध खरे उतरे हैं। कहा जा सकता है कि परसाईजी ने अपने निबन्धों के माध्यम से समाज मनोविज्ञान का परिचय दिया हैं। व्यष्टि से समष्टि की और उन्मुख होकर व्यंग्य बाण छोड़ना और सभी को अपने व्यंग्यों का आधार बनाकर पर्दाफाश करना इन्हीं को शोभता हैं। “सामाजिक रूढ़ियों, राजनैतिक कुचको, धार्मिक आड़म्बरों, वैयक्तिक दुराग्रहों, सांस्कृतिक गुटों आदि पर व्यंग्यों के माध्यम से प्रहार किया है। अन्तस के दर्द, रुदन और विषाद को हास्य और व्यंग्य के माध्यम से चित्रित करना इनकी विशेषता हैं।”^(५५) ऐसे तो बहोत से निबन्धकार मिल जायेंगे जिन्होंने अपने निबन्धों में व्यंग्य का प्रयोग किया हो परन्तु परसाईजी व्यंग्यकार पहले है, निबन्धकार बाद में। अतः उनके निबन्धों में हास्य-व्यंग्य का बाहुल्य विशेषतः है। पर वे संवेदन से जुड़े हुए हैं, भावनात्मक स्पन्दन व्यंग्य के अस्त्र से डोलायमान हो उठते हैं। अतः हर कोई इस बात की अनुभूति करता है कि उनके निबन्ध, निबन्ध-साहित्य में विशेष पराकाष्ठा को प्राप्त है। जो उसे युग प्रवर्तक निबन्धकार के रूप में प्रस्थापित करते हैं।

५.२.४ संस्मरण एवं रेखाचित्र :-

रेखाचित्र साहित्यिक विधाओं में एक अलग किसम की विधा है क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति काफी सजगता के साथ की जाती हैं। हर काबिल रचनाकार में रेखाचित्र बनाने की ललक रहेती है। उनकी रचना कठिन भले हो, पर साहित्यकार को इस विधा

के प्रति अवश्य आकर्षण रहेता है। यह एक छोटी विधा है पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में इस विधा का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है। १९२० से १९४० के दौरान इनका पूर्णतः विकास हुआ। आज यह विधा गद्य लेखन की अन्य विधाओं के समान ही महत्व प्राप्त किए हुए है। क्योंकि इसमें संवेदन एवं कला का सामंजस्य रहेता है माना जाता है कि - “मनुष्य में कुछ विलक्षणता अथवा अद्वितीयता का एक ऐसा वैशिष्ट्य जो आसपास और कहीं रेखांकित न किया जा सके तभी वह रेखाचित्र के योग्य बनता है।”^(५६) डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार - “अपने सम्पर्क में आये किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगानेवाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप की देखी, सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में निश्चित प्रभाव अंकित हो जाय।”^(५७) रेखाचित्र यह सिद्ध करते है कि प्रत्येक अस्तित्व में सामान्य और विशिष्ट की एक संगति रहेती हैं।^(५८)

हिन्दी साहित्य में रेखाचित्रों की एक लम्बी परम्परा रही है। अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ (महादेवी वर्मा), जंजीरे और दीवारे (बेनीपुरी), रेखाएँ बोलऊठी (देवेन्द्रसत्यार्थी), संस्मरण (बनारसीदास), ठेले पर हिमालय (धर्मवीरभारती), एक बूँद सहसा उछली, अरे यायावर रहेगा याद (अज्ञेय) आदि महत्वपूर्ण रचनाओं की परम्परा में परसाईजी ने भी अपने आपको प्रस्थापित किया है। उनके ‘बोलती रेखाएँ’ एवं ‘तिरछी रेखाएँ’ में उत्तम प्रकार के संस्मरण एवं रेखाचित्रों को स्थान मिला हुआ हैं। परसाईजी एवं बेनीपुरीजी के रेखाचित्रों की बेजोड़ एवं सार्थक शृंखला है। परसाईजी ने अपने रेखाचित्रों में जीवन के बहोत से ऐसे अनछूए चित्रों को अभिव्यक्ति दी हैं। जिसमें उनकी व्यंग्य कला के साथ-साथ मानवीयता, व्यथा, सच्चाई, संवेदनात्मकता एवं सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति भी देखी जा सकती हैं। उनके ‘बोलती रेखाएँ’ संग्रह के बारे में नर्मदा प्रसादजी ने लिखा है कि - “रेखाओं में जीवन का मर्म बोलता हैं। व्यंग्यकार जब जीवन की व्यथा से अभिभूत होता है, तब वह ‘रामदास’ जैसी वेदना को साकार करता है और जब उच्चवर्गीय पाखंड और सतहीपन पर हँसता है, तब वह ‘साहब महत्वाकांक्षी’ को मूर्त

करता हैं। इन रेखाचित्रों में हमारे परिचित चरित्र कहीं नहीं है, पर परसाईजी ने अपनी मर्मस्पर्शी दृष्टि से उनके भीतर पीड़ा, आत्मसम्मान, स्वार्थपरता, कुण्ठा, पाखंड, बल और दुर्बलता, ओछापन और गहराई को उद्घाटित किए हैं।”^(५९)

मुक्तिबोध, रामदास, दलबदलनेवाला, एकभक्त, मनोषीजी, एक तृप्त आदमी, असहमत, साहब महत्वाकांक्षी, मुफ्तखोर, क्रोधित निराश, ठण्डा शरीफ आदमी आदि संस्मरण एवं रेखाचित्रों के माध्यम से परसाईजी ने व्यंग्य दर्शन के साथ-साथ जीवन के विभिन्न रंगों को, उतार-चढ़ाव को समझने-समजाने का प्रयास किया है। जीवन को परखने की दृष्टि दी है। परसाईजी के संस्मरण एवं रेखाचित्रों से साफ लगता है कि परसाईजी एक रचनाकार की हैसियत से जीवन में जो कुछ भी महान और सुन्दर है उसको बचाना चाहते हैं। मनुष्य के भीतर और जीवन के चारों ओर जो कुछ भी ग्रहणीय है उसे वे संजोकर रखना चाहते हैं। परसाईजी के रेखाचित्र इसी से श्रेष्ठतम गुण धारण किये हुए हैं।

५.२.५ परसाईजी का स्तम्भ लेखन :-

परसाईजी के रचना संसार में बहोत बड़ा हिस्सा स्तम्भ लेखों का है। इसीसे वे आम आदमी तक पहुँच सके हैं। जो किताबों को पढ़ने के आदि नहीं है ऐसे जन समूह में वर्तमानपत्रों के माध्यम से अपने आपको व्यक्त किया है। जब तक लेखक का सम्पर्क पूरे जीवन के विस्तार से नहीं तब तक उसके अनुभव बोध में सार्वत्रिकता एवं व्यापकता नहीं आती। यही कारण है कि परसाईजी ने उपन्यास, कहानियाँ एवं निबन्धों के अलावा अखबारों के कॉलमों के माध्यम से पूरे समाज में व्याप्त होने का प्रयास किया हैं। परसाईजी तीस सालों से कई नियमित स्तम्भलेख लिख रहे हैं। इन लेखों को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि स्तम्भलेख परसाईजी के संपूर्ण रचनात्मक अवदान का एक जरूरी हिस्सा है। ‘जितना लोक-शिक्षण इन स्तम्भलेखों ने किया है उतना शायद किसी संगठन या पार्टी ने भी नहीं किया। जीवन यथार्थ की सटीक तीखी आलोचना है, जिसमें पाठक के भीतर परिवर्तन की प्रेरणा जागृत होती है।’^(६०)

परसाई रचनावली के पाँचवे खंड में दो स्तंभलेखों की सामग्री शामिल है। 'सुनो भाई साधो' स्तंभ वो कबीर उपनाम से लिखते रहे जो नवीन दुनिया (जबलपुर में नई दुनिया) में वो १९५७ से निकलता था और 'माजरा क्या है' स्तंभ वे 'आदम' उपनाम से लिखते रहे जो नयी दिल्ली से प्रकाशित 'जनयुग' में १९६५ के प्रथम अंक से ही निकलने लगा था। जिसमें दिनबदिन हो रही घटनाओं के मर्म का उद्घाटन करना ही उनका लक्ष्य रहता था। जिससे संसार में चल रहे घटनाक्रम के विविध पहलुओं की समीक्षा होती थी। जिनके जरिए आम आदमी की समझ बढ़ती थी। वह दुनिया में चल रहे उतार-चढ़ाव से अवगत होता था परसाईजी मानते हैं कि - "जन सामान्य को जागरुक एवं चेतना सम्पन्न बनाने का काम न तो गैर साहित्यिक है नहीं कला विहीन क्योंकि कला और साहित्य की सार्थकता उनके सामाजिक उद्देश्य में ही निहित है।"^(६१) परसाईजी की यही सोच हमें आज की दुनिया से साक्षात्कार करवाती है। इसीसे हमें वो शक्ति प्राप्त होती है जो किसी से भी मुकाबला कर सके इससे उनके साहित्य की ताकत एवं असर को बढ़ावा मिला है।

परसाईजी के स्तम्भों का क्षेत्र व्यापक हैं। उन्होंने किसी भी क्षेत्र को नहीं छोड़ा। उन्होंने बड़े से बड़े मठाधिशों की पोल खोल के रख दी है। चाहे कोई भी बड़ा आदमी हो, राजनेता हो, महंत हो उन्होंने शिक्षक, संन्यासी, नारी, फिल्मीछात्र, शादी यहाँ तक कि राखीबंधन में हो रही राजनीति के बारे में भी अपने स्तंभलेखों में लिखा है। जिनको देख अहेसास होता है कि - "परसाईजी लेखकों की उस बिरादरी के हैं कि जिसे महज साहित्यिक और कलात्मक ही नहीं, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और मनोबोधी संज्ञान के नुकते से भी देखा परखा जाता है।"^(६२)

इस तरह परसाईजी के संपूर्ण साहित्य संसार से अवगत होने के बाद यह स्पष्टतः अनुभूति होती है कि उन्होंने साहित्य एवं समाज को मथ डाला है। उन्होंने अपने पास जो भी जितनी भी शक्ति थी उसे एकत्रित करके अपनी अभिव्यक्ति को निखारने का प्रयास किया हैं। संवेदन एवं कला दोनों दृष्टियों से उनका साहित्य प्रतिष्ठा

प्राप्त हैं। इसीसे प्रभावित होकर नामवरसिंह ने माना कि - “परसाईजी व्यक्ति नहीं अपने समूचे लेखन के चरित्र-नायक है, एक केरेक्टर है जो आमतौर पर हमारी नज़रों से ओझल हो जाता है। परसाईजी की समस्त रचनाओं में वह तेज, पैनी नज़रवाला एक व्यक्तित्व है, जो इस दुनिया को तार-तार करके देखता है, चिकोटी काटता है, जक जोरता है, चुनौती देता है, वह उनके सम्पूर्ण लेखन का सबसे महत्वपूर्ण चरित्र है, जैसे किसी उपन्यास का होना चाहिए। अपनी समग्रता में वह चरित्र बहुत महत्वपूर्ण है। परसाईजी की सबसे बड़ी दृष्टि में कहूँगा वह व्यक्तित्व, रचनात्मक और क्रिटिकल वह अविस्मरणीय चरित्र और इस चरित्र के रूप में याद किया जायेगा वह आदमी। परसाईजी का संपूर्ण साहित्य जैसे एक विशाल फिक्शन हो इस फिक्शन के अन्तरगत वह आदमी एक ‘केरेक्टर’ हैं।”^(६३)

५.३ विनोदभट्ट का जीवन एवं साहित्य

आधुनिक गुजराती हास्य साहित्य में प्रथम पंक्ति के हास्य सर्जकों में विनोद भट्ट का प्रतिष्ठित स्थान हैं। साहित्य को जीवन का दर्पण माना जाता है। सर्जक जो भी सर्जना करता है उसमें उनके जीवनानुभवों का प्रतिबिम्ब अवश्य जलकता है। रचना के हर परिप्रेक्ष्य में वह समाविष्ट रहता है। विनोद भट्ट का साहित्य विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। किसी भी सर्जक के साहित्य को पूर्ण रूप से समजने एवं आत्मसात करने के लिए उनके जीवन को भी समजना जरूरी बन पड़ता हैं। इस भावबोध को नज़र में रखते हुए नाम एवं गुणों में साम्यता रखनेवाले विनोदभाई भट्ट के जीवन व साहित्य सर्जन को आलोचित करने की सहज ही आवश्यकता है। जिनसे उनका करीब से अवलोकन हो सकेगा।

५.३.१ जन्म, परिवार एवं शिक्षा :-

“विनोद भट्ट का जन्म मकरसंक्रांति के दिन यानी कि १४ जनवरी, १९३५ के दिन हुआ था। उनका जन्म स्थल अहमदाबाद जिल्ले का नादोल-दहेगाम नामक गाँव

है।”^(६४) उनके पिता का नाम जसवंतराय लक्ष्मीशंकर भट्ट और माता का नाम जया बहन था। उनके परिवार में चार भाई और एक बहन थी। विनोद भट्ट सबसे बड़े थे। उनके भाईयों में भरत, गिरीश एवं उपेन्द्र और बहन हंसा छोटे थे। विनोद भट्ट के पिता का स्वभाव अत्यंत क्रोधी था तो माता काफी स्नेहवत्सला थी। विनोद भट्ट के व्यक्तित्व में दोनों की प्रतिछाया स्पष्ट देखी जा सकती है। विनोद भट्ट को दो पत्नी थी - कैलास बहन और नलिनी बहन, उनके तीन संतानों में दो पुत्रियाँ और एक पुत्र थे। पुत्रियों के नाम मोना और विनस है एवं पुत्र का नाम स्नेहल है। विनोद भट्ट ने अपने बाल मित्रों को अपने परिवार के समान माना है यह कारण है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में उन मित्रों का विशेष उल्लेख किया है जिस में प्रथम रमण गांधी को याद करते हुए लिखा है कि, “रमण नामे एक घांची मित्र, साचा अर्थ मां मारो लंगोटियो मित्र। एकवार में गृहत्याग कर्यो हतो ए वखते रमणे मने तेनो लंगोट आप्यो हतो।”^(६५) इनके अलावा चीमन पंचाल, जयंती पोदलो, जेन्तीलाल चोपडीवाला, जसवंत मिस्त्री एवं किशोरावस्था के मित्र ओमप्रकाश खन्ना का भी यथायोग्य परिचय दिया है, जिन्होंने उनके जीवन को काफी कुछ प्रभावित किया है।

शिक्षा के संदर्भ में बात करें तो विनोद भट्ट को प्रारम्भ से ही उनसे अरुची रही। वो कभी भी ध्यान से नहीं पढ़े। प्राथमिक शिक्षा उन्होंने शाहपुर चकला में स्थित म्युनिसिपल स्कूल में ली। पाँचवी कक्षा में उन्होंने ‘ध न्यू हाईस्कूल’ में प्रवेश लिया। पर अभ्यास में विशेष कुछ तेजस्विता नहीं दिखा सके। विनोदभाई ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि, “मने याद नथी के कोई वर्ष हुं फुल्ली पास थयो होऊँ। एक विषयमां ३२ होय तो बीजामां २५ होई, त्रीजामां ३६ होय तो चोथामां ३९।”^(६६) बचपन में माँ स्कूल छोड़कर घर आती तो उससे पहले वो घर पहुँच जाते। पर मेट्रिक की परीक्षा प्रथम प्रयास में ३६ प्रतिशत से पास की। बाद में शहर की प्रतिष्ठित एच.एल.कॉलेज ऑफ कॉमर्स में एडमिशन लिया पर वहाँ लेखक का मन नहीं लगता था वो आर्ट्स में पढ़ना चाहते थे पर पिताजी नहीं मान रहे थे। फिर माताजी की दरमियानगिरी से पिताजी की अनुमति मिल गई और आर्ट्स में राज्यशास्त्र व अर्थशास्त्र विषय के साथ सामान्य गुणों

से स्नातक की पदवी मिली। भले ही विनोदभाई ने सामान्य विद्यार्थी के रूप में शिक्षा प्राप्त की हो, तुफानी के रूप में जाने जाते हो पर उन्हें आज भी अपने सभी गुरुजी के नाम अच्छी तरह से स्मरण है। गुजराती भाषा के समर्थ सर्जक यशवन्त शुक्ल, पुष्कर चंदरवाकर, निरंजन भगत, कवि ब्रजलाल दवे, बकुल त्रिपाठी आदि का गुरु के रूप में मिलना भी लेखक के लिए कम गौरव की बात नहीं है।

५.३.२ जीवन संघर्ष :-

विनोद भट्ट का जीवन संघर्षमय रहा हैं। वे अपने जीवन में जिस किसी भी प्रकार के संघर्ष से गुज़रे हैं उनका उल्लेख उन्होंने अपनी रचना “एवा रे अमे एवा” में किया हैं। विनोद भट्ट का बचपन गरीबी में से गुज़रा उनके मित्र भी ज्यादातर उसी वर्ग के थे। जिनके साथ वो सारा समय तरह-तरह कि अटखेलियाँ करने में ही बिताते थे। वो गुज़रे हुए दिनों की याद लेखक के हृदय में आज भी कायम हैं। “जुनी खडखड पाँचम सायकल पर शाहपुर वनमाली वाका नी पोल थी ते छेक नरोडा ना छेडे आवेली कल्याण मिल सुधी जाता। गरीबी एवी के चप्पल पण लकज़री गणाय। स्कूल जवा माटे उघाडा पगे जवुं पड़तुं।”^(६७)

यहीं से लेखक के संघर्ष की शुरुआत होती है। शिक्षा के दौरान भी बहोत से उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ा, जिसमें पिताजी की इच्छा और अपनी इच्छा में साम्य न होने से कुछ संघर्ष झेलना पड़ा। एक बार बरतरफ भी हुए मगर लडखडाते हुए भी एक साल कॉमर्स में पढ़ने के बाद आर्ट्स में स्नातक हुए। पढ़ाई के बाद माहिती-प्रसारण विभाग में नौकरी की पर तनखाह काफी कम थी। उपर से सेहत ने भी साथ नहीं दिया जिनसे उन्होंने नौकरी छोड़, पिता के व्यवसाय में हाथ बँटाना प्रारम्भ किया।

व्यवसाय में कुछ स्थिरता आने के बाद सामाजिक एवं पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बढ़ती गई। १९८४ में जब हृदयरोग के कारण कैलास बहन का अवसान हुआ तो सारे परिवार को एक बहोत बड़ा आघात लगा ‘नरो वा कुंजरोवा’ किताब कैलास बहन को अर्पण करते हुए लेखक ले लिखा है कि, “स्व.कैलास - बस हवे दंत कथा ज ने?”^(६८)

क्योंकि कैलास बहन का परिवार में विशेष स्थान था, तीनों संतान नलिनी बहन के होने के बावजूद वो कैलास बहन को ही “माँ” कहके सम्बोधित करते थे। समय रहते सब ठीक-ठीक होने ही लगा था तब १९९० में ब्रेईन हेमरेज से पिताजी का साथ छूटा, पिताजी के अवसान के बाद सारी जिम्मेदारी लेखक पर आ गई वो संपूर्णतः सामाजिक बन्धनों में जकड़ते जा रहे थे अब तक जो छत्र-छाया थी वो हट गई थी। इसका आघात माता जयाबहन को विशेष लगा, जिस कारण कुछ साल बाद यानी १९९४ में वह भी पति के पिछे अपना रास्ता बना गई। उस समय विनोद भट्ट ने अपने आपको अनाथ महसूस किया वो लिखते हैं कि, “माँ शुं छे तेनी खबर तेनी हाजरी मां क्यारेय पड़वा दीधी न हती। ते केटली विराट छे तेनी जाण तेना गया पछी थाय छे। ते आँख सामेथी पसार थई जाय पछी लागे छे के केटली मोंघी निरांत आपणे गुमावी दीधी छे।”^(६९) इस सदमे को विनोद भट्ट आज भी भूल नहीं पाये। लेखक ने अपने जीवन में काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं, पर जितने भी दुःख व संघर्ष आये उनका सामना भी उसी जिन्दादिली से किया है। इसलिए इतने सालों बाद भी आज उनके चहरे पर जरा भी थकान देखने को नहीं मिलती। बल्कि उनका वही आत्मबल एवं तेजस्विता आज भी कायम है। गरीबी से जीवन का आरम्भ करनेवाले विनोदभाई ने क्रमशः संघर्षों का सामना करते हुए उच्च मध्यम वर्ग में अपना स्थान बना लिया है। जीवन के अन्तिम दिनों में वो सुखद संसार जीवन नलिनी बहन के साथ व्यतीत कर रहे हैं। उनके सुखी दाम्पत्य जीवन के बारे में रतिलाल बोरीसागर लिखते हैं कि, “सामान्य रीते पुरुष ने एक पत्नी होय छे। केटलाक डाह्या अने नशीबदार पुरुषों ने तो एक पण नथी होती। परणेलों दरेक पुरुष जाणे छे के एक स्त्री साथे पण सफलता पूर्वक घरसंसार चलाववो ए केटलुं अघरु काम छे पण विनोदे एक साथे बब्बे स्त्रीओं साथे पच्चीस-पच्चीस वर्ष सुधी सफल घर-संसार चलावी जाण्यों विनोद नु हृदय त्रिपुटी वालु दाम्पत्य जीवन वार्ता-नवलकथा मां पण अप्रतीतिकर लागे एवुं सुखी नीवड्यु।”^(७०) इनसे स्पष्ट है कि लेखक जीवन में बहोत से ऐसे संघर्षों, दुःखों व द्वंद्वों में से गुजरे हैं, पर उसे उन्होंने सांसारिक जीवन के एक भाग के रूप में सहजता से स्वीकार करते हुए उसे झेला एवं उसे सहज सोहार्दपूर्ण बनाने का प्रयास किया।

अपने घावों को अपने तक सीमित रखते हुए दुनिया को हँसाने का प्रयास किया हैं।

५.३.३ व्यक्तित्व :-

हर रचनाकार अपनी कृति में स्वयं जाने-अनजाने ही प्रस्तुत हो जाता हैं। उनके समग्र लेखन पर सहज ही उनके व्यक्तित्व की परछाई दिखाई पड़ती हैं। विनोद भट्ट के बहुमुखी व्यक्तित्व की परछाई उनकी रचनाओं में स्पष्टतः व्यक्त होती हुई जान पड़ती हैं। विनोद भट्ट के नाम के बारे में यशवन्त शुक्ल ने लिखा है कि, “फोई ए जे नाम पाड्युं तेने सार्थक करवाने विनोदभाई कृत निश्चय छे।”^(७९) विनोद भट्ट के व्यक्तित्व को अगर हम बचपन से लेकर आज तक के गुजरे हुए दौर के सन्दर्भ में देखे तो यह स्पष्ट है कि समयानुसार उनके व्यक्तित्व की कुछ रेखाएँ वैसी की वैसी ही दिखाई पड़ती है। नीड़र, स्पष्टभाषी, अकारण किसी का न सुनने की आदत, हरदम कुछ ना कुछ करते रहेना, परिस्थितियों से लड़ना हरदम मस्ती एवं फक्कड़पन से जीना, समयानुसार अपने आप को ढालते रहेना आदि विनोद भट्ट के व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पहलु हैं जिनके फल स्वरूप ही उनमें हमें वही निरंतर जिन्दादिली के दर्शन होते हैं। ऐसा लगता है जैसे जीवन को वे एक नशे से जी रहे हो, रुची से जी रहे हैं और अपने जीवनानुभव में वे जो कुछ भी आत्मसात करते रहे उसे खुलेआम, बेझिझक, बिना किसी की परवाह किए लिखते व कहते रहे। एक हास्य-व्यंग्य लेखक के रूप में जिस प्रकार का व्यक्तित्व किसी भी लेखक का रहता है वैसा ही व्यक्तित्व विनोदभाई में देखा जा सकता हैं। ऐसे व्यक्तित्व के लिए माना जाता है कि, “१४ जन्युआरी एटले मकर संक्रांति, ते विनोदभाई नो जन्म दिवस छे. आ एक मात्र एवो दिवस जे अंग्रेजी अने गुजराती पंचांग मां अनेरो सुमेल साधे छे। कहेवाय छे के मकर संक्रांति नो सूर्य तेजस्वी होय छे, अने आ दिवसे जन्मेला जातकों नी कुंडली मां पण ते बलवान होय छे। बलवान सूर्य यश, कीर्ति, सत्ता वगैरे अपावे छे।”^(७२) यही कारण है कि लेखक का व्यक्तित्व प्रारंभ से ही अन्य से कुछ भिन्न रहा हैं।

विनोदभाई के व्यक्तित्व का परिचय उनके जीवन की बहोत सी घटनाओं से सहज ही व्यक्त होता हुआ देखा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व की कुछ बातें ऐसी हैं, जो उसे पैतृक संस्कार के रूप में मिली हैं। लेखक मानते हैं कि, व्यवसाय और क्रोध ये दो चीजें मुझे पिता के पास से मिली। विनोदभाई को क्रोध, जिद व स्वतंत्र्य मिजाज व्यक्तित्व पिताजी से मिले, तो नम्रता, सरलता सहनशीलता, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता एवं तटस्थता आदि गुण माता के पास से मिले। विनोदभाई का व्यक्तित्व खुला व्यक्तित्व था। उन्होंने जो सोचा वो किया बिना किसी की परवाह किए, बिना किसी लाग लपेट के, “एक पत्नी नी हाजरी मां ज बीजु लग्न ए समये पण कोई सामान्य घटना न हती लग्न पहेला त्रणे कुटुंब मां आ बाबत ने लई ने सारो एवो विरोध थयेलो।”^(७३) उनके ऐसे व्यक्तित्व का परिचय हमें तब भी होता है जब वो सिद्धांत की खातिर लांच-रिश्वत से जुड़े हुए सेलटेक्स सलाहकार के व्यवसाय को छोड़ देते हैं और सिर्फ इन्कमटेक्स से ही जुड़े रहते हैं। लेखक में व्यक्ति स्वातंत्र्य विशेष रूप से हावी रहा है। उन्हीं के कारण उनके व्यक्तित्व में काफी उतार-चढ़ाव भी देखे गये जैसे उनकी परिवार भावना, सामाजिक सोहार्द, गुरुजनों के प्रति आदभाव, निष्ठापूर्ण मैत्री, यह सभी उनके व्यक्तित्व के ऐसे पहलु हैं, जिनसे उनका व्यक्तित्व काफी कुछ उपर उठा हुआ दिखाई पड़ता है। पुत्र के रूप में, पति के रूप में, पिता के रूप में, मित्र के रूप में उनकी जो भूमिका रही है वो संपूर्णतः समर्पित ही रही है। विनोदभाई ने लिखा है कि, “प्रिय नलिनी ने..... जेनी एक पण सलाह..... तेने परणवा सुद्धांनी पण में अवगणी नथी।”^(७४) उनके सफल वैवाहिक जीवन का ये मजबूत आधार माना जाता है। विनोदभाई की मित्रता के बारे में रतिलाल बोरीसागर ने माना है कि, “शेखादम नी जेम विनोदभाई पण मित्रोने निर्व्याज प्रेम करे छे। शेखादमे मित्रो पासे थी कदी कोई अपेक्षा राखी नहोती। विनोद भट्ट पण कोई मैत्री सम्बन्ध ने अंगत लाभ माटे एनकेश करवानुं स्वप्नेय विचारे नहीं।”^(७५) इसलिए निरंजनभाई लिखते हैं कि, “मारा दरेक पुस्तक नी प्रास्ताविक मां विनोद भट्ट नो उल्लेख होय ज छे। आमा एवुं छे के कोई पण जात नी पूजा, अर्चना होय के होम-हवन होय, गणेशजी ने प्रथम याद करवामां आवे छे। मारा माटे ते विघ्नहर्ता गणेशजी नी

भूमिका मां छे।”^(७६) इनसे ये स्पष्ट है कि विनोद भट्ट का व्यक्तित्व सिर्फ उनकी बहुमुखी प्रतिभा के कारण श्रेष्ठ है उतना काफी नहीं है, पर उनकी व्यावहारिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण से जो भी भूमिका रही है उसे उन्होंने बबी निभाया है। वो दूसरों पर ही हास्य-व्यंग्य प्रयोग करते थे ऐसा नहीं है, कई बार वो खुद को भी कटघरे में खड़ा करके अपनी मर्यादाओं को व्यक्त करते हैं। यशवंत शुक्ल के मतानुसार, “पोतानी मर्यादाओंने हसी शके ते जो साचो हास्यकार गणातो होय तो विनोद भट्ट ने एनुं श्रेय मलवुं जोईये।”^(७७) ऐसे प्रतिभासंपन्न व्यक्ति को युग पुरुष कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी वो अपने ऐसे व्यक्तित्व के कारण ही सामान्यजन में से श्रेष्ठ साहित्यकार बन सके हैं।

५.३.४ विनोद भट्ट के प्रेरणास्त्रोत :-

जब कभी भी कोई भी क्रिया सम्पन्न होती है तो बिना किसी कार्यकारण के नहीं होती। वो किसी न किसी की प्रतिध्वनि के रूप में जन्म लेती है। साहित्यकार के हाथों जन्म लेनेवाली रचनाओं के पीछे जैसे उनका वैचारिक द्वन्द्व काम करता है उसी रूप में जब सामान्य व्यक्ति साहित्यकार बनता है तो अवश्य ही उनके पीछे ऐसे कुछ प्रेरणात्मक स्त्रोत रहते हैं जो कई बार दृश्यमान न भी रहते हो पर एक तरह से जाने-अनजाने ही ऐसा माहौल पैदा हो जाता है, जो ऐसे साहित्य मर्मज्ञ को जन्म दे देते हैं।

विनोद भट्ट के बारे में हम कह सकते हैं कि परिस्थितियों ने इस साहित्यकार को जन्म दिया है। परिस्थितियों ने ही उसे ऐसे चिंतन के लिए मजबूर किया है। ऐसा लगता है। प्रारम्भिक जीवन संघर्ष में वो तप कर सोना बन गये थे उन्होंने जीवन के उतार-चढ़ाव को करीब से देख लिया था। दुनिया के रंग उन्होंने भाप लिए थे। बचपन से ही वे परिस्थितियों का निर्देशन करते रहे जिनसे वे काफी हद तक परिपक्व हो गये थे।

विनोद भट्ट के लिए उनके माता-पिता प्रेरणारूप रहे हैं। लेखक प्रेरणादायीनी माता को स्नेह का झरना मानते हुए लिखते हैं कि, “व्यवहारकुशलता अने कोठासूझ

गजबनी। जसवंतराय नी 'ओफिसर' नी नोकरीमां पंचोतेर रुपिया पगार, पाछल थी नोकरी छूटी तेथी मुश्केलियो वधी। कुटुंबमां चार दिकरा अने एक दिकरी मलीने सात व्यक्तिनुं भरणपोषण कोई व्यवहार कुशल स्त्री वगर शक्य नथी। गरीबी नी खुब अडचणों छतां बालकों नुं जतन करवामां अने पतिनो पडछायो बनीने रहेवामां तेमणें हसतामुखे जीवन विताव्यु।^(७८) इस कर्मठ साधना का लेखक पर विशेष प्रभाव देखा जा सकता है। माता के संस्कार लेखक की सबसे बड़ी प्रेरणा रहे। "पुत्रो प्रत्ये अपार स्नेह होवा छतां ज्यारे नानपण मां पोते बहार कोई साथे झगडो करी घरे आवता तो मातानो गुस्सो-मार अवश्य सहन करवो पड़तो। प्रेम खरो पण पक्षपात नहीं।"^(७९) प्रेरणारूपी इस संस्कार की असरकारकता का अनुभव लेखक ने किया जिनसे एक समर्थ व्यंग्यकारी की निष्पक्षता एवं तटस्थता ने जन्म लिया। उसी रूप में पिताजी भी उनके लिए प्रेरणा की मूर्ति बने रहे, क्योंकि उनके बड़े पुत्र होने से वो हरदम परछाई बनकर पिता के साथ रहे एवं पिताजी के हर व्यवहार को करीब से देखा। जिनसे उसे काफी प्रेरणा मिली। लेखक मानते हैं की वो क्रोधी व जिद्दी जरूर थे, पर निष्ठावान थे, देशप्रेमी थे। उनके जीवन प्रसंग को व्यक्त करते हुए विनोदभाई ने लिखा है कि आझादी की जंग में भाग लेने से उनकी नौकरी चली गई। - "मोटाभाई(पिताजी) ने कहेवामां आव्यु के आवो अपराध फरी नहीं करुं एवुं मारी सामे लखी आपो तो नोकरी मां चालु राखीए, पण तेमणे नोकरी छोडी दिधेली। माफी न मागी - स्वातंत्र्यसंग्राम मां भाग लेवा बदल अफसोस जाहेर न कर्यो।"^(८०) इसी संस्कार की प्रेरणा विनोदभाई को अवश्य मिली है। जब वो राजनीति या समाज के दोगलेपन पर करारा व्यंग्य करते है तब उसी भूमिका में आ जाते है। विनोदभाई के बुद्धिचातुर्य पर पिताजी की प्रेरणा झलकती है तो उनके संवेदनशील हृदय मातृप्रेरणा से झंकृत होता हुआ जान पड़ता है। यह भी कहना पड़ेगा कि लेखक ने अपने मित्रों व गुरुजनों से भी विशेषतः प्रेरणा प्राप्त की है, क्योंकि गुजराती भाषा के समर्थ सर्जकों यशवन्त शुक्ल, पुष्कर चंदरवाकर, निरंजन भगत, कवि ब्रजलाल दवे, बकुल त्रिपाठी ने गुरु के रूप में किसी न किसी हद तक लेखक के अवश्य दिशा-निर्देशक रहे है। उसी रूप से प्रारम्भ से ही मित्रों के लिए हरदम लालाइत रहनेवाले विनोदभाई के

लिए मित्रों का सद्भावना युक्त संगाथ ही कुछ न कुछ करने की प्रेरणा देता रहा। साहित्य में रुची पैदा करनेवाले अपने प्रथम मित्र के रूप में लेखक ने अपनी आत्मकथा में जेन्तीलाल चोपड़ीवाला का उल्लेख किया है। जो किताबें बेचते थे। लेखक ने माना है कि, “गुजराती साहित्य मां मने रस लेतो करनार, नाद लगाडनार आ जेन्तीलाल मने साहित्य मां लई जवानो यश के अपयश तेने पण आपवो पडे। मुनशी र.व.देसाई, धुमकेतु, गुणवंत आचार्य ने एवा घणा लेखको नां पुस्तकों तेमनी पासे थी वांचवा मल्या हतां।”^(८१) मित्रों का साथ विनोदभाई के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि उनकी किसी भी क्रिया-प्रक्रिया में वो हरदम हमदम बनकर प्रेरणात्मक भूमिका निभाते रहे हैं।

विनोदभाई के लिए कहा जा सकता है कि परिस्थितियों ने ही उसे बनाया है और यह भी मानना पड़ेगा कि जीवन यापन के दौरान बचपन से लेकर आज तक उनके जो भी संगी-साथी पालक या सहयात्री रहे हैं उनकी ओर से अवश्य ही कुछ न कुछ प्रेरणा मिली हैं।

५.३.५ विनोदभाई की जीवनदृष्टि एवं दार्शनिक आस्था :-

विनोदभाई की जीवनदृष्टि स्पष्ट, साफ एवं सटिक है। यही कारण है कि वह अपने जीवन में कभी-भी ऐसी स्थिति में नहीं देखे गये जहाँ वो द्वन्द्वात्मक हालात से गुजर रहे हैं, विचारधारा दो तरफ गतिमान हो। उन्होंने अपने जीवनानुभवों से जो शिक्षा प्राप्त की उनसे उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण बिलकुल स्पष्ट एवं साफ हो गया अपने जीवन के उतार-चढ़ाव ने ही उनको परिपक्व बना दिया। इसका नतीजा है कि वे हास्य-व्यंग्य लेखक बने। नहीं तो विनोदभाई की प्रारम्भिक अनुभूतियाँ करुणा व वेदना से लबालब थी। एक संवेदनशील व्यक्तित्व के रूप में लेखक ने भी उन अनुभूतियों को प्रश्रय दिया पर उनकी जीवनदृष्टि बदलते हुए देर नहीं लगी क्योंकि जब चेहरे के आगे व पीछे का भाव भिन्न है जिनसे उनका जीवन के प्रति अपना दर्शन व आस्था उनके मायने बदल गये उनमें भी वो ऐसे व्यवसाय के साथ जूड़े हुए थे जिसमें कहेना कुछ व करना

कुछ होता था। यहीं से लेखक का दृष्टिकोण बदला इसलिए ही उन्होंने ऐसे व्यवसाय से दूर रहना ही पसन्द किया पर फायदा यह हुआ कि इसी से उसमें सोया व्यंग्य लेखक जागृत हो गया जो आज के यथार्थ को पहचानने में माहिर था। जो आज की वास्तविक नब्ज को पहचानता था। उनको अभिव्यक्त करने के लिए करुणा की नहीं हास्य-व्यंग्य की आवश्यकता थी जो हँसते-हँसते, चुगली करते कराते चाँटा लगा सके। लेखक का दर्शन बहोत साफ था कि इन्सान मुक्त होना चाहिए। उनकी वाणी-विचार, व व्यवहार में किसी भी प्रकार की पाबंदी नहीं हो। सामाजिक रीतिरीवाज व बन्धनों के वो विरोधी है यही कारन है कि दूसरी शादी का प्रस्ताव बिना किसी की परवाह किये कैलास बहन की संमति से उन्होंने लिया था। लेखक की यह भी मान्यता रही है कि जीवन में गुजरे हुए कल को कभी-भी नहीं भूलना चाहिए। हम क्या थे? यह बात इन्सान को हरदम याद रखनी चाहिए, इसलिए ही वो सामान्य से सामान्य मित्र को कभी-भी नहीं भूले। लेखक ने तो जीवन में पत्नी से भी मित्रों को विशेष स्थान दिया है। रतिलाल बोरीसागर के अनुसार, “मित्रों माटे विनोदना हृदय मां अनहद प्रेम छे एमना हृदय मां पत्नी पछीनुं तरतनुं स्थान मित्रों नुं छे - जो के कैलासभाभी हतां त्यारे अने नलिनी भाभी बन्ने कहेता अने नलिनी भाभी हजु कहे छे के पहेला पण अमारुं स्थान मित्रो पछी हतुं अने हजु पण पछी ज छे।”^(८२) लेखक ने जीवन में हरदम चलते रहने का मंत्र पढ़ा था वो कभी-भी रुके नहीं। आज इतने समय बाद भी वो सक्रियता से अपने कार्य के साथ जूड़े हुए है। इनसे मिलने से ऐसा अहसास होता है कि उन्होंने हरदम खुश रहो, मुक्त रहो, आझाद रहो, हँसते रहो का पाठ पढ़ा है। इन्हीं से जीवन में किसी भी प्रकार की परेशानियाँ खड़ी हो जाय उनको सहजता से लो, भले पहाड टूट पड़े टूटने दो पर तुम टूट जाओगे तो सब कुछ तबाह हो जायेगा। मनुष्य का आत्मबल प्रबल व प्रखर होना चाहिए तभी तो वह बड़े-से-बड़े समंदर को लांघ सकता है। लेखक की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि जीवन में जो होता है वो होकर ही रहेगा। मैंने जो कुछ भी लिखा है वह मेरी व्यथा कथा मान सकते है, मैं कोई सुधारवादी वैचारिकता से नहीं लिख रहा हूँ, मेरा तो प्रयास है जो मेरी नज़रों व मेरी अनुभूतियों ने देखा परखा उसे व्यंजित करना हो सकता है।

उनसे कुछ जागरुकता बढ़ी हो पर मैं कर्म के सिद्धांत में विश्वास करता हूँ। मेरे हिस्से में जो आया वो निभा रहा हूँ। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि जीवन बहोत छोटा है, उसमें सब कुछ हाँसिल करना, करवाना, नामुमकिन है पर बिना रुके अगर अपनी मँजिल की ओर गतिमान रहेते है तो मुझे विश्वास है कि इन्सान बहोत कुछ हाँसिल कर सकता है।

५.४ विनोदभट्ट की साहित्य समृद्धि :-

कहा जा सकता है कि साहित्यकार के रूप में विनोद भट्ट का पदार्पण बाल्यकाल से ही हो गया था। भले ही उसे चरितार्थ होने में वक्त लगा हो पर युवान आयु में जसुभाई एवं ओमप्रकाश खन्ना की मित्रता के समय में उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया। लेखक को साहित्य में रुची सम्पन्न बनाने में जेन्तीलाल चोपडीवाला का विशेष योगदान रहा है। उनके पास से अनेक रचनाएँ पढ़ने मिली जिनसे उनका चिंतन व्यापक बना। प्रारम्भ में लेखक का प्रियरस 'करुणरस' था पर वो अपनी करुणा का वैसा व्याप नहीं कर सके। जीवन की यथार्थता से लड़ते हुए वो उस कारुण्य को भूल गये जो उसे कमज़ोर बनाता था। जसुभाई एवं ओमप्रकाश खन्ना दोनों ऐसे मित्र थे जिनके साथ परस्पर वार्तालाप से साहित्यिक चर्चाएँ होती रहती थी। 'अखंड आनन्द', 'जन्मभूमि', 'मुंबई समाचार' जैसे वर्तमानपत्रों में सभी मित्र लिखते रहते थे पर कुछ समय के बाद दोनों मित्र किसी कार्य में ज्यादा व्यस्त हो जाने से लिखना छोड़ दिया पर विनोदभाई इस दिशा में काफी दूर तक चलते रहे हैं।

विनोद भट्ट की प्रथम रचना 'जनसत्ता' के 'चाँदनी' नामक मैगैज़ीन में सन् १९५७ में प्रकाशित हुई। जिनके सम्पादक 'अशोक हर्ष' को विनोद भाई अपने गोडफाधर मानते हुए लिखते है कि, "अशोकभाई ए चाँदनी मां मारी पहेली वार्ता छापेली मारा लेखने वार्ता तरीके छापनाराओं मां अशोकभाई पहेला छे ए वात बिलकुल साची छे।"^(८३)

विनोद भाई को साहित्य में हास्य-सर्जक के रूप में प्रसिद्धि मिली उनका संपूर्ण यश उस समय के हास्य-सर्जक 'जदुराय संघेडिया' को देना चाहिए। उनके साथ परिचय होने से लेखक को सही दिशा मिली इनके बारे में विनोदभाई ने लिखा है कि,

“विनोद भट्ट ने हास्य लेखक बनाववा माटे कोई पण माणस ने जवाबदार ठेरवो होय तो ए जमाना ना प्रसिद्ध लेखक जदुराय डी. संघेडिया ने जवाबदार ठेरवी शकाय।”^(८४) एक हास्य लेखक के रूप में विनोदभाई को पहला रोमांचक अनुभव तब हुआ जब उनके हास्य लेख ‘नवचेतना’ एवं ‘युवक’ नामक मैगज़ीन में प्रकाशित हुए। वहीं से लेखक की साहित्यिक यात्रा अनवरत रूप से चलती रही। जिनमें उसे कई संघर्षों का सामना करना पड़ा है।

विनोद भट्ट को साहित्य सर्जन के अपने प्रथम प्रयास में विशेष सफलता नहीं मिली थी। पिताजी प्रारम्भ से ही अपनी नाराजगी व्यक्त कर चुके थे। फिर भी प्रथम रचना ‘पहेलु सुख ते मूंगी नार’ (१९६२) के प्रकाशन के समय उनकी ओर से विशेष सहायता मिली थी जो विशेष प्रसिद्धि हाँसिल नहीं कर सकी। फिर भी लेखक ने अपना आत्मविश्वास बनाये रखा। बाद में नाम से साम्यता रखनेवाले तीन छोटे संग्रह रंगविनोद, व्यंग्यविनोद और तरंग विनोद का सम्पादन किया पर उनसे भी कोई खास लाभ नहीं हुआ। फिर भी उसे अनदेखा करते हुए ‘आजनी लात’(१९६७), ‘विनोद भट्ट नी अरहस्य कथाओं’ एवं ‘विनोद भट्ट (वि) कृत शाकुन्तल’ (१९६८) को लक्ष्मी पुस्तक भंडार के सहयोग से प्रकाशित किया, पर ये किताबें उनके लिए भी ग्रहण बनकर आईं। ऐसे समय में एकबार लगा कि लिखना ही छोड़ दें, पर विनोदभाई को अपनी लेखनी पर, अपने कृतित्व पर विश्वास था। वे कहते हैं कि, “मारा सामान्य पुस्तकों ने में रद कर्या नथी। आपणुं कोई सन्तान नबलु होय, विकलांग होय तो आपणे तेने रद करिये छीये? तेना पितृत्व नो इन्कार करीए छीए?”^(८५) वैसे हर रचनाकार की प्रारंभिक रचनाओं में वह प्रभाव नहीं होता जो बाद की रचनाओं में पाया जाता है। विनोदभाई की साहित्यिक दृष्टि से सामान्य रचनाओं के बारे में रतिलाल बोरीसागर ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि, “केटलाक सर्जको सर्जकताना ऊँचा शिखरे पलांठी मार्या पहेलां धीमे-धीमे ऊँचे चड्या होय छे। एक-एक पगथिये पग मूकी ने आगल वध्या होय छे। विनोद आ वर्ग मां आवनारा प्रथम वर्गना सर्जक छे।”^(८६) इस तरह विनोद भट्ट की प्रारंभिक साहित्यिक यात्रा इतनी सफल नहीं रही। यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक

रचनाएँ आज बहोत मुश्किल से मिलती है। पर बाद में वर्तमान पत्रों के माध्यम से इतनी प्रसिद्धि मिली कि फिर उनकी आलोचना करने का किसी को मौका नहीं मिला या तो उनके बारे में कुछ न कहने का मौन व्रत भी टूटा। दबी जबान में भी उनकी प्रशंसा की सुगबुगाहट शुरु हो गई। फिर तो लेखक साहित्य की नब्ज को जान गये थे इसलिए वो बेझिझक ताल ठोक कर काफी कुछ लिखने लगे। उनके द्वारा प्रसिद्ध हुए ज्यादातर ग्रन्थ पहले वर्तमान पत्र की कॉलम के रूप में प्रकाशित हुए। अभी तक उनके लिखे एवं संपादित किए गये ग्रन्थों की कुल संख्या (२००३ तक) ६५ के आसपास होने जा रही हैं। इन प्रकाशित किताबों को सालवारी के अनुसार देखा जाय तो उनका विभाजन सर्जन एवं संपादन के रूप में कुछ इस प्रकार किया जा सकता है।

☞ सर्जन

१. पहेलु सुख ते मूंगी नार	१९६२
२. आज नी लात.....!	१९६७
३. विनोद भट्टनी अरहस्य कथाओं	१९६८
४. विनोद भट्ट (वि) कृत शाकुन्तल	१९६८
५. विनोद भट्टना प्रेमपत्रो	१९७२
६. इदम् तृतीयम्	१९७३
७. इदम् चतुर्थम्	१९७५
८. सूनो भाई साधो	१९७६
९. विनोदनी नज़रे	१९७९
१०. अने हवे इति-हास	१९८१
११. आंख आडा कान	१९८२
१२. ग्रंथनी गडबड	१९८३
१३. नरो वा कुंजरोवा	१९८४
१४. शेखादम..... ग्रेटादम	१९८५
१५. अमदावाद एटले अमदावाद	१९८५

१६. विनोद विमर्श	१९८७
१७. नर्मद : एक केरेक्टर	१९८९
१८. स्वप्न दृष्टा मुनशी	१९८९
१९. हास्य मूर्ति : ज्योतिन्द्र दवे	१९८९
२०. कोमेडी किंग चार्ली चेप्लिन	१९८९
२१. ग्रेट शो मेन ज्योर्ज बर्नाड शो	१९९०
२२. भूल चूक लेवी-देवी	१९९०
२३. वगेरे, वगेरे, वगेरे	१९९२
२४. अथ थी इति	१९९२
२५. प्रसंगो पात	१९९३
२६. कारण के.....	१९९४
२७. एन्टन चेखव	१९९४
२८. मन्टो : एक बदनाम लेखक	१९९५
२९. दिल्ली थी दोलताबाद	१९९६
३०. प्रभु ने गम्यु ते खरुं	१९९७
३१. एवा रे अमे एवा	१९९९
३२. हास्योपचार	२०००
३३. मगनुं नाम मरी	२००२
३४. मंगल अमंगल	२००३

☞ हिन्दी

३५. देख कबीरा रोया	१९८१
३६. सूना अनसूना	१९८४
३७. बेताल छब्बीसी	१९८७
३८. चार्ली चेप्लिन	१९९०
३९. भूल-चूक लेनी-देनी	१९९४

४०. एन्तोन चेखव और ज्योर्ज बर्नार्ड शो १९९०

☞ सिन्धी

४१. नज़रे नज़र जो फेर १९८४

४२. सूनो भाई साधो १९८९

गुजराती भाषा-साहित्य की इन चौतीस रचनाओं के विशाल सर्जन के अलावा विनोदजी ने जो संपादित ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, वह उनके साहित्यिक लगाव एवं सुझ को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने बहुत सी भारतीय भाषाओं को इसके माध्यम से जोड़ा है इनसे उन्होंने भारतीय संस्कृति का रसास्वादन करवाया है।

☞ संपादन

४३.	रंग विनोद (टुचका संग्रह)	१९६३
४४.	व्यंग्य विनोद (टुचका संग्रह)	१९६३
४५.	तरंग विनोद (टुचका संग्रह)	१९६३
४६.	श्लील अश्लील	१९६७
४७.	गुजराती हास्यधारा	१९७२
४८.	हास्यायन	१९७८
४९.	श्रेष्ठ हास्य रचनाओ : चिनुभाई पटवा (फिलसूफ)	१९८१
५०.	श्रेष्ठ हास्य रचनाओ : मधुसूदन पारेख (प्रियदर्शी)	१९८१
५१.	श्रेष्ठ हास्य रचनाओ : ज्योतीन्द्र दवे	१९८१
५२.	श्रेष्ठ हास्य रचनाओ : तारक महेता	१९८२
५३.	श्रेष्ठ हास्य रचनाओ : धनसुखलाल महेता	१९८२
५४.	श्रेष्ठ हास्य रचनाओ : विनोद भट्ट	१९८३
५५.	सारा जहाँ हमारा : (शेखादम आबुवाला)	१९८५
५६.	प्रसन्न गठरियां (चं.ची.महेता)	१९८५
५७.	हास्य माधुरी : बंगाली	१९८५
५८.	हास्य माधुरी : मराठी	१९८५

५९.	हास्य माधुरी : उर्दू	१९८५
६०.	हास्य माधुरी : हिन्दी	१९८५
६१.	हास्य माधुरी : गुजराती	१९८६
६२.	हास्य माधुरी : विदेशी	१९८७
६३.	हास्य नवनीत	१९९४
६४.	हास्येन्द्र ज्योतीन्द्र	२०००
६५.	ज्योतीन्द्र दवेनी प्रतिनिधि हास्य रचनाओ	२००० ^(८७)

इनसे स्पष्ट है कि साहित्यिक सत्त्व की दृष्टि से लेखक का साहित्य काफी समृद्ध है। जिनमें क्रमशः विस्तार होने की संभावना है। गुजराती हास्य-व्यंग्य साहित्य में विनोदभाई का एक अलगारी स्थान एवं महत्त्व रहा है। सुरेश दलाल के अनुसार, “हसवा, हसाववा अने हसी काढवानी वृत्ति विरल छे। विनोद भट्टमां आवी विनोद वृत्ति भरपूर प्रमाणमां छे। गुजराती भाषामां हास्य-लेखनना क्षेत्रे गण्या-गाठ्या नाम छे, तेमां विनोद भट्ट नुं चोक्कस स्थान अने मान छे।”^(८८) विनोदभाई के साहित्य सर्जन को देखने से ये स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने बहोत से साहित्यिक रूपों पर अपनी कलम चलाई है। साथ-साथ गुजराती भाषा के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं को भी टटोलने का, समजने-समजाने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में प्रमुखतः कथा एवं कहानी साहित्य, निबन्ध साहित्य, रेखाचित्रों-चरित्रों आत्मकथा एवं स्तंभलेखों आदि भिन्न-भिन्न साहित्य रूपों की अभिव्यक्ति हुई है।

५.४.१ विनोद भट्ट का कथा साहित्य

विनोद भट्ट ने साहित्य के इस स्वरूप में ज्यादातर कथाएँ एवं कहानियाँ लिखी है। पर विनोद भट्ट (वि) कृत शाकुन्तल रचना का जो स्वरूप है, वह लघु उपन्यास जैसा है। निरन्तर हास्य कथा के रूप में निर्माण हुई इस रचना में विनोदभाई का परिचय अच्छी तरह से मिल जाता है।

विनोद भट्ट की विनोदिकाओं को चरितार्थ करती कृतियों में ‘विनोद भट्ट नी

अरहस्य कथाओं' का विशेष महत्त्व रहा है। जिसमें उन्होंने तत्कालिन राजनैतिक स्थिति पर व्यंग्यात्मक प्रहार करती हुई छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी है। "विनोद भट्ट ने हरिशंकर परसाई की तरह राजनैतिक विद्वदों को प्रहारित करने की दिशा में किसी प्रकार की कमी नहीं रखी हैं।"^(८९) उनकी प्रारंभिक रचना 'आजनी लात' भी काफी सटीक रचना है। पर विनोदभाई का सही परिचय उनकी 'इदम् तृतीयम्' और 'इदम् चतुर्थम्' से होती है। व्हेल माछली नुं आक्रमण, विश्वामित्र नों तपोभंग, एक भूल बीजीवार न थाय, चुटणीना परिणामों, तीन बन्दर, ऊट नुं राजकारण आदि प्रसिद्ध व्यंग्य कथाएँ रही हैं।

कथालेखन के क्षेत्र में 'विनोद भट्ट' को शुरु से ही सफलता हाँसिल हुई है। 'सूनोभाई साधो' एवं 'आँख आडा कान' में कथा स्वरूप विशेषतः व्यक्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। उनकी कथालेखन शक्ति के बारे में रतिलाल बोरिसागर ने लिखा है कि, "प्रारंभिक रचनाओं मां विनोदे टचूकडी कथाओं द्वारा पोतानी प्रतिभानों उन्मेश दाखव्यो। अनुसर्जन प्रकारनी आ टचूकडी कथाओं ए योग्य रीते ज सहृदयो नुं ध्यान खेचेलुं।"^(९०) उनकी लम्बी कथा 'शाकुंतल' कथा कहानियों में अरहस्य कथाओं, लघुकथाओं, वेताल कथाओं, विनोद कथाओं तोफान कथाओं आदि कृतियों में वो कथासर्जक के रूप में बखूबी उभरे है। उनकी कथाभिव्यक्ति को देख यशवन्त शुक्ल ने भी माना है कि कथाभिव्यक्ति में विनोद भट्ट का कौशल्य उत्तम प्रकार का है। यही कारण है कि 'इदम् तृतीयम्' की प्रस्तावना में अपनी बात रखते हुए उन्होंने माना कि, "ए कशु लांबु ताणता नथी, ए सोंसरा उतरे छे अने लक्ष्य-वेध करे छे। आ शक्ति टूँकीवार्तानां लेखक नी के टूचका लेखकनी शक्ति छे। अने श्री विनोद भट्ट नी आ मार्मिक हास्यवार्ताओ तेमनी ए विशिष्ट शक्तिनी प्रतीति करावे छे।"^(९१)

हम इस बात की अनुभूति अवश्य करते हैं कि लेखक के कथा-साहित्य में निरन्तर विकासशील रूप दिखाई पड़ता है। उनकी कथा किसी भी विषय वस्तु के सन्दर्भ में रही हो उसमें जिज्ञासावृत्ति का तत्त्व अवश्य ही देखने को मिलता है। उनके प्रारंभिक कथा-साहित्य से उत्तरोत्तर उनमें परत-दरपरत वृद्धि होती हुई दिखाई पड़ती है। 'आजनी

लात' में 'नकलखोर वाणियों', 'कोईने य मुख न कहेवा' आदि अरहस्य कथाओं में रहस्यकथा की शैली में लिखि गई 'हाऊ.....हाऊ', बंध बारणे एवं विनोद भट्ट (वि) कृत शाकुन्तल की शुरुआती रचनाओं में वो कथा-सर्जक की अच्छी भूमिका बनाते हैं। तो बाद में 'इदम् तृतीयम्', 'इदम् चतुर्थम्', 'सूनो भाई साधो', 'आँख आडा कान' आदि में उनकी कथा शैलीका विकासात्मक रूप देखा जा सकता है। जिसमें उनकी बहोत-सी खूबियों का प्रवर्तन हुआ है। ये उनकी उत्तम रचनाएँ मानी गई हैं। प्रफुल रावल ने माना है कि, "कथा सर्जक नुं प्रथम लक्षण वार्ता मां जिज्ञासा ने जन्मावानुं, विनोद नी प्रत्येक हास्यकथा के हास्य वार्ता मां भारोभार जिज्ञासा भरेली छे अने तेय अति लाघव थी। कथन रीति सरल अने सीधी गति करनारी होय छे।"^(९२) इस वास्तविकता की अनुभूति हमें 'इदम् तृतीयम्' की ४७ व्यंग्यकथाओं में, 'इदम् चतुर्थम्' की ३७ कथाओं में, 'आँख आडा कान' की ५० कथाओं के पठन-पाठन से अवश्य हो जाती हैं। इस बात को नज़र में रखते हुए रतिलाल बोरीसागर के शब्दों के आधार पर प्रफुल रावल ने विनोदभाई की अनुभूति व अभिव्यक्ति का गहराई से अभ्यास करते हुए माना है कि, "लेखके जीवन ने उंडाण थी जोवा प्रयत्न कर्यो छे, जोवानी नज़र हास्यकार नी छे एटले एनी रज्जूआत हलवी होय ते सहज छे। पण तेना दर्शन मां गांभीर्य पण भारोभार अनुभवाय छे।"^(९३) इनसे स्पष्ट है कि विनोदभाई के कथा-साहित्य में वह सारी खूबियाँ मौजूद हैं जो एक सफल रचनाकार के लिए जरूरी समजी जाती हैं।

५.४.२ विनोद भट्ट के संस्मरण एवं रेखाचित्र :-

विनोद भट्ट ने अपने साहित्य स्वरूपों में संस्मरण एवं रेखाचित्रों को भी विशेष स्थान दिया है एवं सप्रयोजन उसका निर्माण किया है। लेखक की इन रचना में विशेष रुची भी देखी जा सकती है। लेखक ने उसे अपने चिंतन से विशेष कलात्मक बनाने का प्रयास किया है। वैसे ये आत्मकथा के समान सत्य से काफी करीब होते हैं। लेखक ने अपने सम्पर्क में आये एवं जिनके साथ उनकी खास संवेदना जूड़ी हुई है ऐसे चरित्रों पर अपनी कलम चलाई है। जिसमें कुछ विदेशी चरित्रों को भी व्यक्त किया गया है। पर एक

बात जरूर है कि भले ही लेखक ने उसे कुछ विनोदी शैली में व्यक्त किया हो पर उन चरित्रों के साथ जो वास्तविकताएँ जूड़ी हुई हैं, जो घटनाएँ व तथ्य जूड़े हुए हैं, उसमें कुछ छेड़छाड़ नहीं की गई है। विनोद भट्ट में आत्मकथा का शोक कुछ विशेष देखा गया है। वे मानते हैं कि, “आत्मकथा ए मारो प्रिय ज नहीं प्रथम पसंदगी नो विषय रह्यो छे। मारी आँख सामे पुस्तको नो ढगलो पड्यो होय तो तेमाथी आत्मकथानुं पुस्तक हुं पहेला उपाडी लउ छुं।”^(९४) इसीका नतिजा है कि विनोद भट्ट एक सफल संस्मरण एवं रेखाचित्रकार बन सके हैं। उन्होंने शेखादम आबुवाला, मुनशी, नर्मद, ज्योतीद्र दवे जैसे साहित्यविदों के चरित्र एवं विदेशी सर्जक ज्योर्ज बर्नाड शो, चेखव, सहादन हसन, चार्ली चेप्लिन का भी चरित्रांकन किया है। जिसमें उनकी हास्यवृत्ति का भी विशेष परिचय मिलता है।

संस्मरण एवं रेखाचित्रों में विनोदभाई की दो रचनाएँ ‘विनोद नी नज़रे’ एवं ‘प्रभु ने गम्यु ते खरुं’ को गुजराती साहित्य में विशिष्ट स्थान मिला है। दोनों संग्रहों की अभिव्यक्ति अलग प्रकार की है। ‘विनोद नी नज़रे’ में विनोदभाई ने अपने दृष्टिकोण से साहित्यकारों के रेखाचित्रों को व्यक्त किए हैं। जो विनोदी रेखाचित्रों को व्यक्त करनेवाली गुजराती भाषा साहित्य की प्रथम ऐसी स्वतंत्र रचना हैं। लेखक का मानना है कि, “‘विनोद नी नज़रे’ तो आटली मोटी संख्या मां जे-ते साहित्यकार ना व्यक्तित्व नी लाक्षणिकताओ आवी जाय ते रीते हलवी शैली मां लखायेलुं रेखाचित्रों नुं आपणी भाषानुं एकमात्र पुस्तक छे।”^(९५) उसी प्रकार से ‘प्रभु ने गम्यु ते खरुं’ कुछ ऐसी ही रचना है पर विशेषतः गंभीरता ग्रहण करते हुए लेखक ने अपनी बात रखी है। क्योंकि इस रचना में लेखक ने अपने साहित्यिक मित्रों को श्रद्धांजली देते हुए लिखा है। यहाँ लेखक ने विशेष संतुलन रखा है उन्होंने काफी संभलकर अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है। रतिलालजी लिखते हैं कि, “समतुला जालवी ते तंग दोरडा पर चालवा जेवुं काम छे। गाम्भीर्य अने हलवासथी आवी गजबनी समतुला लेखके अहीं जालवी छे।”^(९६) इस प्रकार हम यह स्पष्ट कर सकते हैं। विनोद भट्ट के इन रेखाचित्रों ने सिर्फ उनका ही नहीं गुजराती भाषा का भी गौरव बढ़ाया है।

५.४.३ विनोदभाई का निबन्ध साहित्य :-

साहित्य की विभिन्न विधाओं में 'निबन्ध' एक ऐसी विधा है जिनकी ओर हरकोई साहित्यकार आकर्षित होता है। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार इस विधा को अवश्य चूँता है। क्योंकि निबन्ध साहित्य में वह अपने गहन से गहन विचारों को मूक्तता के साथ व्यक्त कर सकता है, निबन्ध में वो अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता को वैविध्यता बक्षके अपनी उचित पहचान बना सकता है। गुजराती साहित्य में नर्मद के हाथों उनका गठन हुआ था। तत्पश्चात उनका निरन्तर विकास होता रहा है। जयन्त पाठक मानते हैं कि, "गद्य साहित्य ना अन्य कला प्रकारों ने मुकाबले निबन्ध रचनामां तेना सर्जकना विचार, भावना, वलणो, रुचिवृत्ति आदि नुं वधारे सीधु ने निर्भेल प्रतिबिंब पडे छे।"^(९७) गुजराती साहित्य में निबन्धों को गतानुगतीत रूप से देखा जाय तो नर्मद से पंडितकाल तक के निबन्ध साहित्य में बोध गम्यता, जन जागृति, शिक्षा या तो राष्ट्रभावना को व्यक्त करना उनकी मूल प्रवृत्ति रही है। तो गांधीयुग के निबन्ध साहित्य में प्रयोगात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ। बाद में धीरे-धीरे ललित निबन्ध की शुरुआत हुई उनके एक भाग के रूप में हलवा हास्य-व्यंग्य निबन्धों को स्थान मिला। जिनका उचित गठन 'रमणभाई निलकंठ' के हाथों हुआ। गुजराती साहित्य में हलवा हास्य-व्यंग्य निबन्धों की रचना में रमणभाई के साथ रा.वि.पाठक, धनसुखलाल महेता, गगन विहारी महेता, ज्योतीन्द्र दवे, बकुल त्रिपाठी, विनोद भट्ट आदि का विशेष योगदान माना जा सकता है। जिन्होंने गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्य निबन्धों की एक अलग पहचान बनाई हैं।

गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य में विनोदभाई के योगदान की बात कहे तो उन्होंने अपने कथा-साहित्य के समान ही निबन्धसाहित्य को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख अंग माना है। बल्कि वह निबन्धसाहित्य में कुछ विशेष असरकारक सिद्ध हुए हैं। लेखक ने एक प्रयोगवादी निबन्धकार के रूप में अपनी पहचान बनाई है। उनके निबन्धों में अन्य छोटी-छोटी विधाएँ इतनी घुल-मिल गई हैं कि उनको अलग करना मुश्किल है। कहानी, रिपोर्टाज, रेखाचित्र, स्तंभलेखों का सहज समागम उनके निबन्धों में देखा जा सकता है। रतिलाल बोरीसागर मनते हैं कि, "केरिकेचर प्रकारना एमना निबन्धों आ प्रकार ना

निबन्धों माटे मानदंड रुप बनी शके तेवा छे।^(९८) माना जाता है कि गुजराती साहित्य में ज्योतीन्द्र दवे के बाद विनोदभाई का हास्य सम्राटो की दावेदारी में सबसे बड़ा नाम है जिनमें कोई भी आशंका नहीं। उनके योगदान को नज़र में रखते हुए रतिलाल बोरिसागर ने स्पष्ट कहा है कि, “प्रथम पंक्तिनां हास्यकारनुं स्थान मेलवी लेनार विनोद भट्टे निबन्धना क्षेत्रमां थोडो मोडो प्रवेश कर्यो पण आ स्वरुप एमना माटे सहज सिद्ध छे, एवुं एमणे ठीक-ठीक संख्यामां आपेला निबन्धों पर थी फलित थाय छे।^(९९)”

विनोद भट्ट के निबन्धों में राजनैतिक विसंगतियों, सामाजिक विसंगतियों एवं धर्म, शिक्षण, संस्कार, लोगों की विभिन्न प्रकार की मानसिकता पर प्रमुख रुप से हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए गये हैं। उन्होंने पहेलुं सुख ते मुंगी नार, विनोद भट्ट नां प्रेमपत्रो, सूनो भाई साधो, विनोदनी नज़रे, अने हवे इतिहास, ग्रन्थनी गरबड, नरो वा कुंजरो वा, अमदावाद एटले अमदावाद, भूल-चूक लेवी-देवी, अथ थी इति, प्रसंगोपात, दिल्ली थी दौलताबाद, हास्योपचार, मंगल-अमंगल आदि इनके अलावा भी बहोत से ऐसे निबन्ध संग्रह दिये हैं। जिनके माध्यम से वे सिर्फ गुजराती साहित्य में ही नहीं पर अन्य भाषा-भाषी साहित्य में भी पहचाने जाते हैं। क्योंकि विभिन्न भारतीय भाषाओं के साथ उनका जीवंत सम्पर्क बना रहा है। इसीसे उनको लाईव वायर माना जाता रहा हैं। हम यह स्पष्ट मान सकते हैं कि उन्होंने अपने निबन्धों में जो विषय वैविध्य एवं अभिव्यक्ति कौशल्य व्यक्त किया है, जो किसी को भी आकर्षित कर सकता है।

५.४.४ विनोद भट्ट की हास्य मीमांसा एवं आत्मकथा :-

विनोद भट्ट ने हास्य व्यंग्य को कितनी करिब से देखा व अनुभव किया है ये उनकी समीक्षात्मक रचना से पता चलता है। ये रचना स्पष्ट व्यक्त करती है कि इस दिशा में उनकी पैठ कितनी गहरी है। उनके द्वारा लिखा गया ‘विनोद विमर्श’ हास्य की पूर्णतम आलोचना का सुंदरतम रुप है। जिसमें लेखक ने तुलनात्मक आधारों को ग्रहण करते हुए एक निश्चित एवं द्रढमत बनाने का प्रयास किया है। इसलिए यशवंत शुक्ल ने माना है कि, “श्री विनोद भट्टे हास्य नां बधा मान्य प्रकारो विशे तद्विदोनां साधक-बाधक

मंतव्यों नोंधता जतां पोताना निरीक्षणों आपवानी तेमज वाचको ने रस पडे एवां दृष्टांतों आपवानी पद्धति स्वीकारी होवाथी हास्य विषेनां विवेचन पुरुषार्थ ते हास्य रहित लोकोनी रमत छे ए आक्षेपो नो आ सर्वग्राही विवेचन ग्रन्थमां खास्सो परिहार थयो छे।^(१००) हम कह सकते हैं कि विनोद जी ने अपने इस ग्रन्थ में हास्यरस की जो समीक्षा की है वो सर्वग्राही समीक्षा है। क्योंकि उन्होंने हास्य-व्यंग्य के लगभग सभी तत्त्वों को जोड़ लिए हैं उनकी पूर्णतम् समीक्षा की गई है। हास्य, हास्यरस, हास्य के भेद-उपभेद एवं हिन्दी, मराठी, गुजराती आदिकाल से अर्वाचीन काल तक के हास्य के विकास को व्यक्त किया गया है। चन्द्रकान्त टोपीवाला के अनुसार, “हास्य ने सहज रीते ओलखी एना प्रकारो अने स्वरूपो नो परिचय केलवी, आस-पास नी अने पडोशनी भाषाओ मां थयेला हास्य ना विकासनो नकशो सामे राखी एक जवाबदार हास्य लेखक बनवानी एमनी तैयारी छे।^(१०१) इस समीक्षात्मक ग्रन्थ के बारे में हम निःसंकोच कह सकते हैं कि गुजराती भाषा-साहित्य में तो ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है पर अन्य भारतीय भाषाओं में भी ऐसा ग्रन्थ मिलना बहोत मुश्किल है यही कारण है कि इसका अनुवाद दूसरी भारतीय भाषाओं में भी हो रहा है।

‘एवारे अमे एवा’ विनोदभाई की आत्मकथात्मक रचना है। विनोदभाई ने अपनी जो आत्मकथा लिखी है, उसमें भी वे उसे साहित्यिकता प्रदान करने में विशेषतः सफल रहे हैं। आत्मकथा लिखना भी उतना आसान नहीं है जितना माना जाता है। अपने ही हाथों अपने जीवन की समीक्षा करने में दूसरों से अपने आप को बहेतर बताने की बात को कुछ हद तक टालनी पड़ती है। जीवन की बहोत-सी बातों के बारे में सम्भलकर लिखना पड़ता है। विनोद भट्ट ने माना है कि, “मारी अंगत वात करुं तो मारा किस्सामां पण मारा केटलांक सगा वहालाओ नी लागणी ने ठेस न पहोचे ए माटे उचित न लाग्या एवा प्रसंगो टाल्या छे।^(१०२) आत्मकथाकार को इस बात में भी सतर्कता बरतनी पड़ती है कि वह सिर्फ अपने जीवन की रंगीनियों कोही खोलकर न बैठ जाय पर वह इस बात का भी खयाल रखे कि वे सार्वजनिक रूपसे जन सामान्य के सामने पेश हो रहे हैं इसलिए इसमें सत्यता, शिवत्व व साहित्यिक सौन्दर्य को नज़र में रखते हुए बात की जाय सो

ऐसी कुछ जीवन की अवांछनीय घटनाओं को छोड़ देना चाहिए। ऐसी कुछ अनावश्यक घटनाओं को पाठकों की रुची व सामाजिक, साहित्यिक सोहार्द को नज़र में रखते हुए छोड़ देना चाहिए। ऐसा होने पर ही उनका लोग भोग्य रूप व साहित्यिकता बनी रहेती हैं। अपनी इस जागरुकता के बारे में बयान देते हुए विनोदभाई ने माना है कि, “मारी आ आत्मकथा मां अरुचि नो भंग न थाय तेनी खास तकेदारी राखी छे। आ बाबते कोई भीरु गणे तो मने भीरु गणाववामां बाध नथी।”^(१०३) विनोदभाई की आत्मकथा ‘एवा रे अमे एवा’ के वैशिष्ट्य की बात करे तो उन्होंने विनोदपूर्ण शैली में उनकी रचना की है, पर यह भी स्पष्ट है कि उनमें समानान्तर रूप से गाम्भीर्य भी साथ ही साथ चलता हुआ नज़र आता है। पर यह गाम्भीर्य पाठकों को गम्भीर नहीं बनाता वह तो मुक्त रूप से अपनी अभिरुची के अनुसार उसका रसास्वादन कर सके ऐसी कुछ उतार-चढ़ाववाली शैली का आयोजन सप्रयोजन इसमें पाया जाता हैं।

५.४.५ विनोद भट्ट का स्तम्भलेखन :-

विनोद भट्ट ने जो हास्य-व्यंग्य साहित्य लिखा उसमें सबसे बड़ा हिस्सा स्तम्भ लेखों का माना जाता है। जो वर्तमानपत्रों व सामायिकों के माध्यम से प्रगट होते रहे हैं। आज विनोद भट्ट आम आदमी तक अपनी पहचान बना पाये है, उसका कारण उनके स्तम्भ लेख है। विनोद भट्ट के लेखन की शुरुआत उन्हीं के माध्यम से हुई एवं आज भी यह परम्परा जारी हैं। आज वो जीवंत रूप से सामान्य जन समूह के बिच में व्याप्त हो तो उनका कारण उनके स्तम्भलेख है। ऐसे स्तम्भलेखों की असरकारकता इसलिए भी बनी रहती है क्योंकि वो तत्कालिन मुद्दों पर ही चर्चित रहते है, इसलिए वे ज्यादा ही कुछ असरकारक सिद्ध होते हैं। विनोद भट्ट की सर्जक प्रतिभा को आविर्मूत करने में संदेश, गुजरात समाचार, कुमार, चाँदनी, नवचेतन, युवक, नवनीत समर्पण, अखंड आनन्द, गुजरात मित्र, जन्मभूमि आदि वर्तमानपत्र एवं सामायिकों का विशेष सहयोग रहा हैं।

विनोद भट्ट का प्रथम स्तम्भलेख ‘चाँदनी’ से नीकला माना जाता है। प्रारम्भ में वे

चाँदनी, आराम, नवचेतन, विश्वविज्ञान आदि सामायिकों में लिखते थे। पर जब उनका परिचय 'संदेश' के गुणवंत छो. शाह के साथ हुआ तो उसे स्तम्भलेखक के रूप में लिखने की अनुमति मिली। विनोदभाई दिनांक ३ जुलाई, १९६६ को अपना प्रथम स्तम्भलेख लिखा जहाँ से यह परम्परा दिन-ब-दिन प्रबल व प्रबुद्ध बनती गई। पर यहीं से विनोदभाई की सफलता के दरवाजे खुलते हुए नज़र आये। वर्तमानपत्रों के स्तम्भलेखों में वे तत्कालिन घटनाओं, राजकिय परिस्थितियों के बारे में लिखते थे ऐसे व्यंग्यात्मक लेखों के कारण कईबार मुश्किलें भी पैदा हुईं। जब ऐसी स्थिति निर्माण होती थी तो चीमनभाई का सहयोग मिल जाता था। एक बार तो सेलटेक्स के अधिकारियों, वकिलों के बारे में कुछ लिख देने से काफी कुछ कारवाई भी हुई थी पर यह स्पष्ट है कि विनोद भट्ट ने सही रूप में एक हास्य-व्यंग्य लेखक के रूप में किसी की भी परवाह किए बगैर निर्भिकता से लिखा है। "संदेश ना तंत्री - मालिक मु. चीमनभाई पटेल साथे सारुं ट्युनिंग हतुं। तेमना अवसान बाद अंगत कारणोसर मार्च १९९८ मां संदेश छोड्युं।"^(१०४) इस तरह वे बाईस सालतक संदेश में 'इदम् तृतीयम्' नाम से कॉलम लिखते रहे जिनसे उन्होंने काफी हद तक अपना नाम बना लिया था। उन्होंने संदेश को छोड़ने के बाद तुरन्त ही गुजरात समाचार में 'मगनुं नाम मरी' नाम से कॉलम लिखना प्रारम्भ किया जिसमें वे आज भी उसी अंदाज में लिख रहे हैं।

विनोद भट्ट ने वर्तमानपत्रों की तरह सामायिकों में भी काफी कुछ लिखा है। खास करके 'कुमार' सामायिक में वो नियमित रूप से लिखते रहे हैं। कहा जा सकता है कि विनोद भट्ट को हास्य-व्यंग्य सर्जक के रूप में व्यक्त होने में 'कुमार' का भी सहयोग रहा है। जिसमें बचुभाई सवत की ओर से विशेष प्रोत्साहन मिला। विनोद भट्ट की दो प्रारम्भिक सफल रचनाएँ 'इदम् तृतीयम्' एवं 'विनोद नी नज़रे' कुमार के द्वारा ही मिली। विनोद भट्ट ने माना है कि, "मारा घड़तर मां कुमार नो फालो अमूल्य छे। अनन्य छे। लेखक तरीके मारु रेकग्निशन(स्वीकार) आ सामायिक ने कारणे ज थयेल छे।"^(१०५) एक लेखक के रूप में विनोदभाई का परिचय गुणवंतशाह ने ही बचुभाई से करवाया था। प्रथम साक्षात्कार में ही विनोद भट्ट को लिखने का निमंत्रण मिला इनकी प्रतिक्रिया देते

हुए विनोद भट्ट कहते हैं कि, “जाणे आवा काई निमंत्रण नी राह जोतो होऊँ तेम बीजा ज अठवाडीये वैताल कथाओ साथे हुं ‘कुमार’ मां त्राटकी पड्या।”^(१०६) इनसे स्पष्ट है कि विनोद भट्ट का ज्यादातर साहित्य विभिन्न स्तम्भलेखों में संदेश, कुमार एवं गुजरात समाचार के द्वारा अभिव्यक्त हुए हैं। गुजराती साहित्य सर्जकों को अन्य भाषा के समान वर्तमान पत्रों एवं सामायिकों का विशेष सहयोग मिला है। अन्तिम पाँच दशक में गुजरात को जो सर्जक मिले हैं, वह सामायिकों एवं वर्तमानपत्रों के जरिए ही मिले हैं। इस रूप में यह निर्विवाद है कि विनोद भट्ट भी वर्तमानपत्र एवं सामायिकों के जरिए मिले हुए एक उत्तम हास्य-व्यंग्य सर्जक हैं।

इस तरह विनोद भट्ट के जीवन व साहित्य के अनुशीलन से इतना तो सहज स्पष्ट हो जाता है कि विनोद भट्ट हास्य-व्यंग्य साहित्य के साथ संपूर्णतः एकाकार हो गये हैं जैसा लिखते हैं वैसे ही हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि विनोद भट्ट का साहित्य उनके जीवन की ही प्रतिछाया है। वे अपने नाम के अनुसार जिये हैं एवं जीनेका संदेश देते हैं। माना जाता है कि, “गुजराती साहित्य मां विनोद नो विनोद जाणीतो छे। डंख वगरनुं, मर्मालुं हास्य निपजाववानों एमनो उद्यम सफल रह्यो छे।”^(१०७) यह सनातन सत्य है कि विनोदभाई ने अपने प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से गुजराती हास्य-व्यंग्य साहित्य को नई दिशा प्रदान की है। विनोदभाई के योगदान को नज़र में रखते हुए चन्द्रकांत भाई ने लिखा है कि, “पोते शुं करे छे एनुं जेने भान नथी एवा क्षमाने पात्र छे। परंतु पोते शुं करे छे एनुं जे भान राखे छे ए ध्यान ने पात्र छे, अने पोते शुं करे छे एनाथी आगल वधी पोते शाना वडे शुं करे छे एनी जाणकारी राखे छे ए तो वली अभिनंदन ने पात्र छे। विनोदभाई अभिनंदन ना अधिकारी छे।”^(१०८) विनोदभाई ने जो जिया है, वह दिया है, यही उनके वैशिष्ट्य का प्रमाण हैं।

संदर्भ सूची

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	११
२	निबन्ध सप्तक	सं.राजनाथ मिश्र एवं मनोहर गौतम	७०
३	ऐसा भी सोचा जाता है	हरिशंकर परसाई	९
४	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१४
५	।।	।।	११
६	सारिका	सं.कमलेश्वर	२३
७	हरिशंकर परसाई, चूनी हुई रचना की भूमिका से	सं.कमलाप्रसाद	भूमिका से
८	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१३
९	हरिशंकर परसाई और नागफनी की कहानी	डॉ.नन्दलाल कल्ला	१८
१०	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.भगवानदास कहार	३४४
११	सारिका, गर्दिश के दिन (जुन-१९७२)	सं.कमलेश्वर	२३
१२	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	११
१३	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	२
१४	हिन्दी व्यंग्य एवं व्यंग्यकार	डॉ.बापूराव देसाई	२२
१५	काव्य प्रकाश	आचार्य मम्मट	४५
१६	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	१८

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१७	सारिका, गर्दिश के दिन (जुन-१९७२)	सं.कमलेश्वर	२३
१८	॥	॥	२३
१९	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	१५
२०	कबीरदास	कांतिकुमार जैन	८५
२१	आँख न देखी	सं.कमलाप्रसाद	३३
२२	॥	॥	४३-४४
२३	हरिशंकर परसाई-व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	प्रो.राधेमोहन शर्मा	६७
२४	सदाचार का ताबीड़ा	हरिशंकर परसाई	९
२५	हरिशंकर परसाई तृतीय अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखकसंघ के आयोजन में पढ़ा गया आलेख	॥	
२६	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	॥	६
२७	काव्य प्रकाश	आचार्य मम्मट	८
२८	हरिशंकर परसाई, चूनी हुई रचनाएँ की भूमिका से	सं.कमलाप्रसाद प्रकाश दुबे	भूमिका से
२९	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१३
३०	आँख न देखी	सं.कमलाप्रसाद	६५
३१	काग भगोडा	हरिशंकर परसाई	३
३२	हरिशंकर परसाई की दुनिया - डॉ. कांतिकुमार जैन के लेख से उद्धृत	डॉ.मनोहर देवलियाँ	८७
३३	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	७१

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
३४	हिन्दी व्यंग्य एवं व्यंग्यकार	डॉ.बापूराव देसाई	२२
३५	हरिशंकर परसाई की दूनियाँ	डॉ.मनोहर देवलियाँ	४
३६	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	९
३७	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.भगवानदास कहार	३४२
३८	कल्पना - पत्रिका - जनवरी, १९६०		८
३९	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१०४
४०	रानी नागफनी की कहानी, लेखक की बात	हरिशंकर परसाई	
४१	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	३८
४२	परसाई रचनावली, भाग-६, भूमिका से	संपादक मंडल	भूमिका से
४३	ज्वाला और जल, हरिशंकर परसाई	प्रभाकर क्षत्रिय	प्रस्तुति
४४	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१०६
४५	ज्वाला और जल	हरिशंकर परसाई	फ्लेप पर से
४६	नई हिन्दी कहानी में सामाजिक चेतना परिकल्पना और स्वरूप (अप्रकाशित शोध प्रबंध सागर विश्व विद्यालय-१९८०)	कपिल तिवारी	५१
४७	परसाई रचनावली, भाग-१	संपादक मंडल	१८
४८	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१३७
४९	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	३४६

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
५०	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	२९
५१	हरिशंकर परसाई की निबन्ध कला (परसाई रचनावली)	कमलाप्रसाद	२
५२	॥	॥	५
५३	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	१३९
५४	हरिशंकर परसाई की निबन्ध कला (परसाई रचनावली)	कमलाप्रसाद	२
५५	आधुनिक निबन्ध साहित्य में मनोवैज्ञानिक उद्भावनाएँ	डॉ.श्रीमती प्रेमसिंह	२०५
५६	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलियाँ	७५
५७	हिन्दी रेखाचित्र	हरबंशलाल शर्मा	१०
५८	आलोचना	सं.शिवदानसिंह चौहान	७९-८०
५९	बोलती रेखाएँ (पेपर फ्लैप से) १९७१ जबलपुर	हरिशंकर परसाई	
६०	परसाई रचनावली, भाग-५	संपादक मंडल	४
६१	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	४८
६२	॥	॥	५०
६३	पहल पुस्तिका	डॉ.नामवरसिंह से सुरेश पांडे का साक्षात्कार	१८-१९
६४	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.भगवानदास कहार	४४१

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
६५	एवा रे अमे एवा	विनोद भट्ट	५७
६६	॥	॥	५७
६७	॥	॥	२०
६८	नरोवा कुंजरोवा	विनोद भट्ट	१
६९	एवा रे अमे एवा	विनोद भट्ट	२९
७०	नमु ते हास्य ब्रह्म ने	सं.रतिलाल बोरीसागर	८
७१	विनोद विमर्श	यशवंत शुक्ल	६
७२	विनोद विमर्श (प्रस्तावना से)	विनोद भट्ट	६
७३	एवा रे अमे एवा	विनोद भट्ट	८३
७४	विनोद विमर्श (अर्पण)	विनोद भट्ट	१
७५	नमु ते हास्य ब्रह्म ने	सं.रतिलाल बोरीसागर	८
७६	सरवाले भागाकार	निरंजन त्रिवेदी	२
७७	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट	६
७८	एवा रे अमे एवा	॥	२७
७९	॥	॥	२९
८०	॥	॥	१९
८१	॥	॥	६३
८२	नमु ते हास्य ब्रह्म ने	सं.रतिलाल बोरीसागर	६
८३	विनोदनी नज़रे	विनोद भट्ट	१,२
८४	एवा रे अमे एवा	विनोद भट्ट	१२८
८५	॥	॥	१३३
८६	नमु ते हास्य ब्रह्म ने	सं.रतिलाल बोरीसागर	१०

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
८७	मंगल अमंगल	विनोद भट्ट (पुस्तक सूची)	१,२
८८	नमु ते हास्य ब्रह्म नै	सं.रतिलाल बोरीसागर	३३१
८९	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ.भगवानदास कहार	२१४
९०	नमु ते हास्य ब्रह्म नै	सं.रतिलाल बोरीसागर	१२
९१	इदम् तृतीयम्	विनोद भट्ट (यशवंत शुक्ल)	५
९२	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफूल्ल रावल	७
९३	॥	॥	२८
९४	एवा रे अमे एवा	विनोद भट्ट	६
९५	नमु ते हास्य ब्रह्म नै	सं.रतिलाल बोरीसागर	१५
९६	॥	॥	१७
९७	आलोक	जयन्त पाठक	२०६
९८	हास्य संचय	सं.रतिलाल बोरीसागर	९
९९	॥	॥	९
१००	विनोद विमर्श	विनोद भट्ट (यशवंत शुक्ल)	१०
१०१	विनोद विमर्श	(चन्द्रकान्त टोपीवाला) विनोद भट्ट	१२
१०२	एवा रे अमे एवा	विनोद भट्ट	७
१०३	॥	॥	८
१०४	॥	॥	११
१०५	॥	॥	१६६
१०६	नमु ते हास्य ब्रह्म नै	सं.रतिलाल बोरीसागर	२४५
१०७	विनोद विमर्श	(चन्द्रकान्त टोपीवाला) विनोद भट्ट	१२
१०८	॥	॥	१२

अध्याय : ६

हरिशंकर परसाई के हास्य-व्यंग्य निबन्धों का आलोचनात्मक अध्ययन

६.१ प्रास्ताविक

६.२ परसाईजी के निबन्धों में राजनैतिक हास्य-व्यंग्य

६.३ परसाईजी के निबन्धों में प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य

६.४ परसाईजी के निबन्धों में सामाजिक हास्य-व्यंग्य

६.५ परसाईजी के निबन्धों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य

६.६ परसाईजी के निबन्धों में साहित्यिक एवं शैक्षिक हास्य-व्यंग्य

६.७ परसाईजी के निबन्धों में वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य

६.८ परसाईजी के निबन्धों में भाषा एवं शब्दचयन

६.९ परसाईजी के निबन्धों में शैली वैविध्य

हरिशंकर परसाई के हास्य-व्यंग्य निबन्धों का आलोचनात्मक अध्ययन :-

हरिशंकर परसाई के साहित्यिक प्रदान में सबसे श्रेष्ठ व उत्तम प्रकार की अभिव्यक्ति उन्होंने निबन्ध-साहित्य के माध्यम से की हैं। उनके लिए निबन्ध ही वह सम्बल रहे, जिनके आधार पर वे अपने हास्य-व्यंग्य साहित्य को बखूबी पाठकों के सामने व्यक्त कर सके। यही कारण है कि उन्होंने विभिन्न विधाओं में अपनी भावनाओं को व्यक्त किया पर निबन्धों में वह जिस प्रकार से प्रस्तुत होते दिखाई पड़ते हैं, ऐसा किसी अन्य विधा में दिखाई नहीं पड़ते। १९४७ में परसाईजी का प्रथम निबन्ध प्रकाशित हुआ, तब से लेकर जीवन पर्यन्त उनके द्वारा अनगिनत निबन्धों की रचनाएँ हुई, जिनको निश्चित संख्या व रूप में बाँधना दूष्कर हैं। फिर भी परसाई रचनावली के भाग-३ और भाग- ४ में उनके लगभग तीनों के आसपास निबन्धों को संकलित किया गया हैं। जो समय-समय पर विभिन्न संकलनों में प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ.बापूराव देसाई ने “तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बैईमानी की परत, सुनोभाई साधो, पगडंडियों का जमाना, सदाचार का तावीज, निठल्ले की डायरी, और अन्त में, शिकायत मुझे भी हैं, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, तिरछी रेखाएँ, अपनी-अपनी बीमारी, वैष्णव की फिसलन्, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ को उनके निबन्ध संग्रह माने हैं।”^(१) तो आनन्द प्रकाश गौतम ने इन निबन्ध संग्रहों के अलावा - “हँसते है रोते है, जैसे उनके दिन फिरे, उल्टी-सीधी को भी उनके निबन्ध संग्रह माने हैं।”^(२) डॉ.श्रीमती प्रेमसिंह ने अपनी रचना ‘आधुनिक निबन्ध साहित्य में मनोवैज्ञानिक उद्भावना’ में माना है कि - “बैईमानी की परत, भूत के पाँव पीछे, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, सुनोभाई साधो, निठल्ले की डायरी, पगडंडियों का जमाना, वैष्णव की फिसलन्, शिकायत मुझे भी है, सदाचार का ताबीज तथा तब की बात और थी आदि परसाईजी के प्रमुख निबन्ध संग्रह है।”^(३) परसाईजी के निबन्धों से ये सहज स्पष्ट हो जाता है कि वो आधुनिक संचेतना से जुड़े हुए व्यंग्यकार हैं। वर्तमान के प्रति असंतोष, अतीत के प्रति आक्रोश तथा भविष्य के प्रति आग्रह की पैनी दृष्टि से कुछ भी छूट नहीं

पाया है। विषय वैविध्य की दृष्टि से माना जा सकता है कि परसाईजी के निबन्धों का दायरा काफी विशाल है। जिस तरह से 'रामचरित मानस' को 'नाना पुराण निगमा-निगम-संमत' माना जाता है उसी प्रकार परसाईजी के निबन्ध भी से जीवन की छोटी-बड़ी हर घटना को स्पर्श करनेवाले हैं। उन्होंने विशाल समाज-जीवन में प्रवर्तमान हर उस चहल-पहल को करीब से देख उनका उचित अर्थ निकाल के हास्य-व्यंग्यात्मक रूप दिया है। उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक दृष्टि से समाज में व्याप्त विसंगतियों को व्यक्त किया है। - "परसाईजी ने यद्यपि राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं, पर विषय का यह वर्गीकरण भी स्थूल ही है।"^(४) क्योंकि विषय वैविध्य की दृष्टि से परसाईजी के निबन्धों को कोई निश्चित रूप में बाँधा नहीं जा सकता उनका दायरा विशाल है जो अन्तरमन व बाह्यजगत की हर गतिविधि से जुड़ा हुआ है फिर भी उनके निबन्धों की विषयगत, कथ्यगत समालोचना के लिए हम कुछ ऐसे ही आधारों को ग्रहण कर उनका विश्लेषण कर सकते हैं।

६.२ परसाईजी के निबन्धों में राजनैतिक हास्य-व्यंग्य :-

परसाईजी के हास्य-व्यंग्य निबन्धों को राजनैतिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके निबन्धों में सबसे ज्यादा किसी पर प्रहार किया गया हो तो वह राजनीति है। क्योंकि राजनैतिक दृष्टिकोण से स्वतंत्रता एक अभिशाप बनकर उपस्थित हुई थी। भारत के जन सामान्य में यह विश्वास प्रवर्तमान था, कि आजाद हो जाने के बाद जीवन की हर समस्या से मुक्ति मिलेगी। हर प्रकार की सुविधा मिलेगी किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। - "महात्मा गांधी के बाद भारतीय जीवन में स्वतंत्रता का आगमन अनेक प्रकार की सुखद कल्पनाओं के आदर्श पर हुआ था। नये-नये नेताओं और मंत्रियों में पूर्ण विश्वास रखते हुए समूचे राष्ट्र की बागदोर जनता ने उनके हाथ में देकर उनको अपना 'कर्णधार' बनाया।"^(५) पर इन कर्णधारों ने अपनी

वैयक्तिक इच्छापूर्ति के लिए अपने सार्वजनिक जीवन को कलुषित बना दिया नेता वर्ग में जो त्याग, बलिदान, सेवा, ईमानदारी, सच्चाई की जो कामना की गई थी वे सिर्फ उनके भाषणों तक सिमित रह गई है। उनके कर्तव्य में, व्यवहार में, भावनाओं में यह बात देखने को नहीं मिलती हैं। वह दलीय राजनीति के शिकार हो गये, जिसमें लोकतंत्र की अवहेलना की गई। महेन्द्र कार्तिकेय के अनुसार - “भारत न किसी लोकतंत्र के आदर्श पर है और नहीं उसमें स्वतंत्र है। इसीलिए उसे राक्षस-तंत्र की संज्ञा देते हुए बोले - राक्षस तंत्र में उसे कह रहा हूँ जिसमें सभी अपने को असुरक्षित महसूस करते हैं और सुरक्षा प्राप्त करने के लिए समाज में मात्र अनैतिक तरीकों का बेशरमी से उपयोग करते हैं।”^(६) स्वतंत्रता के बाद हमें विभाजन का सामना करना पड़ा और उपर से प्रवर्तमान राजनीति में जो दोमुँहापन व छलावा जैसी हरकते देखने को मिली इनसे देश की जनता ने गहरे सदमे का अनुभव किया। साहित्यकारों को इन परिस्थितियों ने अवश्य ही उद्वेलित किया स्वाधीनता का यह भयावह पथ दास्ता से भी कहीं अधिक असह्य था, इस राजनैतिक पीड़ाओं को परसाईजी ने अपनी वैदग्ध्यपूर्ण लेखनी से जो अभिव्यक्ति दी है, उसे देख ऐसा लगता है कि उनके राजनैतिक हास्य-व्यंग्य निबन्ध उस युग के दस्तावेज बन गये हैं। परसाईजी ने राजनीति की हर हलचल को अपने निबन्धों में कैद किया है नेताओं के हर हथकण्डों को खुला कर दिया है। परसाईजी ने व्यापक रूप से राजनीति को आधार बनाया है।

बड़ी उम्मीद थी जब देश को आजादी मिली, हर कोई राम-राज्य की कल्पना करता था। अब कोई भुखा नहीं सोयेगा, कोई बेघर नहीं होगा, क्योंकि अब तो भारतीय जन को ही राज करना है। पर परसाईजी कहते हैं कि - “अंग्रेज छुरी काँटे से प्लेट में रखकर इंडिया को खाते रहे। देशी साहब बचे भारत को खाने लगे।”^(७) परसाईजी के अनुसार नेता अपने स्वार्थ के लिए किसी भी प्रकार का अभिनय करने को तैयार दिखते है उनकी चमड़ी ही ऐसी हो जाती है जो अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकते है। ‘लंकाविजय के बाद’ में उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति

करते हुए वानरों को प्रतीक बनाकर लिखा है कि - “एक वानर अपने घर में तलवार से स्वयं ही घाव बना रहा था, उसकी स्त्री घबड़ाकर बोली, - नाथ यह क्या कर रहे हो? वानरने हँसकर कहाँ - प्रिये, शरीर में घाव बना रहा हूँ। आज कल घाव गिनकर पद दिये जाते हैं। मैं राम-रावण संग्राम के समय तो भागकर वनमें छिप गया था, फिर जब राम की विजयी सेना लौटी तो मैं उसमें शामिल हो गया। मेरी ही तरह अनेक वानर वनसे निकलकर उस विजयी सेना में शामिल हो गये।”^(८) ऐसे ही एक नेता के बारे में परसाईजी ने लिखा है कि - “एक नेता हम लड़कों की प्रभातफेरी निकलवाया करते थे। गीत था - आओ, प्यारे वीरो आओ, मातृभूमि पर बलि-बलि जाओ, एकदिन गिरफ्तारी का मौका आया। हम सब उनके प्यारे वीर इन्तजार करने लगे कि अब नेता आयेगे और हमारा नेतृत्व करेंगे। हम शहीद हो जायेंगे। पर खबर आई कि वे पाखाने में छिप गये हैं।”^(९) परसाईजी ने नेताओं को विशेषकर अपनी हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के आधार बनाये हैं। नेता अपनी भाषणबाजी में देश को गर्व से अकालग्रस्त, पीड़ित बनाते हैं। तालियाँ बटोरने के लिए वे देश के हालात को काफी दयनीय बना देते हैं। तभी तो उनका भाषण असरकारक होता है। हद तो तब हो जाती है जब नेता अकाल को भारतीय परम्परा एवं संस्कृति का एक भाग बताते हैं। जैसे - “अकाल भारत की पुरानी परम्परा है। हम गांधीजी के आदेश अनुसार राम-राज ला रहे हैं। अकाल राम-राज का आधार है। मेरे विपक्षी मित्र जो भारतीय संस्कृति के पूजक हैं। मुझसे सहमत होंगे कि अकाल हमारी भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है।”^(१०) ये नेता लोगों को खिलौना समजते हैं वो उसे नचाते रहेते हैं। जनता तो उनके लिए एक कच्चे माल के समान है परसाईजी कहते हैं - “जनता कच्चा माल है। इसे पक्का माल विधायक, मंत्री आदि बनाते हैं। पक्का माल बनाने के लिए कच्चे माल को मिटना ही पड़ता है।”^(११) पर इतना मिटने के बाद भी जब परिणाम कुछ नहीं आता तब जनता का भ्रम टूटता है वह नेताओं से पूछती है - “तो हम लोग क्या करें? किसके इमान पर भरोसा करें?”^(१२) पर जनता भोली है और नेता इस भोलेपन का फायदा उठाकर उन पर तरह-तरह के डोरे डालते

रहते हैं। इसलिए परसाईजी नेता को जादूगर मानते हैं जो रोज नया जादू दिखाते हैं। - “इस देश में बड़े-बड़े जादूगर हैं, जो सालों से आँखों पर पट्टी बाँधे हैं। जब वे देखते हैं कि जनता अकुला रही है और कुछ करने पर उतारू है, तो फौरन जादू का खेल दिखाते हैं। जनता देखती है, ताली पीटती है। मैं पूछता हूँ - “जादूगर साहब, आँखों पर पट्टी बाँधे राजनीतिक स्कूटर पर किधर जा रहे हो? किस दिशा को जा रहे हो? समाजवाद? खुशहाली गरीबी हटाओ? कौन सा गन्तव्य है?” - वे कहते हैं - ‘गन्तव्य से क्या मतलब? जनता आँखों पर पट्टी बाँधे जादूगर का खेल देखना चाहती हैं। हम दिखा रहे हैं। जनता को और क्या चाहिए?’^(१३) परसाईजी ने नेता की चाल, चरित्र व चलन को अच्छी तरह से पहचाना है, तभी तो वे स्पष्ट मानते हैं देश की बदहाली के लिए वहीं जिम्मेदार हैं।

परसाईजी ने आज की चुनाव प्रक्रिया पर भी हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की हैं। चुनाव में दिये जाने वाले भाषण, वचन, नारेबाजी, रेलियाँ एवं चुनाव में होनेवाले धनबल, बाहुबल पर काफी सहजता से सनातन सत्य को व्यक्त किया है। उन्होंने अपने निबन्ध संग्रह ‘ठिठुरता हुआ गणतंत्र में दर्ज, ‘हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं’ नामक निबन्ध में चुनाव के दौरान अपनाये जानेवाले हर हथकण्डे का पर्दाफाश किया है। - “जैसे ही चुनाव नजदीक आता है। देश में विभिन्न प्रकार के आंदोलन शुरू हो जाते हैं। इनके दो लाभ होते हैं - पहला तो यह कि अवसरवादी इसका लाभ उठाकर सत्ता में घुस जाते हैं, दूसरा सत्ताधारी वर्ग खुश हुआ कि चलो जनता का ध्यान आंदोलन में बट गया।”^(१४) चुनाव में सब कुछ जायज होता है इन आंदोलनों में धर्म व संस्कृति को भी भूनाया जाता है। परसाईजी चुटकी लेते हुए कहते हैं कि - “चुनाव आ रहा है तो गौरक्षा होगी ही आपतो गौरक्षा आन्दोलन के जरिये पोलिटिक्स में घुस ही जायेंगे।”^(१५) “एक गौभक्त से भेंट में परसाईजी ने लिखा है - “चुनाव के आ जाने पर विस्मरण में दबे प्रतीक उभर आते हैं, बाद फिर भूलाने के लिए ही क्यों न हो चुनाव में ये प्रतीक उजागर होते हैं। गौमाता भारतीय संस्कृति का एक अविभाज्य अंग था आज स्थिति बदल गई है।”^(१६)

प्रजातंत्र में हमारी घोषणा है जाति-पाति नष्ट करे, धर्म को लेकर भेदभाव न करे। किन्तु जब चुनाव लड़ा जाता है, तो धर्म, जाति, पंथ आदि का भरपूर इस्तमाल किया जाता है - “बन्नु, ब्राह्मण है और राधिका प्रसाद कायस्थ। ब्राह्मणों को भडकाओं इधर कायस्थों को। ब्राह्मण सभा का मंत्री आगामी चुनाव में खड़ा होगा। उसे कहो कि यही मौका है ब्राह्मणों के वोट इकट्ठे ले लेने का।”^(१७) आज धार्मिक भावना भड़काकर भी वोट बटोरे जाते हैं, अपनी कामयाबी के लिए किसी भी प्रकार का रास्ता अपनाया जाता है। परसाईजी चिंतित है कि - “धर्म की संस्थापना तो सामाजिक दंगों से हो रही हैं। आप एक हड्डी का टुकड़ा उठाकर मंदिर में डाल दीजिए और हिन्दू धर्म के नाम पर दंगा करवा लीजिए धर्म का उपयोग अब दंगा करने के लिए ही रह गया है।”^(१८) चुनाव सम्बन्धी इन धारणाओं से लगता है कि लेखक ने चुनावी प्रक्रिया को काफी करीब से देखा है इसलिए वह चुनावों के दौरान अपनाये जानेवाले हर हथकंडों से वाकीफ़ हैं।

चुनाव के दौरान इतना जोर लगाया जाता है पर जब नतिजाँ कुछ थोड़ा इधर-उधर आता है तो नेता लोग फिर अपनी पार्टी छोड़ चले जाते हैं अपनी मोज-मस्ती कोई छीनले ये वे बरदास्त नहीं कर सकते। चुनाव में खर्च किये धन को वो सूद समेत वापिस लेना चाहते हैं इसलिए वो दल-बदल की राजनीति पर उतारु हो जाते हैं। आज तक जिसे वे गालियाँ देते थे उनको गले लगाने को बेताब हो जाते हैं। लेखक ने अपने निबन्ध ‘एक दिक्षांत भाषण’ में दलबदल की राजनीति पर प्रकाश डाला है। अपने भाषण में मंत्री ठहाका लगाते हुए कहते हैं कि - “मैंने समझ लिया कि मेरे जीवन का सत्य मंत्री बनना है। इस सत्य के लिए मैंने इमान, धर्म, सबका परित्याग किया सत्य के लिए बड़े से बड़ा त्याग करना पड़ता है। सत्य मुझसे कभी नहीं छूटा। किसी भी पार्टी का मंत्रीमण्डल हो, मैं जरूर मंत्री रहा जिनका मंत्री मण्डल बना मैं उसीका हो गया।”^(१९) ऐसे दलबदलू से परसाईजी काफी खिन्न है वो ऐसे लोगों की तुलना वैश्याओं के साथ करते हैं जिसकी छोड़ भागी है - निबन्ध में वे लिखते हैं कि - “राजनीति के मर्दों को देख वे उसी के घर में बैठ जाते हैं जो मंत्रीमण्डल बनाने में समर्थ हो शादी इस पार्टी

से हुई थी मगर मंत्रीमण्डल दूसरी पार्टीवाला बनाने लगा तो उसी की बहु बन गये। राजनीति के मर्दों ने वेश्यालयों को मातकर दिया। किसी किसी ने तो घंटे भर में तीन-तीन खमस बदल डाले।”^(२०) ऐसे दलबदलू ने ही राजनीति को सिद्धांत हीन एवं बाजारू बना दिया हैं। फिर भी जब-जब भी दल बदलू इतने अधिक चिकने घड़े बन चुके हैं कि किसी भी परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बैठा लेना उनके लिए चुटकियों का खेल बन गया है। वो हरबार यही कहते हुए सुने जाते हैं कि - “साब, हम उन लोगों में नहीं हैं जो बार-बार अपने सिद्धांत बदलते हैं। हम तो शुरु से सरकार के साथ थे सो अब भी है। अंग्रेज सरकार थी तो हम उसके साथ थे फिर देशी सरकार बनी। तो हम उसके साथ भी थे और अब आप आये हैं। साब, तो हम आपके साथ भी है, हम सिद्धांतों के पक्के हैं साब।”^(२१) ऐसी नीति ने राजनैतिक प्रतिभा को भ्रष्ट किया है। उसे क्षत-विक्षत किया हैं।

परसाईजी मानते हैं कि - ऐसे सिद्धांत हीन राजनीतिज्ञों का जमावडा जब संसदसभा व विधान मंडलों में होता है तो वहा वे क्या चिंतन करेंगे जनता की समस्याओं को लेकर क्या चर्चाएँ करेंगे। वहाँ भी वे अपने उसी प्रकार के तेवर दिखायेंगे ओर व्यर्थ की चर्चाओं में अपने बहुमूल्य समय को नष्ट करेंगे। संसद में देश व राज्य की समस्याओं पर विचार-विनिमय होता है पर वास्तव में होता यह है कि ये स्थल हाथापाई, चप्पलबाजी, गाली-गलौच और अराजकता के अड्डे बन गये हैं। परसाईजी ने अपने ‘सदन’ एवं ‘मुंडन’ निबन्ध में संसद में होनेवाली झूठी बहस एवं जाँच समितियों पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। जिसमें मुंडन व हजामत जैसे विषयों पर चर्चा होती है - “मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि सुबह मैंने हजामत बनवाई, नहाया और खाकर लोकसभा में आ गया। मुँछे है या नहीं, यह भी मैं नहीं कह सकता सरकार इसकी जाँच करेगी। कई सदस्य : सदन को तथ्य जानने का हक है। नन्दा: तो मैं कह तो रहा हूँ कि एक जाँच समिति बिठा रहा हूँ जो यह जाँच करेगी कि पहले मेरी मूँछ थी या नहीं।”^(२२) उसी प्रकार मुंडन निबन्धों में भी जब एक विधायक ‘मुंडन’ करके आते हैं तो

चर्चाएँ शुरू हो जाती है लेखक इस बात को आधार बनाकर यह व्यंग्य करना चाहते हैं कि संसद में व्यर्थ की चर्चाओं में काफी समय नष्ट होता है पर कोई राजनैतिक दल उसे समझने को तैयार नहीं।

परसाईजी ने विभिन्न राजनैतिक दलों पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। क्योंकि कोई भी नेता दलगत राजनीति से उपर उठकर बात नहीं करता वह देश व जनता की भलाई के लिए दलगत सिद्धांतों को नहीं छोड़ सकता, ऐसे प्रसंग बहोतबार सामने आये हैं जब पार्टियों की कूटनीतिक चाल से देश को नुकसान हुआ हो। “भारत से स्वतंत्रता के पूर्व कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ही प्रमुख पार्टियाँ थी। स्वतंत्रता के पूर्व कांग्रेस एक पार्टी न होकर आन्दोलन था। अतः विभिन्न मतों के लोग कांग्रेस के झण्डे तले एकत्रित होते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् कांग्रेस पार्टी बन गई। कांग्रेस के अन्दर ही विपक्षी पार्टियाँ बनने के अंकुर विद्यमान थे और अवसर पाते ही वे अंकुरित होते गये।”^(२३) आज हिन्दुस्तान में अनगिनत पार्टियाँ विद्यमान हैं। उस समय प्रमुख रूप से कांग्रेस, समाजवादी जनसंघ, कम्युनिस्ट आदि पार्टियाँ थीं - “स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व देश की कांग्रेस पार्टी की जेब में सिवाय कष्ट, संघर्ष और त्याग के अलावा कुछ नहीं था। उस समय जेब कतरे कांग्रेस की और से उदासीन रहे। जैसे ही देश स्वतंत्र हुआ और कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई कि भ्रष्ट, निकम्मे और दृश्यरित्र जेब कतरे कांग्रेस का बिल्ला लगाकर ‘भगत बिल्ली’ की भाँति कांग्रेस में घुँस गये..... इन तस्करों ने सर्वप्रथम कांग्रेस की प्रतिभा चुराई फिर इमान चुराया, इन जेबकतरो की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती गई और निष्ठावान कांग्रेसी नेताओं की समाप्ति हो गई। उनके साथ ही त्याग, बलिदान और आस्था का भी अन्त हो गया। आज तो खदरधारी भेड़ियों की अँधेरगर्दी साम्राज्य स्थापित है।”^(२४) तो समाजवादियों की हुल्लड़खोरी पर व्यंग्य करते हुए परसाईजी ने लिखा है कि - “अगर हम भारतवासी के हाथ में तलवार दे दी जाये और कह दिया जाये कि जो मिले उसी को मारो तो एक दिन समाजवादी क्रान्ति हो जाये..... ऐसे हुल्लड करों कि मंत्रिमण्डल भाग खड़ा हो और हम सरकार पर कब्जा कर लें।”^(२५) यहाँ समाजवादियों

का विकृत हास्यास्पद चित्र खिंचा है। जनसंधी की दोगली मनोवृत्ति को व्यक्त करते हुए परसाईजी ने लिखा है कि - जब तक जनसंघ शासन पर अधिकार नहीं कर लेता तब तक गाय के रक्षण की आवश्यकता नहीं है। शासन हथिया ने के बाद गौशाल्लार्ये, डेरियाँ आदि खोलेगे। अभी गाय का उपयोग केवल दंगे के सिलसिले में हो सकता है।”^(२६) आज भी जो राजनैतिक पार्टियाँ हैं वह सिर्फ एक-दूसरे पर आरोप मढ़ने में व्यस्त हैं। हर कोई कुछ भी करके सत्ता हथिया ने में व्यस्त है जिनके कारण जनता की हालत दयनीय है उनका उपयोग सिर्फ वॉट में होता है बाकी पार्टियाँ सिर्फ अपनी सुविधाओं को बढ़ाने में व्यस्त हैं।

परसाईजी के राजनैतिक हास्य-व्यंग्यात्मक चिंतन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने राजनैतिक विद्रुपताओं को पूर्ण रूपेण खोला है, स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षेत्र में जो भी उतार-चढ़ाव देखे, जो भी छीटाकशी देखी उसे अपनी कलम से कैद किया है। नेताओं की आदर्शहीनता, अवसरवादिता, स्वार्थवृत्ति, सेवा का दम्भ, चुनावी षड़यंत्र पर उन्होंने व्यापक एवं तीक्ष्ण दृष्टि से प्रहार किए हैं। इस देश की राजनीति क्यों भ्रष्ट हुई? उनके लिए कौन जिम्मेदार है? आज की राजनीति देश को कहा ले जा रही है? ये सारी बातें परसाईजी के राजनैतिक हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों से स्पष्ट हो जाती हैं। क्योंकि उन्होंने राजनीति के हर क्रिया-कलापों को, उतार-चढ़ाव को अपने व्यंग्य का जामा पहनाकर बखूबी प्रस्तुत किया है।

६.३ परसाईजी के निबन्धों में प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य :-

परसाईजी के निबन्ध-साहित्य का एक बहोत बड़ा हिस्सा हमें प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य के रूप में मिलता है। राजनीति एवं प्रशासन दोनों एक सिक्के की दो बाजुएँ हैं। हर युग में प्रशासन राजनीति की भाषा बोलता हुआ ही पाया गया है। राजनीतिक मानसिकता की असर प्रशासन पर काफी हद तक देखी जा सकती है। प्रशासनिक व्यवस्था यानी कि जहाँ से सार्वजनिक सेवाएँ उपलब्ध होती हैं, ऐसे जो सरकारी विभाग हैं वे सभी प्रशासनिक व्यवस्था के दायरे में आते हैं। जैसे पंचायती सेवा, न्यायपालिका,

अस्पताल, रेल व बस सेवा, पुलिस एवं सभी प्रकार के सरकारी दफ्तर आदि का समावेश उसमें होता है, जनता जहाँ अपना काम करवाने के लिए सार्वजनिक रूप से जिन-जिन सरकारी विभागों में जाती है, वहाँ के हालात भी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' जैसे हैं। सरकारी दफ्तरों ने भ्रष्टाचार को शिष्टाचार में बदल दिया है ऐसा लगता है जैसे उन्होंने राजमान्यता प्राप्त कर ली है। क्योंकि सरकारी दफ्तरों में सर्वत्र उनका शासन है। आज इससे किसी को कोई आश्चर्य नहीं है। ये तो सहज सर्वसामान्य एक रिवाज़ जैसा हो गया है। परसाईजी ने अपने निबन्ध 'हम वे और भीड़' में लिखा है कि, "अफसर के इतने बड़े मकान बन जाते हैं कि वह राष्ट्रपति को किराये पर देने का होंसला रखता है।"^(२७) क्योंकि उन्होंने कभी-भी कोई काम मुफ्त में नहीं किया, आजकल तो 'जैसा काम वैसा दाम' का नारा बुलंद हो गया है। परसाईजी ने 'मिल लेना' निबन्ध में अफसरों की कार्य पद्धति पर काफी प्रहार किये हैं। उनके अनुसार वो 'कम काम अधिक दाम' का सूत्र अपनाये हुए हैं जैसे - "हमे बोनस और महंगाई भत्था मिला है। इसके हिसाब से कीमते बढ़नी चाहिए। पर इधर कीमते एकदम घटा दी गयी है ऐसा कभी नहीं हुआ। यह हमारा अपमान है। हम कोई भिखमंगे हैं। हमारी भी नैतिकता है। सस्ता सामान खरीदना बेईमानी है।"^(२८) सार्वजनिक सेवाओं का गठन जनता की सेवा और हित के लिए किया गया है। किन्तु यहाँ भी विड़म्बना वही है। भ्रष्टाचार, अंधेरगर्दी और धाधली अपनी चरमसीमा तक व्याप्त हैं। कर्मचारी वर्ग बिलकुल ही अकर्मण्य तथा गैर-जिम्मेदार हैं। अपना काम कोई नहीं करना चाहता है यहाँ भी रिश्वत, सोर्स, पुल और एप्रोच की बोलबाला हैं।^(२९) ऐसे हालात में यह स्पष्ट है कि जितनी भी सार्वजनिक इकाईयाँ हैं उनका जब तक कोई काम न पड़े तब तक अच्छा पर अगर आपको कोई छोटा सा काम भी निकलवाना हो, तो दिन में तारे नज़र आते हैं। पहुँचे हुए एवं पैठ रखनेवाले को कोई परेशानी नहीं है पर सामान्य जन के लिए यह दूष्कर हो जाता है। इन लोगों को किसी का लिहाज़ करने की कोई तमीज़ नहीं है। वे अपने बाप को भी नहीं छोड़ेंगे, वे तभी ढंग से काम करेंगे जब किसी का दबाव हो या तो पैसों का लालच हो। इसलिए ही उनके नाम के साथ 'शाही' शब्द लगा हुआ रहता है। जैसे

अफसरशाही, नोकरशाही, लालफीताशाही यानी कि ये लोग अपनी मनमानी करनेवाले लोग हैं। वे सिर्फ राजनेताओं से दबते हैं उनके इशारों पर काम करते हैं। जनता के काम में विलम्ब करते हैं जिसे लालफीताशाही कहते हैं। भारतीय शासन प्रणाली में नौकरशाही और लालफीताशाही एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द बन गये हैं। परसाईजी ने अपने निबन्धों में ऐसे सभी अधिकारियों एवं व्यवस्थाओं पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं।

सरकारने व्यवस्था व शांति बनाये रखने के लिए एवं हर प्रकार की देख-रेख व सुरक्षा के लिए पुलिस रखी हैं, जिनका कार्य है, लोगों की हर प्रकार से सुरक्षा करना। उनकी सतर्कता, इमानदारी एवं कर्तव्यनिष्ठ होने से अनुशासन हीनता फैलती नहीं है। पर वही जब भक्षक बन जाय तो उनके द्वारा लगायी गयी आग को वही बुजाये तो ही बुझ सकती है। पुलिस के आचरण व बदली हुई मानसिकता के पीछे नेता लोग जिम्मेदार हैं उनके दबाव व हस्तक्षेप के कारण अव्यवस्था पैदा होती हैं। पर कमजोर एवं सामान्य व्यक्ति के साथ उनके रवैये को देख ऐसा लगता है कि उनके अन्दर का इन्सान मर चुका है। परसाईजी ने 'शिष्टाचार सप्ताह' में उनके व्यवहार को व्यक्त करते हुए लिखा है - "एक राहगीर को पुलिस ने रोका और कहा-क्यों बे, श्रीमानजी के बच्चे देखता नहीं तेरा बाप यहाँ खड़ा है? एक आदमी सड़क के बीच से चलने लगा तो पुलिसवाला चिल्लाया-"जरा किनारे से चल, साले श्रीमानजी। पूरी सड़क श्रीमानजी के बाप की नहीं है।"⁽³⁰⁾ आज जनमानस पर पुलिस की छवीं काफी विकृत सी हो गई है उनके अच्छे आचरण पर कभी किसी को विश्वास नहीं होता ऐसे ही एक प्रामाणिक पुलिसवाले का चरित्र परसाईजी ने 'रामसिंह की ट्रेनिंग' नामक निबन्ध में व्यक्त किया है। उनके अच्छे व्यवहार से लोग उन पर विश्वास नहीं करते "तू पुलिस का इन्स्पेक्टर नहीं है, तुने यह वर्दी चुराई है और हमे ठगने आ गया है। मैंने क्या पुलिसवाले देखे नहीं है। तेरी तरह किसी ने भी मुझे 'क्यू बे बुद्धे' की जगह बाबा नहीं कहा।"⁽³¹⁾ परसाईजी ने पुलिस को कवियों की कार्यप्रणाली के साथ जोड़ मीठा प्रहार किया है। "पुलिस और कवि दोनों का उद्देश्य सुधार लाना है। पुलिस का डंडा काव्य के समान

है। कवि मानव मन को छूकर उसे उपर उठाना चाहते हैं और पुलिस डंडे द्वारा मानव-तन को छूकर। कवि और पुलिस दोनों के मुख से महाकाव्य झड़ता है।^(३२) पर हद तो तब हो जाती है जब खुद महाकवि बनने के चक्कर में बेईमानी को बढ़ावा देने लग जाते हैं। ऐसे ही एक पुलिसवाले का वक्तव्य सुनिये, “साधो, तुम भी कभी-कभी चोरी से गॉंजा रखते हो और पुलिस की कंपा से तुम्हारा कुछ बिगडता भी नहीं है। तुम भी साधु मंडल की ओर से पुलिस का अभिनंदन करो, जिसमें अपने पवित्र हाथों से चिलम भरकर पुलिस अफसरों को दो।”^(३३) यही कारण है कि, “इन्स्पेक्टर मातादीन चांद पर मैं इन्स्पेक्टर को चाँद की सरकार वहाँ की व्यवस्था में सुधार के लिए बुलाती है तो वहाँ की मानव सभ्यता नष्ट हो जाती है क्योंकि मातादीन वहाँ की पुलिस को ऐसे हथकण्डे एवं भ्रष्टता की ट्रेनिंग देते हैं कि, “बेटा, बीमार बाप की सेवा नहीं करता। वह डरता है बाप मर गया तो उस पर ही हत्या का आरोप न लगा दिया जाय। घर जलते रहते हैं कोई बुझाने नहीं आता - डर है कही उन पर आग लगाने का आरोप न लगे। बच्चे नदी में डूबते रहते हैं कोई उन्हें बचाने नहीं आता डर है कि उस पर बच्चों को डूबाने का आरोप न लगाया जाय सारे मानवीय सम्बन्ध समाप्त हो रहे है।”^(३४) पुलिस की माथा पच्ची में फँसने के डर से कोई दया, माया, भलाई, भाईचारा नहीं दिखाता। परसाईजी ने इसी विडम्बनापूर्ण स्थिति पैदा करने वाले पुलिस महकमे को काफी लताड़ा हैं। उनके हर व्यवहार को कोसा हैं। परसाईजी के पुलिस शताब्दि समारोह, राष्ट्र का नया बोध और रामसिंह की ट्रेनिंग आदि निबन्ध इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

परसाईजी ने सार्वजनिक अस्पतालों, डाक्टरों एवं उनमें चल रहे अन्धेर पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। जिस प्रकार से अन्य सरकारी महकमों में होता है वैसा ही चिकित्सा क्षेत्र में लूट, अंधेरशासन, लापरवाही इसमें भी देखने को मिलती हैं। देश की जनता की आरोग्य की सुखाकारी के लिए सामान्य जनसमुह को व्यवस्थित सुविधा मिलती रहे इसलिए ऐसे अस्पतालों को कार्यान्वित किया गया है। पर सम्बन्धित अधिकारियों, डाक्टरों-नर्सों के द्वारा जो दुर्व्यवहार व संवेदन हीनता का व्यवहार किया जा रहा है उसे परसाईजी अपने निबन्ध ‘रामभरोसे का ईलाज’ में व्यक्त किया है। वहाँ

कोई व्यवस्था नहीं है जब इलाज करवाने रामभरोसे आते हैं तो देखता ही नहीं है तब मास्टर कहते हैं कि, “तो दौड़-धूप करो। डाक्टरों के पीछे पड़ो। ऐसे तो यह सृष्टि के अन्त तक पड़ा रहेगा। देखो फाटक के बाहर वे मरीज हफ्ते से पड़े हैं अभी तक उनकी जाँच नहीं हुई।”^(३५) जब सुप्रिटेन्डन्ट को शिकायत की जाती है तो उत्तर मिलता है कि, “देखिए आपका खयाल गलत है। उनकी जाँच तो हो रही है। इसे हम प्राथमिक जाँच यानी प्राइमरी इन्वेस्टिगेशन कहते हैं। यह जरा टेक्निकल चीज है। बाहर मरीजों को पड़े रहने देकर हम उनके रोग की जाँच करते हैं और उन मरीजों को छाटते हैं जो इलाज के लायक हैं।”^(३६) पर हद तो तब हो जाती है जब मुर्दों के नाम दवाईयाँ लिखी जाती हैं। प्रस्तुत निबन्ध में एक प्रेतात्मा के द्वारा व्यंग्य किया गया है। “इनके हिसाबों में देखों कई नाम लिखे रहते हैं, जिनके लिए दवा स्टोर्स से निकल जाती है। वे वास्तविक आदमी नहीं होते, प्रेत होते हैं। मेरे मरने के बाद इन लोगों ने मेरा नाम रजिस्टर पर चढ़ा लिया और खर्च बताने लगे।”^(३७) सदियों से चिकित्सालयों और चिकित्सकों को ईश्वरीय रूप दिया गया है। उसे जन कल्याण के लिए समर्पित माना जाता है पर आज उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ, कमाई, एवं आधुनिक आपा-धापी के कारन विषम स्थिति का निर्माण हुआ है। उनकी मूल भावना मर गई है वे संवेदनहीन हो गये हैं इस विद्रुपता को परसाईजी ने सहजता के साथ व्यक्त किया है। परसाईजी ने परिवहन सेवाओं पर भी अपनी हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति से प्रहार किये हैं। देश के यातायात विभाग में भी बहोत-सी धाधलियाँ एवं घोटाले होते हैं। रेल व बस सेवा में अधिकारियों एवं कर्मचारियों की दक्षता एवं कर्तव्यपरायणता कम होती जा रही हैं। हनुमान की रेल यात्रा, मन्नुभैया की बरात एवं बारात की वापसी निबन्धों में रेल व बस सेवा पर व्यंग्य से ज्यादा ठिठोली उड़ाई है। “सीता की खोज जैसा दुष्कर कार्य करने वाले, समुद्र लांघने वाले अतुलित बलशाली, महापराक्रमी हनुमान, भारतीय रेल में यात्रा नहीं कर पाते, हक्का-बक्का प्लेटफोर्म पर खड़े रह जाते हैं और रेल की पटरियों पर प्राण त्यागने को तैयार हो जाते हैं।”^(३८) परसाईजी ने इनके जरिये आज की रेलयात्रा में होनेवाली परेशानियों का पर्दाफाश किया है। रेल की भीड़भाड़ एवं अव्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए परसाईजी ने

लिखा है कि, “आपतो जानते ही है कि दिल्ली में आदमी गाड़ी में बैठते है और मद्रास में लाशें उतरती है।”^(३९) परसाईजी ने ‘बारात की वापसी’ निबन्ध में बसों की दयनीय हालत पर व्यंग्य किया है। उनकी हालत ऐसी है कि जो न जाने कब, कहाँ, कैसे रुक जाय यह कोई नहीं कह सकता वह सब भगवान भरोसे चलता है। उसमें बैठने से ऐसा लगता है जैसे हमें वह जबरदस्ती ढो रही हो जब वो रुक जाती है तो उन पर तरस आता है परसाईजी कहते हैं कि, “क्षीण चांदनी में वृक्षों की छाया के नीचे वह बस बड़ी दयनीय लग रही थी। लगता जैसे कोई वृद्धा थककर बैठ गई हो। हमें ग्लानि हो रही थी कि बेचारी पर लदकर हम चले आ रहे हैं। अगर इसका प्राणांत हो गया तो इस बियाबान में हमें इसकी अंत्येष्टि करनी पड़ेगी।”^(४०) परसाईजी ने देश की परिवहन सेवा की जो माली हालत है उनके वास्तविक चित्र को बखूबी उभारा है।

परसाईजी ने आज की न्यायिक व्यवस्था पर भी गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए उनकी कमजोरियों को उजागर किया है। न्यायालय को एक पावन स्थल माना जाता है। सत्य का, सोहार्द का तटस्थता का, रक्षक माना जाता है पर वास्तविकता कुछ अलग है न्याय जैसा बाहर से दिखता है वैसा भीतर से नहीं है। उनकी आँखों पर पट्टी है, वो सिर्फ सुनता है। जिनसे दोषी छूट जाते हैं। परसाईजी ने अपने निबन्ध ‘न्याय का दरवाजा’ एवं ‘एक काना: एक ऐचकताना’ में आज की न्याय प्रणाली, उनकी भ्रष्टता उनमें होनेवाले विलम्ब, व झुठे मुकदमों गवाहों वकीलों की तीकडमबाजी आदि पर व्यंग्य किया है। हमारी न्याय प्रणाली में राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण वह लडखडा जाता है। न्यायप्रदान व न्यायाधीशों की नियुक्तियों में वो राजनैतिक प्रभाव में रहता है। आज भारतीय दंड-संहिता वही पुरानी है जो अंग्रेजों ने १८७२ में रखी थी इस पर व्यंग्य करते हुए परसाईजी ने लिखा है कि, “भारतीय दंड-संहिता अपना महाकाव्य है। वह एक मात्र क्लासिक है। जब-तब रचे जानेवाले अध्यादेश ललित गीत है। इनका संग्रह अगर ‘नवगीतांजली’ के नाम से छपे जाये तो पश्चिम के मनीषी गीतांजलि के धोखे से इसे नोबल पुरस्कार दे देंगे।”^(४१) आज की न्यायप्रणाली की दीर्घसूत्रता एवं जटिलताओं के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए परसाईजी ने लिखा है कि, “महज दरवाजा

खटखटा ने से जो मिलता है वह अक्सर अन्याय होता है। दरवाजा तोड़े बिना न्याय नहीं मिलता।^(४२) प्रत्येक व्यक्ति को समान व उचित न्याय मिल सके ऐसी व्यवस्था आज भी भारतीय प्रशासन में नहीं है। परसाईजी कहते हैं कि, “मैं हैरान हूँ कि बाहर तो सच्चा आदमी ढूँढ़े नहीं मिलता, मगर अदालत में इतने सच्चे किन अनजान कोनो से निकलकर इकट्ठे हो जाते हैं। झूठ बोलने के लिए सबसे सुरक्षित जगह अदालत है।^(४३) न्याय बूढ़ा है और अक्सर बिमार रहता है। वह काना है, एक तरफ देखता है और बहरा भी हो गया है।^(४४) परेशानी इस बात की है कि ऐसे अति महत्वपूर्ण विभाग पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा यही कारण है कि आज वकीलों की बाढ़ सी आ गई है। केस हथियाने के लिए आपसी स्पर्धा हो रही है। वे किसम-किसम के हथकंडे अपनाते हैं। उनकी चपेट में आनेवाला छूट नहीं सकता क्योंकि, “न्याय देवता का मिडलमेन वकील होता है। दुश्मन से छूटकारा मिल सकता है पर अपने वकील से छूटकारा मुश्किल है।^(४५) आज के वकील किताबे, अध्ययन एवं तर्कों से ज्यादा गवाहों को तोड़ने में जोर लगाते हैं। इनसे स्पष्ट है कि आज की न्याय प्रणाली विकृत व खंडीत है जिनके कारण सामाजिक विकृतियाँ पैदा होती है।

परसाईजी के प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य निबन्धों के विश्लेषण से ये सहज स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासन तंत्र की भ्रष्टता पर जितना भी लिखा जाय कम है। प्रशासन तंत्र मानो ‘बाजूबंद’ हो गया है वे संवेदनहीन हो गये हैं उसे इन्सान व इन्सानियत की भूख नहीं वो पैसों के पीछे पागल है। वे एशोआराम के आदी है। ऐसे प्रशासन तंत्र को अफसरशाही, निठल्लापन, घूसखोरी, भायभतीजावाद, लालफीताशाही, नोकरशाही, तानाशाही आदि उपनामों से अभिहित किया जाता है। इसकी दास्ताँ लम्बी है, “ सारे सागर की मसी करें और सारी जमीन का कागज़, फिर भी प्रशासनिक भ्रष्टाचार का भारतीय महाकाव्य अलिखित ही रहेगा।^(४६)

६.४ परसाईजी के निबन्धों में सामाजिक हास्य-व्यंग्य

परसाईजी ने अपने हास्य-व्यंग्य निबन्धों में जो कुछ भी व्यक्त किया है, उनका मूल बिन्दु सामाजिक हलचलों में मिलता है। परसाईजी की दृष्टि मूलतः सामाजिक है।

यही कारण है कि उसे प्रेमचन्द के बाद गद्य-साहित्य में सबसे बड़े सामाजिक पक्षधर के रूप देखा जाता है। परसाईजी पर 'कबीरजी' का गहरा प्रभाव है, परसाईजी के साहित्य का मूल स्वर समाजोन्मुख ही देखा जा सकता है। - "हिन्दी-व्यंग्य को ऐतिहासिक सार्थकता और गद्य को सामाजिक सारोकार देनेवाले पहले व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के सबन्ध में उसका रचनाकार व्यक्तित्व और सामाजिक दायित्व को एक रचना के रूप में गहनीय अर्थ देता है। वे अपने समय में जी रहे आदमी की तकलीफ़ के ऐतिहासिक, सामाजिक कारण ढूँढते हैं और स्थितियाँ, घटनाओं के संदर्भ तलाशते हैं।"^(४७) परसाईजी ने समाज में होनेवाली सभी प्रकार की हलचल को अभ्यासिक नज़रो से देखा है वैसे प्रत्येक युग में सामाजिक परिवर्तन होते हैं पर जब वह बदलाव समाज की परम्परागत वैचारिकता से भिन्न हो तब उससे विसंगता का निर्माण होता है। इसी विसंगतता का प्रयोग कर लेखक अपनी रचनाओं में सामाजिक हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज-व्यवस्था में काफी बदलाव आया है। नये-नये आविष्कारों, औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति की जीवन प्रणाली में परिवर्तन हुआ है उनकी विचारधारा भी बदली है। इनके कारण दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष कुछ ज्यादा ही उग्र रूप में सामने आया। पश्चिम से आई हुई आधुनिकता का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर पड़ा। पश्चिम की भोगवादी संस्कृति के प्रभाव ने हमारी युवा पीढ़ी को आकर्षित किया वह उनके अन्धे अनुकरण के आदी हो गये। फलतः वैयक्तिकता विकसित होती गई व सामाजिकता समाप्त होती गई। परसाईजी ने भारतीय समाज की व्यक्तिवादी और स्वार्थ प्रवृत्तियाँ अनास्था, अविश्वास, अनुशासनहीनता, मूल्य संघर्ष, फैशन-परस्ती आदि सभी सामाजिक आयामों को अपने निबन्धों का विषय बनाया है। क्योंकि ये स्थितियाँ समाज को अधःपतन के गर्त में धकेलनेवाली हैं फलतः इसे अपनी रचना का विषय बनाकर उस पर जबरदस्त हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं।

परसाईजी के निबन्धों में एक भी निबन्ध ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें उन्होंने सामाजिक विसंगतियों का उल्लेख न किया हो। परसाईजी की किसी भी प्रकार की

व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति हो वह सामाजिकता के आस-पास घुमती हुई नज़र आती हैं। परसाईजी ने अपने हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में काफी विस्तार से उनकी अभिव्यक्ति की है। उन्होंने वर्तमान सामाजिक मानसिकता के परिदृश्य को अपने निबन्धों में उभारा है। वर्तमान सामाजिक परिवेश इतना अधिक प्रदुषित हो गया है कि न तो पुरानी मान्यताएँ बरकरार है और न नई बन सकी है। हमने जीवन के वास्तविक स्वरूप को समझा ही नहीं है। पनप रही भौतिकवादी दृष्टि में वस्तु बड़ी है आदमी छोटा तुच्छ। परसाईजी ने आक्रोश व्यक्त करते हुए माना है कि जीवन में मिथ्या संतोष व सब्र घर कर गये हैं - “जो कौम भूखी मारी जाने पर भी सिनेमा में जाकर बैठ जाय वह अपने दिन कैसे बदलेगी। अद्भुत सहनशीलता है इस देश के आदमी में। और बड़ी भयावह तटस्थता। कोई उसे पीटकर उसके पैसे छीनले, तो वह दान का मन्त्र पढ़ने लगता है।”^(8८)

परसाईजी ने ऐसी सामाजिक मानसिकता को चूहे से भी बदतर माना है - “आदमी क्या चूहे से भी बदतर हो गया है? चूहा तो अपनी रोटी के हक के लिए मेरे सिर पर चढ़ जाता है, मेरी निंद हराम कर देता है। इस देश का आदमी कब चूहे की तरह करेगा।”^(8९) वास्तविकता यह है कि आज का सामाजिक प्राणी नई स्फूर्ति व उमंग से बेदखल हो गया है। आज की आधुनिक आबोहवा में विचित्र कश्मकश में फँसा हुआ है। एक और आर्थिक दबाव पुरानी मान्यताओं को तोड़ने को विवश कर रहा है तो दूसरी और परम्परागत संस्कार उसे जकड़े हुए हैं। आज एक की कमाई से पूरा नहीं पड़ता इस सच्चाई के कारण मन मारकर पर्दे की रानी को बन्धन मुक्त किया जा रहा है। उसे नौकरी करने की स्वतंत्रता दी जा रही है। परसाईजी ने अपने निबन्ध ‘संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई एवं ‘कन्धे श्रवण कुमार के’ में आज के इसी मंथन को वाचा दी है कि नई पीढ़ी ने अपने नये माईने सीख लिए हैं। वह उस परम्परा को अंधे होकर ढोने को तैयार नहीं है। - “आज की पीढ़ी एकलव्य की तरह न तो अंगुठा काटकर देने को तैयार है और नहीं श्रवण कुमार की तरह कावड़ उठाने को, समय बदल गया है। कितनी काँवड़े हैं राजनीति में, साहित्य में, कला में, धर्म में, शिक्षा में अन्धे बेठे हैं और

आँखवाले उन्हें ढों रहे हैं। अब श्रवणकुमार के कंधे हिलने लगे हैं वे भटकने लगे हैं और गिरा देने का साहस करने लगे हैं। वे कहते हैं अपनी शक्ति और जीवन हम अन्धों को ढोने में नहीं गुजारेंगे। तुम एक जगह बैठों माला जपो। आदर लो, रक्षण लो। हमें अपनी इच्छा से चलने दो अनुभव दे दो। दृष्टिमत दो। वह हम कमा लेंगे।”^(५०) इसी मानसिकता का असर समाज के विभिन्न घटकों में देखा जा सकता है। सबन्धों का टूटना, संयुक्त परिवार एवं रिश्ते नातों में बिखराव व्यक्ति में वैयक्तिकता, स्वार्थ, पैसों को विशेष महत्व देना, समय का अभाव इसी कारण व्यक्ति अन्तर्मुखी बन गया और सच्चाई, इमानदारी, श्रेष्ठचरित्र निर्माण, नैतिकता आदि सब प्राचीन मूल्य बन गये आज स्थिति यह है कि कोई अपने आपको इनसे दूर रखना चाहे और नैतिक जीवन बीताना चाहे फिर भी वह आज सम्भव नहीं है। जहाँ भी थोड़ी-सी फिसलन हुई व्यक्ति फिसल पड़ता है। इसलिए आज के इन्सान का ध्येय रहता है स्वयं को अवसर के अनुसार ढाल के जीवन बीताना। यही कारण है कि आज के समाज में ऐसे चरित्रों का निर्माण नहीं होता, जो राष्ट्रीय चरित्र बन सके आज राष्ट्रीय चेतना के विकास के स्थान पर व्यक्तिवादी चेतना का विकास हुआ है, आज स्व-हित की भावना पनपी है, यही समाज की सारी समस्याओं की जड़ है। इसी ने दया, माया, ममता, करुणा, स्नेह, सहानुभूति को समाप्त कर ईर्ष्या, द्वेष, धृणा, असहिष्णुता जैसी भावना को बढ़ावा दिया है।

परसाईजी ने समाज के विभिन्न वर्गों में जिस प्रकार की मानसिकता पनप रही है जिस प्रकार के वैमनस्य देखे जाते हैं। उनका सूक्ष्म निरीक्षण किया है। परसाईजी ने उच्च, मध्यम एवं निम्न सभी वर्गों के बारे में लिखा है। पर विशेषकर मध्यमवर्ग के बारे में परसाईजी ने खुलकर लिखा है क्योंकि - “त्रिशंकु स्थितिवाले मध्यमवर्ग में मिथ्याडम्बर, टीमटाम, बनावटीपन, ढकोसले, पाखण्ड और झूठ का बोलबाला है। ‘शो ओफ’ की प्रवृत्ति सर्वोपरि है। इस वर्ग में ही सबसे अधिक कुंठा एवं बिखराव व्याप्त है। इसी कारण मध्यमवर्ग में संयुक्त परिवार की टूटन, सगे-सबन्धियों से दो-मुहाँ व्यवहार, स्वार्थ परकता सबसे अधिक पाई जाती है।”^(५१) परसाईजी ने अपने निबन्ध ‘पड़ोस’, चोरी, निन्दारस, साहब महत्वाकांक्षी में मध्यमवर्गीय व्यवहारों पर अनुभूतिजन्य

अभिव्यक्ति दी है। - “पुराना बुद्धिजीवी वर्ग ही इस समय मध्यमवर्गीय बन गया है आर्थिक संत्रास की घूटन और टूटन के साथ ही उच्चवर्गीय विलासिता, फैशन परस्ती, कृत्रिमता की प्रवृत्ति भी, इसी में घर करती जा रही है। झूठे सपने आत्मप्रतिष्ठा जीवन का खोखलापन, कायरता, आधुनिकता का रोग इस वर्ग में दृष्टि गोचर होता है।”^(५२) परसाईजी ने अपने-अपने इष्टदेव में भी महत्वाकांक्षी मध्यमवर्गों पर व्यंग्य किया हैं।

परसाईजी ने पाश्चात्य सभ्यता के अन्धे अनुकरण से आज जो फैशन परस्ति का बाजार गरम हुआ है उसे लेकर अपने अनेक निबन्धों में चिन्ता व्यक्त की है। पाश्चात्य नई शिक्षा-दीक्षा भौतिक सुखों की उपलब्धियों और महानगरीय सभ्यता के मोह से उत्पन्न आधुनिक होने की लालसा के कारण मूल्यों का टूटना सहज हो जाता है। आज की युवा-पीढ़ी पश्चिमी सभ्यता से पनपनेवाली आधुनिकता की गुलाम होती चली गई। इनके नाम पर नैतिकता व चारित्रिकता का पतन होता गया। स्वतंत्रता के पूर्व अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज, खान-पान, पहेनावा, रहन-सहन के प्रति जो आस्था थी वो टूटती चली गई। - “आधुनिकता और फैशन परस्ती के नाम पर देशवासियों का नैतिक और चारित्रिक पतन होता चला गया। केवल अंग प्रदर्शन, मॉस-मदिरा का सेवन, क्लबों और पाश्चात्य रंग में रंगे हुए सांस्कृतिक समारोह में अपनी गर्लफ्रेंड के साथ रंग-रेलियाँ मनाने की प्रवृत्ति समाज में तेजी से बढ़ती गई। जगह-जगह बार खुल गये और शराब-पीना आधुनिकता की पहचान बन गया। लड़के लड़कियों की वेशभूषा बदल गई। रंग-बिरंगी पोशाकों में सुसज्जित लड़कियाँ राजमार्गों पर तितलियों की तरह उड़ती नज़र आने लगी। स्त्री का आभूषण समझनेवाली लज्जा-भाव पूरी तरह लुप्त हो गया। रुचियाँ पूरी तरह बदल गई।”^(५३) परसाईजी ने अपने निबन्ध ‘आधुनिकता का फैशन’ में आज की इसी मानसिकता को व्यक्त किया है कि आज फैशन के नाम पर पाश्चात्य सभ्यता का जो भूत सवार हो गया है उनसे जीवन व्यवहार में कितना परिवर्तन आया है। परसाईजी के अनुसार - “अब तो ममता, सहानुभूति और करुणा मन में पैदा होती है तब भी शंका होती है कि कहीं यह पिछड़ापन तो नहीं है। अमानवीयता भी तो आधुनिक

फैशन है।”^(५४) फैशन का असर हर प्रकार के व्यवहार में देखा जा सकता है भाव, भाषा, जीवनशैली सबकुछ अपने नये रूप में अलग-अंदाज में व्यक्त होता है। ‘साहब महत्वाकांक्षी निबन्ध में लेखक ने माना है कि - “बाहर लोग सादी हिन्दी में बात करते हैं, पर क्लब में आने पर अंग्रेजियत पर उतर आते हैं।”^(५५) ‘एक लड़की पाँच दिवानें’ में परसाईजी ने माना है कि - “सेक्स स्केडिल सुनना-सुनाना सुखद लगता है। इसे अतृप्त काम की तृप्ति का आनन्द प्राप्त होता है, कौन-किसके पीछे दीवाना है, लट्टू है आदि बातें चटखारे ले-लेकर की जाती है।”^(५६) इससे स्पष्ट है कि आधुनिकता हम में वैज्ञानिक सोच के रूप में न आकर पाश्चात्य रहन-सहन, विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण सुख भोग की इच्छा आदि पाश्चात्य सभ्यता को ही हमने आधुनिकता मान लिया जिनके कारण हमारा नैतिक व सामाजिक पतन हुआ सामाजिक माहौल को बिगाड़ने में पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण को प्रमुख माना जाता है।

परसाईजी ने समाज में नारी की स्थिति को लेकर काफी कुछ लिखा है। वैसे आधुनिक साहित्य की किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति में नारी को अवश्य स्थान मिला है कहा जा सकता है कि साहित्य में प्राकृतिक अभिव्यक्ति सहज हो जाती है वैसे ही नारी विषयक अभिव्यक्ति भी आधुनिक साहित्य में अवश्य ही किसी न किसी रूप में देखी गई है। हास्य-व्यंग्य साहित्य ने आज की नारी की स्थिति को अपने चिन्तन का विषय बनाया है। परसाईजी ने अपने निबन्धों में उनकी हर स्थिति का उल्लेख किया है। उन्होंने प्रेमचन्दजी की शैली में उनकी समस्याओं को उजागर किया है तो आज की आधुनिक नारी की फैशन परत मानसिकता को भी व्यक्त किया है। यानी कि उन्होंने दहेज के भूखे समाज के साथ देह के भूखे लोगों के कारण नारी की जो बाजारु स्थिति का निर्माण हुआ है उन पर व्यंग्य किया है। परसाईजी कहते हैं कि - “मुझे याद है। बचपन में मेरे पड़ोस के बड़े किसान कमरे में रुपयों की थैली बाँधकर बैल खरीदने मेलों में जाया करते थे। अब देखता हूँ, अनेक मनोहरलाल थैली बाँधकर अपनी कन्याओं के लिए वर खरीदने निकलते हैं। हमारे समाज में वह भी मवेशियों की तरह नीलाम होते हैं।”^(५७)

इसी से फीर सामाजिक समस्याएँ पैदा होती है। असामाजिक प्रवृत्तियाँ जन्म लेती है।” - नाबालिग लड़कियाँ पेट भरने को चकलों में बैठ जाती है। दहेज के कारण लड़कियाँ बिन ब्याही सुख जाती है। हर तरफ लूट-खसोट हैं। साधारण आदमी का कई तरफ से खून-चूसा जा रहा है और कोई बचाव का रास्ता नज़र नहीं आता।”^(५८) परसाईजी इस समस्या के पीछे समाज की रूढ़ि ग्रस्तता को जिम्मेदार मानते हैं। ‘प्रेम की बिरादरी’ में अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि - “२४-२५ साल के लड़के-लड़की को भारत की सरकार बनाने का तो अधिकार मिल चुका है पर अपने जीवन साथी बनाने का अधिकार नहीं मिला।”^(५९)

परसाईजी ने नारी की हीनावस्था पर काफी कुछ लिखा है। उन्होंने अपने निबन्ध ‘वो जो वाईफ है न’ में उनके प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। जब एक सम्पादक कवियत्री को मिलना चाहता है तो उसका पति मना करता है वो कहता है कि - “वे नहीं आ सकती क्योंकि वो वाईफ है न ! हमारा समाज तो यह मानता है न कि जो बाहर आए तो तवाईफ है (व्यंग्यकार चुटकी भरते हुए कहते हैं) जब उसकी पत्नी बीमार होती होगी और डॉक्टर आता होगा, तो यह स्टैथोस्कोप अपने सीने में लगवाता होगा।”^(६०) आज भी समाज उसे पर्दे की रानी बनाकर ही रखना चाहता है पर बाहर निकल जाता है तो वो कोई न कोई मजबूरी के कारण ही। नारी स्वातंत्र्य की रट लगानेवाले अपने घर में ही उनकी मुक्तता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। इसलिए परसाईजी कहते हैं कि - “हमारी मुश्किल यह है कि हम हमेशा दूसरे की बीबी की खोज करते हैं। दूसरों की स्टेज पर आ जाय, अपनी न आएँ।”^(६१) आज भी समाज में ऐसी मानसिकता बरकरार है। पर अब धीरे-धीरे आधुनिकता अपना रंग दिखा रही हैं। आज नारी व्यवसायिक क्षेत्रों में विशेष रूप से अपनी शक्ति से धन उपार्जन कर रही है जिनसे समाज के नजरियो में बदलाव आया हैं। ‘संस्कार और शास्त्रों की लड़ाई’ में परसाईजी ने लिखा है - “अर्थशास्त्र ने संस्कारों को धोबी पछाड़ दे दी। हमारे जमाने में नारी को जो भी मुक्ति मिली है, आन्दोलन से? आधुनिक दृष्टि से? उसके व्यक्तित्व की स्वीकृति

से? नहीं। उसकी मुक्ति का कारण महँगाई हैं। नारी मुक्ति के इतिहास में यह नाम अमर रहेंगा एक की कमाई से पूरा नहीं पड़ता।”^(६२) यह सत्य है कि अर्थोपार्जन के कारण ही उसे मुक्ति मिली हैं। मगर परसाईजी ने नारी स्वातंत्र्य, आधुनिकता व फैशन के नाम पर जो खुला प्रदर्शन हो रहा है उसे अपने निबन्ध ‘आधुनिकता का फैशन’ व ‘विज्ञापन में बिकती नारी’ में व्यक्त किया हैं। बाज़ार में नारी को खुला प्रदर्शन करने को मजबूर किया है। आज किसी भी चीज़ की खपत के लिए उनका इस्तेमाल किया जाता है। वह जब अपने लटको-जटको व नखरों के साथ किसी वस्तु को अपनी पसन्द बनाती है तो उपभोक्ता वर्ग उन पर टूट पड़ता हैं। कोई स्त्री पफ़, पाउडर, स्नॉ के विज्ञापन दे वह उचित है पर जब वह सीगारेट या टायर के विज्ञापनों में अपनी राय देती है। तो वह असह्य हैं। परसाईजी कहते हैं कि - “मैंने कोई विज्ञापन ऐसा नहीं देखा जिसमें पुरुष-स्त्री से कह रहा हो कि यह साडी या स्नो खरीद ले। अपनी चीज़ वह खुद पसंद करती है मगर पुरुष की सिगारेट से लेकर टायर तक में दखल देती हैं।”^(६३) इस प्रकार परसाईजी ने नारी के बारे में अपने व्यापक विचार प्रस्तुत किए हैं। नारी के शोषण, अत्याचार, अन्याय से लेकर उनके आधुनिक समय में हो रहे, विज्ञापनों में अशिल्ल प्रयोग तक को, परसाईजी ने अपने निबन्धों का विषय बनाया है, इस सन्दर्भ में तीखी प्रतिक्रिया देकर समाज के वास्तविक द्वन्द्व को वाचा दी है। - “आजादी के बाद देश का राजनैतिक वातावरण ही दूषित नहीं हुआ, सामाजिक पतनशीलता के प्रमाण भी मिले। राजनीतिक प्रणाली में शुचिता का अभाव हमारी सामाजिक-जीवन पद्धति के विकृत स्वरूप की ही वानगी हैं। राजनेता अपने समय के समाज को ही अभिव्यक्ति देते हैं।”^(६४) सो जैसा राजा वैसी प्रजा के नाते समाज जीवन में भी विसंगतियों की भरमार देखने को मिलती है, जिसे परसाईजी ने यथायोग्य प्रस्तुति दी हैं।

६.५ हरिशंकर परसाई के निबन्धों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य :-

अगर इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस किसी काल में राजनीति भ्रष्ट हुई है एवं समाज दिशाहीन हुआ है, उस समय की

धार्मिक संचेतना अवश्य ही प्रभावहीन रही है क्योंकि वह भी ऐसे माहोल के बीच में अपने-आपको परिनिष्ठित व शुद्ध बनाये रखने में बहोत कम सफल हुई हैं। उनके धार्मिक सिद्धांतों व शुद्ध आचरण में अवश्य ही विसंगति देखी जा सकती है। यही कारण है कि परसाईजी ने अपने निबन्धों में धर्म सबन्धी लोगों की मानसिक दासता को व्यक्त करते हुए, आज की वास्तविक स्थिति को सामने रख के विभिन्न तर्कों व बौद्धिक व्यायामों के द्वारा यह कहना चाहा है कि सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म हैं। परसाईजी ने समजेजानेवाले धार्मिक नेताओं, सम्प्रदायों, मंदिरों के वैभवों, धार्मिक मान्यताओं, रूढ़ियों पर करार व्यंग्य किया हैं। - “भारत धर्मनिरपेक्ष देश है। प्रत्येक को अपने धर्म की स्वतंत्रता होने के कारण धर्म के नाम पर कुकर्म करने की भी स्वतंत्रता है। अतः धर्म का क्षेत्र भी व्यंग्य का केन्द्र बन गया।”^(६५) जिसे सबसे अधिक परसाईजी ने लक्ष्य बनाया है। मठाधिशों व धर्मगुरुओं के बारे में परसाईजी ने माना है कि वे आम इन्सान को मोह-माया से सांसारिक झंझटों से दूर रहेने का संदेश देते हैं - “तब प्रश्न होता है कि - अगर मिथ्या माया है तो मठ की गद्दी के लिए शंकराचार्य हाईकोर्ट में मुकद्मा क्यों लड़ते हैं?”^(६६) धर्मगुरुओं की कथनी और करनी की विसंगता को लेकर ‘बेईमानी की परत’ में काफी कुछ लिखा है। उनमें मठाधीशों के व्यवहारों को खुला किया गया है। वे उपदेश दे रहे थे कि - “यह मलमूत्र की खान गंदा शरीर मिथ्या है, नाशवान है, क्षणभंगुर है। मूर्ख इसे स्वादिष्ट पकवान खिलाते हैं इसे सजाते हैं, इस पर इत्र चुपडते हैं। वे भूल जाते हैं कि एक दिन यह देह मिट्टी में मिलेगी और इसे कीड़े खाएँगे। इतने में एक सेवक सरिया रबड़ी का गिलास लाया और स्वामीजी ने उसे गटक लिया।”^(६७) इस निबन्ध में मठाधिशों के काले कारनामों, दो मुँहाँ व्यवहार आदि की पोल खोली हैं। कथनी और करनी में वैषम्य तथा स्वार्थ सिद्धों के लिए धर्म व संस्कारों की तिलांजली देने के प्रति परसाईजी का आक्रोश विद्रुपात्मक हो उठे हैं। वे कहते हैं कि - “आज धर्म, श्रद्धा, विश्वास, आस्था, भरोसा आदि शब्द मृतप्राय हो चुके हैं। जिसके नेतृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा है और जो नया नेतृत्व आया है वो उतावली में अपने कपड़े

खुद उतार रहा है।”^(६८) परसाईजी लिखते हैं कि - “पहले देवता आदमी बनकर ठगते थे, अब आदमी देवता बनकर ठगते है।”^(६९) आज धर्म में राजनीति इस कदर घर कर गई है कि उनसे धर्म को मुक्त करने के लिए भगवान को एक और अवतार धारण करना पड़ेगा। आज चुनाव के दौरान धर्म का बैजा इस्तेमाल किया जाता हैं। - “आप एक हड्डी का टुकड़ा उठाकर मंदिर में डाल दीजिए और हिन्दु धर्म के नाम पर दंगा लिखा दीजिए। धर्म का उपयोग अब दंगा करने के लिए हो गया है।”^(७०) इससे आज धर्म पर से आस्था धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है क्योंकि - “धर्म गायों की रक्षा करता है आदमी की नहीं।”^(७१) ऐसे धर्म के नाम पर होनेवाले विवाद वस्तुतः संकीर्ण सम्प्रदाय के कारण है। अपने-अपने धर्म को पंथ को बड़ा मानने और दूसरे के धर्म को निम्न दिखाने की वृत्ति ही विवाद पैदा करती है। धर्म का प्रयोग मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए होना चाहिए पर आज स्थिति भिन्न है। इसलिए परसाईजी अपने निबन्ध ‘न्याय का दरवाजा’ में व्यंग्य करते हैं कि - “धर्म अच्छे को डरपोक और बुरे को निडर बनाता है।”^(७२) क्योंकि आज की स्थिति काफी भयावह है। धर्म की आड़ में आज बहोत से कारनामों किये जाते हैं अपनी इच्छा से मोज-मस्ती की जाती है। ‘वैष्णवों की फिसलन’ में परसाईजी ने लिखा है कि - “वैष्णव दो घंटे भगवान विष्णु की पूजा करते हैं फिर गद्दी-तकिये वाली बैठक में आकर धर्म को धंधे से जोड़ते है। धर्म धन्धे से जुड जाय, इसी को योग कहते हैं।”^(७३) इनसे स्पष्ट है कि आज का इन्सान सांसारिक माया, मोह में इतना फस गया है कि वह मुक्त नहीं हो सकता हैं। - “शराब, गोश्त, कैबरे और ओरत का व्यवसाय करते हुए भी व्यक्ति अपने को वैष्णवधर्मी समझता है।”^(७४) आज के युग में वहीं व्यक्ति धर्म का ढोंग रचता है, जो जीवन में अधिक से अधिक पाप करता है। पाप व्यक्ति के अन्दर भय उत्पन्न करता है और यह भय ही व्यक्ति को ईश्वर की शरण में ले जाता है। परसाईजी कहते हैं कि - “ग्रह भी समझदार है। वे वही जाते है जहाँ लोग उनसे डरते हो। अष्टग्रहों को बुद्ध बनाने के प्रयत्न चालू हो गये है। जगह-

जगह यज्ञ हो रहे हैं। हजारों लाखोंरुपयें यज्ञ के लिए चन्दे में मिल जाते हैं। जहाँ अस्पताल या स्कूल के लिए फूटी कौड़ी गाँठ से नहीं निकलती वहाँ यज्ञ के लिए रुपये निकल आते हैं।”^(७५) इनसे स्पष्ट है कि भारतीय जनमानस में धर्म भावनात्मक रूप में हैं। इनका कई लोग फायदा भी उठाते हैं। आज उत्तरोत्तर शिक्षा के प्रचार एवं वैचारिक क्रांति के कारण अब स्थिति में सुधार आ रहा है। धीरे-धीरे बुद्धिनिष्ठधर्म व भक्ति का आचरण हो रहा है। आज ‘ज्ञान’ के बारे में ‘भक्ति’ के बारे में ‘धर्म’ के बारे में एवं ‘कर्म’ के बारे में लोकजागृति पैदा हो रही है पर अभी भी उतनी धार्मिक स्वस्थता नहीं बन पाई है। आज बुद्धिजीवी लोग भी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म का इस्तमाल करते हैं। आज इतनी जागृति के बाद भी धर्म में व्यवसाय एवं राजनीति का असर देखा जा सकता है इसलिए आज व्यक्ति धर्म की बोलबाला है, सुविधायुक्त धर्माचरण देखा जा सकता है।

परसाईजी ने ‘क्या भगवान भी टांग खींचते हैं?’ में भगवान पर अन्ध विश्वास रखनेवालों पर भी व्यंग्य किया है। इस प्रकार परसाईजी ने व्यापक रूप से धर्म व धार्मिक संस्थाओं, सम्प्रदाय, धर्मगुरुओं में व्याप्त विसंगतियों को उजागर किया है। आज धर्म भी व्यावसायिक रूप ले रहा है, उनसे स्वार्थपूर्ति हो रही है उनका सीडी के रूप में प्रयोग होता है, जिनके लिए तत्कालीन महोल ही जिम्मेदार हैं। हाँलाकि हर धर्म व सम्प्रदाय के मूल में यही उद्देश्य है कि मानव्यता का निर्माण हो, इन्सान की इन्सानियत बनी रहे पर परिस्थितियाँ ही, ऐसी निर्माण होती है कि वो धर्म को भी घायल कर देती है और धर्म एक ऐसी सफेद चादर है जिस पर छोटा सा भी दाँग बहोत बड़ा दिखता है। परसाईजी ने इस बात को नज़र में रखते हुए उन पर हर तरफ से व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं।

परसाईजी ने अपने निबन्धों में सांस्कृतिक क्षेत्र में जो विसंगतियाँ पाई जाती हैं उन पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। आज के सांस्कृतिक परिवेश में विषम स्थिति देखी जा सकती है क्योंकि प्राचीन व आधुनिक संस्कृति का टकराव हो रहा है जिनसे कईबार

एक अलग ही चित्र उपस्थित होता है जिनसे विसंगति का निर्माण होता है - “एक समय ऐसा था जब भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बोलबाला था। भारत धन-धान्य से परिपूर्ण वैभवशाली देश था। भारत को सोने की चिड़ियाँ कहा जाता था। इसके अतिरिक्त देश, कला, संगीत नाना प्रकार के उद्योगों तथा विद्या के क्षेत्र में भी अग्रणी था। अतीत के गौरवमय इतिहास का रूप आज अन्धकार के गर्त में गिर गया है।”^(७६)

संस्कृति एक साधन है, पहचान है, सिद्धि है, जिसमें सामर्थ्य, सालसता एवं श्रेष्ठत्व समाहित हैं। जिनसे सभ्यता, सोहार्द एवं शालिनता के संस्कार मिलते हैं जो भारतीय संस्कृति में काफी हद तक विद्यमान हैं। पर आज उसी भारतीय संस्कृति पर कुछ और रंग चढ़ने लगे हैं जिनके कारण विसंगतता जन्म लेती हैं। परसाईजी ने अपने निबन्ध ‘मेरे जेब कटे के नाम’ में लिखा है कि - “दोस्त वर्तमान सभ्यता जेब कट की सभ्यता है। हर आदमी दूसरे की जेब काट रहा है। इस सभ्यता में अपनी जेब बचाने का तरीका यह है कि दूसरे की जेब काटो ! सिर्फ उसकी जेब सुरक्षित है जो दूसरे की जेब पर नज़र रखता है।”^(७७)

‘कर कमल हो गए’ निबन्ध में परसाईजी ने अपनी तिलमिलाहट व्यक्त की है जिसमें आज की संस्कृति की विकृत स्थिति पर करारा व्यंग्य किया गया है। वे अपने अन्दाज में कहते हैं, “दोस्त, संस्कृति की हड्डी को जब कुत्ते चबाते घूम रहे हैं। संस्कृति की हड्डी कुत्ते का जबड़ा फाड़कर उसके खून को उसीके स्वाद से चटवा रही हैं। हाँ, हम विश्व बंधुत्व भी मानते हैं, यानी अपने भाई के सिवाय बाकी दुनियाँ को भाई मानते हैं।”^(७८)

परसाईजी का स्पष्ट संदेश है कि आज भारतीय संस्कृति खतम होती जा रही है। आज सहिष्णुता, सन्मान, सौहार्द, भाईचारा आदि भाप बन रहे हैं। परस्पर प्रेम व त्याग व बलिदान के स्थान पर नितान्त स्वार्थ व पैसों के पीछे पागल हो रहे हैं। आज सामुहिक विकास नहीं वैयक्तिक सुख को महत्व दिया जा रहा है। आज ‘हम’ नहीं ‘मैं’ का बाज़ार है। ‘चांद पर नहीं जा सका’ में परसाईजी व्यंग्य करते हैं कि, “आदमी दूसरे ग्रह पर जाएगा तो भी झूठ साथ ले जायेगा। मानवता, मानव-कल्याण, मानव-एकता ये चीज़ें अपनी दुनिया का सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करती।”^(७९)

परसाईजी

ने अपने निबन्ध 'सांस्कृतिक हुल्लड' में काफी तर्कबद्ध रूप से हमारी बिगड़ी हुई सांस्कृतिक चेतना पर प्रहार किये हैं। अपने निबन्ध 'अकाल उत्सव' में भी यथार्थवादी दृष्टिकोण से विकृत मुखौटे को निरावृत किया है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारा सांस्कृतिक जीवन तेजी से विश्रृंखलित होता गया। जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान सांस्कृतिक क्षेत्र में भी विसंगतियाँ तेजी से बढ़ी है। आधुनिक शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण, देश की अवसरवादी राजनीति ने हमारी शिक्षा, मूल्यनिष्ठा, नैतिकता, विविधता में एकतावाली विचारधारा को तोड़ दिया। हमारे आचार-विचार, खान-पान, वेशभूषा, बोल-चाल सबकुछ बदल गया, "सांस्कृतिक विकास की वह उज्ज्वल परम्परा, जिसने सदियों से भारत और भारतीय संस्कृति के अस्तित्व को बनाये रखा है। अस्वस्थ होकर पड़ी हैं। उसका हाजमा खराब है। जब हाज़मा अच्छा था, तब समूची जातियों को पचा लेती थी। जबसे हाज़मा बिगड़ा है उसे उलटी हो रही थी।"^(८०)

परसाईजी ने त्योहारों पर, मेलो-उत्सवों पर, फिल्मों पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। साथ-साथ रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास, श्रद्धा आदि सांस्कृतिक मूल्यों पर भी प्रहार किया है। 'स्नान' निबन्ध में परसाईजी ने कहा है कि, "मैं प्रयाग में तीन दिन रहकर बिना गंगा नहाये लौट आया तो जिसने सूना, उसने थूका। लोगो की कल्पना से यह परे है कि कोई इतना अभागा भी होगा जो प्रयाग जाये और त्रिवेणी में स्नान न करे। लोग तो बिना टिकट जाते हैं। रेल-कर्मचारियों की गाली सुनते हैं। संडास में छिपकर उनसे बचते हैं और गंगा स्नान करके आते हैं तो निहायत उजले लगते हैं।"^(८१) परसाईजी ने लोगों की मानसिकता पर व्यंग्य किया है जो साफ दिल की तरफदारी नहीं करते, साफ मन नहीं, साफ तन में माननेवाले हैं। जो अपने अनगिनत पापों को गंगा में स्नान करके धो डालते हैं, फिर नये सिरे से नये पापों का प्रारंभ करते हैं यही रवैया है जिनसे सांस्कृतिक धरोहरों, विचारों, मूल्यों का हनन हुआ है। परसाईजी ने माना है कि जिनके माध्यम से सांस्कृतिक माहौल बनता है। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति जिनके जरिये व्यक्त होती है ऐसे उत्सवों, खेलों, फिल्मों आदि भी विसंगतियों से भरे पड़े हैं। परसाईजी ने अपने

निबन्ध 'देशभक्ति का पोलिश' में ऐसे उत्सवों पर चन्दा माँगनेवालो पर व्यंग्य किया है। परसाईजी मानते हैं कि, "हम चन्देवालों के मारे रोज़ परेशान रहते हैं। कभी गणेशोत्सव हैं तो कभी दुर्गोत्सव रोज़ ही कोई चंदा लगा रहता है।"^(८२) वास्तव में तो चंदाखोरो ने चंदे को अपनी आजीविका का साधन बना लिया है। वे संस्कृति का विकास कैसे करेंगे क्योंकि हाथ में पैसों के आते ही वृत्ति में परिवर्तन आ जाता है। भावनाओं में जो सांस्कृतिक विकास की सोच होती है वह रात में ही उसे मथती है और सवेरा होते ही समाप्त हो जाती है। खेल के मैदान में भी यही खेल खेला जाता है। परसाईजी कहते हैं कि, "क्रिकेट में पराजित होने के उपरांत यही सोचकर प्रसन्न रहते थे कि इसी बहाने इंग्लैंड तो हो आये।..... यही क्या कम है? इससे राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ी है। जय-पराजय तो चलती रहती है।"^(८३) भारतीय संस्कृति में जय-पराजय प्रमुख नहीं है, मनुष्य को केवल कर्म करते रहना चाहिए।"^(८४) उसी प्रकार से सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के प्रमुख अंग नाट्यकला, संगीतकला एवं फिल्मों पर परसाईजीने व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं जो लोगों के सामने सीधे ही सांस्कृतिक अभिव्यक्ति करते हैं। परसाईजी मानते हैं कि उसमें जबरदस्ती उत्साह दिखाया जाता है, होता नहीं है। 'एक फिल्म कथा' में परसाईजीने यही व्यंग्य किया है कि ज्यादातर फिल्मों में वो जुजारूपन नहीं होता उसमें सिर्फ परम्परागत रूप से कथा को चलाया जाता है। "ऐसी ऊबाऊ फिल्मों में जिनका कोई सिर-पैर नहीं होता। जो न मनोरंजन कर रही है, न ही आदर्श प्रस्तुत करती।"^(८५) परसाईजी अपने निबन्धों में सांस्कृतिक व्यंग्य से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि सांस्कृतिक सौहार्द के आदर्श को नज़र अंदाज़ किया जा रहा है। लोग उनमें छिपी-भावना का गलत मतलब निकाल के अपने निजी स्वार्थ व वैयक्तिक विकास के लिए संस्कृति को भी अपने लिए सीढ़ी बना लेते हैं जिनसे सांस्कृतिक भावना का हनन होता है।

इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी का सांस्कृतिक चिंतन काफी व्यापक है। वे यह अवश्य चाहते हैं कि जो जिसकी भूमिका हो उसीके अनुरूप उनका दायरा रहना चाहिए

पर वह दुखी इस बात से है कि जहाँ इश्वर को भी उल्लू बनाया जाता है वहाँ सांस्कृतिक रखरखाव कैसे स्वच्छ व साफ-सुथरा रह सकता है।

६.६ परसाईजी के निबन्धों में साहित्यिक एवं शैक्षिक हास्य-व्यंग्य :-

परसाईजीने भाषा-साहित्य एवं शिक्षा को लेकर भी उनमें व्याप्त विसंगतियों को उजागर किया है। परसाईजी ने माना है कि ये ऐसे क्षेत्र हैं जिसमें सत्यता, शिवत्व व सौंदर्य का समागम होता है पर ऐसे क्षेत्र भी राजनीति व भ्रष्टाचार के अखाड़े बन गये हैं। ऐसे शिक्षासंस्थान या साहित्यिक संगठन बहोत कम देखने को मिलेंगे जहाँ उनकी गरिमा के अनुसार कार्य संपन्न हो रहा हो या तो जिसमें उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप व्यवहार देखा जाता हो।

साहित्य और शिक्षा ये दोनों क्षेत्र सत्व से जुड़े हुए होते हैं जिसमें थोड़ी सी कालिख भी साधारण जनसमाज में तुफान खड़ा करती है। क्योंकि दोनों की भूमिका ही कुछ इस प्रकार की है जिसमें छोटी-सी अवांछनीय बात भी असह्य बन जाती है। क्योंकि साहित्यकार या शिक्षणशास्त्री सुसंस्कृत सामाजिकता के प्रति प्रतिबद्ध हैं। पर आज इस प्रतिबद्धता पर आधुनिकता का व राजनीति का रंग चढ़ा हुआ है जिनके कारन समयानुसार उनके रंग बदलते रहते हैं। यही कारन है कि आज अभिव्यक्ति का माध्यम रही हिन्दी भाषा पर प्रश्न चिन्ह लगाये जाते हैं। उसे गलत तरिके से प्रस्तुत किया जाता है। भाषा जनता की सम्पत्ति है वह ऐसी होनी चाहिए जिसे सर्वसाधारण समजता हो, कहने और सुनने वाले समज सके जिनसे पुरा राष्ट्र सहज रूप से जुड़ा हो वही राष्ट्रभाषा बन सकती है, हर राष्ट्र की अपनी भाषा होती है पर परसाईजी मानते हैं कि आज वह संकट में है इसलिए कटु आक्षेप करते उन्होंने लिखा है कि, “हिन्दी माता पर ऐसा क्या संकट आ गया? मुख्यमंत्रियों ने राष्ट्रीय एकता के हल्ले में अंग्रेजी को अनन्त काल तक चलाने का निश्चय कर लिया है। अब हिन्दी उसी तरह निश्चित रह सकती है जिस तरह अंग्रेजों की छत्रछाया में देशी रज़वाड़े रहते थे।”^(८६) परसाईजी ने साहित्य के सन्दर्भ में भी बहोतसी ऐसी विसंगतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने साहित्य व

साहित्यकारों, साहित्य समारोहों, अभिव्यक्ति के आयामों, पत्र-पत्रिकाओं, संपादकों आदि को लेकर बहोतसी चुटकियाँ ली है। परसाईजी लिखते हैं कि, “हिन्दी के लेखक और लेखिकायें भी घरों में बच्चों से ‘मम्मी-डैडी’ कहलाते हैं। पत्नियों को डार्लिंग बुलाते हैं। बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाते हैं। शादी-विवाह के निमंत्रण-पत्रों को अंग्रेजी में छपवाते हैं। मृत्यु पर भी अंग्रेजी में रोना, मातृभाषा में रोने से कहीं प्रभावकारी हैं। अंग्रेजी में भद्दे नाम भी अच्छे लगते हैं।”^(८७)

साहित्यिक परिवेश में पनपती हुई विकृतियों एवं विषम स्थितियों ने व्यंग्यकार को काफी हद तक जकड़ोरा हैं। परसाईजी ने उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति कर उनमें छिपी स्वार्थ परता के दर्शन करवाये हैं। साहित्य का आज सरकारी करण हो गया है। यही कारन है कि उनमें चारों ओर अफरा-तफरी, चाटुकारिता बढ़ी हैं। आज सिफारिश का विशेष महात्म्य है। ‘परसाईजी’ ने अपने निबन्ध ‘अपने-अपने इष्टदेव’ में उनका यथार्थ चित्रण किया है। वे मानते हैं कि आज साहित्य के लिए उनकी अच्छी अभिव्यक्ति को नहीं देखा जाता, पर वही रचनाएँ छपती हैं जो ज्यादा सिफारिशों से सम्पन्न हो, या तो जिन्होंने अधिकारियों की पूजा-विधि की हो। एक नवलेखक ने शिक्षा विभाग के पदाधिकारी को प्रसन्न कर दिया तो तुरन्त उसे एक खत मिला उसमें लिखा है, “तुम्हारा यह ग्रन्थ सारे राज्य में हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया है।”^(८८) श्री सम्पन्न किन्तु सीमाओं और बन्धनों में बन्धे साहित्यकारों पर हरिशंकर परसाईजी ने प्रबल व्यंग्यात्मक कटाक्ष अपने निबन्ध ‘लेखक : संरक्षण समर्थन और असहमति’ में किये हैं। संपूर्ण निबन्ध इसी लक्ष्य पर प्रहार करता है। यही कारण है कि परसाईजी अपने निबन्ध ‘पुत्रकी पिड़ा का सामना’ में कवियों की स्वार्थपरता पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि, “आर्थिक, सामाजिक, ईर्ष्या, द्वेष रूपी पुत्र-पीड़ा से कवि त्रस्त था। उसे स्वार्थ की पीड़ा थी न की देश की।”^(८९) साहित्यिक संदर्भ में कहे तो वह सबसे अधिक निबन्धों में ही व्यक्त हुआ है। इन व्यंग्य निबन्धों में साहित्यिक जगत में व्याप्त गुटबाजी, कवियों की निर्धनता, साहित्यिक क्षेत्र में दिखाई देनेवाला भोगवाद कुण्ठा, साहित्य की नकल व चोरी करनेवाले आदि सभी पर

व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियों-प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता आदि तथा आधुनिक कहानियों आदि पर भी व्यंग्य किया है। हिन्दी भाषियों के द्वारा अनावश्यक रूप से विदेशी शब्दों के इस्तमाल पर भी प्रहार किया है। परसाईजीने 'ग्रीटिंग कार्ड और राशन कार्ड' नामक निबन्ध में ऐसे ही व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है। इनके अलावा धनोपार्जन के लिए आज जो सस्ता साहित्य लिखा जाता है इन पर भी व्यंग्य किया है। साहित्य के नाम पर काम-वासना की गंदगी परोसकर मानव-मन की भावनाओं को उद्विग्न करनेवाली काल्पनिक कथाओं के माध्यम से साहित्यकार अपनी चाँदी बनाना चाहता है। साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। वह भावना आज समाप्त हो गई है। इसी कारण साहित्य में मनचाही विकृतियों को स्थान मिल जाता है। परसाईजी कहते हैं कि, "युग की पीड़ा अपने भीतर से उपजती है। जमाने का मेरे प्रति जो कर्तव्य है वह जब नहीं करता तब घोर पीड़ा होती है।"^(९०) इस प्रकार परसाईजीने आधुनिक साहित्य के बदलते हुए चेहरे को नाप कर उनके विभिन्न पक्षों को लेकर व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं।

आज शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी धाधलियाँ चलती हैं। आज उनकी स्थिति नाम बड़े दर्शन छोटे जैसी हो गई है। आज की शिक्षा ने भी राजनैतिक, व्यावसायिक एवं जातीय आधार को ग्रहण कर लिया है जिनसे उनकी मूलभावना समाप्त होती जा रही है। यही कारण है कि कईबार विद्यार्थियों के सामने अध्यापकों की भूमिका छोटी हो जाती है। शिक्षा का क्षेत्र व्यापक है। शिक्षा में भितरी व बाहरी अनेक ऐसे तत्व होते हैं जिनसे ये क्षेत्र प्रभावित होता है। पर मूलतः इसमें संस्थान की व्यवस्था से जुड़े हुए लोग शिक्षक, प्राध्यापक और शिक्षार्थी ये सीधे ही उनसे जुड़े हुए लोग हैं। परेशानी तब होती है कि जब बाहरी-परिवेश उन पर हावी हो जाय और यह अपनी इच्छा के अनुसार माहोल बनाना चाहे तब विसंगति पैदा होती है या तो शिक्षक, विद्यार्थी या व्यवस्थापक अपनी मूल भूमिका से चलित होता है तो भी वातावरण कलुषित हो जाता है। वास्तव में शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए विशेष महत्व रखती है, जिसे प्रथम अग्रता देनी चाहिए क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य महान है जो राष्ट्र को सुयोग्य, शिक्षित नागरिक प्रदान

करती है। पर आज का सार्वजनिक जीवन इतना गिर गया है जिनका असर शिक्षा पर भी देखा जा सकता है। आज अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा क्षेत्र भी अधःपतन, अव्यवस्था अनैतिकता और अराजकता से अछूता नहीं है। परसाईजी ने शिक्षा के क्षेत्र में जो विसंगतियाँ पाई है उसे विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। जैसे व्यवस्थापक एवं प्राचार्यों का व्यवहार, अध्यापकों की निरीहता व बेफिकरी प्रवृत्ति, विद्यार्थियों का अवांछनीय व्यवहार, बिना परीक्षा के उपाधियों बाँटना, पाठ्यक्रमों की निरर्थकता, विश्वविद्यालयों को कारोबार का रूप देना, शिक्षा के स्तर की अनदेखी करना, नियुक्तियों में राजनीति, विद्यार्थी आंदोलन, परीक्षापद्धति आदि को परसाईजी ने अपने निबन्ध एक दिक्षांत भाषण, प्रेमियों की वापसी, एकलव्य ने गुरु को अंगुठा दिखाया, प्राइवेट कॉलेज का घोषणापत्र, शिक्षकों का कल्याण, अध्यापकों के आंदोलन, शिक्षकों की प्रतिष्ठा, शिक्षक सन्मान से इन्कार करे, आचार्यजी एकसटेशन बागीचा आदि निबन्धों के माध्यम से व्यक्त किया है। ये सारी विसंगतियाँ युग परिवर्तन के कारण हैं। इसलिए परसाईजी कहते हैं कि - “वह पुण्य युग था यह पाप युग है। उस एकलव्य ने बिना तर्क गुरु को अंगुठा काटकर दे दिया था। इस एकलव्य ने गुरु को अंगुठा दिखाया है।”^(९१) - “आज की शिक्षा पद्धति में गुरु का स्थान गौण हो गया है। आज ‘गुरु देवो भवः’ नहीं ‘शिष्य देवो भव’ सी स्थिति बन गई है।”^(९२) आज शिक्षा के निजीकरण एवं सरकार की बेमतलब की योजनाओं से शिक्षा क्षेत्र पर व्यापक असर हुआ है। उनकी सेहत बिलकुल बिगड़ गई है। आज सरकार हर ऐसे क्षेत्रों से अपना पीछा छूड़ाना चाहती है जिनके रखरखाव से उनकी सेहत पर असर हो रहा हो पर उनका नतिजा यह है कि आज इस क्षेत्र का व्यापारिकरण हो गया है। आज अच्छी-अच्छी उपाधि प्राप्त व्यक्तियों को अनपढ़ एवं शिक्षा के साथ जिसे स्नान सूतक का भी नाता नहीं है ऐसे लोगों की संस्थाओं में ऐसे वेतन से नौकरी करनी पड़ती है, जिसे किसी को कहते हुए भी लज्जा आती है। परसाईजी ने ऐसे निजी शिक्षा संस्थानों पर काफी कड़े प्रहार किये हैं। उन्होंने ऐसी संस्थाओं को दुकानदारी का नाम देते हुए अपने निबन्ध ‘प्राइवेट कॉलेज का घोषणापत्र’

में लिखा है कि - “यह कॉलेज हमारे फार्म की शाखा है। इसलिए इसके प्रिन्सिपाल का दर्जा हमारी दुकान के हेड मुनीम के बराबर होगा। प्रोफेसर मुनीम माने जायेंगे। प्रिन्सिपाल को प्रतिदिन हमें दुकान पर जैराम जी की करने आना पड़ेगा। जिस दिन वह न आयेगा उसदिन का वेतन काट लिया जायेगा।”^(९३) इसलिए परसाईजी ने ‘शिक्षक सन्मान से इन्कार करे’ नामक रचना में लिखा है कि - “साल भर साँप दिखे तो उसे भगाते हैं, मारते हैं मगर नागपंचमी को साँप की तलाश होती है। दूध पिलाने और पूजा करने के लिए। साँप की तरह शिक्षक दिवस पर रिटायर्ड शिक्षक की तलाश होती है सम्मान करने के लिए।”^(९४) इनसे स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में शिक्षा सुधार के नाम पर व्यापारिकरण व राजकारण शामिल हो गया। भ्रष्टाचार व अनाचार ने शिक्षा जगत को भी नहीं छोड़ा। शिक्षा का संचालन निरक्षरों के हाथों में पहुँच जाने से और भी अधिक अव्यवस्था बढ़ गई यही कारण है कि आज शिक्षा प्राप्ति का मंत्र बदल गया है। इसलिए परसाईजी ने माना है कि - “पहला पर्चा ‘पेपर आऊट’ करने का होता है और आखिरी ‘नम्बर बढ़ाने का’ जो इन्हे अच्छी तरह करले, वो पास हो जाता है पहला दर्जा भी पा सकता है।”^(९५) इस प्रकार परसाईजी ने आज की शिक्षा व संस्थानों पर काफी व्यंग्य किया है। उन्होंने आज की वास्तविकता को लोगों के सामने खोलकर उनका असली चहेरा दिखाया है।

६.७ परसाईजी के निबन्धों में वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य

परसाईजी ने जिस तरह से सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक हास्य-व्यंग्य से एक विशेष समूह को लक्ष्य बनाया तो दूसरी ओर उन्होंने व्यक्तिगत रूप से विभिन्न व्यवसायों, कारोबारों, नौकरियों से जुड़े हुए व्यक्तियों को लक्ष्य बनाया है। साथ-साथ परसाईजी ने ऐसे व्यक्तियों को भी अपने व्यंग्य का विषय बनाया है जो अपनी आदतों के कारण कुछ अलग पड़ते हैं। परसाईजी ने अपने निबन्धों में वैयक्तिक व्यंग्य के माध्यम से अपने हास्य-व्यंग्य को विशेषतः सूक्ष्म व मारक बनाया है।

परसाईजी ने व्यक्तिगत रूप से जिनके रोज-बरोज के जीवन की विसंगतियों को व्यक्त किया है उनमें डाक्टरों, वकीलों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों, शिक्षकों-छात्रों, कवियों लेखकों, नेता-अभिनेता, पति-पत्नी, साँस-बहू, मकानमालिक व किरायेदार, पुलिस, पड़ोसी, जमीनदार, साहुकार, श्रमिक आदि का समावेश होता है। इनके अलावा बहोत से लोगों की व्यक्तिगत आदतों को उजागर किया है। ऐसा करके उनकी सिद्धियों व कमियों को व्यक्त किया है। ऐसे आत्मपरक व्यंग्य में लेखक कईबार अपने आपको भी जोड़ लेते हैं, एवं साथ-साथ अपने परिवार व मित्रों को भी अपनी रचना का विषय बनाते हैं। जिनसे उनका कथ्य विशेष रूप से तटस्थता धारण करता है। परसाईजी ने अपने निबन्ध 'चुनाव के ये अनंत आशावान' में अपने बारे में लिखा है कि - "मैं कभी चुनाव नहीं लड़ा। एकबार सर्वसम्मति से अध्यापक संघ का अध्यक्ष हो गया था। एक साल मैंने तीन संस्थाओं में हड़ताल और दो अध्यापकों से भूख-हड़ताल करवाई। नतीजा यह हुआ कि सर्वसम्मति से निकाल दिया गया।"^(९६) परसाईजी ने 'राम भरोसे का इलाज' में डाक्टरों व नर्सों पर व्यंग्य किया है। 'पाच लोक कथाएँ' में वकील के बारे में लिखा है। 'एक काना, एक ऐचकतानामे' न्यायधिश की बात की है। 'इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर' में पुलिसवालों की बात है। 'साहित्य और नंबर दो का कारोबार' में कवियों-लेखकों पर व्यंग्य है। 'सबटेनेंट की कथा' में किरायेदार व पड़ोसी पर व्यंग्य है। 'एक तृप्त आदमी' में शिक्षक पर व्यंग्य है। 'एक दिक्षांत भाषण' में विद्यार्थियों पर व्यंग्य है। 'कर कमल हो गये' में नेताओं पर 'फिल्मी-रोमांस' में अभिनेताओं पर यानी कि परसाईजी ने छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों के बारे में लिखा है। उन्होंने वैज्ञानिकों व इंजीनियरों के रवैये को भी अपनी पैनी निगाह से परख के उनसे होनेवाली धोखाघड़ी को बेनकाब किया है। 'राम का दुःख और मेरा' में परसाईजी ने युवा इंजिनियरों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि - "ठीक है समज गया। उपर से प्लास्टर हो ही चुका है। इसमें भीतर से सेंधों में सीमेन्ट और रेत भरवा दीजिए। भीतर से प्लास्टर हो जाने पर एक बूँद नहीं आयेगी मैं समज

गया कि ज्यों-ज्यों देश में इंजीनियरिंग कालेज खुलते जा रहे हैं, त्यों-त्यों कच्चे पुल और तिड़कानेवाली इमारतें क्यों अधिक बनते जा रहे हैं।”^(९७) इस तरह परसाईजी ने ‘बचाव पक्ष का बचपन’ में भी इंजीनियरों पर प्रहार किया है तो ‘शिकयत मुझे भी है’ में वैज्ञानिकों के बिकाऊपन पर प्रहार किया है कि - “विदेशो से हम गेहूं, चावल वगैरेह मँगवाकर खाते हैं, मगर उसके दाम चुकाने की हैसियत है नहीं। उसके चुकावने में अगर प्रतिभाएँ दे देते हैं, तो क्या बुरा है? तुमने गेहूं दिया-लो, चार वैज्ञानिक ले जाओ। मुझमें कोई प्रतिभा नहीं है, मगर मेरे बदले में अगर एक किलो गेहूँ भी मिलता है तो मैं बिकने का तैयार हूँ।”^(९८) इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी ने सभी प्रकार के व्यक्ति को चुन-चुन कर उनकी कथनी व करनी का पर्दाफाश किया है।

परसाईजी के वैयक्तिक हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति से सहज इन्सानी प्रवृत्ति व आदतों की अभिव्यक्ति हो जाती है। यही कारण है कि निंदा, स्वार्थ, वैमनस्य, आत्मप्रशंसा, झूठी आत्मीयता, दिखावा, छल-कपट, चुगली करना, हठीलापन, चाटुकारिता, क्रोधीपन, डरपोकता, झूठापन आदि मानवी सहज स्वाभाविक आदतों को भी परसाईजी ने अपने निबन्धों के विषय के रूप में लिया है। जिनसे उनके निबन्धों में बाह्य प्रवृत्तियों के साथ-साथ आन्तरिक मनोद्वन्द्वों को भी स्थान मिला है। जिनसे व्यक्ति के अन्तरमन का रहस्योद्घाटन होता है।

परसाईजी के निबन्धों में मानव मन की छोटी-बड़ी हर हल-चल को स्थान मिला है। परसाईजी ने ऐसी सभी हरकतों को काफी ध्यान से शामिल किया है। जिनसे उनका समाज जीवन के प्रति गहरा चिंतन व्यक्त होता है। वह जो आदमी हैं ना, सद्गुरु का कहना है, छोंटी सी बात, सबटेनेट की कथा, फोन टालने की कला, मेरे जेबकट के नाम, तटस्थ एक सुपरमेन, एक तृप्त आदमी, साहब महत्वाकांक्षी, चमचे की दिल्लीयात्रा, निन्दारस, रोजमर्रा का मामला, चाँद पर नहीं जा सका, बेचारा भला आदमी, स्नान, वो जरा वाईफ है ना, मुखड़ा क्या देखू फोटु में, प्रेमियों की वापसी, समय काटनेवाले, सहानुभूति, पवित्रता का दौर, सहानुभूति करेंगे, लुच्चन की भीड़ आदि अनेक

ऐसे निबंधों में परसाईजी ने मानवीय स्वभावगत व्यवहारों को व्यक्त किया है। वैसे परसाईजी के ज्यादातर निबन्धों में मनुष्य के विभिन्न व्यवहारों को प्रवृत्तियों को व्यक्त किया है। जहाँ भी मानवीय व्यवहार में कथनी व करनी की भिन्नता दिखायी पड़ती है वहाँ सहज ही विसंगति का जन्म होता है। 'प्रेमियों की वापसी' में मिसेज शर्मा का बयान यही दर्शाता है, वह रंजना से कहती है कि - "मैं तो इस हेडमास्टर का धमण्ड तोड़ना चाहती थी। यह बड़ा कठोर और सदाचारी बनता था। राष्ट्रपति से तमगा ले आया था। पर जब मैंने इसे तोड़ा तो तमगा बेचकर मेरे चक्कर लगाने लगा। झूठबोलना इसने यहाँ भी नहीं छोड़ा मेरा हार्टफेइल होने से कहता है कि मैंने तुम्हारे लिए आत्महत्या कर ली देख तुझे जो करना हो, जल्दी कर लेना। पुरुष का कोई भरोसा नहीं। पर हेडमास्टर चोरी-चोरी अपनी साली की तलाश करता है।"^(९९) परसाईजी ने जहाँ भी झूठ, कपट, स्वार्थ, दिखाय दिया उसे लताड़ है पानी मनुष्य के भीतर जो मनुष्य होता है उनकी खबर ली है। आज मनुष्य का बाहरी विकास ज्यादा होता है, भीतरी रूप से तो वो सिकुड़ता जा रहा है। आज स्वार्थ इतना बढ़ गया है, अविश्वास इतना फैला हुआ है कि आप अच्छा काम करो या तो किसी का भला करो तो भी उन पर नुकतेचीनी होती है। परसाईजी ने 'चाँद पर नहीं जा सका' निबन्ध में लिखा है कि - "पुल लोगो के सुभीते के लिए बनाया गया है, मगर दुष्ट लोग कहते हैं देख लेना इधर के खाली प्लॉट में किसी 'बड़े' का मकान बनेगा। ऐसा न होता तो पुल क्यों बनता?"^(१००) परसाईजी ने मानवी की स्वभावगत विचित्रता को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। उनकी सोच को उजागर किया है। मनुष्य स्वभाव को करीब से देखा जाय तो उनका मैलापन सहज ही दृष्टिगोचर होगा। परसाईजी ने आज के मानवीय मन को करीब से देख मनुष्य स्वभाव के अनेक पहलु के दर्शन करवाये हैं।

६.८ परसाईजी के निबन्धों में भाषा एवं शब्द चयन :-

भाषा साहित्यकारों के लिए वह माध्यम है जिसे वह सप्रयास सवार के उनको श्रेष्ठतम रूप में व्यक्त करने का प्रयास करता है क्योंकि वह अपने आप को व्यक्त करने

का माध्यम है जो अपनी पहचान बना सकता है, एक तरह से भाषा लेखक का पाठकों तक पहुँचने का सम्बल है ये वह जरियाँ हैं जिन पर सवार होकर लेखक पाठकों के हृदय में अपना उचित स्थान बनवाता है। अनुभूति चाहे कितनी ही वेगवान हो, प्रबल हो, संवेदनशील हो, पर उस अनुभूति को उचित भाषा का सहारा न मिले तो वो अपनी अनुभूतियों को वाचा देने में नाकामियाब हो जाता है, यही कारण है कि हर साहित्यकार का प्रयास रहता है कि उनकी रचना में उत्तमोत्तम भाषिक अभिव्यक्ति हो।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भाषा की बात करे तो उच्चरित ध्वनि-संकेतों की सहायता से जब किसी भाव या तो विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है वह भाषा कहलाती है। भाषा, भावों और विचारों के आदान-प्रदान का सामाजिक माध्यम है और समाज की गतिशील इकाई है। समाज की सब गतिविधियों का हिसाब-किताब भाषा सुरक्षित रखती है। भाषा की अपनी ध्वनि-प्रकृति होती है, अपनी भावप्रकृति होती है, अपना शब्द भंडार होता है। जिनके सहारे वह पाठकों पर अपनी छाप छोड़ते हैं। भाषा वैचारिक परम्परा, जीवानानुभवों एवं जीवन दर्शन को व्यक्त करने का आधार है।

सामाजिक एवं व्यावसायिक रूप से जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषिक अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार से साहित्यिक नज़रिये से देखे तो साहित्य के विभिन्न रूपों में उस रूप के अनुसार ही भाषा का प्रयोग होता है उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि सभी विधाओं की भाषा में भिन्नता देखी जा सकती है। उसी प्रकार से व्यंग्य-विधा की भी अपनी भाषा होती है, अपने तेवर होते हैं, उसे उस अंदाज़ से व्यक्त किया जाय तो भी वे असरकारक सिद्ध होते हैं।

हास्य-व्यंग्य विधा की भाषा अन्य विधाओं से अलग पड़ जाती है। क्योंकि इसमें वास्तविकता को वाणी दी जाती है। इसलिए उनके तेवर बदल जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि - “व्यंग्य की भाषा शास्त्र की भाषा नहीं होती। व्यंग्य-भाषा के अपने तेवर होते हैं। इनकी भाषा आदमी की अपनी जिन्दगी के अत्यधिक निकट होती है। व्यंग्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है अतः उस युग का आदमी जिस तरह अपनी रोजमराई की जिन्दगी बसर करता है। साँसे लेता है और अपने तरीके से जिन्दगी का सलीब ढोता रहेता है

उसकी अभिव्यक्ति भाषा में होना अनिवार्य है तभी व्यंग्य प्रामाणिक और प्रभावोत्पादक बन पाता है।”^(१०१) इनसे स्पष्ट है कि व्यंग्यकार को अपनी भाषा गढ़ने के लिए सामाजिक व्यवहारों में तरबतर होना पड़ता है। ये उसे किसी शास्त्रीय संदर्भों में नहीं मिलता उसे लोकजीवन के नाना व्यवहारों को आत्मसात करने पड़ते हैं। व्यंग्यकार के लिए जीवन और जगत की गहरी पकड़ जरूरी है। इस सन्दर्भ में चतुर्वेदीजी का मानना है कि - “उत्तम व्यंग्यकार श्रेष्ठ व्यंग्य की सृष्टि करने के लिए वक्र-उक्ति, संदर्भ विपर्यय श्लेष, वचन विदग्धता आदि का कुशलता पूर्वक प्रयोग करता है।”^(१०२) डॉ.पुणतांबेकर के अनुसार - “व्यंग्य का अपीलिंग अभिव्यक्ति की विदग्धता पर निर्भर रहती है।”^(१०३)

इनसे स्पष्ट है कि - “व्यंग्य लेखक के भाषा सबन्धी आदर्श सामान्य लेखकों के भाषा-सम्बन्धी आदर्श से निश्चय ही भिन्न होंगे। जैसे नाई हजामत बनाने से पहले अपने अस्तुरे को तेज करता है और ऊँगली पर धार की परख भी कर लेता है उसी प्रकार व्यंग्य लेखक को अपनी भाषा की जाँच कर लेनी चाहिए। व्यंग्य लेखक की भाषा में धार और नोंक दोनों जरूरी हैं। कभी वह नशतर लगता है कभी खंजर चुभोता है। यदि उसकी भाषा एक रस और एक ढंग की होगी तो वह यह काम बखूबी नहीं कर सकता।”^(१०४)

इस सन्दर्भ में एक हास्य-व्यंग्य निबन्धकार के रूप में परसाईजी के निबन्धों को देखा जाय तो उनकी भाषा व शब्दचयन में व्यंग्य साहित्य के वे सभी आयाम दिखाई देते हैं जो व्यंग्याभिव्यक्ति के लिए जरूरी माने गये हैं। परसाईजी के निबन्धों ने ही हास्य-व्यंग्य साहित्य के लिए नवीन दृष्टि का निर्माण किया है। व्यंग्य लेखन के लिए परसाईजी ने ध्वनि तत्व, भावतत्व और शब्दभण्डार के स्तर पर भाषा का जो स्वरूप स्थिर किया है, वह बोली के आँगन का है। इसी से उनका लेखन गाँव का मामूली पढ़ा किसान और मजदूर अपना मानता है और नगर का हर वर्ग जो सर्वहरा है अपना मान बैठा है।”^(१०५) परसाईजी ने भाषा को ही अपने श्रेष्ठ हथियार के रूप में माना है।

विसंगतियों पर चोट करने के लिए धारदार भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने काफी समझदारी के साथ लिखा है। उन्होंने शब्दों को बजा-बजा कर व चून-चूनकर लिया है। इसीलिए ही वह बेचेन बना देने वाले भाव पैदा कर सके हैं। व्यंग्य के स्वाभावानुरूप - “बिना लिहाज किये प्रहार करने की जब-जब जरूरत होती है, तब परसाईजी की भाषा भी मारक बन जाती है। उन्होंने अपने निबन्धों में सहज भाषा, चलती भाषा, जन भाषा, गलियों की भाषा, लोकभाषा का प्रयोग किया है। परसाईजी की ऐसी भाषा सीधे-सीधे जन सामान्य से जुड़ जाती है। - आमूं-सामूं (आमने-सामने) बतियाँति हैं। जो विशेष असरकारक सिद्ध होती है।

परसाईजी ने अपनी भाषा को बोलियों का रंग तो दिया साथ ही उन्होंने भाषा को पात्रानुकूल, घटनानुकूल, विषयानुकूल, समयानुकूल रूप से परिवर्तित किया जिनसे उनके निबन्धों में सहज ही अपनत्व पैदा हुआ हैं। उनके सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, धार्मिक व सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य निबन्धों की भाषा व शब्द-चयन में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। यही कारण है कि उन्होंने अनगिनत निबन्धों की रचना की है पर हर निबन्ध अपने आप में नवीनता व ताजगी का एहसास करवाता है। उनका व्यंग्य लेखन दिन ब दिन धारदार होता हुआ नज़र आता है। परसाईजी की भाषा में व्यंग्यात्मकता, उक्तियों में वक्रता एवं श्लेषत्व बराबर मिलता है। उनकी भाषा में कोई शब्द या वाक्यांश व्यर्थ व अर्थहीन प्रतीत नहीं होता। वचन वैदग्ध्यता के कारन ही परसाईजी के निबन्ध जीवंत लगते हैं। “आज की स्थिति को देखते हुए यह जरूरी है कि भाषा फूलों-पत्तियोंवाली न रहकर बिलकूल लडाकु, खतरनाक, अशिष्ट बन जाना स्वाभाविक है।”^(१०६) परसाईजी के निबन्धों में ऐसी ही भाषा का प्रयोग हुआ है जैसे....

- ☞ स्वतंत्रता दिवस भीगता है और गणतन्त्र दिवस ठिठुरता है - ठिठुरता हुआ गणतंत्र
- ☞ गणतन्त्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टीका है - ठिठुरता हुआ गणतन्त्र
- ☞ जूते तो मारे जाते हैं, वे खाये कैसे जाते हैं। मगर भारत में इतना भूखमरा है कि जूते भी खा जाते हैं - दो नाक वाले लोग

- ☞ यह नई किस्म का कमल इस देश में पैदा हुआ है, जो तभी खिलता है, जब आस-पास पुलिस हो - करमकल हो गये
- ☞ गाली वही दे सकता है जो रोटी खाता है। पैसा खानेवाला सबसे डरता है। - ठिठुरता हुआ गणतन्त्र
- ☞ इस देश में जो किसी की नौकरी नहीं करता, वह चोर समजा जाता है - ठिठुरता हुआ गणतन्त्र
- ☞ बेटा, जो भी करना है 'लार्जस्केल' पर कर चाहे उद्योग हो या बेईमानी - सद्गुरु का कहना है
- ☞ धर्म की संस्थापना तो साम्प्रदाईक दंगों से हो रही है - हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं
- ☞ पाखंड संक्रामक बीमारी है। इसके 'कीटाणु' उसी जाति के शरीर में रहकर उसी को खोखला कर रहे हैं - अपना चाचा एशियाई फ्लू
- ☞ मैं न्याय नहीं अन्याय हूँ। नंगा ही रहेता हूँ, अन्याय को क्या शर्म - एक काना एक एचकताना
- ☞ भारतीय प्रजातंत्र का यह सौभाग्य है कि यहाँ स्वतंत्रता के बाद बहुत जल्दी काफी संख्या में चमचे बन गये। - चमचे की दिल्ली यात्रा
- ☞ आपका सत्य अगर डिग्री लेना है तो पेपर आउट व नकल करने के लिए अध्यापक से मारपीट तक करें - एक दीक्षांत भाषण
- ☞ सौन्दर्य स्त्री की वह मोहिनी शक्ति है, जिनके वशीभूत होकर पुरुष रद्दी सामान खरीद लेता है। - विज्ञापन में बिकती नारी

परसाईजी ने अपनी ऐसी लक्षणा एवं व्यंजनात्मक भाषा के जरिये ही निबन्धों को प्रभावकारी बनाया है। जैसे कहा जाता है कि व्यंग्य की भाषा नीर के बराबर होती है। ऐसी भाषा के द्वारा ही परसाईजी ने एक सफल व्यंग्यकार के रूप में सम्प्रेषण की नई-नई मंजिलों को छूआ है। परसाईजी ने भाषा का सार्थक व सृदढ़ प्रयोगकर हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों को बराबर माँजा है। परसाईजी ने अपने निबन्धों में जिस प्रकार से

मुहावरो, कहावतों, सूक्तियों, प्रतिकों, बिम्बों एवं विविध प्रकार के शब्दों का व्यंग्य-विधा के स्वभावानुसार प्रयोग कर भाषा को वैविध्यपूर्ण, धारदार एवं जीवंत बनाया है।

परसाईजी ने अपने निबन्धों में मुहावरो एवं कहावतों का विशेषतः प्रयोग किया है। जिनसे उनके निबन्धों में एक नई ताज़गी देखी जाती है। जागरुक लेखक लोकभाषा के सहारे अपनी भाषा का नूतन संस्कार करता है, उसमें ताज़गी भरता है, उसे प्राणवान बनाता है। प्राचीन कवि विद्यापति से लेकर तुलसीदास तक सभी ने यही किया है। परसाईजी ने भी यही किया। अपनी भाषा को नया अर्थ व ताजगी प्रदान करने के लिए लोक-जीवन में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरो का प्रयोग किया। व्यंग्य भाषा को और अधिक धारदार, प्रभावी एवं प्रखर बनाने में मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग प्रमुख रूप से किया जाता है। परसाईजी ने अपने निबन्धों में उनका व्यापक प्रयोग किया है, “बरकरार निकलना, पुरा न पड़ना, धोबी पछाड देना, चेहरा उतरना, हीं-हीं करना, पोल खोलना, शोहरत हासिल होना, रंगे हाथो पकड़े जाना, बाज न आना, पसीना आना, हाबी होना, नाम को रोना, मुहजोही करना, लंगोटी तक उतार कर देना, पानी छानकर पीना, पुराण मुह पर मारना, मखमल की म्यान, नंबर दो की आत्मा होना आदि मुहावरो के माध्यम से परसाईजी ने अपनी अभिव्यक्ति की धारतेज की है, जैसे

- ☞ जो पानी छान कर पीते हैं, वे आदमी का खून बिना छने पी जाते हैं - बेईमानी की परत
- ☞ पवित्रता का पानी लोटे में लिए फिरना - प्रेम की बिरादरी
- ☞ हमने हर चीज का शीलभंग हो जाने दिया - करकमल हो गये
- ☞ जनता की पुकार कभी-कभी मेमने की पुकार जैसी होती है - हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं।

परसाईजी ने ऐसे मुहावरो का वाक्यों में प्रयोग कर अपनी भाषा को चेतना प्रदान की हैं साथ-साथ कहावतों के जरिये उन्होंने माहोल में वास्तविकता लाने का प्रयास किया हैं। लोकोक्तियाँ पाठकों पर विशेष असर छोड़ जाती है। जिनके माध्यम से परसाईजी ने अपनी निबन्ध रचना को ठोस व आधारभूत बनाया है। लोकोक्तियाँ मानव

स्वभाव का प्रतिबिम्ब होती है। लोकोक्तियाँ एक पूर्ण वाक्य होती हैं जो सारगर्भित होती हैं जिससे गागर में सागर भरने की क्षमता होती है। परसाईजी ने ऐसी लोकोक्तियों का उचित प्रयोग किया है। जैसे.....

- ☞ आदमी मर्द नहीं पैसा मर्द होता है - जिसकी छोड़ भागी है
- ☞ हारा हुआ राजा रानीवास में जाता है हारा हुआ नेता राजनीति में - गांधीजी की शाल
- ☞ झूठ बोलने के लिए सबसे सुरक्षित जगह अदालत है - एक काना एक एचकताना
- ☞ सत्य के कई मुख होते हैं - अनशनकारी
- ☞ झूठ का पर्दा उठा लों तो सत्य नंगा बैठा दिखता है - एक काना एक एचकताना
- ☞ साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप - एयरकण्डीशन्ड आत्मा
- ☞ समर्थ को दोष नहीं लगता - एयरकण्डीशन्ड आत्मा

इस तरह परसाईजी ने भाषा को आकर्षक, ओजपूर्ण, प्रभावशाली एवं प्रखर बनाने के लिए मुहावरों, कहावतों का प्रयोग किया है।

परसाईजी ने अपनी भाषा को गहराई प्रदान करने, अपने समाज दर्शन को व्यक्त करने हेतु जगह-जगह पर सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। “सूक्तियों का अर्थ है ‘उत्तम उक्ति या कथन, सुंदर पद या वाक्य आदि सुभाषित, सूक्ति में सत्य के उद्घाटन की अद्भुत क्षमता विद्यमान होती है तथा पाठक पर भी सूक्ति का प्रभाव दीर्घकालिक पड़ता है। सूक्तियाँ आप्तवाक्य होती हैं। इसके प्रयोग से भाषा में सुत्रात्मकता के गुण का समावेश होता है। इनमें जीवन सत्यों, अनुभवों, आदर्शों, चिंतन-मनन तथा विचारों का सार निहित होता है।”^(१०७) परसाईजी ने अपने निबन्धों में इसका विशेषतः प्रयोग किया है। जैसे “जीवन शक्ति बेशर्मी का दूसरा नाम है।” (शिकायत मुझे भी है-पृ.१०२), बेईमानी के पैसे में ही पौष्टिकतत्त्व बचे हैं (काग भगोड़ा-पृ.५२), जुठ बोलनेवालों के लिए सबसे सुरक्षित जगह अदालत है (शिकायत मुझे भी है-पृ.२७), साहित्य के नंगेपन का पेमेंट अच्छा होता है (विकलांग श्रद्धा का दौर-पृ.५२), अध्यापक की दृष्टि में जिन्दगी व्याकरण की पुस्तक हो जाती है (शिकायत मुझे भी है-पृ.१२४), धर्म अच्छे को डरपोक

और बुरे को निडर बनाता है (शिकायत मुजे भी है-पृ.२७), भले और बुरे में सिर्फ ढँके और खुले का फर्क होता है (शिकायत मुजे भी है-पृ.२७), ठीक ढंग से बोले गये झूठ को सत्य कहते हैं (शिकायत मुजे भी है-पृ.३२७)^(१०८) परसाईजी ने इन सुक्तियों के माध्यम से अपने हास्य-व्यंग्य की भाषिक अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली व गहन बनाया है।

परसाईजी की भाषिक अभिव्यक्ति में शब्द वैविध्य शब्दों का चुनाव विशेष महत्त्व रखता है। किसी भी कथ्य का भाषिक रूप तभी उचित महत्त्व एवं असरकारक सिद्ध हो सकता है जब उनकी शब्द-योजना सही, स्पष्ट व प्रसंगोचित हो। विभिन्न रूपों के शब्दों का सम्पादन करने में परसाईजी को विशेष माहीरियत हांसिल है। उनका हर निबन्ध इसलिए ही प्रभावीरूप से व्यक्त हुआ है। तत्सम् शब्द, तद्भव शब्द, आँचलिक शब्द, विदेशी शब्द के माध्यम से अपने निबन्धों को गढ़ा है। “परसाईजी ने उन शब्दों को भी हथियार बनाया है, जिनके आस-पास सांस्कृतिक वातावरण लिपटा है, ऐसे स्थानों पर शब्द के साथ जो पुराना अर्थ है, वह पाठक के जेहन में खुलता है और नये अर्थ की बराबरी में आकर बोध को खरोंचता है।”^(१०९) परसाईजी ने परम्परा से हटकर नवीन शब्दों का संचय किया है जो वर्तमान सन्दर्भों के साथ जुड़कर नवीन भावबोध की अनुभूति करवाते हैं। परसाईजी ने परम्परागत रूप से तत्सम्, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग सहज रूप से किया है। “परसाईजी ने विषयानुसार चलती ढलती भाषा का प्रयोग किया है। रोजाना बोलचाल के शब्दों का प्रयोग कर व्यंग्य निबन्धों को सशक्त करने में योगदान दिया है।”^(११०) संस्कृत की तत्सम् शब्दावली और तद्भव शब्दों के प्रयोग पौराणिक पात्रों को आधार मानकर या साहित्य कला-संस्कृति के विद्वुषों के चित्रण के सन्दर्भ में देखे जा सकते हैं जैसे पूजा, यज्ञ, बन्धुत्व, स्नान, शुभकामना, कुकर्म, वैषम्य, साँप, चाँद, श्रद्धा, श्रद्धेय, वर्षा, समर्पण, निर्भय, दर्शन, इश्वर, बाँसूरी, श्रोता, व्यर्थ, शंख आदि तो अरबी-फारसी-उर्दू के प्रयोग पात्रानुकूल तथा सहज रूप से भाषा में घुल-मिल गये शब्दों के साथ द्रष्टव्य है जैसे, सिर्फ, गोश्त, फरार, मुर्गा, जुर्म, इस्तेमाल, बेकसुर, शराफत, रोजमर्रा, बेईमानी, बेवकुफ, इमान, शहादत, खतरनाक, निशान, बद्तमीज, नशा, जुलूस, अखबार, जबान, गज़ल, वाकई, कम्बख्त, जवाब, दिमाग,

तुफान, तस्वीर आदि परसाईजी ने आज की आधुनिक सभ्यता और उसके अंगो-उपांगों के विवेचन में अंग्रेजी-भाषा और उसके शब्दों, वाक्याखण्डों के प्रयोग किये हैं। 'कहावतों का चक्कर' निबन्ध में तो परसाईजी ने अंग्रेजी कहावतों का ही आधार लिया है जैसे

- ☞ ओनेस्टी इज द बेस्ट पोलिसी
- ☞ लुक बिफोर यू लीप
- ☞ ए मैन इज़ नोन वाई द कम्पनी ही कीट्स
- ☞ ब्लड इस थिकर धेन वोटर

इस तरह परसाईजी ने विदेशी शब्दों का भी बखूबी प्रयोग किया है, तो कई जगह तत्सम् के साथ अंग्रेजी शब्द का योग पाया जाता है जैसे - इतिश्री रिसर्चाय, आफ्टरम्, एशियाई गर्व आदि तथा विशेषणधर्मी, अनुकरणवाची, विरोधी युग्मवाचक एवं निरर्थक शब्दों की भी भरमार है। उसी प्रकार से परसाईजी ने अपने निबन्धों में भारत के विभिन्न आँचलो में बोली जाने वाली प्रादेशिक भाषा व बोलियों का भी प्रयोग किया है। जहाँ घृणा, आक्रोश, वैर, जुगुप्सा प्रगट की है वहाँ गालियों तक का प्रयोग किया है क्योंकि विसंगति, असंगति, विकृति जब असह्य हो तो ऐसे शब्दों का प्रयोग होना सहज है। इनके अलावा नवीन आविष्कारों से सबन्धित तकनीकी शब्दावली, राजनीतिक व प्रशासनिक शब्दावली और कला-साहित्य, संगीत, दर्शन सम्बन्धी शब्दावली भी पाई जाती है तो विभिन्न प्रतिकों, बिम्बों, उपमाओं के लिए भी नवीन शब्दों का आविष्कार किया है।

इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी की भाषा व शब्दचयन पर किसी भी प्रकार का कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता क्योंकि उन्होंने हास्य-व्यंग्य निबन्धों के स्वाभावानुसार उसकी अभिव्यक्ति की है, "परसाईजी की भाषा विविध स्तरों और अनेक पतों के भीतर चलनेवाली किसी करंट की अन्तर्धारा की तरह है। यह भाषा सहज, सरल और अत्यन्त धारदार तो है ही, साथ ही इसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, स्थितियों, सम्बन्धों और घटनाओं के यथार्थ वर्णन की भी अद्भूत क्षमता है।"^(१११) परसाईजी ने सोच-समझकर भाषा व शब्दों को अपनाया है। इसलिए उनका शब्दचयन बेचेनी करदेनेवाला भाँव पैदा करता है। इस तरह शब्दों से जो भाव उपजता है वह विशिष्ट घ्वनि का संचार करता है

जो हमें अपना व सहज लगता है। “परसाईजी ने भाषा के रचनात्मक मानकों से रिश्ता कायम किया और सामाजिक प्रेरणा के लिए अपनी सटीक भाषा रची। उन्होंने भाषा में संवेदनात्मक प्रयोजन को उभारा। उन्होंने सौंदर्य शिक्षा के लिए लोकभाषा की लहरों और अनुगूँजों को खोजा।”^(११२) जिससे वह एक आज़ाद भाषा का निर्माण कर सके, स्वतंत्रभाषा का निर्माण कर सके, परसाईजी की भाषा में जो नाविन्य एवं वैविध्य है वह आज के आधुनिक हास्य-व्यंग्य लेखकों के लिए आदर्श रूप है। अपने हास्य-व्यंग्य लेखन को उचित अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु परसाईजी ने प्रसंगोचित, विषयानुकूल शब्दों की जो तोड़-मरोड़ की है व नवीन शब्दों को गढ़ा है जिनसे उनकी भाषा हरदम तरौताजा बनी रही है, जिसका लहज़ा सादा है लेकिन लक्ष्य अचूक हैं।

६.९ परसाईजी के निबन्धों में व्यक्त शैली :-

कोई भी रचनाकार अपनी रचना के लिए जितना महत्त्व कथ्य को, भाषा को देता है, उतना ही या तो कहे कि उससे भी कुछ ज्यादा महत्त्व उसे व्यक्त करने की शैली को देता है। क्योंकि कथ्य रचना की आत्मा है। भाषा उनकी जबान है तो उसे व्यक्त करने का ढंग, लहजा या शैली रचना की सम्प्रेषणीयता का प्रमुख आधार है। “कुशल साहित्यकार कथ्य को संप्रेषित करने के लिए भावों, विचारों, एवं कल्पनादि की सटीक तथा प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप शिल्प-सौष्ठव का विनियोग बड़ी कुशलता के साथ करते हुए अपनी रचना-निर्मिति को रमणीय बना देता है।”^(११३)

आधुनिक हिन्दी गद्य-विधाओं को शैलीय अनुसंधान से परखा जाय तो विभिन्न गद्य-विधाओं में निबन्ध ही ऐसी विधा है जो शैली की दृष्टि से काफी विकसित विधा है। निबन्ध एक ऐसा गद्य है जिसमें समस्त गद्य साहित्य की शैली का समावेश किया जा सकता है। “गद्य शैली के विकास के लिए निबन्ध से अधिक उपयुक्त कोई विधा नहीं हो सकती।”^(११४) उसमें भी साधारण निबन्ध एवं हास्य-व्यंग्य निबन्धों के बारे में देखे तो हास्य-व्यंग्य निबन्धों में विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग सहज ही संभव हो जाता है, वैसे शैलीय अभिव्यक्ति रचनाकार एवं रचना की विषयवस्तु पर निर्भर होती है पर उन

पर मूलभूत रूप से विधा का भी प्रभाव रहता है।

हास्य-व्यंग्य विधा की शैली अन्य विधाओं से भिन्न होती है उसमें विविध शैलियों की अभिव्यक्ति सहज हो जाती है। व्यंग्य-विधा के विकास के पीछे उनका शैलीगत वैविध्य ही कारणभूत है। “अपने भीतर की उमस, बेचेनी को प्रगट करने के लिए व्यंग्यकारों ने शैली की दौड़ में साहित्य की अन्य विधा से नवीनता दी है।”^(११५) शैली की दृष्टि से व्यंग्य ही ऐसा लेखन हैं जिसमें सब विधाओं की गुंजाईश है। व्यंग्य जहाँ निबन्ध, कहानी, एकांकी, इन्टरव्यू आदि किसी विधा का शैली रूप अपनाता है वहाँ पुराण, पंचतंत्र, लोककथा की पुरातन शैलियों को भी आत्मसात करता है। फैंटसी, मिथक, बिम्ब मानवीयकरण का प्रयोग भी व्यंग्य में होता है आज की विकसित रचना प्रक्रिया का कोई भी ऐसा अंग नहीं जिसको व्यंग्य ने न अपनाया हो।”^(११६) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य-व्यंग्य के कथ्य विस्तार का दृष्टिगत रखते हुए व्यंग्यकारों ने उसकी काया के अनुरूप आवरण देने की चेष्टा की है। जितना विस्तार व्यंग्य की विषयवस्तु का है उतना की फैलाव उसकी प्रस्तुति-प्रविधि का भी। हिन्दी गद्य व्यंग्यकारों ने साहित्य की अनेक प्रचलित कथन-शैलियों का प्रयोग किया है।

- | | |
|------------------------------|---|
| (१) वर्णनात्मक | (११) अन्योक्ति शैली |
| (२) विवरणात्मक | (१२) पैरोडी शैली |
| (३) आलोचनात्मक | (१३) रेखाचित्र शैली |
| (४) समासशैली | (१४) संस्मरणात्मक शैली |
| (५) पत्रात्मक शैली | (१५) लोककला शैली |
| (६) साक्षात्कार शैली | (१६) डायरी शैली |
| (७) पौराणिक (व्यास) कथा शैली | (१७) आत्मकथा शैली |
| (८) समीक्षात्मक शैली | (१८) रिपोर्ताज शैली |
| (९) फंतासी शैली | (१९) पत्र शैली |
| (१०) मिथकीय शैली | (२०) निबन्ध, कहानी, कविता, उपन्यास आदि विद्यागत शैली।” ^(११७) |

इस सन्दर्भ में हम परसाईजी के हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों को तराशे तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि परसाईजी के कथ्य में जो वैविध्य है वैसा ही वैशिष्ट्य उनकी शैली में है, “शिल्प के नये प्रयोग के माध्यम से उन्होंने व्यंग्य को संवारा तथा अधिक शक्तिशाली बनाया है।”^(११८) शैल्यिक प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी-व्यंग्य निबन्धों को परसाईजी ने अनेकोन्मुखी नूतन शिल्प प्रयोग के द्वारा सशक्त एवं समृद्ध किया है। “हरिशंकर परसाई के निबन्धों की अपनी शैली है। परम्परागत निबन्ध परिभाषाओं में उसे नहीं समजा जा सकता। उनके निबन्धों में कहानी, कविता और रेखाचित्रों के अंतर्सम्बन्ध मिलते हैं। निबन्ध के भीतर कहानी और कहानी के भीतर निबन्ध का होना तो आम बात है। वे रेखाचित्र खींचते हैं, फिर अपनी ओर से कुछ कहते हैं। इस तरह रेखाचित्र के भीतर निबन्ध घुस आया।”^(११९) इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी ने शैली की दृष्टि से अपने निबन्धों को जो वैविध्य प्रदान किया है वो दर्शनीय तो है ही पर पथ प्रदर्शक भी बन पड़ा है। परसाईजी ने अपने निबन्धों के विषयों को धारदार व स्वाभाविक बनाने के लिए नवीन शैलियों का प्रयोग कर हास्य-व्यंग्य निबन्धों की ठोस भूमि तैयार की, उसे कम से कम समय में ख्याति प्रदान करते हुए लोगभोग्य बनाया। परसाईजी ने अपने निबन्धों में परम्परागत शैली की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बहोत सी नवीन शैलियों का सुचारु समायोजन किया है। परसाईजी ने वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, ललितात्मक, समीक्षात्मक, पत्रात्मक, आलोचनात्मक, संस्मरणात्मक, रेखाचित्रात्मक, आत्मकथनात्मक, रिपोर्ताज, काव्यात्मक आदि विधागत रूपों के साथ-साथ संवादात्मक, लोककथात्मक, कथनात्मक, उपदेशात्मक, प्रश्नार्थत्मक, सूत्रात्मक, प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक, अलंकारात्मक, मिथकीय, फेंटसी, मानवीयकरण, परिभाषात्मक, सादृश्यमूलक, विचलनयुक्त, कोष्टक आदि बहोत से ऐसे शैलीय रूपों को परसाईजी ने अपने निबन्धों के विषयों की अभिव्यक्ति के साथ ऐसे जोड़ दिया है कि उनका कथ्य-शिल्प के नावीन्य से व शिल्प कथ्य के वैविध्य से प्रतिबिम्बित होता है। जिनसे युगीन साहित्य विशेषतः प्रभावित हुआ है। - “संवेदन की विलक्षण दुनिया और संप्रेषण की अनूठीभंगिमाँ द्वारा परसाईजी ने स्वस्थ और प्रतिबद्ध व्यंग्यकार की तमाम शर्तों को पूरा किया है।”^(१२०)

परसाईजी का हर एक निबन्ध शैली की दृष्टि से अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं। - “परसाईजी ने अपना अधिकांश व्यंग्य लेखन निबन्ध शैली में किया है। परन्तु इनके निबन्ध विषय विशेष से बंधे नहीं रहते हैं। ललित निबन्धों की तरह विषयबद्ध विषयांतर करते नज़र आते हैं। इनके निबन्धों के स्वरूप में भी विभिन्नता है।”^(१२९) परसाईजी का हर एक निबन्ध अपनी विशिष्ट शैली का परिचायक है। उदाहरण रूप कुछ निबन्धों के बारे में कहे तो ‘सदाचार का तावीज’, ‘जैसे उनके दिन फिरे’, लोक कथा शैली में लिखे हैं। ‘सोने का साँप’, ‘गांधीजी की शाल’, प्रतीक शैली में, ‘मेरे दुर्जन काँग्रेस जन’ इन्टरव्यू शैली में, ‘रामसिंह की ट्रेनिंग’, कथा शैली में, ‘मेरे जेब कटके नाम’ पत्रशैली में, ‘इन्स्पेक्टर मातादीन चाँद पर’, ‘धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र’ फैंटसी शैली में, ‘लिटरेचरने मारा तुम्हें’ व्यक्ति परक शैली में, ‘एक दिक्षांत भाषण’ भाषण शैली में, ‘प्रेम पुजारी’ समीक्षा शैली में, ‘इतिहास का सबसे बड़ा जुआ’ मिथकीय शैली में देखा जा सकता है। उनकी अभिव्यक्ति हर निबन्ध में तरोताज़ा दिखाई पड़ती है। कईबार वह एक ही निबन्ध में विविध शैलीय रूपों का प्रयोग करते हैं। परसाईजी ने निबन्धों के कथ्य के साथ शैलियों का जो समायोजन किया है, उनका विशेष महत्व है। उन्होंने देख-परख कर काफी समझबूझ के साथ कथ्य के औचित्य को समझते हुए विविध शैलीय रूपों को प्रस्थापित किये हैं।

परसाईजी ने अपने निबन्धों के कथन को सरल, तरल, प्रवाहमयी, संवेदनशील, भावनासभर व रसयुक्त बनाने के लिए ललितात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, उपदेशात्मक एवं कथाशैली का प्रयोग किया है। परसाईजी ने ‘सुजलां सुफलां’ निबन्ध में अपनी इस शैली का परिचय करवाते हुए लिखा है कि - “सावन का महीना है, सात दिन बीत गये हैं और आसमान से धरती पर गिरी हुई बूंदों की गिनती की जाय तो पचास-साठ से अधिक नहीं निकल सकती, मगर सर्वहारा में प्राणशक्ति दुर्दम होती है। बाग के लाडले पौधे सूख रहे हैं, पर इन पचास-साठ बूंदों और बादलों की छाया से उपेक्षित, आवारा घास फूट निकली हैं। सूखी बदरंगी धरती पर जगह-जगह हरी घास

के 'चटपे' आ गये हैं, जैसे विरागी के फटे वस्त्र पर किसी रस-प्रवीणा भक्ति ने रंगीन पैबन्द लगा दिये हो। ये कज़री गाने के दिन हैं। चौपालो में आल्हा गाने का मौसम है। ये झमाझमवर्षा के दिन हैं, मोर के नाचने के और मेढ़क के टरने के दिन हैं।"^(१२२) इनसे परसाईजी के रचनात्मक स्वभाव का भी परिचय मिलता है।

परसाईजी ने अपने निबन्धों को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ते हुए शैली में कुछ नवीनतम अभिव्यक्ति करते हुए फैंतासी, मिथकीय, पैरोडी एवं मानवीयकरण रूपों का प्रयोग किया गया है। पैरोड़ियों की अभिव्यक्ति तो परसाईजी सहजता से कर देते हैं। परसाईजी ने कोई साधारण प्रसंग-घटना, बात अथवा वस्तु एवं पात्रगत विसंगतियों का सटीक चित्रण करने के लिए फैंटसी का प्रयोग किया है। - "परसाईजी ने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है कि फैंटसी मुझसे सधती है। मेरा बहुत कुछ सोचना फैंटसी में होता है।"^(१२३) उनके ज्यादातर निबन्धों में यह पाया जाता है। जिसमें भोलाराम का जीव, इंस्पेक्टर माता दिन चाँद पर, एयरकंडीशण्ड आत्मा, फेमली प्लानिंग, रामभरोसे का इलाज, पुत्र की पीड़ा, हास्य का नया बोध, प्रेमी के साथ सफर में अद्भुत फैंटसी का प्रयोग किया है।

परसाईजी ने मिथक शैली का प्रयोग भी उचित सन्दर्भों के साथ करके विसंगतियों को और भी ज्वलनशील बना दिया है। एकलव्य ने गुरु को अंगुठा दिखाया, हनुमानजी की रेलयात्रा इस शैली में लिखे गये हैं। - "परसाईजी के 'इतिहास का सबसे बड़ा जुआ' नामक निबन्ध में कौरवो-पांडवों के द्वारा खेले गये जुए को वक्र दृष्टि से देखा गया है। महाभारतीय जुए के समय हाजिर रहनेवाले लच्छु उस्ताद के अड्डे के एक 'छोकरे' के माध्यम से वर्तमान युगीन पावर पालिटिक्स पर करारा व्यंग्य किया गया है। परसाईजी के ही 'भोलाराम का जीव' नामक एक और व्यंग्य निबन्ध में नारदजी और धर्मराज यमदेव तथा चित्रगुप्त द्वारा अच्छे-बुरे कर्मों के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास-स्थान देने की पौराणिककथा को आधार बनाया गया है।"^(१२४) तो न्याय का दरवाजा में इसामसी की पौराणिककथा को आधार बनाकर व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है।

लंकाविजय के बाद, त्रिशंकु, पहलापुल आदि में मिथकशैली का प्रयोग हुआ है। उनके निबन्धों में मानवीयकरण की अभिव्यक्ति से भी वैदग्ध्यता व्यक्त की गई है। 'चूहा और मैं' निबन्ध में चूहे आपस में बातचीत करते हैं कि - "चल रे, मेरे साथ उस घर में। मैंने उस रोटीवाले को तंग करके डराके, रवाना निकलवा लिया है। चल दोनों खायेंगे। उसका बाप हमें खाने को देगा वरना हम उसकी नींद हराम कर देंगे।"^(१२५) ऐसी अभिव्यक्तियों से परसाईजी ने अपने निबन्धों में नावीन्य पैदा किया है।

परसाईजी ने अपने निबन्धों की शाब्दिक भंगिमा एवं भाषिक अभिव्यक्ति को बलवत्तर बनाने के लिए बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक, संवादात्मक, सूत्रात्मक, परिभाषात्मक, प्रश्नार्थक, सादृश्यमूलक, विचलनयुक्त, एवं कोष्टक शैली का प्रयोग किया है।

परसाईजी ने प्रतीको एवं बिम्बों का प्रयोग भरपूरमात्रा में किया है। प्रतीक वास्तविक रूप से ज्ञान का उपकरण है, जो समयानुसार व्यक्त किये जाते हैं, तो जब-जब कल्पना मूर्तरूप धारण करती है उस वक्त बिम्बों की सृष्टि होती है। - "प्रतीकों की पर्त दर पर्त अर्थवता और अनुकूल अर्थ गुंफन के छोरो को जिस तरह जिस आधार पर लाकर जोड़ा जाय वह रहस्यो को, उनकी कटु यथार्थता को उधाड़ने और उछेड़ने तथा अनुकूल तोखान पैदा कर पाने में सक्षम है।"^(१२६) परसाईजी ने पेपरवेट, बैगन, कौआ, हंस, भेड़िये, कुत्ता, उल्लू, सुअर, मोर, गधा, टार्च, दीमक, अयोध्या, एकलव्य, इन्द्रासन आदि अनेक ऐसे प्रतीकों को अपने निबन्धों में व्यक्त किये हैं।

प्रतीकों, बिम्बों और संकेतों का प्रयोग व्यंग्यात्मक शैली में स्वतः ही हो जाता है - "परसाईजी हमारे जातीय जीवन के अन्तर्विरोधों को जो कि सतह पर दिखाई पड़ते हैं उन्हें वे बिम्बों के माध्यम से उजागर करते हैं और गहरी सूझ-बूझ के साथ उसे हमारी धार्मिक, पौराणिक, मनोरचना से जोड़ते हैं।"^(१२७)

परसाईजी ने संवादों, सादृश्य मूलक विधानों एवं विचलनात्मक भाषिक अभिव्यक्ति से अपनी शैली को जीवन्त बना दिया है। परसाईजी के निबन्धों में उत्सफूर्त व्यंग्य सहज

संवादों में फूट पड़ता है, जैसे - “वह जो आदमी है न’ निबंध के संवाद को देखिये।

और वह जो है न, अमुक स्त्री से उसके अनैतिक सबन्ध है

मैंने कहा-हाँ यह बड़ी खराब बात है।

उसका चहेरा अब खिल गया। बोला- है न?

मैंने कहा-हाँ, खराब बात यह है कि उस स्त्री से अपना सबन्ध नहीं है।”^(१२८)

व्यंग्य की एक विशिष्ट शैली सादृश्य अथवा अप्रस्तुतो का प्रयोग रही है। जो प्राचीन शैली है पर आज के व्यंग्यकार उसे नवीन सन्दर्भों के साथ प्रस्तुत करते हैं। इन अप्रस्तुतो में स्वाभाविकता, यथार्थता, जीवन की गहरी पकड़ एवं प्रभावोत्पादक संप्रेषण की शक्ति होती है। परसाईजी के निबन्धों में भी यह प्रवृत्ति सर्वसाधारण रूप से पायी जाती है। जैस -

- अच्छी आत्मा ‘फोल्डिंग’ कुर्सी की तरह होनी चाहिए। - (पगडंडियों का जमाना)
- पवित्रता की भावना से भरा लेखक उस मोर जैसा होता है, जिसके पाँव में घूँघरू बाँध दिये गये हो - (पवित्रता का दौर)
- सूर्य कोई बच्चा तो है नहीं जो अंतरिक्ष की कोख में अटका है, जिसे आप एक दिन ओपरेशन करके निकाल देंगे (ठिठुरता हुआ गणतंत्र)

हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति जब मारक हो जाती है तो उसमें विचलात्मक भाषिक प्रयोगों की अभिव्यक्ति हो जाती है। जैसे कोई इन्सान जब आपे से बाहर हो जाता है तब उनके वक्तव्य में बहोत कुछ उल्टा-पुल्टा हो जाता है पर व्यंग्यकार कईबार अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने एवं स्वाभाविकता प्रदान करने के हेतु व्याकरणिक नियमों का उलंघन करके संज्ञा, सर्वनाम, कारक, क्रिया, विशेषण, पदक्रम आदि का स्थान परिवर्तन करके विचलन को जन्म देते हैं, परसाईजी के निबन्धों में विचलित रूपों की अभिव्यक्ति काफी असरकारक रूप से व्यक्त की गई है। - जैसे -

- अर्थशास्त्र संस्कारों के सीने पर चढ़कर गला दबा रहा है। (संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई)

- अगर अकालग्रस्त आदमी सड़क पर पड़ा अखबार उठाकर उनके पन्ने खोले तो महीनेभर भूख नहीं लगे - (अकाल उत्सव)
- हर एम.एल.ए. मुझे शक्कर का बोरा मालूम होता है - (गुण की चाय चाय)
- खाद्य विभाग के अधिकारियों को देखकर मुँहमें पानी आता है।(गुण की चाय चाय)

उसी प्रकार से - “पण्डजी, भास्साहब, कलेक्टरानी, वकीलनी और करेलामुखी जैसे प्रयुक्त शब्द का प्रयोग ध्वनि सापेक्ष विचलन को संप्रेषित करने के लिए किया गया है।”^(१२९) जिससे परसाईजी का शैलीपक्ष धारदार हुआ है।

परसाईजी ने परिभाषात्मक, प्रश्नार्थक, सूत्रात्मक एवं कोष्टकशैली का प्रयोगकर शैली के क्षेत्र में कुछ नवीन आयामों को जोड़ा है, जिनसे व्यंग्य की प्रस्तुती को बल मिलता है, एवं उचित भावाभिव्यक्ति हो सकती है साथ-साथ उनका सामाजिक, व्यावहारिक एवं लोकजीवन से जुड़ाव बढ़ता है। परसाईजी ने सूत्रात्मक शैली का प्रयोग भरपूर रूप से किया है। परसाईजी निबन्ध, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, कुछ भी लिखते हैं तो उनमें स्थान-स्थान पर ऐसे अनेको सूत्र निकल पड़ते हैं, जो खुद अपने विषय का विस्तार करने लग जाते हैं, जिनसे समाज, संस्कृति, साहित्य सबन्धी बातें व्यापक सन्दर्भ के साथ प्रतिबिम्बित होती है। सूत्रात्मकता के कारन वो बात पाठकों के ज़हन में बैठ जाती है। उदाहरणार्थ देखे तो

- “दानशीलता, सीधापन, भोलापन, असल में एक तरह का इन्वेस्टमेन्ट है।
- अमरीका हो आने से इश्वर खुद ही पास सरक आता है और इश्वर पास सरक आये तो बिजनेस ही बिजनेस है।
- पिटे हुए राजनीतिज्ञ के लिए या तो भारत सेवक समाज है या सर्वोदय।
- सफलता की चाँदनी रात में चारों तरफ उल्लू बोल रहे हैं।
- भारतीय दण्ड संहिता अगर महाकाव्य है तो अब तक रचेजानेवाले अध्यादेश ललित गीत है।
- दुनिया में कहीं भी गाय की पूजा नहीं होती, इसलिए वह दूध के काम आती है, यहाँ गाय पूजी जाती है इसलिए दंगे के काम आती है।

- इस देश में गेहूँ और शक्कर अश्रुगैस में कैसे बदल जाते हैं।”^(१३०)

ऐसी सूत्रात्मक अभिव्यक्ति के कारण परसाईजी के निबन्धों ने युग प्रवर्तकरूप धारण कर लिया है। परसाईजी ने अपनी सूत्रात्मक शैली के समान प्रश्नार्थक एवं परिभाषात्मक शैली का भी विकास किया है। जिनसे पाठकों में गुदगुदी पैदा होती है। लेखक उसे बांधकर रखते हैं। ‘संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई’ में परसाईजी ने लिखा है ? -

पूछा - कहा जा रहे हो?

बोले - प्रयाग।

लोग चोरी करने जाते हैं, तब इस शहर को इलाहाबाद कहते हैं।

पूछा - मुंडन किसलिए?

बोले - फादर की मृत्यु हो गई।

मैने कहा - मुझे पहेलीबार मालुम हुआ कि आप फादर रखते थे।^(१३१) उसी प्रकार ‘न्याय का दरवाजा’ में भी पुरे निबन्ध में इसी शैली को अपनाया गया है। तो परसाईजी ने कई ऐसी व्यंग्यात्मक परिभाषाएँ दी है। जैसे -

- “जनता उन मनुष्यों को कहते हैं जो वॉटर है और जिनके वोट से विधायक तथा मंत्री बनते हैं - (ठिठुरता हुआ गणतंत्र)
- बड़े भ्रष्टाचारी को बाइज्जत अलग कर देने की विधि को कम्पलसरी रिटायरमेन्ट कहते हैं। - (मेरीश्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ)
- क्रांति आखिर क्या है? प्यारु जिसे पैसेवाला खोल देता है और हम उसका खैराती पानी पीते हैं। - (माटी कहे कुम्हार से)
- विद्वान ज्यों-ज्यों बढ़ता है, त्यों-त्यों जात पर जात का बोध भी बढ़ता जाता है। इसीको ज्ञान कहते हैं। - (शिकायत मुझे भी है)”^(१३२)

परसाईजी ने परिभाषात्मक शैली के जरिये अपनी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को धारदार बनाया है। तो - “अर्थाभिव्यक्तियों के नये विधान एवं भाषागत वैचित्र्य को

निखारने की दिशा में परसाईजी ने सर्वाधिक रूप से कोष्टको एवं अवतरण चिह्नों का प्रयोग किया है।”^(१३३) यथा.....

- हा साहब वे अभी भी शहर की नाक है। मगर - ‘छिनकी हुई’ (यह बीभत्स रस है। इस सिद्धांत-प्रेमियों को अच्छा लगेगा) - दो नाकवाले लोग
- हमारे घर में जय की केवखत अपने खटला (पत्नी) को मदद के लिए भेज देना - “मैं अपने मकान (पत्नी) को भेज दूँगा खिदमत के लिए।” (इंस्पेक्टर मानादीन चाँदपर)

परसाईजी ने अपने व्यंग्य निबन्धों को उचित रूप में संप्रेषित करने के लिए प्रायः बहुविधात्मक साहित्यिक रूपों एवं शैलियों का प्रयोग किया है। करीब से देखें तो उनका हर एक निबन्ध एक नये ही अंदाज में व्यक्त होता हुआ पाया जाता है। उन्होंने निबन्धों की अभिव्यक्ति में विभिन्न विधाओं के रूपों को बखुबी व्यक्त करने का प्रयास किया है। नाट्यात्मकता, काव्यात्मकता, एक कहानी का सा लहेज़ा तो है ही साथ-साथ अन्य छोटी-छोटी विधाओं के रूप भी उनके निबन्धों में पाये जाते हैं जैसे ‘चमचे की दिल्ली यात्रा’ यात्रापरक है, ‘बारात की वापसी’ संस्मरणात्मक, ‘अपनी-अपनी बीमारी’ टिप्पणयात्मक है। ‘ढंपोलशंख मास्तर हो गये’, ‘अपने लाल की चिट्ठी’, ‘मूल्यों का विघटन’, ‘क्षणवाद का चक्कर’, ‘वर्षा-विद्रुप’, ‘साहित्य के गतिरोध’, ‘अंचल चाहिए’ आदि पत्र शैली में हैं। ‘सज्जन-दुर्जन और ‘काँग्रेसजन’ - ‘इन्टरव्यू परक है’, ‘वे सुख से नहीं रहे’, ‘डायरी परक हैं’, विकासकथा, रिपोर्टाजी शैली में हैं, आदि उनके अनेक ऐसे विभिन्न विधागत रूपों का प्रयोग होता हुआ नज़र आता है।

इनसे स्पष्ट है कि परसाईजी के निबन्धों में जितना विषयगत वैविध्य व्यक्त हुआ है उसे उचित रूप से सँवारने के हेतु अपने शिल्प को भी उचित संस्कार दिए हैं। परसाईजी की व्यंग्य-कला अपने आप में अद्भूत है। परसाईजी की व्यंग्य कृतियों पर रामविलास शर्मा की यह उक्ति सटीक ढंग से लागू होती है कि “गद्य का कवित्व उनका व्यंग्य है।”^(१३४) उनकी व्यंग्याभिव्यक्ति के आधार पर यह सहज स्पष्ट हो जाता है

कि उन्होंने जहाँ-जैसी आवश्यकता हो उसी रूप में व्यंग्य को छेड़ा है। कठोर भी हो जाते हैं और कोमल भी जिनसे उन्होंने सधा हुआ निशाना लगाया है। वह अपने बहुरुपात्मक व्यंग्यों से कहीं कहानीकार, कहीं पत्रकार, व्याख्याकार, नाटककार, आलोचक, संवाददाता, हो जाते हैं, तो कहीं काव्यात्मक भावुकता से, संवेदनशील कारुण्य से, पाठकों को तरबतर कर देते हैं। हिन्दी व्यंग्य को उन्होंने जो संस्कार दिये हैं वो बहुमूल्य हैं जिनसे आनेवाले हास्य-व्यंग्यकार अपने व्यंग्यालोक को इसी का आधार देकर अपनी बुलंदियों को छू सकते हैं। निःसंदेह परसाईजी ने जो व्यक्त किया है वह वैशिष्ट्य की परिसीमा से काफी आगे है। उनमें युग प्रवर्तकता के वह सभी लक्षण मौजूद हैं जिसे युगों-युगों तक याद किया जायेगा।

संदर्भ सूची

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	७०
२	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	डॉ.आनन्द प्रकाश गौतम	९४
३	आधुनिक निबन्ध साहित्य में मनोवैज्ञानिक उद्भावनाएँ	डॉ.श्रीमती प्रेमसिंह	२०३
४	परसाई रचनावली भाग-३	संपादक मंडल	६४
५	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	१७७
६	संचेतना	सं.महीपसिंह	६३
७	ठिटुरता हुआ गणतंत्र	हरिशंकर परसाई	१४
८	जैसे उनके दिन फिरे	॥	५०
९	शिकायत मुझे भी है	॥	७७
१०	वैष्णव की फिसलन	॥	१८
११	ओर अन्त में	॥	३७
१२	वैष्णव की फिसलन	॥	२०
१३	॥	॥	३३/३४
१४	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	१०२
१५	ठिटुरता हुआ गणतंत्र	हरिशंकर परसाई	२९
१६	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	१४३
१७	सदाचार का तावीज	हरिशंकर परसाई	१२०
१८	ठिटुरता हुआ गणतंत्र	॥	३०

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१९	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	॥	१५८
२०	अपनी अपनी बिमारी	॥	५४
२१	ओर अन्त में	॥	५७
२२	विकलांग श्रद्धा का दौर	॥	१२९
२३	इकोनोमिक वीकली	रजनी कोठारी (पार्टी सिस्टम)	८४९
२४	सुनोभाई साधो	हरिशंकर परसाई	१२६
२५	पगडंडियो का जमाना	॥	३३/३४
२६	सुनोभाई साधो	॥	४५
२७	पगडंडियो का जमाना	॥	१०
२८	विकलांग श्रद्धा का दौर	॥	३१
२९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	२४२
३०	निठल्ले की डायरी	हरिशंकर परसाई	४०
३१	काग भगोड़ा	॥	३३
३२	सुनोभाई साधो	॥	१७
३३	॥	॥	२०
३४	ठिठुरता हुआ गणतंत्र	॥	५४
३५	परसाई रचनावली भाग-१	संपादक मंडल	२३०
३६	निठल्ले की डायरी	हरिशंकर परसाई	२५
३७	काग भगोड़ा	॥	२५
३८	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	१५८
३९	सदाचार का तावीज	हरिशंकर परसाई	८४
४०	ठिठुरता हुआ गणतंत्र	॥	१२२
४१	शिकायत मुझे भी है	॥	११/१२

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
४२	ठिठुरता हुआ गणतंत्र	॥	९२
४३	॥	॥	९५
४४	॥	॥	९९
४५	बेइमानी की परत	॥	१८
४६	यथासंभव	शरद जोशी	२५
४७	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	९२
४८	पगडंडियों का जमाना	हरिशंकर परसाई	९९
४९	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	॥	८३
५०	पगडंडियों का जमाना	॥	१११
५१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	२१७
५२	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	१८५
५३	हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध	डॉ.आनन्द प्रकाश गौतम	१२४
५४	काग भगोड़ा	हरिशंकर परसाई	९६
५५	॥	॥	३२
५६	परसाई रचनावली भाग-१	संपादक मंडल	६९
५७	तब की बात ओर थी	हरिशंकर परसाई	११
५८	निठल्ले की डायरी	॥	३४/३५
५९	अपनी-अपनी बिमारी	॥	३७/३८
६०	पगडंडियों का जमाना	॥	५८
६१	॥	॥	५८
६२	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	॥	१५४
६३	काग भगोड़ा	॥	७४

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
६४	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	१७१
६५	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	१६२
६६	शिकायत मुझे भी है	हरिशंकर परसाई	१७
६७	काग भगोड़ा	॥	५१
६८	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	॥	४६
६९	पगडंडियों का जमाना	॥	७६/७८
७०	तिरछी रेखाएँ	॥	१०४
७१	निठल्ले की डायरी	॥	१३५/१३५
७२	शिकायत मुझे भी है	॥	२७
७३	वैष्णव की फिसलन	॥	९
७४	॥	॥	१३
७५	परसाई रचनावली भाग-५	संपादक मंडल	३९
७६	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	३०१
७७	ठिटुरता हुआ गणतंत्र	हरिशंकर परसाई	८६/८७
७८	॥	॥	९
७९	॥	॥	१०१
८०	शिकायत मुझे भी है	॥	५३
८१	परसाई रचनावली भाग-५	संपादक मंडल	९५
८२	निठल्ले की डायरी	हरिशंकर परसाई	१२९
८३	शिकायत मुझे भी है	॥	९
८४	धर्मयुग (२४ जुलाई, १९७४)	॥	१८

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
८५	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	१५३
८६	और अन्त में	हरिशंकर परसाई	२०
८७	॥	॥	६८/६९
८८	जैसे उनके दिन फिरे	॥	४०
८९	निठल्ले की डायरी	॥	३६
९०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य	उषा शर्मा	३४१
९१	सदाचार का तावीज	हरिशंकर परसाई	२६
९२	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	१८५
९३	पगडंडियों का जमाना	हरिशंकर परसाई	१०
९४	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	२१५
९५	पगडंडियों का जमाना	हरिशंकर परसाई	७६
९६	अपनी-अपनी बिमारी	॥	१३१
९७	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	॥	२१
९८	परसाई रचनावली भाग-३	संपादक मंडल	३२०
९९	सदाचार का तावीज	हरिशंकर परसाई	२९
१००	ठिठुरता हुआ गणतंत्र	॥	९९
१०१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	२५६
१०२	आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य	डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी	८१
१०३	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	४०
१०४	व्यंग्य क्या ? व्यंग्य क्यों ?	सं.श्यामसुन्दर घोष	११९
१०५	हरिशंकर परसाई की दुनिया	सं.डॉ.मनोहर देवलिया	८६
१०६	हिन्दी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	२१०

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१०७	हास्य-व्यंग्य भारती	सं.रामगोपाल सिंह	२२
१०८	॥	॥	२२/२३/२ ४
१०९	हरिशंकर परसाई की दुनिया	सं.डॉ.मनोहर देवलिया	८६
११०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार	डॉ.बापूराव देसाई	७५
१११	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना	कु.आभा भट्ट	१८८
११२	हरिशंकर परसाई की दुनिया	सं.डॉ.मनोहर देवलिया	५५
११३	समकालीन हिन्दी व्यंग्य : उपलब्धियों के नये आयाम	डॉ.भगवानदास कहार	१२६
११४	आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास	डॉ.श्याम वर्मा	३०८
११५	हिन्दी व्यंग्य विधा शास्त्र और इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	२२४
११६	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	१७६
११७	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	२८२
११८	शोध-प्रकल्प	डॉ.महेशचन्द्र वर्मा	
११९	हरिशंकर परसाई की दुनिया	सं.डॉ.मनोहर देवलिया	५२
१२०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन	डॉ.सुरेश महेश्वरी	१७६
१२१	हिन्दी व्यंग्य के प्रतिमान	डॉ.बालुन्दुशेखर जिवारी	११
१२२	परसाई रचनावली भाग-३	संपादक मंडल	१८५
१२३	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलिया	१२२
१२४	समकालीन हिन्दी व्यंग्य : एक परिदृश्य	सुदर्शन मजीठिया	३३
१२५	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	हरिशंकर परसाई	८३
१२६	आँखन देखी	सं.कमला प्रसाद	४६

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१२७	हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ.मनोहर देवलिया	१२५/१२६
१२८	ठिटुरता हुआ गणतंत्र	हरिशंकर परसाई	१५
१२९	समकालीन हिन्दी व्यंग्य : उपलब्धियों के नये आयाम	डॉ.भगवानदास कहार	१२९
१३०	हरिशंकर परसाई की दुनिया	सं.डॉ.मनोहर देवलिया	५१
१३१	परसाई रचनावली भाग-३	हरिशंकर परसाई	३१७
१३२	हास्य-व्यंग्य भारती	सं.रामगोपाल सिंह	१६/१७
१३३	समकालीन हिन्दी व्यंग्य : उपलब्धियों के नये आयाम	डॉ.भगवानदास कहार	१२७
१३४	आधुनिक हिन्दी साहित्य : विवाद और विवेचना	डॉ.मुरली मनोहर प्रसाद सिंह	२५०

अध्याय : ७

विनोद भट्ट के हास्य व्यंग्य निबंधों का आलोचनात्मक अध्ययन:-

७.१ प्रास्ताविक

७.२ विनोद भट्ट के निबंधों में राजनैतिक हास्य-व्यंग्य

७.३ विनोद भट्ट के निबंधों में प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य

७.४ विनोद भट्ट के निबंधों में सामाजिक हास्य-व्यंग्य

७.५ विनोद भट्ट के निबंधों में साहित्यिक एवं शैक्षिक हास्य-व्यंग्य

७.६ विनोद भट्ट के निबंधों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य

७.७ विनोद भट्ट के निबंधों में वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य

७.८ विनोद भट्ट के निबन्धों में भाषा एवं शब्द-चयन

७.९ विनोद भट्ट के निबंधों में शैली वैविध्य

अध्याय : ७

विनोद भट्ट के हास्य व्यंग्य निबंधों का आलोचनात्मक अध्ययन:-

७.१ प्रास्ताविक :-

स्वातंत्र्योत्तर गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध लेखकों में विनोद भट्ट, बकुल त्रिपाठी, कृष्ण पंडित, अशोक दवे, रतिलाल बोरिसागर, जतीन वैद्य, तारक मेहता, नरोत्तम वाणंद, निरंजन त्रिवेदी, निर्मिश ठाकर ने हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध के प्रवाह को निरन्तर जीवंत रखा है। जिनसे गुजराती हास्य-व्यंग्य निबंधों का अनुठा रूप व्यक्त हुआ है।

विनोद भट्ट का गुजराती हास्य-व्यंग्य निबंधों में महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। उन्होंने जो हास्य-व्यंग्य साहित्य लिखा है उनमें सबसे ज्यादा 'निबंध साहित्य' को उन्होंने चुना है। निबंध एक मुक्त विधा है, जिनमें लेखक अपने विचारों को मुक्त रूप से बिना किसी बन्धन के व्यक्त कर सकता है। विनोदभाई एक ऐसे लेखक हैं जो बिना किसी लाग-लपेट के अपने विचारों को अनियंत्रित रूप से, अबाधित रूप से व्यक्त करते हैं। यही कारन है कि उनका रुझान निबन्ध साहित्य की ओर विशेष रहा है।

विनोद भट्ट का साहित्यकार के रूप में पदार्पण निबन्धकार के रूप में ही हुआ है। उनकी १९६२ में प्रकाशित हुई प्रथम रचना 'पहेलु सुख ते मुंगी नार' निबन्धात्मक रचना मानी जाती है। विनोद भट्ट की साहित्यिक यात्रा का प्रारम्भ ही निबन्ध साहित्य से हुआ है। तत्पश्चात् उन्होंने निरन्तर रूप में इस विधा को विकसित किया है। एक प्रयोगवादी चिंतक के रूप में उन्होंने अपने निबन्धों को विविध विषयों एवं नवीन शैलियों से व्यक्त करने का प्रयास किया है। श्री रतिलाल बोरीसागर ने उचित ही कहा है कि, "'पहेलु सुख ते मुंगी नार' (जे हवे मुंगी नार नी जेम अप्राप्य छे) थी विनोद नी कलमे बोलवानुं शरू कर्यु।"^(१) फिर ये सिल-सिला आज अबाधित रूप से चल रहा है। विनोदजी ने चुटकुले, लघुकथा, कहानी, उपन्यासिका, निबन्ध, रेखाचित्र, आत्मकथा, मीमांसा आदि विभिन्न साहित्य रूपों की अभिव्यक्ति की है, पर उनकी श्रेष्ठतम् प्रतिभा का

परिचय उनकी निबन्ध रचनाओं से मिलता है। अन्य विधाओं के मुकाबले विनोदजी ने निबन्ध साहित्य विशेष मात्रा में लिखा है। उनके निबन्ध संग्रहों की बात कहे तो 'पहेलु सूख ते मुँगी नार'(१९६२) से लेकर 'मंगल अमंगल'(२००३) तक उन्होंने अठारह (१८) निबन्ध संग्रह दिए हैं। उनकी ऐसी रचनाएँ भी अनगिनत हैं। जिसे पुस्तकाकार नहीं मिल पाया। प्रफूल्ल रावल के मतानुसार, "'सूनो भाई साधो', 'विनोद नी नज़रे', 'अने हवे इतिहास', ग्रन्थ नी गडबड आदि निबन्ध संग्रहों को उनकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति के रूप में माना है।'^(२) तो डॉ.रमेश त्रिवेदी ने स्पष्ट कहा है कि, "'अत्यारे उत्तम हास्य लेखक तरिके विनोद भट्ट नुं नाम योग्य रीते ज लेवाय छे, 'विनोद नी नज़रे' ना व्यक्ति चित्रों के 'अने हवे इतिहास', 'अमदावाद एटले अमदावाद', वगैरे वगैरे, 'अत थी इति', 'प्रसंगोपात' वगैरे निबन्ध संग्रहों तेमनी वैविध्य भरी हास्य सृष्टि ना द्योतक छे।'^(३)

विनोद भट्ट ने अपने हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में विभिन्न विषयों पर अपनी कलम चलाई है। विभिन्न विषयों पर उनकी मज़बूत पकड़ ने उनके निबन्धों को वैविध्य बक्षा है। चींटी से लेकर हाथी तक, बुंद से लेकर समुद्र तक, सामान्य मानव से लेकर महामानव तक जो भी जहाँ भी विसंगतियुक्त दिखता है उसे उन्होंने विषय बना लिया है। साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, शास्त्र, इतिहास आदि विभिन्न विषयों को लेकर उन्होंने अपने निबन्धों की अभिव्यक्ति की है। इस सम्बन्ध में मधुसूदन पारेख ने अपने प्रतिभाव को व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "'विनोदे हास्य ना अनेक रूपों सफल पणे खेड्या। तेम निबन्धिकानुं स्वरूप पण खेड्युं छे। केटलीक निबन्धिकाओं मां गंभिरता नुं महोरु पहेरी ए पोतामां रहेलो विनोद छतो करतां जाय छे राजकारण, संस्कारकारण अने शिक्षण एतो एमना हंमेश ना कटाक्ष ना विषय रह्या ज छे। पण एमनी निरुपणरीति एकविध नथी, ए कटाक्ष साधवा कई-कई नवा तरीका अजमावता रहे छे - 'महाभारत नुं युद्ध एक अर्थघटन' ए निबन्धिका मां एमणे आजना चुटणी युद्ध नुं समीकरण आप्युं छे। 'गरीबी हटावो' योजनानी पोकलता लेखके सिद्ध करी बतावी छे। 'तेही ना दिवसो गताः' मां राष्ट्रीयकरण पछी बैंकनां कर्मचारियों नी लापरवाही पर फोन परनी वातचीत द्वारा, धीमे-धीमे कटाक्ष ऊघडतो जाय तेवी तरकीब अजमावाय छे तो 'नरोवा कुंजरोवा' मां

विनोदे केटलीक रचनाओं वर्तमान पत्रों ना अनोखा समाचारों के जाहेरातों पर हलवा भाष्य रूपे करी छे।^(४) इनसे स्पष्ट है कि विनोद भट्ट के हर निबन्ध में एक नयाँ पडाव नई सोच होती है इसलिए उसे किसी ऐसे निश्चित कटघरे में बाँधा नहीं जा सकता है। फिर भी राजनैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं व्यावसायिक, साहित्य एवं सांस्कृतिक आदि विभिन्न रूपों में विभाजित कर काफी कुछ संजोया जा सकता है। इन्हीं प्रमुख आधारों पर से विश्लेषण करने से निबन्धकार के रूप में उनकी चिंतन प्रणाली एवं अभिव्यक्ति कौशल्य का परिचय मिल सकता है।

७.२ विनोद भट्ट के निबन्धों में राजनैतिक हास्य-व्यंग्य :-

साहित्य को प्रभावित करनेवाली स्थितियों में राजनैतिक स्थिति की विशेष भूमिका रही है। जिनकी पुष्टि साहित्यिक इतिहास से स्पष्ट हो जाती है। हास्य-व्यंग्य साहित्य का जहाँ तक सवाल है, तो उसमें कोई शंका नहीं कि राजनीति से उनका करीब का रिश्ता है क्योंकि विद्रूपताओं व विसंगतियों का बड़ा भंडार हास्य-व्यंग्याकार को वहीं से प्राप्त होता है। उनमें भी विशेषतः निबन्धों में तो राजनीति की छोटी से छोटी घटना को लेकर भी सूक्ष्म व्यंग्य प्रस्तुत किया जाता है। खास करके अखबारों में जो कॉलम चलाये जाते हैं, उनमें तरोताज़ा राजनैतिक घटनाओं की प्रतिक्रिया रहती है। वैसे तो राजनीति एक ऐसा विषय है जिनके बारे में सत्य कहनेवाला भी व्यंग्यकार के रूप में जाना जाता है। राजनैतिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति में हास्य की बजाय व्यंग्य का आधिक्य रहता है। विनोदजी ने चांदनी, आराम, नवचेतन, विश्वविज्ञान, कुमार, संदेश, गुजरात-समाचार आदि सामायिकों व अखबारों के कॉलम में जो निबन्धात्मक लेख लिखे हैं उसमें विशेषतः तरोताज़ा राजनैतिक हास्य-व्यंग्य मिल जाता है। इन्हीं लेखों को विनोदजी ने अपने विभिन्न ग्रन्थों में संग्रहीत किया है। जिनमें स्वाभाविक रूप से तत्कालीन राजनीति उनका प्रमुख विषय रहा है। एक प्रधान नो प्रेमपत्र, मोरारजीभाई पर गाँधीबापू नो एक पत्र, इन्दिराजी पर कौटिल्य नो पत्र, चि. राजीव पर इन्दिराजी नो एक पत्र, चंबल ना एक डाकु मनोहर सिंह पर एक पत्र (विनोदजी ना प्रेमपत्रों), गांधीबापू नी बकरी, समाजवादी

फ्लेट (सूनो भाई साधो), सिकंदर, महमद तघलख (अने हवे इतिहास), महाभारत नुं युद्ध, एक अर्थघटन, रेडी.... वन.... टु.... श्री !, गरीब नो इन्टरव्यू, समय-समय नी वात, कोयडो, डिझनीलेन्ड नी प्रतिमाओं (नरों वा कुंजरोवा), अमेरिका एटले सालु अमेरिका, गुजरात तो हैदराबाद मां पण छे, पोलिस अने हृदय पलटो, प्रधान नी आबरु करोड रुपिया नी होय छे !, गदर्भो कहे छे : अमारी लागणी दुभाई छे (भूलचूक लेवी देवी), इमेजनी तो, रावण राज्यमां अखबारो होत तो, शब्दकोश ज बधी गेरसमजो ना मूल मां होय छे (वगेरे, वगेरे, वगेरे), खाना लग गया है, तशरीफ लाइए, मोरारी बापू अने हृदय पलटो, यु रीयली सेइड इट, बोलो तमारी पासे कुटवा कपाल छे?, पैसा ए बहु मोटी वात नथी, शंकरे गदर्भो नुं सन्मान कर्यु हतु, लोकशाही मां लोको तो होता ज नथी, आपका वह कुत्ता कहा गया?, मुखराजकारण मां पडवाने बदले तुं गटर मां पड्यो, “तमाचो, जे अखबारो नुं घरेणुं बनी गयो, अमने मातुं लाग्यु छे, चीमनभाई भगवान दत्तात्रेयना पच्चीसमां गुरु, छोटी सी गुडियाँ की लम्बी कहानी, वंदेमातरम् वर्सिस जनगणमन (प्रसंगोपात), राजकारण मां घृणाजनक कशु ज नथी (अथ ती इति), व्हाइट हाउस मां कोण गुजरी गयुं छे?, तमारे इन्स्टन्ट निर्वाण जोइए छे?, मैं यहाँ का राजा हूँ, स्त्री आत्मकथा लखे त्यारे, संयम थी वर्तो, अमारे तमारी साथे धंधो नथी करवो, जाओ खाओ-पीओ ने ताराज करो, आपणा भूतपूर्व गरीब प्रधानो, चीमनभाई बधाज अर्थ मां अभूतपूर्व (कारण के) आदि निबन्धों में राजनैतिक हास्य-व्यंग्य की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। जिनमें राजनेताओं, प्रधानों, सरकारी नीतियों, चुनावों, भाषणों आदि राजनीति से जुड़ी हुई हर छोटी-बड़ी बात को लेकर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। विनोदजी ने बिना किसी प्रकार की परवाह किए राजनैतिक विसंगतियों को खुला किया है। विनोदजी ने अपने ‘कारण के’ ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा है कि, “सरमुखत्यारो क्यारेय सत्य सहन करी शकता नथी अने व्यंग्यकारों पोताना जीवने जोखमे पण व्यंग्यात्मकशैली मां साचु कहेवानुं चूकता नथी।”^(५) इनसे ये साफ है कि लेखक ने राजनेताओं व राजनीति का मखौल भी उड़ाया है, एवं उन पर ताने भी कसे हैं।

विनोदजी ने गाँधीबापू नी बकरी एवं समाजवादी फ्लेट में दंभी राजनेताओं पर

व्यंग्य किया है। स्त्री राजनीतिज्ञों खासकर इन्दिरागाँधी पर व्यंग्य करते हुए विनोदजी ने लिखा है कि, “स्त्री जाति राजकारण मां पडे तो राजकारण केवुं सरल बनावी दे छे एनी कल्पना बापू ने ए वखते ज आवी गइ हशे।”^(६) विनोदजी ने अतीत के साथ वर्तमान राजनीति को जोड़कर आज के राजनैतिक यथार्थ को स्पष्ट किया है। सिकंदर की अन्तिम इच्छा थी ‘अर्थी में अपने हाथों को खुला छोड़ना’ इस घटना के साथ आज की करनीति को जोड़कर व्यंग्य किया है कि, “अमदावाद मां आवेल इन्कमटेक्स ओफिस नी बहार सिकंदर ने बदले गांधीजी नुं मात्र पोतडी पहेरी ने दोडतु स्टेच्यु मुकवामां आव्युं छे। आ इन्कमटेक्स वालाओं पोतडी पण नहीं रहेवा दे ए भये गांधीजी दोडी रह्या होय एवुं प्रोफेसर विनोद भट्टाचार्यनुं मानवुं छे।”^(७) आज का नेता गांधी जैसा नहीं है उनकी निगाहे हरदम दिल्ली की ओर रहती है छोटा नेता भी बड़े पदों के ख्वाब देखता है। क्योंकि दिल्ली तक पहुंचने का एक अपना महत्त्व है ऐसी मानसिकता पर व्यंग्य करते हुए विनोदजी लिखते हैं कि, “असल अमदावाद ने १२ दरवाजा हता जेमा आ दिल्ली दरवाजानुं महत्त्व विशेष हतुं। ए दरवाजा तरफ लोको नी नज़र कायम रहेती। कोई ने कोई ए दरवाजे थी आवतुं एटले आज- जेम अहीं थी दिल्ली जवानी वाट जोवाय छे एम ए दिवसो मां त्यांथी आवनारा नी राह जोवाती।”^(८)

विनोदजी मानते हैं कि आज की राजनैतिक स्थिति ऐसी हैं कि नेता कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा समृद्ध हो जाना चाहता है, वह जितना शाणा दिखता है उतना होता नहीं है। रोज-बरोज जो राजनैतिक घटना क्रम बनते हैं उनसे लगता है कि ऐसी स्थिति कब तक बनी रहेगी - ‘छापावाला ने आनी पण खबर होय छे’ रचनामें कहा है कि - “छापावाला ने मदद करवा ज तो एक प्रधान प्लेनमां दारु पीने तोफान करशे के पछी भ्रष्टाचार मां संडोवाशे। नदिर्यो मां पूर, धरतीकंप, बलवो, प्लेनहाइजेकिंग, कोमी तोफानों, कफर्यु, निर्दोषों पर गोलीबार, पछी तपासपंच, जेलमांथी खोफनाक गुनहगारों पलायन बस आमनुं कइक ने कइक बन्या करवानुं मात्र गाम अने तारीखमां फेरफार बनावो कोमन, स्थल, काल ने संख्या मां वधघट रहेवानी।”^(९) विनोदजी की ‘खाना लग गया है’ रचना में प्रधानों की वैभवी जीवन-शैली पर व्यंग्य किया है जो प्रजा के पैसों पर

ऐशोआराम फरमाते हैं - “छापामां ऐवा समाचार छे के महाराष्ट्र ना मुख्य प्रधान बाबा साहेब भोसले एक वधु विवादनुं केन्द्र बन्या छे, तेमणे संसदसभ्यो नी एक बेठक ता.३०मी सप्टेम्बरे मुंबई खाते बोलावी छे अने ते बधानो उतारो फाईवस्टार होटल ‘ओबेरोय टावर्स’ मां रखायो छे।”^(१०) उसी प्रकार से ‘पैसा ए बहु मोटी वात नथी’ एवं ‘आपका कुत्ता कहा गया?’ में भी देश के नेताओं की प्रजा के पैसों पर अपने वैभव को बढ़ाने की वृत्ति पर व्यंग्य मिलता है।

विनोदजीने चुनावी प्रक्रियाओं, व्यवस्थाओं एवं चुनाव में होनेवाली धाधलियों, नारों, भाषण बाजियों को लेकर भी काफी कुछ लिखा है। ‘लोकशाहीमां लोको तो होताज नथी’ में चुनाव सबन्धी अराजकता के बारे में लिखा है जिनमें बिहार के चुनावी दंगल को नज़र में रखते हुए स्थिति को स्पष्ट किया गया है जैसे - “ललनसिंह ने तमे ओलखो अमने खबर छे तमे तेमने नथी ओलखता ते एक व्यक्ति विशेष छे। मतदान मथको बलजबरी थी कबजे करवानो लघु-उद्योग ते चलावी रहयो छे। बिहारमां तेमनी हेड़ ओफिस छे, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश वगैरे मां ब्रान्चीज छे।”^(११) इनसे स्पष्ट है कि चुनावी प्रक्रिया की विश्वनीयता कितनी खतरे में है।

विनोदजी ने अपने निबन्धों में सरकारी नीतियों के बारे में विस्तार से लिखा है। सरकारें जिन नीतियों पर चलती हैं उन नीतियों में ही खोट हो तो समाज की उन्नति कैसे सम्भव है। लोगो की परेशानियाँ कैसे कम हो सकती हैं। विनोदजी ने गुजरात में दारुबन्धी को लेकर, हेलमेट को लेकर, सरकारी सन्मानों, प्रमाणपत्रों आदि ऐसी बहोत-सी सरकारी नीतियों को लेकर उनमें स्पष्ट दिखाई पड़नेवाली विसंगतियों को उजागर किया है। जैसे - “दारुबन्धी आम तो भौगोलिक गुनो छे ने गुजरात मां दारुबन्धी छे ऐटले अहीं प्रमाणमां वधु वेचाय छे। पिवाय छे। आ राज्य मां पाणीना परबो करता दारुना अड्डा नी संख्या अनेक गणी मोटी छे।”^(१२) उसी प्रकार से सरकार की ओर से दिए जानेवाले जन्म-मरण एवं शादी के प्रमाणपत्रों को लेकर ठीठोली व्यक्त करते हुए लिखा है कि - “आदेश मां जनम-मरण अने परण त्रणय कायदेसर होय तो ज सरकार तमने

मान्यता आपेछे। अने आयरनी ऐ छे के जन्मवानुं आपणा हाथमां नथी होतुं, इच्छनीय पात्र साथे परणवानुं मोटा भागना किस्साओं मां आपणा हाथमां नथी होतु ने मरण पण कायदा द्वारा छीनवी लेवामां आवेछे।”^(१३) तो उसी प्रकार से बहोत से ऐसे प्रमाणपत्र भी भारत सरकार समय रहते दे नहीं सकती, इस बात पर चुटकी लेते हुए लेखक कहते हैं कि - “आम जोवा जइऐ तो सरकार भले घणां बधानी दैवादार हशे, परंतु तमारा (पंडित रविशंकरजी) प्रत्येनुं ऋण क्यारनुं चूकते करी दीधुं छे। तमने आपी शकाय ऐटला खिताबों, मान-पान आप्या छे। जो के तमे मोढु बगाडी ने कही शको के ठीक छे आ बधु, पण ‘भारतरत्न’ हजी क्या मल्यो छे? आ ‘भारतरत्न’ ऐ परमवीर चक्र जेवो छे। परमगति पाम्या वगर मलतो नथी।”^(१४) राजनीति में सरकारी तंत्रों की नीति अपना उल्लू सीधा करनेवाली ही होती है। जिनके माध्यम से वह अपने कोई न कोई राजनैतिक मकसद को पाना चाहते हैं। आजकल तो अपनी तिजोरी भरने में ही सब लग गये हैं, राजनीति कईबार एक व्यावसायिक उपक्रम लगता है, इसलिए ऐसी ही नीतियाँ बनाई जाती हैं। आजकल गुजरात सरकार चुपचाप इस आदेश का पालन करवा रही है कि ‘हेलमेट’ पहनना जरूरी है। लगता है इन लोगो ने विनोदजी के निबन्धों को पढ़ा होगा। विनोदजी ने बेंगलोर के वर्णन में कहा है कि - “आखा बेंगलोर नी वस्ती पचास लाखनी छे। आ पचासलाख माणसो पासे सातलाख जेटला वाहनो छे। स्कूटर सवारना माथानी किंमत त्यानी सरकार मोटी आंके छे। आ कारणे स्कूटर चलावनार ना माथे मुगट (हेलमेट) पहेरवानुं फरमान छे।”^(१५) आजकल गुजराती सरकार भी इस मुकुट के लिए प्रयास कर रही है, जिसमें सबकी भलाई है। जिसमें सरकारों की भूमिका शादी करानेवाले उस महाराज जैसी होती है कि ‘वर मरो, कन्या मरो पर महाराज की जोली भरो’। विनोदजी ने ऐसी सरकारी नीतियों को भरपूर कोसा है। विनोदजी ने राजनैतिक विसंगतियों को चुन-चुन कर खुला करने का प्रयास किया है। जिसमें उसे विशेष सफलता हांसिल हुई है।

७.३ विनोदभट्ट के निबन्धों में प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य :-

अर्वाचीन गुजराती साहित्य में विशेषकर हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य में सरकारी तंत्र-प्रशासन की कमज़ोरियों ने हास्य-व्यंग्यकारों को विशेषतः प्रेरित किया है। प्रशासनिक व्यवस्था में रोज-बरोज़ नई-नई घटनाएँ बनती रहती थी, जिनसे हास्य-व्यंग्य लेखक को उसे लताडने के लिए बहोत-सा मसाला अपने आप मिलता रहता था। प्रशासनिक तंत्र में चल रही शिफारिशों, रिश्वतखोरी, कामचोरी, लागवगशाही, बेजिम्मेदारी, लापरवाही, कानून का उलंघन आदि बंदियों की अभिव्यक्ति विशेष मात्रा में हुई है। विनोदजी ने विभिन्न कचहरियों पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। खास करके उनसे जुड़े कर्मचारियों की हरकतों को विशेषतः लताड़ा है। विनोदजी के सभी निबन्ध संग्रहों में प्रशासन सबन्धी विसंगतियों को व्यक्त किया गया है। जिनमें कर्मचारियों पर, पुलिस तंत्र पर, यातायात की सेवाओं पर, बैंकिंग सेवा पर, अदालतों पर, अस्पतालों पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये गये हैं।

विनोदजी ने ऐसे कर्मचारियों की विशेष रूप से खबर ली है, जो बहाने बनाते रहेते हैं, काम नहीं करते प्रशासन की कमज़ोर बनाने में सबसे ज्यादा उन्हीं का योगदान रहेता है क्योंकि हर काम देरी से करना, घूस लेना, अधिकारियों को उल्लू बनाना, सामान्य व्यक्तियों के साथ घूमा-फिराकर बात करना आदि आदतों से वह लदा हुआ रहता है। विनोदजी लिखते हैं कि - “आशीर्वाद मोटा भागे दुर्लभ रीते प्राप्त थती चीज-वस्तुओ माटे आपवामां आवे छे। दुधाला सरकारी खातामां काम करता (अहीं सरकारी ऑफिसे जतां एम समजवुं) माणस ने क्यारेय एवा आशीर्वाद नी जरुर नथी पड़ती के तेमने उपरनी मबलक आवक प्राप्त थजो।”^(९६) ये कर्मचारी घुस तो लेते हैं पर उनका एक ओर दुर्गुण है, कचहरी में आराम फरमाते रहना ऐसे कर्मचारियों के लिए कहा है कि, “बपोरे उंघवाथी कफ वधे छे माटे बपोर नी उंघ छोडी देवी आ माटे नो सरल उपाय पण छे, सरकारी नोकरी छोडी रवानगी पेढी मां लागी जवुं। पगार भले न्या ओछो मले पण उंघतो छूटी जशे।”^(९७) सरकारी कर्मचारी कों समय की कोई परवाह नहीं होती, जब काम होता है तब ही वे यहाँ-वहाँ घुमकर समय को बर्बाद करते रहेते हैं।

विनोदजी ने 'ते हि नो दिवसो गताः' में उनका मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है जैसे - "रिसेस पुरी थवानी वीस मिनिट बाद फोन जोड्यो त्यारे बापू कोई गेस्टने नीचे वलाववा गयेला। पाँच ने दस मिनिटे साहेब मसालों खावा गयेला। फरी पाँच-सात मिनिट बाद फोन जोड्यो, जे.के. ने मणवा हूँ जीव पर आवी गयेलो। त्रण-चार मिनिट सुधी एंगेझ टोन, पछी ओपरेटरे माहिती आपी के जे.के. ने आजे ओवर टाइम करवानों छे एटले ते केन्टिन मां 'स्नेक्स' लेवा गया छे, बस आववाज जोड़ए। वीस-पच्चीस मिनिट मां....."^(१८) कई बार अधिकारी भी अपने कर्मचारियों की हरकतों से वाकिफ होने के बावजूद भी वे उसे नज़र अंदाज करते रहते हैं उन पर कोई कारवाई नहीं करते क्योंकि ऐसा करने से आफत पैदा हो जाती है। ऐसी आफत से परेशान अधिकारी की मनोव्यथा को व्यक्त करते हुए विनोदजी ने लिखा है कि, "एक आफत उभी थई छे भै ! हवे थी तमने तकलीफ थवानी, जो तमे सरकारी अधिकारी हशो तो..... तमारा हाथ नीचेना कारकुन ने मुख, गधेडो, अक्कल नो ओथमीर, अक्कल नो बारदान, अक्कल पाछल बंदूक लईने फरनारो, इडियट जेवा विशेषणो थी मफत मां नहीं नवाजीशको कारण के राजस्थाननी हाईकोर्ट पोतानी नीचेना कर्मचारी ने मूर्ख कही ने भांडवाना पगला ने कोईपण पुरावा वीना दंडपात्र गुनो गण्यो हतो ! अने अरजदारने आथी मोटु नुकशान थयानुं मान्य कर्नु हतुं।"^(१९) ऐसे कर्मचारी खुरदरी चमड़ी के होते हैं। जिन से लाख कोशिश करने पर भी उनकी रोजनीशी में कोई परिवर्तन नहीं होता।

आज के पुलिस तंत्र में जो तानाशाही चलती है उसे लेकर भी विनोदभाई ने काफी कुछ लिखा है। ये ऐसा प्रशासनिक विभाग है जिसमें रोज नई-नई विसंगतियाँ देखने को मिल सकती हैं। बुराई के सौदागर होने के बावजूद भी वे भगवान क्रिष्ण का रूप धारण किए रहते हैं। उसे मज़ा तब आता है जब कोई सीधा-सादा, इन्सान उनकी जाल में फँस जाय उनकी छटपटाहट से पुलिसवालों की सेहत अच्छी हो जाती है फिरभी 'पाक समाचार भारत मांथी प्रगट थाय छे।' में भारतीय पुलिस के बखान करते हुए लिखा है कि, "त्यां (पाकिस्तान मां) पण पोलीस माटे प्रजा नो मत उचों नथी। जो के आपणे त्यां हजी पोलीसनी शाख एटली छे के पोलीस पासे लोको फरियाद लखाववा

जाय छे। त्यां पोलीस स्टेशनने फरियाद करवां कोई जतुं नथी।^(२०) 'किंग केन डु नो रोग' रचना में लेखक ने प्राचीन समय में प्रवर्तमान नीति-नियमों पर बात की है और साथ में पुलिसतंत्र में चल रहे भ्रष्टाचार की एक वास्तविक घटना को व्यक्त किया है। जैसे - "वच्चे लांच लेवाना गुनामां सात पोलिसो पकड़ाया हता। दरेक किस्सा मां लांच रुपिया वीश थी वधारे न हती। आ अंगे अमे एक ओलखीता पोलीस कोन्स्टेबल ने पुछ्यु तो तेणे तलपदी शैली मां जणाव्यु के भाई, बकरी लींड़ियुं पाडे पोदलो न मूके, वधु लांच लइए तो अमने सदे नहीं। कोई भूल मां अमने पचास नी नोट दे तो अमे फट दर्इने पच्चीस-त्रीस पाछा धरी दइए।"^(२१) उसी प्रकार से 'हम आप के नौकर है, मेडम' में पोलीस अधिकारियों की भ्रष्ट नीति को व्यक्त किया गया है। जिसमें पुलिस को दी गई वर्दी के गलत इस्तमाल को दिखाया गया है। उसी प्रकार से 'पोलिस ए पोलिस ज छे' में भी उन पर व्यंग्य किया गया है। तो 'समय चोरनार माणस नी वात' इस में तंत्र की निष्फलता की बात है। विनोदजी ने ट्राफिक पुलिस पर भी व्यंग्य किया है, उनकी और से ट्राफिक सप्ताह मनाया जाता है पर कोई फर्क नहीं पड़ता - "आजे वर्ष मां एकाद वीक 'ट्राफिक विक' तरीके उजववामां आवे छे। जो के आथी ट्राफिक ने खास फायदो थतो नथी पण जोनार ने गम्मत पडे छे। आ नगर मां ज्या ट्राफिक ने कोई गम्भिरता थी लेतु नथी तो पछी ट्राफिक वीक नो सवाल ज नथी।"^(२२) उसी प्रकार से 'ओटो रिक्शा नी अडफेटे ना चडवाना उपायो' में भी ट्राफिक पुलिस की निष्क्रियता को अपना निशाना बनाया है। लेखक सलाह देते हैं कि, "रिक्शा नी अडफेटे ना चडवुं होय तो सौथी सहेलो उपाय ए छे के घर नी बहार निकलवुं नहीं। रिक्शावालो तमारा घरमां घूसी जइ ने तमने कचडी नहीं नाखे एटलुं तो अमे खातरीपूर्वक कहीए छीए।"^(२३) लेखक ने पुलिस तंत्र की बहोत सी ऐसी कमजोरियों को अपने निबन्धों में हास्य-व्यंग्यात्मक रूप में उद्घाटित किया है।

विनोदजी ने अस्पताल, बैंक, अदालती सेवाओं पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। अस्पताल एक ऐसा स्थल है जहाँ हर मरिज बड़ी आशा के साथ आता है। उसे तो कुछ भी कहा जाता है वह अक्षरशः करता है, पर वहाँ के व्यवस्थापक व डाक्टर बिना कोई

परवाह किए उनके साथ दयाहीन व्यवहार करते हैं। लेखक ने उन पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि, “एक वखत यमदूतों एक आत्मा ने लई आव्या। तेमने ठपको आपता यमराजे कह्यु, बेवकुफो आ जीव ने लाववानी तो हजी दस वर्ष नी वार हती.....

- आजे क्या लई आव्या ?

बोस, आ तो डोक्टर अमर बाबु नो पेशन्ट छे.....

तो ठीक, यमराजा ए कह्यु.....^{२४}

विनोदजी ने बैंकिंग सेवाओं पर भी उनकी मूनाफाखोरवृत्ति व कर्मचारियों के व्यवहार को लेकर व्यंग्य किया है। ‘आ बैंक नो अनुभव कोई ने सारो नथी’ में बैंक कर्मचारियों की कामचोरी एवं उनके असभ्य व्यवहार का चित्रण किया गया है। भविष्य में चन्द्र पर भी बैंको की आवश्यकता होगी पर वहाँ कैसी धाधलियाँ होगी उनका काल्पनिक शब्दचित्र व्यक्त करते हुए लेखक ने व्यंग्य किया है कि, “चन्द्र किरण बैंकना मुनलाइट शाखा मां २०-२० दिवस सुधी ग्राहकों द्वारा अनेकवार विनंतीओं करवा छतां बैंक कर्मचारी ए पासबुक नहीं भरी आपता आ बाबत बोलाचाली मांथी मामलो बीचकतां मारामारी शरु थई गई हती ने आखो स्टाफ पोतानुं काम छोडी ग्राहक साथेनी छूटा हाथनी मारामारी मां जोकाई गयो हतो।”^{२५} उसी प्रकार से अदालती कार्यवाही में हो रही अनियमितता व पोलमपोल को ‘रावणराज्य मां अखबारों होत तो’ में व्यक्त किया गया है। लेखक ने व्यंग्य किया है कि, “रावण ने लिधेज प्रजानी तमाम मिल्कतो आग मां होमाई गई छे एवा आक्षेप साथे विनोद देव नामना एक रिट-स्पेश्यालिस्टे वकिल रावण सामे कोर्टमां रुपिया १८७० करोडनी नुकशानी नो दावो ठोकी दीधो छे ने आ अंगे न्यायधीश श्री ए रावण पर कारण दर्शक नोटिस काढ़ी छे।”^{२६} उसी प्रकार से ‘अमदावाद अने टेलिफोन’ में उनकी खामियों पर व्यंग्य किया है।

विनोदजी ने बस सेवा, रेल सेवा, हवाई सेवाओं को लेकर भी कई स्थानों पर हास्य व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। यातायात से जुड़ी इन सभी सेवाओं में नियमितता नहीं है। सही व्यवस्था का अभाव है। हमारा सफर सुखद हो ऐसे सूत्र तो देखने को मिलते है पर ऐसा रवैया दिखाई नहीं देता ‘दिल्ली आजे केम दूर लागे छे’ में एयर इन्डिया

विमान सेवा में पाई जानेवाली अव्यवस्था का उदाहरण मिलता है तो 'मंगल-अमंगल' में ज्योतिष विषयक बातों के अंतर्गत यातायात सेवा को जोड़ के हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये गये हैं जैसे, "जे जातक नो चन्द्र वक्री होय तेने शारीरिक-मानसिक हेरानगति थया करे छे। जे ट्रेनमां जवानुं होय ते ट्रेन बे-त्रण कलाक मोडी पडे छे के पछी केन्सल थई जाय। दूषित चन्द्रना प्रभावे ए ट्रेनना ड्राइवर ने एपेन्डिक्स नो असह्य दुःखावो उपडे। अने प्लेन एमाय इन्डियन एयर लाइन्सनुं प्लेन तो आमेय मोडुं उपडतुं होय छे। पण आ जातक नो चन्द्र आ प्लेन ने सात-आठ कल्लाक मोडु पाडे छे।"^(२७) इनसे स्पष्ट है कि विनोद भट्ट ने विभिन्न प्रशासनिक व्यवहारों पर हास्यात्मक व्यंग्य प्रस्तुत किया है इनसे उन्होंने आम आदमी के रोज-बरोज के व्यवहारों से जूड़े हुए सरकारी तंत्रों में किस प्रकार की मानसिकता प्रवर्तमान है उसे खुला करके दिखाया है। जिनसे लेखक का सूक्ष्म निरीक्षण इतना गहरा जान पड़ता है कि उन्होंने छोटी-बड़ी हर उस विसंगति को उचित संदर्भ में वाचा दी है। उनका अन्वेषण सहज ही आज की वास्तविक गतिविधियों से रुबरु करवाता है।

७.४ विनोद भट्ट के निबंधों में सामाजिक हास्य-व्यंग्य :-

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, उसी प्रकार से समाज भी साहित्य से प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता। इसलिए कहा जाता है कि, "समाज की 'करनी' साहित्य की 'कथनी' के रूप में अभिव्यक्त होती है। यानी 'साहित्य' पर 'समाज' का प्रभाव रहता है, तो साथ यह भी माना जाता है कि, "अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है, मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है। इसमें समाज पर साहित्य के प्रभाव को व्यक्त किया गया है। इससे स्पष्ट है कि साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। इस सन्दर्भ में उमाशंकर जोशी ने माना है कि, "साहित्यकारों नां सर्जनों प्रजाने एक हृदय करवामां सहेज सफल नीवडे छे। एमनुं माध्यम भाषा ए तेओ प्रजा पासे थी पाम्या होय छे अने एमनी सामग्री भाव ए पण जनसाधारण नी मूडी होय छे। जनसाधारणनां भाव अने भाषा नी मदद थी साहित्यकार वाडमय तप तपे छे। ए भाव-

भाषा नां नवां-नवां अपूर्व आकार ने प्रजाजीवन प्रवाह मां तरता मूकी ए अखुट आनन्द भोग पामे छे अने पमाडे छे।”^(२८)

हास्य-व्यंग्य साहित्य के सन्दर्भ में कहे तो उनमें समाज ही उनके लिए प्रमुख आधार रहता है क्योंकि हास्य-व्यंग्यकार समाज की विभिन्न चहलपहल को हलचलों को सूक्ष्म दृष्टि से देखता है, वहीं उनके साहित्य निर्माण का आधार बनता है। समाज में फैली विसंगतियों, विचित्रताओं, स्थितियों, घटनाओं को आधार रूप में ग्रहण करते हुए वह अपने हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्य की रचना करता है। जातिभेद, वर्गभेद, गरीबी, बेकारी, प्रदेशवाद, महँगाई, सामाजिक जड़ताएँ, सामाजिक रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों, प्रणालियों आदि में से ही हास्य-व्यंग्यकार को साहित्यसर्जन की सामग्री मिलती है। इसी को आधार बनाकर वह जन-जागृति लाने का प्रयास करता है। यही कारण है कि नर्मदयुगीन निबन्ध साहित्य से आज के आधुनिक निबन्ध साहित्य को देखे तो विभिन्न सामाजिक घटनाएँ व परिस्थितियाँ ही उनकी अभिव्यक्ति के विषय बनती है। इसलिए कहा जाता है कि अन्य साहित्यिक विधाओं में कल्पना से यथार्थ जुड़ता है पर हास्य-व्यंग्यविधा में यथार्थ के साथ कल्पना जुड़ती है।

विनोद भट्ट के सभी हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध संग्रहों में सामाजिक हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति पाई जाती है। जो विभिन्न रूपों में उनके निबन्ध संग्रहों में व्यक्त हुई है। उनके प्रथम निबन्धसंग्रह - ‘पहेलुं सुख ते मुंगी नार’ से ही उनके निबन्धों की समाजवादी मनोवृत्ति स्पष्ट होती है। प्रफुल्ल रावल ने माना है कि, “समाज नी विविध बाजुओं ने केन्द्र मां राखी ने लेखके हास्य उभुं कर्यु छे।”^(२९)

‘सुनो भाई साधो’ निबन्ध संग्रह में समाज में व्याप्त होनेवाली बर्दियों, अराजकताओं पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये गये हैं। ‘हिन्दी फिल्म नी वार्ता’, ‘जगु केनेडी’, ‘समाजवादी फ्लेट’, ‘तमारे घरघाटी जोईए छे?’, ‘जाहेरात नुं नाटक’, ‘एक सन्मान समारंभ मां थी’ ये ऐसे निबन्ध हैं जिनमें समाज की विभिन्न गतिविधियों को व्यक्त किया गया है। ‘एक सन्मान समारंभ मां थी’ निबन्ध में समाज में घर कर गई, रूढ़ हो गई ज्ञातिप्रथा पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए लिखा है कि, “सुबंधु भाई समाजवादी

डोक्टर छे। गरीब-तवंगर वच्चे एक सरखो भाव राखे छे। गरीब पासे थी ते श्रीमंत जेटलीज फी ले छे। ओछी फी लई ने गरीबों ने अन्याय नथी करता। तेमने मात्र एकज शोख छे ने ते सेम्पल नी मलेली दवाओं बजार मां वेची देवानों।”^(३०)

‘विनोद भट्ट नां प्रेम पत्रों’ निबन्ध संग्रह में सामाजिक क्षेत्र से जुड़े हुए विभिन्न प्रतिनिधियों के विनोदी चित्र अंकित किये गये हैं। जिनके माध्यम से समाज में फैली विभिन्न विकृतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्र में व्याप्त बर्दियों को उनके प्रतिनिधि चरित्र के जरिये प्रस्तुत किया गया है। जिनसे लेखक की जीवन दृष्टि व सामाजिक निरीक्षण शक्ति कितनी धारदार है ये स्पष्ट हो जाता है। इस निबन्ध संग्रह के निबन्धों में जो हास्य व्यक्त हुआ है वह चुभता हुआ बुद्धिनिष्ठ हास्य है।

‘विनोद नी नज़रे’ एवं ‘अने हवे इतिहास’ इन दोनों निबन्ध संग्रहों में लेखक ने विभिन्न व्यक्ति चित्र को अंकित किये हैं। उनमें उनके जीवन प्रसंगों का आलेखन करने में लेखक ने सामाजिक स्थिति का विश्लेषण अवश्य किया है। यही कारण है कि जयंति पटेल के बारे में लिखते समय लेखक ने महानगरीय संत्रास को वाचा दी है। जो असह्य एवं करुणा जनक है। लेखक ने लिखा है कि, “चर्चगेट पर सवारे बधा दोडता’ता, रोटलानी पाछल दोडता कुतरानी जेम। एकबीजाने हडसेलता माणसों नासता’ता, त्या एक माणस ने ठेस वागी ने पड़ी गयो, तेने उभों करवाने बदले बधा तेना शरीर पर थी दोडवा लाग्या, मारी आगल चालतो माणसेय पसार थई गयो। में तेनी पीठ पर मूकवा पग उचक्यों ने पग अटकी गयो।”^(३१)

इनसे स्पष्ट है कि महानगरों में मानवीय भावनाएँ भाप बन गई हैं। यहाँ का इन्सान यंत्रवत होता जा रहा है। लेखक का ये व्यंग्य यहाँ पाठकों को स्पर्श कर जाता है।

‘नरोवा कुंजरोवा’ निबन्ध संग्रह में विनोदजी ने विस्तार से सामाजिक विसंगतियों की समीक्षा की है। जिनमें खेल खतरनाक, एक रूपैया दे दे बच्चा....., गरीबों का इन्टरव्यू, एक इर्षा पात्र माणस नी वात, लग्न चालो, कोयडो ! बालवर्ष निमिते एक बाल वेईटर नो इन्टरव्यू, दस्तावेज आदि निबन्धों में समाज में व्याप्त विसंगतियों को व्यक्त

किया गया है। उच्च-नीच के भेदभाव, अमीरी-गरीबी आदि के सन्दर्भ में लेखक ने संवेदनात्मक रूप से अपने मार्मिक विचारों को व्यक्त किया है। जिनमें तत्कालीन वास्तविकताओं को, जीवन के कारुण्य को मर्मस्पर्शी रूप में व्यक्त किया है। गरीबी, महंगाई भूख, आदि की भयावहता के माध्यम से मध्यम व गरीब वर्ग की चिंताओं को वाचा दी है। 'गरीब नों इन्टरव्यू' में गरीब की दशा का वर्णन मिलता है। जैसे, "मने खातरी छे के १९८५ मां चूटणी थवानी हशे तो वडाप्रधान सातमी योजना मां बत्रीस करोड लोको ने गरीबी नी रेखा उपर खेंची काढ़वानी खातरी आपशे।"^(३२) पण साचु पुछो तो वांक गरीबोनो छे। ए लोको वडाप्रधान ने साथ सहकार नथी आपता। तो 'लग्न चालो' निबन्ध में लेखक ने विनोदपूर्ण माहोल में अपनी बात को रखा है। लग्न के कारण जो आर्थिक नुकसान होता है उन पर विनोद व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "रोगचालानी जेम शहेर मां लग्नचालो फाटी निकल्यो छे। रोगचालो ने लग्नचालानी वच्चे फरक ऐ छे के रोगचाला मां दरदी रीबातो होयछे. ज्यारे लग्नचाला मां वर के कन्या नहीं, ऐनी आसपास ना लोको पण रीबाय छे।"^(३३) उसी प्रकार से दस्तावेज़, एक वेईटरनो इन्टरव्यू आदि निबन्धों में भी गरीब-मध्यमवर्ग की आर्थिक दशा का वर्णन मिलता है।

'अमदावाद ऐटले अमदावाद' निबन्ध संग्रह में लेखक ने अमदावादी मानसिकता का ही विशेष परिचय करवाया है पर उन निबन्धों में विभिन्न घटनाओं की अभिव्यक्ति से सामाजिक चिंतन अवश्य ही व्यक्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। अमदावाद नुं हृदय, खाड़िया-रायपुर, अमदावाद अने तोफानों, सदियों जूनो सबन्ध, आदि रचनाओं में सामाजिक चिंतन-प्रस्तुत हुआ है। हमारे सामाजिक विकास में धार्मिक कट्टरता बहोत बड़ा विघ्न है इसी बात को लेखक ने अमदावाद नुं हृदय, एवं अमदावाद अने तोफानों के द्वारा स्पष्ट किया है। लेखक ने व्यंग्यात्मक प्रहारों के द्वारा हमारे सामाजिक यथार्थ को वाचा दी है।

'भूलचूक लेवी देवी' में जो निबन्ध मिलते हैं उनमें विभिन्न सामाजिक विषयों को

विविध घटनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'अमेरीका ऐटले सालु अमेरीका', छापावाला ने आनी पण खबर होय छे ! गुजरात तो हैदराबाद मां पण छे, अर्थी मां थी अर्थ पेदा करनारनी वात, भोजन नुं साहित्य आदि रचनाओं में समाज में व्याप्त विविध विचित्रताओं पर हास्य मिश्रित व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है।

‘प्रसंगोपात’ निबन्ध संग्रह में ‘ऐपल’ ऐटले? रचना में व्याप्त भूख व गरीबी की समस्या को चोटदार रूप में शब्दबद्ध किया गया है। सत्य, धर्म, सेवा परायणता आदि मानव मूल्यों के लिए अपना समर्पण करनेवाले नायकों को लोग याद करे वह ठीक है पर जब ‘समाज में खलनायकों की पूजा होने लगती है तब अहो !! वैचित्र्य की स्थिति निर्माण होती है। गुजराती समाज के ऐसे व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहते हैं कि - “गुजराती प्रजा अमूल बटरनो उपयोग मात्र खावा ज नहीं अन्य रीते पण करेछे अने आवी बिनजरूरी नम्रता अन्य प्रदेशोनी प्रजा मां जोवा मलती नथी।”^(३४)

‘कारणके’ ग्रंथ में समाविष्ट कृतियों में से ‘नवी गुजरातण’, ‘अफवा: पग वगर दोडतुं प्राणी’, ‘शुकन-अपशुकन’ में यहाँ का राजा हूँ, श्रीकृष्ण औदित्य सहस्र ब्राह्मण हता, फाइवस्टार भिक्षुक नो इन्टरव्यू, संयम थी वर्तो आदि रचनाओं में सामाजिक लाक्षणिकताओं, खामियों, समस्याओं, मान्यताओं को व्यक्त किया गया है। ‘संयम थी वर्तो’ में समाज में फैलती जा रही असलामती की भावना व आतंकवाद की समस्या को धारदार रूप में व्यक्त किया गया है। इनके अलावा ‘दिल्ली थी दोलताबाद’, हास्योपचार, मंगल-अमंगल, मगनुं नाम मरी, आदि निबन्ध संग्रहों में अवकाश अनुसार विभिन्न सामाजिक समस्याओं को वाचा दी गई है। अमीरी-गरीबी से फैलती विद्रुपता पर करार प्रहार करते हुए विनोद जी लिखते हैं कि - “आवा तो ढगलाबंध किस्साओं दररोज बनता होय छे। चोरी तो गरीब पण करेछे अने धनिक पण करेछे फरक बन्ने वच्चे ऐ छे के, गरीब माणस पोताना पेट ना रोग-भूख ने लिधे चोरी करेछे ज्यारे श्रीमंत पोतानी मगजना रोगने कारणे करेछे।”^(३५)

वगेरे, वगेरे, वगेरे निबन्ध संग्रह में जो रचनाएँ समाविष्ट हैं उनमें विशेषतः समाज

की विभिन्न विसंगतियों को हास्य-व्यंग्यात्मक स्वरूपों में अभिव्यक्त किया गया है। 'लग्नचालो', 'दहेजनो वसंतोत्सव' में देहज की समस्या को उठाया गया है जिनमें पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के मूल्य पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। संवादात्मक रूप में इसे व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "ऐ शुं बोल्या साहेब, अमारी न्यातमां पैठणना (दहेजना) अभावे डोसी कुँवारी मर्याना किस्सा बन्या छे, पण कोई डोसो कुँवारों मर्यो नथी।"^(३६) उसी प्रकार से इस संग्रह के अन्य निबन्धों को देखें तो 'भिखारी तो भिखारी ज रहेवो जोइऐ' में समाज के गरीब वर्ग की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विश्लेषण मिलता है। 'समय चोरनार नी वात' में बनावट, लूटफाट, गुंडागर्दी, चोरी, ठगाई आदि की बात है, तो 'गाली ऐ सुरती नो इजारो नथी' में सुरत के लोगों की सामाजिक लाक्षणिकता को स्पष्ट किया गया है। उसी प्रकार से 'सूरज तो बधेज सरखो, मारो हुं सहेज पण नानो नथी, रावण राज्यमां अखबारो होय तो, दिल्ली आजे केम दूर लागे छे? आदि निबन्धों में सामाजिक गतिविधियों को प्रबलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है।

सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं, पूर्वग्रहों को 'अथ थी इति' नामक संग्रह में व्यक्त किया गया है। इस प्रकार विनोदजी ने अपने निबन्धों में समाज व सामाजिक हलचलों से जुड़ी हुई छोटी से छोटी बात को भी नहीं छोड़ा है, विभिन्न सामाजिक समस्याओं, आवश्यकताओं, मान्यताओं, सामाजिक लाक्षणिकताओं, बदियों, जातिप्रथा, दहेजप्रथा, विभिन्न रीति-रिवाज़, महानगरीय संत्रास, महंगाई, भूख, अमीरी-गरीबी, मध्यमवर्गीय समस्याएँ, त्रासवादी प्रवृत्ति आदि पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार करके गुजराती समाज का सामाजिक आँकलन प्रस्तुत किया है।

विनोदजी ने सामाजिकता के साथ ही साथ सांसारिकता पर भी विस्तार से लिखा है। संसार-जीवन में पाये जानेवाले पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन, सासु-बहु, के सबन्धों को लेकर भी हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की है, खास करके पति-पत्नी के सबन्ध को लेकर काफी विस्तार से लिखा है। विनोदजी की प्रथम रचना 'पहेलू सुख ते मूँगी नार' से मंगल-अमंगल तक की कृतियों में सांसारिक जीवन की विविध स्थितियों

उनकी रचना का विषय बनी है। जिसमें व्यंग्यात्मकता कम हास्य ज्यादा है। विनोदजी ने इनसे शिष्ट हास्य प्रस्तुत किया है। - “गुजराती भाषा मां कहेवत छे ‘पहेलु सुख ते जाते नर्या’ आ कहेवत ना छेल्ला बे पदो ‘जाते नर्या’ ने स्थाने मूंगी नार’ ए पद मूकी ने संग्रह ना शीर्षक द्वाराज हास्य निपजाव्यु छे।”^(३७) ‘नर अने नारी’ में स्त्री-पुरुष की सामान्यता-असामान्यता को व्यक्त किया गया है, तो ‘एक वात कहूँ’ रचना में भी संसारिक जीवन के विभिन्न दृश्यों को हास्यात्मक रूप में प्रस्तुति मिली है। लग्नजीवन कितना नाजूक व संवेदनशील होता है, वह ‘लग्नजीवन नी पच्चीस पूरी करनार दंपती नो इन्टरव्यू’ में हास्यात्मक रूप में व्यक्त किया गया है जैसे - “अरे जगदीशभाई ! तमे तो भाई, लडी पडया, अंदरो-अंदर, हवे मारो छेल्लो सवाल छे ! तमे तमारा लग्नजीवन ना पच्चीस वर्षनी उजवणी केवी रीते करवा मांगो छे? बस, तमे जाव ऐनीज राह जोवाई रही छे।”^(३८)

‘एक वण लखु फरमान्’ में दाम्पत्य जीवन में सुख प्राप्ति करने के उपाय दिखाते हुए लेखक ने कहा है कि - “बाईबल मां जेम टेन कमान्ड मेन्टर’ छे ऐ रीते दाम्पत्य जीवन मां सुखी थवा माटेय केटलाक फरमानो छे। जो के तेमना मोटा भागना तो वणलखाया छे। ऐ वणलख्या आदेशोमांनो एक छे, पत्नी ना आग्रह थी कोई वात जाहेर मां कहेवानो प्रयास ना करवो..... आ आदेश पलाय तो पालनारा सुखी थाय छे, ने ना पलाय तो वार्ताकार सुखी थाय छे, तेने एक वार्ता मले छे।”^(३९) ‘बहारवटियो अंदर वटियो’ रचना में शादी के बाद अस्तित्व में आनेवाले विभिन्न संबंधों की बात हैं। ‘अजमाववा जेवी युक्ति में लेखक ने पत्नी को खुश करने के लिए विविध मार्ग दिखाए हैं। ‘पति जज, पत्नी वकील’ में सांसारिक जीवन की परेशानी की परेशानी को व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है कि - “ने मानो कोईवार न्यायधीश हिम्मत दाखवीने पत्नी नी विरुद्ध जजमेन्ट आपी बेसे तो पछी बिचारा जजनी आवीज बनवानी, घरमां पग मुकताज सांभलवा मलशे। कालजे टाढकवली ने ! मने तो खातरी हती के तमे मारा असील नी विरुद्ध जजमेन्ट आपवाना छे।”^(४०) ‘पत्नी की और से ऐसा ही व्यवहार’, ‘वात

एक पतिमंचनी' रचना में देखा जाता है कि पतियों को संगठित करनेवाले पति जब घर जाते हैं तो पत्नी कहती है - "हूं तमने ऐम पुछू छु के मने पूछ्यां वगर तमे 'पतिमंच' ना सक्रेटरी बन्या ज केम? बैरा थी दबाय गयेला शहेर ना धणियों नी मुश्केली दूर करवानुं तमने क्या बेवकुफे कहेलु ! बोलो ! पत्नीओं दुःख दे छे? अमे तमने शादुःख दर्ई दिधा ऐ जरा कहेशो? तमने डाम दिधा? मा-बाप ने त्यां काढी मुक्या? मारजूड करी?"^(४१)

विनोदजी ने अपने फेन्टसी मूलक विचारों से उठकर आज की वास्तविकता को नज़र में रखते हुए पत्नी के महत्व को भी प्रतिपादित किया है, खासकर उसे पश्चिमी नारी जीवन से तुलनात्मक रूप में व्यक्तकर भारतीय पत्नी के महात्म्य को बढ़ाया है। 'मात्र मज़ाक खातर', 'पतिना खुननुं टेन्डर', 'लग्न ऐ जुगार छे छतां' आदि निबन्ध में पश्चिमी देशों की पत्नियों के व्यवहार की समीक्षा की गई है। वहाँ का लग्नजीवन क्यों टीकाऊ नहीं होता उनके कारणों पर प्रकाश डाला है। पश्चिमी लग्न जीवन पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि - "आपणे त्यां स्त्री पति तरीके एकज पुरुष ने (पतिने पूछ्या वगर) भवोभव मांग छे, ऐटले अमने थयुं के लग्ने-लग्ने कुंवारी आ नारी साथे थोड़ा सवाल-जवाब करी लईऐ?"^(४२) तो दूसरी ओर 'दरेक महान पुरुष पाछल एक स्त्री होयछे अने 'रमन्ते तत्र देवता', 'खुद भगवान पण दहेज मांगे छे' में पारिवारिक जीवन में स्त्री के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डाला है एवं पतियों की ओर से हो रहे पक्षपात पर भी व्यंग्य किया है। लेखक के अनुसार - "मनुस्मृतिमां मनु पुरुष होवाने कारणे तेमणे पुरुषो तरफ पण थोड़ो पक्षपात बताव्यो छे जेमके पति तेनी पत्नी ने त्यजी शके छे, वेची शके छे छतां तेना पर पोतानो अधिकार राखी शके छे पत्नी ने दुर्गुणी, दुराचारी ने भ्रष्ट पतिनी पण देवनी माफक सेवा-पूजा करवानुं जणाव्यु छे।"^(४३)

विनोदभाई ने अपने निबन्धों से यह भी स्पष्ट किया है कि आज के सांसारिक जीवन में स्त्री की भूमिका बदल रही है। 'नवी गुजरातण' निबन्ध में लेखक ने परिवर्तित हो रहे स्त्री जीवन पर ही प्रकाश डाला है। उन्होंने आज के विकासशील युग में बदल रहे लड़कियों के मानस के बारे में कहा है कि - "ने हवे तो लग्नबाद पण घणी गुजराती

छोकरियों पोतानी असल अटक चालु राखवा मांडी छे। पतिनी अटक तेने मूबारक पति ने अटक समेत लूँटी लेवो ठीक नहीं ऐवी उदार भावना थी तेमणे आम कर्तुं होय तेम बने। आँसू करता पैसानी किंमत वधारे छे ए वात स्त्री छेल्ला वीस-पच्चीस वर्षमां शीखी गई छे।”^(४४) इनसे स्पष्ट है कि विनोदजी ने सांसारिक जीवन के संदर्भ में गहरा निरीक्षण करते हुए उन पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं।

७.५ विनोद भट्ट के निबंधों में साहित्यिक एवं शैक्षिक हास्य-व्यंग्य :-

विनोदजी ने अपने हास्य-व्यंग्य निबंध साहित्य में समाज में प्रवर्तमान अन्य विसंगतियों के साथ साहित्य एवं शिक्षा में पाई जानेवाली विसंगतियों पर भी विस्तार से लिखा है। विनोदजी ने जिस इमानदारी व बेबाकी के साथ राजनीति, समाज, धर्म, प्रशासन की बखियाँ उधेड़ी हैं उसी भाव से साहित्यिक क्षेत्र की कारगुजारियों का भी लेखाजोखा प्रस्तुत किया है। जिसमें साहित्यकारों की कुण्ठा, दमन, कवि-संमेलनों व परिषदों की व्यर्थता, आत्मश्लाघा, चोर्यकर्म, भूमिका लेखन व पुस्तक अर्पण का द्वन्द्व, रचना की अपरिमार्जितता, संशोधनों की व्यर्थता आदि साहित्य सबन्धी विविध विसंगतियों की सक्षम अभिव्यक्ति कर इस क्षेत्र में चल रही चहल-पहल पर उचित हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं।

विनोदनी नज़रे, ग्रन्थनी गड़बड़, निबंध संग्रह में सार्वत्रिक रूप से साहित्य सबन्धित हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है। ‘विनोदनी नज़रे’ विनोद भट्ट की रचनाओं में श्रेष्ठ रचना है। जिसे विविध विवेचकों ने शीर्षस्थ स्थान दिया है। जिसमें साहित्य जगत की विसंगतियों के साथ विभिन्न साहित्यकारों के व्यक्तित्व को विनोदशैली में व्यक्त किया है। उसी प्रकार से ‘ग्रन्थ नी गड़बड़’ की ज्यादातर रचनाएँ साहित्यिक जगत के विविध अंगों से जुड़ी हैं। माना जाता है कि रमणभाई पाठक ‘वाचस्पति’ के ग्रन्थ, ‘व्यंग्यवाङ्मय’ के बाद साहित्यिक विषयों को स्पर्श करती गुजराती भाषा की यह दूसरी रचना है।

विनोद भट्ट ने कवि भास्कर दवेनी शोकसभा, 'प्रस्तावना कारनो धर्म', 'अनुभूति-ए वली शुं?', 'साचि जोडणी अघरीनथी', 'नोबेल प्राईज अने अमे', 'मैत्री विवेचन एक प्रश्नोत्तरी', 'वर्ड-बैंक रोबरी', 'आत्मकथानुं एक प्रकरण', 'पुस्तकालय विशे', 'एक ऐब्सर्ड वार्ता-विवेचन साथे', 'अमे ज्ञान सत्रमां जई आव्या', 'समाज मां लेखकनुं स्थान', 'लोकप्रियता, मारो प्रिय लेखक', 'साहित्य अने लोकलागणी', 'भोजननुं साहित्य', 'बस हवे तो दंतकथाजने', 'प्रवचन करवाना', 'भगवान श्रीकृष्ण औदिच्य सहस्त्र ब्राह्मण हतां', 'एक वावे छे ने बीजो लणे छे', 'आ साहित्य परिषद शी बला छे', विनोद भट्ट (प्रथम) शिकारी कुतराओ ने बगाइओं करडती नथी, पुस्तक चोरी ते काई चोरी कहेवाय, हु कवि केम न बन्यो? आदि निबन्धों में साहित्य के क्षेत्र में पाई जानेवाली विसंगतियों को व्यक्त किया है।

आज के मशीनयुग में काफी मात्रा में रचनाएँ प्रकाशित होती रहती है। उनमें कईबार उनकी परिमार्जितता को नज़र अंदाज किया जाता है। अनुभूति-ए वली शुं? निबन्ध में स्वअनुभूति को नज़र अंदाज कर बननेवाली रचनाओं पर व्यंग्य किया गया है तो, साची-जोड़णी अघरी नथी' निबन्ध में आज भाषा-शैली को लेकर हो रही अवगणना पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि - "एक जमानो ऐवो हतो ज्यारे खोटी जोडणी ए गाल लेखाती एक दंतकथा प्रमाणे एकमोटा साक्षर ने मलेली कंकोतरीमां जोडणीनी थोडीक भूलो ने कारणे मोटो जगडो करेलो ने ए कारणे पोताना सगा सालाना लग्नमां ते नहोता गया।"^(४५)

आजकल पुस्तकों में भूमिका लेखन एवं पुस्तक अर्पण में औपचारिकता ही देखी जा सकती है। जिसमें विशेष संवेदना या तो उचित पात्र का खयाल नहीं रखा जाता है। अपना उल्लू सिधा करने के लिए उन लोगों का इस्तेमाल किया जाता है। विनोदजी ने 'प्रस्तावनाकारनो धर्म', एवं 'बस हवे तो दंतकथाज ने' निबन्धों में इस और निर्देश किया है। आज-कल पुस्तक को पढ़े बगैर ही भूमिका लिखनेवालों पर लेखक ने व्यंग्य किया

है। 'व्याजस्तुति' में व्यंग्य करते हुए लेखक कहते हैं कि - "जो के मारी दृष्टि ए तो पुस्तक खोल्या वगर के तेमानुं कशुं वांच्या वगर तेना विशे प्रस्तावना करवी ऐज एक आदर्श पद्धति छे। प्रस्तावना लखवा अगाव ते कृति वांचीए तो प्रेज्युडिस्ट थई जवाय। वली, कोई कृति वांचीने तेनी प्रस्तावना लखवा करता नहीं वांचीने लखवुं वधु सहेलु छे। कोई जोखमय नथी एमां।"^(४६) उसी प्रकार से पुस्तक अर्पण के बारे में लिखा है कि पुस्तक अर्पण विभिन्न अवस्थाओं में किया जाता है। पुस्तक अर्पण करते समय रचनाकार के आंतरिक भावों पर अपन नज़रियाँ व्यक्त करते हुए विनोदजी ने लिखा है कि - "पुस्तक अर्पण ए लेखक ने मन सुदामानी तांदुल छे। तेनी लागणीनी आ जाहेर अभिव्यक्ति छे। पोताना अर्पण बाबत सर्जक घणो गंभीर होय छे।"^(४७)

चोर्यकर्म आज के साहित्य का बहोत बड़ा दुषण है। विनोदजी ने अपने निबन्ध 'पुस्तक चोरी ते कोई चोरी कहेवाय', में पुस्तक चोरी से अपनी लायब्रेरी को समृद्ध बनानेवाले पर व्यंग्य किया है तो 'वर्ल्ड-बैंक रोबरी' में साहित्यिक दृष्टिकोण से हो रही चोरियाँ पर विस्तृत विवेचन व्यक्त किया है। ऐसी नियति रखनेवाले साहित्य कर्मियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए लेखक कहते हैं कि - "ने आम जोवा जईये तो मौलिक शुं छे आ जगत मां? जीववा माटे आपण ने प्राणवायु श्वास मां लईये छीऐ ते क्या आपणो छे? आपणे जे शब्दों लखीए-बोलीए छीऐ तेमांनो एक-एक शब्द, शब्द कोशमां पडेलो छे जेने आपणे प्रेरणा-प्रेरणा करीने पोकारीऐ छीऐ ऐय क्यार्थी आवे छे? आपणामां महेमाननी जेम बहार थी ज आवे छे ने?..... तो पछी?"^(४८) यही कारण है कि आज साहित्यिक रचनाओं का महत्व कम होता जा रहा है। 'पुस्तकालय विशे' निबन्ध में लेखक ने इस ओर इशारा किया है। विनोदजी ने माना है कि आत्मप्रशंसा का भूत भी आज-कल के साहित्य की कमजोरी है। 'आत्मकथानुं एक प्रकरण' एवं 'मुशायरों कम कवि संमेलन' में लेखक का व्यंग्य इसी बात पर है कि जब लेखक आत्मकथा लिखता है तब वह सर्जक की बजाय महानायक की भूमिका में आ जाता है। जब वह संमेलनो में हाजरी लगाता है

तो अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा कैसे बढ़े इसलिए वह ज़ोर लगाता है। पर ऐसा करने से क्या परिणाम आता है उनका भी हास्य-व्यंग्यात्मक मार्मिक चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है। परिषदों में भी उसी प्रकार का माहोल देखने को मिलता है। 'आ साहित्य परिषद सी बला छे' निबन्ध में लेखक ने साहित्य परिषद की विभिन्न गतिविधियों व त्रुटियों पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। तो दूसरी ओर साहित्य की फजीहत करनेवालों को भी लताड़ा है। जो उनके मर्म को नहीं जानते हैं उसे उनके बारे में अपनी राय देने का कोई अधिकार नहीं है 'साहित्य अने लोकलागणी' निबन्ध में साहित्य सर्जन पर लदनेवाली सामाजिक मर्यादाओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। क्योंकि साहित्य के लिए किसी भी प्रकार के बन्धन उनकी मुक्त अभिव्यक्ति पर दमनकारी लगते हैं। कईबार सरकारी नीतियों के कारण रचना में से कुछ हटाना पड़ता है। ऐसी हरकतों से खीन्न होकर लेखक ने व्यंग्य किया है कि - "ऐटले अमें द्रढ़ पणे मानीऐ छीऐ के जे वांचता कोईनी पण लागणीने ठेस पहाँची होय तेवा शब्दकोशों, कहेवतसंग्रहों, पाठों, पाठ्यपुस्तकों ने ग्रन्थों ने दूर करवा जोइऐ। पछी भले ने रामायण के महाभारत केम नथी होता।"^(४९)

साहित्य संशोधनों व विवेचनों को लेकर भी विनोदजी ने अपने बहोत से निबन्धों में उनसे जुड़ी विसंगतियों को व्यक्त किया है। संशोधन से जुड़ी समस्याएँ एवं विवेचन की मर्यादाओं के सन्दर्भ में 'भोजन नुं साहित्य', 'एक वावे ने बीजो लणे', 'विनोद भट्ट(प्रथम)', 'शिकारी कुतराओं ने बगाइओं करडती नथी' आदि निबन्धों का उल्लेख किया जा सकता है। जिनमें संशोधन पर व्यंग्य है, संशोधन कार्य में फैली अराजकता पर व्यंग्य किया गया है। साथ-साथ संशोधकों की समस्याओं व मर्यादाओं का भी खयाल किया गया है। लड़खड़ाते हुए काँपते हुए होनेवाले संशोधनों पर व्यंग्य करते हुए लेखक ने लिखा है कि - "शेक्सपियर, बाल्झीक, स्टेन्डाल, हेमिंग्वे, चेखोव वोल्ट व्हिटमेन, टागोर अने कनैयालाल मुंशी जेवा मोटा गजाना सर्जको पर माछला धोवाय छे। पण आटलो समय वीती गयो छतां 'सेक्सपीअर' ने कोई भूंसी शक्यु नथी। तेने भूसवा मथनार कोण हतां अनीय प्रजाने आजे खबर नथी।"^(५०) तो 'नोबेल प्राइस अने अमे' रचनामें

साहित्यिक जगत के श्रेष्ठ चन्द्रक विजेताओं को तय करनेवालों के द्वारा हो रही धाधलियों पर व्यंग्य किया गया है। इस प्रकार विनोद भट्ट ने साहित्य के क्षेत्र से जुड़ी हर विसंगति को अपनी विभिन्न निबन्ध रचनाओं में स्थान दिया है।

आज के समय में कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया जो उनके मूलभूत सिद्धांतों का अनुसरण कर रहा हो। शिक्षा-क्षेत्र भी अधःपतन, अव्यवस्था, अनैतिकता एवं अराजकता आदि दुर्गुणों से लिपटा हुआ है। - “शिक्षा, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्रथम अनिवार्यता तो होती है साथ ही उसकी शक्ति का केन्द्र भी राष्ट्र को सुयोग्य, शिक्षित नागरिक प्रदान करना ही शिक्षा का व्यापक उद्देश्य है। आजादी के संघर्ष काल में शांति-निकेतन, काशी-विद्यापीठ, गुरुकुल कांगड़ी, जामिया-मिलिया जैसी राष्ट्र प्रेमी शिक्षा-संस्थानों की स्थापना की गई थी, किन्तु संस्थापकों की बिदाई के साथ ही मानो उनकी मूल भावना बिदा हो गई।”^(५१) शिक्षा-क्षेत्र की स्थिति को मूक दर्शक बन न देखते हुए विनोदजी ने उनमें फैली विसंगतियों को अपने कथ्य का विषय बनाया है।

शिक्षा में चल रही अराजकता, अनुशासनहीनता, व्यावसायिकता, अव्यवस्था, ट्युशनप्रथा, दाखिले की दौड़, गिरती हुई गरिमा आदि शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी विसंगतियों को अपने निबन्धों में व्यापक रूप से व्यक्त किया है। विनोदजी ने अपने निबन्ध अमारी शाला, एक आदर्श कॉलेज नी जाहेरात, शिक्षक नो प्रेमपत्र, प्रोफेसरो नो प्रेमपत्र, महत्व पंखी नी आँखनुं नथी, जोइए छे-जोइए छे, केलवणी, जोवालायक स्थलो, अमारे भरनवृत्ति वालो माणस जोइए छे, आपणने शो फरक पड़े, अमारी मासी ऐल.डी.आर्ट्स कॉलेज, टेइक इट इज़ी, चांदलो पाँच नहीं अगियार शोभे, चोरी करेंगे या मरेंगे, आदि ऐसे अनेक निबन्धों में शिक्षा सबन्धी विसंगतियों को हास्य-व्यंग्यात्मक रूप से व्यक्त किया है।

विनोद भट्ट ने विशेषतः शिक्षा-क्षेत्र में चल रही अनुशासनहीनता, अव्यवस्था पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। अमारी शाला एवं एक आदर्श कॉलेजनी जाहेरात निबन्ध में शिक्षा-जगत की चित्र-विचित्र गतिविधियों को विनोदजीने विनोदीशैली में प्रस्तुत किया है। ‘अमारी शाला’ आत्मकथात्मक रचना है जिनमें लेखकने स्कुली अनुभवों का

वास्तविक निरूपण हास्यात्मक शैली में किया है। उसी प्रकार से 'एक आदर्श कॉलेजनी जाहेरात' में उच्चशिक्षा की बिगड़ती स्थिति का निरूपण किया है। जिनमें रचना के प्रारम्भ में लेखक लिखते हैं कि - "उपर नी त्रण फोटाफ्रेमो आपी छे, आ त्रणय विद्यार्थीओ ने प्रसिद्धिनो मोह नहीं होवाथी ऐमना फोटा मूक्या नथी। पहेली फ्रेमवाला श्री मयुर एम.मारझूडिया ए आ वर्षे आर्ट्स कॉलेज ना सत्तावीश मांथी त्रेवीस प्रोफेसरने मारी ने युनिवर्सिटी ना तमाम रेकर्ड तोडी नाख्या छे। श्री मारझूडिया ने बच्चू कट्टी ऊर्फे 'बचूदादा' सुवर्ण चन्द्रक एनायत करवामां आव्यो छे। (आमतो तेमणे पडावी लीधो छे)।" ^(५२) इनसे उच्चशिक्षा में अनियंत्रित अनुशासन का वास्तविक रूप स्पष्ट होता है।

'महत्त्व पंखीनी आंखनुं नथी' निबन्ध में पौराणिक कथा का सन्दर्भ लिया गया है। जिनमें द्रोणाचार्य के द्वारा ली गई कौरवों एवं पांडवों की परीक्षा को आधार बनाकर लेखक ने आज की शिक्षा व्यवस्था की तस्वीर प्रस्तुत की है। यथा - "ने परीक्षा नुं परिणाम जाहेर थयुं एज सांजे हस्तिनापुरमां तोफानों फाटी नीकल्यां। गुरुद्रोण ने धक्के चड़ाववामां आव्या ने तेमना घरनुं राच-रचीलु रस्ता पर लावीने सलगावी मूक्यु। रस्ता परथी पसार थतां रथो तेमज अन्य वाहनो ने आंग चांपवामां आवी विद्यार्थीनेता दूर्योधने गुरुद्रोण पर एवो आक्षेप कयों हतो के तेमणे मनस्वी पणे परीक्षा लई ने कोर्स नी बहारनो प्रश्न पूछयो हतो अने फक्त एकज प्रश्नना आधारे परिणाम आप्यु हतुं। तेमणे ओप्शन पण नहोता आप्या।" ^(५३) इनसे स्पष्ट है कि विद्यार्थी की ओर से मनगढन्त कहानी बनाली जाती है। आज शिस्त को विनय-विवेक को सब भूल बैठे हैं। ऐसे हालात में किस प्रकार के आचार्य की आवश्यकता है, इसकी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति 'जोइऐ छे-जोइऐ छे' निबन्ध में मिलती है। यथा - "छोकराओ ने भणावे ऐवा प्रिन्सीपाल नी जरुरत अही कोने छे ! आतो कोइकवार जरा नवरा पडो तो क्लास मां छोकरा आगल अडधो-पोणो कल्लाक उभा रहीने डोला काढ़वाना..... शुं समज्या।" ^(५४) आज के उद्यमी विद्यार्थी कब, कहाँ, कैसे हालात पैदा करें, कुछ कहाँ नहीं जा सकता ! वह क्या कर सकते हैं ! उनका चितार विनोदजी के 'अमारे भरतवृत्तिवालो माणस जोइए' में संवाद शैली में दिया है - जैसे

“उद्यमी विद्यार्थियों काच तोड़वा उपरांत वाइस-चान्सेलरनो घेराव करी तेना कपडां फाडी नाखता होयछे, एनी अमने जाणछे। दर वरसे तमने छ सफारी सूट युनिवर्सिटी तरफ थी आपवामां आवशे। बस, छज? युनिवर्सिटी क्या आखु वर्ष चाले छे? मात्र चार, साडाचार मास जेटली ज चाले छे ने? ने दरवखते विद्यार्थीओं कपडांज फाडे एवुं थोडुं छे ! कोईवार मन फेर माटे धक्के चडावीने धोलधपाट करीने जवादे। छोकरा उदार होय छे आम तो पाछा।”^(५५)

विनोदजी ने शिक्षा को लेकर व्यापक व्यंग्य प्रस्तुत किया है। संस्था में दाखिल होने से डीग्री लेने तक के सफर में क्या-क्या कारनामे होते रहते हैं उनका चितार दिया है। दाखिला लेने के लिए लोग किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार रहते हैं ‘अलाउदिन ना जादुई चीराग’ के दृष्टांत में लेखक ने ऐडमिशन के बारे में एक घटना को जिस तरह से व्यक्त किया है उनसे दाखिले के दौड़ की पराकाष्ठा समजी जा सकती है। यथा - “अमदावादना एक धनिक वाली नी दिकरी ने कोई कारणसर ते भणती हती ते स्कूलमांथी काढी मूकवामां आवी, एटले वालीए बीजी कोई स्कूलमां एडमिशन कदाच न मले ए भये पोतेज एक स्कूल उभी करी दीधी, जे आजे कडे-धडे चाले छे।”^(५६) यही से शिक्षा में व्यावसायिकता का प्रवेश हो जाता है, ऐसे छात्र दाखिला लेके क्या पढ़ेंगे? उन्हें ठीक से पढ़ाने के लिए ट्युशन की व्यवस्था करनी पड़ती है। ट्युशन को बड़े कारोबार के रूप में देखते हुए लेखक ने व्यंग्य किया है कि - “ट्युशन करतां शिक्षको ना निवास स्थाने इन्कमटेक्स वालाओ ए दरोडा पाडया छे। जेमां सरकार ने सारी ऐवी बिन हिसाबी रकमो सांपडी छे। एक सर्वे प्रमाणे आ शहेर मां कापड उद्योगो पछी बीजो कोई धंधो फूल्यो-फाल्यो होय तो ते शिक्षण कहेता केलवणीनो छे।”^(५७) ‘केलवणी’ निबन्ध में लेखक ने अतीत एवं वर्तमान शिक्षा पर काफी कुछ लिखा है। तो ‘चोरी करेंगे या मरेंगे’ निबन्ध में छात्रों के द्वारा परीक्षा के समय में की जानेवाली कॉपियों पर व्यंग्य किया है। आज की ये बहोत बड़ी समस्या मानी जा सकती है। एडमिशन के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाओ, बादमें ट्युशनमें जाओ, फिर कॉपियों का सहारा

लो तब जाकर डीग्री मिले ऐसी डीग्री का क्या महत्व रह जाता है। इस बात पर व्यंग्य करते हुए लेखक ने 'अमदावादना जोवालायक स्थलों' में गुजरात युनिवर्सिटी का परिचय देते हुए कहा है - "ग्रेज्युएट्स उत्पादन करवानी फेक्टरी होवा छतां तेने फेकटरी एक्ट लागु पडतो नथी। ते जंगी प्रमाणमां ग्रेज्युएट उत्पन्न करेछे। ग्रेज्युएट्सो ना आवा विराट उत्पादनने कारणे अमदावादनी ज नहीं, सारा गुजरात नी शेरियो ग्रेज्युएटो थी खदबदे छे।"^(५८) इस प्रकार विनोदजी ने शिक्षा सबन्धी छोटी-बड़ी, हर तरह की हलचल को अपने हास्य-व्यंग्य निबन्धों में स्थान देकर अपनी चिंताओं को व्यक्त किया है। साहित्य व शिक्षा सबन्धी विसंगतियों को विनोदजी ने सहज ही अंतरंग होकर वाचा दी है। इससे कईबार ऐसा लगता है कि वह खुद प्रतिबद्ध होकर अपने अनुभवों की गठरियों से साहित्य की सालसता, सोहार्द, व शिक्षा के सच्च का अमृतमयी स्पर्श करवाते हैं।

७.६ विनोद भट्ट के निबन्धों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य :-

गुजराती साहित्य में हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्य की अभिव्यक्ति मध्यकाल से पाई जाती है। जब वह रचना के वैशिष्ट्य के रूप में उभरता था तब से धार्मिक विसंगतियों को प्रस्तुत करने के लिए हास्य-व्यंग्य का आधार किया जाता रहा है। प्रेमचंद, अखो, भोजाभगत आदि की प्रस्तुति में यह विशेषता दृष्टिगोचर होती है। झूठे कर्मकांडी एवं दंभी-ढोंगी साधुओं को लताडने में और धार्मिक अंधश्रद्धा से पीड़ित जनसमाज में जागृति लाने के लिए 'अखा' के प्रयत्नों को विशेष समर्थन मिला था। उस समय पाखंडी गुरुओं की बोलबाला थी। उस समय उन्होंने लिखा था कि, "धन हरे पण धोखो नव हरे, ए गुरु कल्याण शुं करे?"^(५९) ऐसी अभिव्यक्तियों से उन्होंने धर्म के बारे में सही समझ को व्यक्त करने का प्रयत्न किया था। धार्मिक हास्य-व्यंग्य आधुनिक रचनाकारों में भी उसी रूप में प्रवर्तमान रहा है। धर्म, धर्माचरण, धर्मानुयायिओ, धर्माचार्यों, धर्माचारों में दिखाई देनेवाली विसंगतता के कारण उनकी आलोचना होती रही है।

विनोद भट्ट ने अपने निबन्धों में धार्मिक विसंगतियों को कही प्रमुख रूप से तो कही गौणरूप से प्रस्तुत किया है। वैसे उन्होंने अपने प्रारम्भिक निबन्धों में उसे नहीं छेड़ा

है। पर धीरे-धीरे उनके निबन्धों में धार्मिक व्यंग्य खुलता गया हो ऐसा लगता है। विनोदजी ने वगेरे, वगेरे, वगेरे..., मंगल-अमंगल, कारण के आदि निबन्ध संग्रहों में धार्मिक हास्य-व्यंग्य की प्रस्तुती की है।

वगेरे, वगेरे, वगेरे....., ग्रन्थ में सलमान रशदी एवं भगवान रजनीश को लेकर जो निबन्ध लिखे हैं उनमें धार्मिक हास्य-व्यंग्य पाया जाता है। सलमान रशदी को अपनी 'ध शेतानिक वर्सिस' के कारण जो परेशानी हुई उनका हास्य-व्यंग्यात्मक वर्णन करते हुए विनोदजी ने लिखा है कि, "आ नवलकथा 'ध शेतानिक वर्सिस' मां थी ते घणु शीख्यो छे। लेखको ए तेमांथी प्रेरणा लेवा जेवी छे। हाइड्रोजन बम करताये वधु स्फोटक शक्ति धार्मिक लागणी मां छे। कलम ने बने एटली एनाथी दूर राखवी।"^(६०) रजनीश भी अपनी उसी प्रकार की लेखनी के कारण चर्चा में रहे। विनोदजी ने 'भगवान रजनीश ना जीवन मां थी बस आज शीखवा जेवुं छे' रचना में उनके विचारों को हास्यात्मक शैली में व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "भगवान राम चन्द्रजी, गांधीजी के शंकराचार्य ना चाहको ने पोतानी वाणी द्वारा रजनीशे आघात पहोचाड्यो हतो। लक्ष्मण ने कामुक कहेवा बदल तेमनी सामे कोर्टमां केस पण दाखल थयेलो। जगतगुरु शंकराचार्य माटे एकवार तेमणे कह्यु हतु के, "आ जगतगुरु नाम केवी रीते पड्युं ते जाणो छो? आ महाशय ने एक शिष्य हतो ने तेनु नाम जगत हतुं। आ जगत नामना एकमात्र शिष्य ना गुरु एटले जगद्गुरु - बस आ रीते ए आखा जगत ना गुरु थई बेठा।"^(६१)

विनोदजी की धार्मिकता से जुड़ी हुई रचनाएँ उनके 'मंगल-अमंगल' ग्रन्थ में मिलती है। जिनमें धर्माचार्यों, अनुयायियों, धार्मिक मान्यताओं, श्रद्धा-अंधश्रद्धा को हास्य-व्यंग्यात्मक रूप में व्यक्त किया है। विशेषतः इसमें ज्योतिष शास्त्र, खगोलशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शुकनशास्त्र की बात की गई है। 'मंगल-अमंगल' की तैतीस (३३) रचनाओं में से प्रारम्भिक बारह (१२) कृतियों में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु-केतु, हर्षल, नेप्च्युन जैसे ग्रहों के बारे में खगोलशास्त्रीय जानकारीयों के साथ उनसे जुड़ी हुई पौराणिक कथाओं, ज्योतिषशास्त्र के अनुसार उनका कार्यक्षेत्र उनकी कुंडलियों पर होनेवाली असर आदि को हास्य-व्यंग्य शैली में व्यक्त किया है।

विनोदजी ने इस संग्रह की प्रस्तावना में भी ज्योतिषशास्त्र पर प्रहार करते हुए उनके खोखले दावों की खिल्ली उड़ाई है। उनकी व्यर्थता को प्रगट करते हुए वह लिखते हैं कि, “लाखों माणसों ना मरी जवानी आगाही ज्योतिष शास्त्र द्वारा अत्यार सुधी करवामां आवी छे, परंतु आजे तो विज्ञान पण एवुं कहेवानी स्थिति मां नथी के हवे फलाणी सदी मां ज्योतिष नो अंत आवी जशे, केम के माणस जात मां कुतूहल बनीने जीवी रह्यु छे। हताश माणसो अने होशियार ज्योतिषियों आ पृथ्वी पर हशे त्यां सुधी ज्योतिषशास्त्र नो वाल पण वांको करी शके तेम नथी। रेशनालिष्टो पण नहीं।”^(६२)

विनोदजी ने ज्योतिष की परिभाषाएँ देते हुए बीच-बीच में हास्य-युक्त मर्मोक्तियों के माध्यम से अपने विषय का एक अलग ही रस परिपाक दिया है। इनसे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इस विषय में लेखक की जानकारी काफी गहन है। जन्माक्षर, ग्रहों, फलकथन आदि को अपनी धारदार कल्पना का रंग देकर लेखक ने हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की है। जैसे, आपणा धर्मशास्त्रों अनुसार ज्यां साप होय त्यां तेनुं मारण पण होय छे, ए रीते शुक्र नी असर नाबूत करवा शुक्रनुं नंग धारण करवुं। शुक्र ना नंग ने अंग्रेजी मां डायमन्ड, संस्कृतमां वज्र अने गुजराती मां हीरो कहेवामां आवे छे। आ हीरा मां पण माणसो नी जेम त्रण जात छे। जो के आ वात नी आपण ने ज खबर छे, हीरा ने तेनी जाण नथी।”^(६३)

नोस्ट्रडेमसनी आगाही साची पडी होत तो? ज्योतिषी नी फक्त (छ) ६ प्रतिशत आगाहीओं साची पडे छे? अखबारी भविष्य क्यारेय खोटुं होतु नथी, तो लो आ तमारु वार्षिक भविष्य आदि रचनाओं में ज्योतिष की पोल खोलते हुए हास्य-निष्पन्न किया है। एक सत्य घटना का हवाला देते हुए विनादजी ने लिखा है कि, “लगभग सातेक वर्ष अगाउ नी आ पण एक सत्य घटना छे। राजकोट जता रस्ता मां लीमडी नी एक होटल मां बेसी ने अमे नास्तो करता हतां, त्यां एक ओलखीता ज्योतिष मल्या, अमें तेने पुछ्युं, अही क्यां थी तेमणे उत्तरमां जणाव्युं, ‘अमे पिस्तालिस ज्योतिषियों, ‘एस्ट्रोलोजर्स कॉन्फरन्स’ मां जई रह्या छीए। अही गाडी बगडी एटले बधा उत्तरी, अमदावाद थी बीजी बस आवशे तेमां जइशु, ए बसनी वाट जोई रह्या छीए।

“तो पिस्तालिस माना एकपण ज्योतिषिए एवी आगाही नहोती करीके ‘बस’ अधवच्चेज खोटवाई जशे ने कॉन्फरन्स समयसर शरु नहीं थाय। अमे जाणवा मांग्यु पण आवा अश्रद्धाथी भरेला सवालो नो जवाब आप्या वगर ते बाजुए फंटाई गया।”^(६४)

उसी प्रकार से ‘कालसर्पयोग’, ज्योतिषीओं माटे रोकडियों पाक, कालसर्पयोग गरीबों ने बहु पजवतो नथी, वास्तुशास्त्र वाचके वास्तुशास्त्री ने पूछ्या पछी ज आ लेख वांचवो, आदि रचनाओं में ज्योतिषि एवं वास्तुशास्त्र पर व्यापक व्यंग्य मिलता है। विनोदजी लिखते हैं कि, “वास्तुशास्त्रनी बोलबाला छेल्ला दसका मां थइ गइ छे, ए रीते आ कालसर्पयोग पण छेल्ला पंदरेक वर्ष थी लोक जीभे चडी गयो छे। मदारियों साँप ने टोपली मां थी बहार काढे छे एटलीज सरलता थी ज्योतिषियों रुपिया सातसो एक थी मांडी ने ते सितेर हजार एक लईने जातक नी कुंडली मां थी काल अने सर्प बन्ने बहार काढी आपे छे। जो के बृहद पराशर, जातक चिंतामणी के साखली जातक मां कालसर्प नो उल्लेख नथी।”^(६५) वैसे वास्तुशास्त्र, प्राचीन है मगर पीछले कुछ सालों से उसे विशेष ख्याति मिली है। जिनके अनेकों कारण है। लेखक का आशय उनकी खिल्ली उड़ाना नहीं है पर आज उन्होंने जो व्यावसायिक रुप लिया है उस रुप में वह अवश्य ही लताडने योग्य है। धार्मिक श्रद्धां एवं लोगो की मजबूरी का फायदा उठाकर अपना उल्लू सिधा करनेवाले कर्मकांडियों को विनोदजी ने आडे हाथों लिया है। ‘कारण के’, निबन्ध संग्रह में प्राप्त होनेवाले ‘शुकन-अपशुकन’ तमारे इन्सटन्ट निर्वाण जोइए छे? भगवान श्रीकृष्ण औदिच्य सहस्त्र ब्राह्मण हताः आदि रचनाओं में ऐसे ढोंगियों पर व्यंग्य किया है जो अपने आप को भगवान के रुप में व्यक्त करते हैं, ऐसे एक बाल सांडबाबा की परिचयात्मक भूमिका देते हुए विनोदजी लिखते हैं कि - “ने भगवान होवाने लीधे बालपण थी ज जाणी शक्या हता के ते स्वयं परमात्मा छे ने दुखियाना दुःख दर्द दूर करवा तेमणे देह धर्यो छे। इश्वर नी जेम तेमणे पण भूतकाल नथी ने होयतो भक्तो ने तेनी खबर नथी। आ एक एवा इश्वर छे जेमनुं नाम पोताना दुर्भाग्य ने कारणे प्रजाए हमणा सुधी सांभल्युं न हतुं, पण अचानक ज लोकोमां श्रद्धा प्रगटाव्या बाद ते प्रगट थया छे।”^(६६) विनोदजी को दुःख इस बात का है कि ऐसे आमलोग हैं जो शुकन-अपशुकन में

भी विशेष मानते हैं, डरपोक होते हैं। लेखक के अनुसार - “अपशुकन वादिर्यो बिलाड़ी नुं सामे आववुं ए उंदर माटे अपशुकन गणाय, कुतरु सामेथी आववुं ए बिलाडी माटे अपशुकन गणाय ने म्युनिसिपल कोर्पोरेशननी कूतरा-गाडी सामे मले तो कूतरा माटे अपशुकन कहेवाय..... आ बधु सापेक्ष छे।”^(६७) इस तरह विनोदजीने लोगों की धर्म भावना, धार्मिक अंधश्रद्धा, मान्यताएँ धार्मिक ढोंगियों के कारनामों, आदि पर हास्य व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं।

विनोदजी ने अपने निबन्धों में सांस्कृतिक चिंतन को लेकर भी हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की है। वैसे साहित्य व संस्कृति में संपूर्णतः सन्दर्भ सापेक्षता रहती है। क्योंकि साहित्य संस्कृति का ही एक रूप है। साहित्य की अभिव्यक्ति किसी भी रूप में हो उनमें कोई न कोई सांस्कृतिक इकाई का समावेश होना सहज है। क्योंकि संस्कृति का प्रकटिकरण किसी भी तरह की सांसारिक हलचल से व्यक्त होता है। इन्सान जो भाषा बोलता है वह भी उनके सांस्कृतिक प्रभाव को व्यक्त करता है। इन्सान की प्रकृति व प्रवृत्ति ही उनकी संस्कृति मानी जाती है। मनुष्य जब आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि से हटकर जब कुछ विशिष्ट गुणधर्म को अर्जित करता है, तब वह सांस्कृतिक रूप धारण कर लेते हैं। रजनीकांत मोदी के अनुसार - “जे तत्वों एने (मनुष्य) ने पशुनी प्रकृतिमांथी उचे लावी अने संस्कारी बनावे छे, ते बधा तत्वो ना समूह ने आपणे ‘संस्कृति’ कहीऐ छीऐ।”^(६८) संस्कृति में बाह्यरूप से राजतंत्र, अर्थतंत्र, समाजतंत्र एवं आंतरिक दृष्टि से कला, विद्या, धर्म, अध्यात्म, दर्शन, इतिहास, योग, व्रत, त्योहार, उत्सव आदि का समावेश होता है। भारतीय संस्कृति इन सभी गुणों से युक्त है पर उपासना की तरह पूज्य और साधना की तरह समर्पण की निष्ठावाला सांस्कृतिक क्षेत्र भी विसंगतियों का नूतन इतिहास रचने लगा है। साहित्यकार, बुद्धिजीवी, कलाकार हर कोई इसी अवमूल्यन के शिकार है।

विनोदजी ने अपने निबन्धों में संस्कृति में पाई जानेवाली विकृतियों को लताड़ा है क्योंकि आज अर्थ की प्रधानता के कारण, महेनत, लगन, निष्ठा, समर्पण जैसे शब्द बेईमानी हो गये हैं। जीवन के हर क्षेत्र में बर्दियाँ व्याप्त हैं तो भला सांस्कृतिक क्षेत्र

उनसे क्योकर अछूता रहे। विनोदजीने 'अने हवे इतिहास' निबन्ध संग्रह में भारत एवं विश्व के ऐसे सत्रह (१७) चरित्रों के बारे में लिखा है। उसमें उन्होंने उस चरित्रों के साथ-साथ उनके युगीन सन्दर्भ व कार्यों को वर्तमान युग के साथ भी तुलनात्मक रूप में देखा है, जिससे विसंगतता की अभिव्यक्ति हुई है। जैसे तीन राज्य एवं सम्राटशाही के संघर्षकालिनी सम्राट अशोक की कृति में लिखा है कि - "तेणे रोपेला शिलालेखोंमां एज प्रदेशनी जनभाषा वापरवामां आवती। पालि के मागधी बेमांथी कोने राष्ट्रभाषा गणवी ते बाबतनो जगडो ए समये पण हतो।"^(६९) ऐसा कहके विनोदजी ने तत्कालीन भाषावाद पर व्यंग्य किया है।

विनोदजी ने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मानेजानेवाले चाणक्य के बारे में लिखा है कि - "चाणक्य चन्द्रगुप्तनो फ्रेन्ड फिलोसोफर एन्ड गाइड बन्यो। पोतानी जासूसी द्वारा नंदनी मानीती दासी ने साधीने चाणक्ये नंदना आठेय पुत्रो ने झेर अपाव्यु। झेरे पोतानो धर्म बजाव्यो एटले नंदना तमाम पुत्रो मरातां चन्द्रगुप्त गादीऐ आव्यो।"^(७०) यहाँ विनोदजी ने यह व्यंग्य किया है कि ऐसा करना एक परम्परा बन गई थी, जिसे भारतीय संस्कृति का काला धब्बा समझना चाहिए।

आध्यात्मिक दृष्टि से हिन्दूधर्म में अनगिनत देवी-देवताओं की पूजा होती है, और दिन-प्रतिदिन उनमें बढ़ोत्तरी होती जा रही है। इसके मदेनज़र विनोदजी ने अपने 'खलनायक नी पूजा' नामक निबन्ध में व्यंग्य किया है कि 'महाभारत' भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, उनमें जो निंदनीय पात्र है दुर्योधन, उनकी महाराष्ट्र के अहमदनगर जिल्ले के दूरगाँव में स्थित मंदिर में पूजा होती है - आ मंदिर मां लोको नी खूब भीड़ जामे छे। आ विस्तारनी प्रजा दुर्योधन ने भगवान गणीने तेनी पूजा करेछे, अने मनवांछित फल पामे छे। आ मंदिरनी पाछी खूबी ए छे के ते चोवीस कलाक खुल्लु रहे छे। आ दुर्योधन पासे मोडी रात्रे कोईवार पोलिटिशियनो बाधा-आखड़ी माटे छूपा वेशे आवेछे, एवी अफवा छे।"^(७१) ऐसा कहके विनोदजी ने आज के धर्म एवं आध्यात्मिक संस्कृति में चल रही दुर्योधन वृत्ति पर व्यंग्य किया है।

महाभारत के समान रामायण भी भारतीय संस्कृति व सभ्यता का शीर्षस्थ ग्रन्थ है। उनके कथ्य को आधार बनाकर आज के आधुनिक युग में चल रही गतिविधियों पर व्यंग्य किया है। रावण राज्यमां अखबारों होत तो.....! में रामायण के एक प्रसंग एवं रावण के पात्र के जरिये आज की राजनीति पर व्यंग्य किया गया है। उसी प्रकार से 'रामायणनी रामायण', 'कथा भगवान सत्यनारायणनी' में पौराणिक पात्रों में आधुनिक मानसिकता का आवरण लगाकर सर्जक अपना कुछ अलग ही अंदाज प्रस्तुत करते हैं जैसे - "भरतनी पी.ए.कैकयी, ने कैकेय नी सलाहकार मंथरा छे। ए जमानानी स्त्रीओं आ जमानाथी उत्तरे एम नथी। राम ने 'बीझी' राखवा माटे, अयोध्या बाजु फरके नहीं ए माटे रावण द्वारा सीतानुं कैकेय अपहरण करावे छे। रामनुं ध्यान अयोध्या तरफ थी 'डाईवर्ट' करवाना शुभ आशय थी ज ते आम करेछे। रामनी सामे रावण ने भीडावी दे छे, जाओ लडया करो बच्चाओं...."^(७२) तो दूसरी और सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की सांस्कृतिक विरासत से लदे यानी कि सत्य को ही नारायण या इश्वर मानने वाली प्रजा में नैतिक मूल्यों के अधःपतन को लेखक ने - 'कथा भगवान असत्य नारायणनी' में असरकारक रूप में व्यक्त किया है।

भारतीय संस्कृति के महान ग्रन्थों में 'मनुस्मृति' को भी वही सन्मान प्राप्त है। जिसे समृद्ध सांस्कृतिक मूल्यों से लदा हुआ ग्रन्थ माना जाता है। 'रमन्ते तत्र देवता' में मनु के द्वारा दिखाये गये जीवन धोरणों को लेखक ने विनोदशैली में व्यक्त किये हैं। उसी प्रकार से 'जय मातादी' निबन्ध में वैष्णोदेवी का यात्रा वर्णन भी कुछ उसी रूप में किया है। जैसे - "माताजी नो वास भोयरा मां छे एटले तेमनी पासे जवा इच्छुके भोयरामां लांबा सोट थइने खसता-खसता अन्दर प्रवेशवानुं होय छे। भारे वजनवाला यात्रालूओ ने माताजी डायेटिंग नुं मूल्य समजावे छे। एकवार माताजी नी मूर्ति पासे पहोंची जनार, तेमनी सामे उभा रहेनार गमे तेवा नास्तिक हाथ एकाएक ऐवी लागणी थी जोडाय जाय छे के माताजी होय तो होय पण खरा।"^(७३)

हमारी प्राचीन विद्याओं में ज्योतिष, तंत्रविद्या, मंत्रविद्या, वास्तुशास्त्र, शुकनशास्त्र

आदि को विनोदजी ने अपने 'मंगल-अमंगल' निबन्ध संग्रह में स्थान दिया है, तो प्राचीन चिकित्सा शास्त्र, आयुर्वेद के बारे में 'हास्योपचार' में लिखा है जो हमारी सांस्कृतिक विरासत का एक अंग है।

विनोदजी ने अपने बहोत से निबन्धों में हमारे सांसारिक रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं को भी विषय के रूप में चुना है। लग्नगालो, दहेज नो वसंतोत्सव, लग्न अने विमो, नवी गुजरातण, लग्न ए जुगार छे छतां..... खुद भगवान पण दहेजमां माने छे आदि निबन्धों में हमारे परम्परागत सांस्कृतिक रीति-रिवाजों को व्यक्त किया गया है। जो आज की स्थिति में हास्यास्पद लगते हैं क्योंकि आज वह संवेदना या भावस्पंदन नहीं है। जो एक समय में हुआ करता था इसलिए लेखक लिखते हैं कि - "शरमाती मुग्धा ने जोये आखी सदी वीती गई होय एम लागे छे। हवे तो शरमाती सुन्दरी जोवी होय तो टोरेन्ट कम्पनी ना जूना केलेन्डर सामे जावुं पडे छे - ऐमां शरम ने सुन्दरी ना दर्शन एक साथे थायछे। शरम मात्र अभिनयमाज बची छे।"^(७४) ऐसा कहे के आज के सांस्कृतिक मूल्यों पर व्यंग्य किया है। मूल्य परिवर्तन के पीछे लेखक बाहरी संस्कृति के प्रभाव को मानते हैं। 'अमेरिका एटले सालु अमेरिका' में भारतीय एवं अमेरिकन सभ्यता की हास्य-व्यंग्यात्मक तुलना मिलती है। तो 'तमाचो मारवामां हिंसा नथी, रचनामें महात्मा गांधी साथे गीतानुं वाक्य 'हणे तेने हणवामां पाप नथी' की याद ताजा करवाता है, तो उसी प्रकार से सिक्कानो इतिहासः हसतां-हसतां निबन्ध प्राचीन अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डालता है। इस निबन्ध में समयानुक्रमिक रूप से अर्थव्यवस्था में आनेवाले सिक्को की परम्परा को व्यक्त किया है। विनोदजी ने प्राचीन अर्थतंत्र की रूपरेखा देते हुए कहा है कि, "इ.स. पूर्व पांचमी सदी मां पाणिनि, अष्टाध्यायी, व्याकरणमां सिक्कावाचक शब्द नो उल्लेख करे छे। आ व्याकरणकार पाणिनि ने वाघे तेनी भरयुवानी मां फाडी खाधो न होत तो तेना लेटेस्ट पुस्तक मां तेणे कहेली सिक्काओं नी मीमांसा आपणने जोवा मली होत। खेर, पाणिनि ना किस्सा मां पेलो वाघ आपणा करतां वधारे नसीबदार नीकल्यो ने व्याकरण नही, आखा 'पाणिनि' ने पचावी गयो।"^(७५) इस तरह विनोदजी ने अपने निबन्धों में भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं की हास्य व्यंग्यात्मक रूप में अभिव्यक्ति की है।

७.७ विनोद भट्ट के निबंधों में वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य :-

विनोदजी के हास्य-व्यंग्यात्मक निबंधों को एक बहुत बड़ा हिस्सा हमें वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य के रूप में प्राप्त होता है। ऐसे निबंधों में विनोदजी ने अपने अभिव्यक्ति कौशल्य को कुछ विशेष धारदार बनाते हुए वैविध्य बक्षा है। विनोदजी के निबंधों में पायेजानेवाले वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य को हम प्रमुखतः चार रूपों में विभाजित कर सकते हैं। एक तो यह कि लेखक ने अपने सम्पर्क में आनेवाले प्रतिनिधि चरित्र को अपने निजी अनुभवों में व्यक्त किये हैं। दुसरे हमारी सांस्कृतिक विरासत रहे ऐसे श्रेष्ठ व विशिष्ट चरित्र, विभिन्न व्यवसायों में जुड़े हुए ऐसे खास लोग और साधारणजनों में पाईजानेवाली ऐसी सहज वृत्तियों के रूप में लेखकने अपना वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य प्रस्तुत किया है। जो 'विनोद नी नजरे', 'अने हवे इतिहास', 'प्रभु ने गम्यु ते खरु' आदि ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

'विनोद नी नजरे' में लेखक ने परिचित साहित्यिक सर्जकों के व्यक्ति चित्र को विनोदी शैली में व्यक्त किये हैं। जिनमें लेखक ने इकतीस (३९) सर्जकों के बारे में लिखा है। ग्रन्थ की प्रस्तावना में ही विनोदजी ने स्पष्टता की है कि, "मारी नज़रे जे ते व्यक्ति केवी झिलाई छे एनुं 'विनोद लक्ष्मी' चित्र दोरवानों आ मात्र एक प्रयत्न ज छे, एटले आ व्यक्ति-चित्रों ने जीवन-चरित्र समजवानी गेरसमज कोई ना करे।"^(७६) प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में जिन व्यक्तियों के बारे में लिखा है वो उनके मित्रों, परिचितों, माननीयों, मार्गदर्शकों आदि रहे हैं। 'अशोक हर्ष' से 'विनोद भट्ट' तक के सर्जकों को इसमें स्थान मिला है। इनमें लेखक ने व्यक्ति के वैशिष्ट्य व कमजोरी दोनों को उजागर करते हुए उनको विनोदी-शैली में व्यक्त किया है। 'ज्योतीन्द्र दवे' के बारे में लेखक ने लिखा है कि, "हसवा-हसाववानी वात थोडी वार माटे बाजु ए मुकी ने व्यवहारु दृष्टि ए जोइए तो 'ज्योतीन्द्र जेवो बीजो अव्यवहारु, निःस्पृही माणस भाग्येज जडे। गीता नी 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' नी फिलसूफी एमणे बराबर पचावी छे।"^(७७) उसी प्रकार से उनकी हास्यवृत्ति को संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। जैसे, "तमारे त्यां कोई उघराणी वाणो आवे अने खाली हाथे, पण हस्ते मोढे पाछो काढवामां तमे क्यो उपाय

अजमावो छो? एनी पासे पैसा मागुं छु?’^(७८)

व्यक्ति की खूबियों व खामियों को विनोदजी ने पहचाना है। ‘प्रवीण दरजी’ ने माना है की, “विनोदजी ना विनोदलक्षी चरित्रो पण हास्य क्षेत्रे नवतर प्रयोग छे। तथ्य अने हास्य ना मिश्रण नी समतुला जालववानुं तेमने सरस रीते फाव्यु छे।”^(७९) विनोदजी ने ऐसे चरित्रों की वैयक्तिक रेखाओं में कुछ मौलिक परिवर्तन करके रचना को कलात्मक रूप दिया है। जिनसे वो विशेषतः आस्वाद्य बन सकी है। मधुसूदनजी मानते हैं कि, “लेखक हकीकतो नी थोडीक ठरड-मरड करे छे एने आधी-पाछी गोठवे तो कलादृष्टि ए स्वातंत्र्य नी अधिकारी छे।”^(८०) विनोदजी ने भले ही कुछ परिवर्तन किए हो पर समय रूप से देखा जाय तो चरित्र की रेखाएँ स्पष्ट हो जाती है।

विनोदजी ने अशोक हर्ष, आदिल मन्सूरी, आबिद सूरती, इश्वर पेटलीकर, उमाशंकर जोशी, गुलाबदास ब्रोकर, चन्द्रकांत बक्षी, चन्द्रवदन ची. महेता, चांपशीभाई उदेशी, चुनीलाल मडियाँ, जयंती पटेल, ज्योतीन्द्र दवे, तारक महेता, निरंजन भगत, पीतांबर पटेल, पुष्कर चंदरवाकर, प्रवीण जोशी, प्रियकांत मणियार, डॉ.मधुसूदन पारेख, यशवंत शुक्ल, रघुवीर चौधरी, राधेश्याम शर्मा, रावजी पटेल, लाभशंकर ठाकर, वसुबहेन, विनोद जानी, वेणीभाई पुरोहित, शिवकुमार जोशी, शेखादम आबुवाला, स्नेहरश्मि, विनोद भट्ट आदि व्यक्तिचित्रों को व्यक्त किये हैं। जिनमें लेखक ने अपनी सर्जनकला का सही परिचय दिया है। रचना के अनुरूप प्रसंगों को लेना, वर्णनात्मकता के द्वारा संपूर्ण व्यक्तिचित्रों को कुछ नये अंदाज में प्रस्तुत कर पाठकों में भी उनके लिए विशिष्ट अपनत्व पैदा करते हैं। वह सिर्फ मजाकिया नहीं बन जाते पर उचित स्थानों पर गांभिर्यता के कारन वह प्रभावशाली बन पड़े है। ‘कीर्तिदा जोशी’ ने माना है कि, “व्यक्ति चित्रों ना आलेखन मां जे हास्य प्रगट थयुं छे ते लेखकनी विशिष्ट शैलीनु सुफल छे। लेखक व्यक्तिचित्रो ना आलेखन मां व्यक्तिना व्यक्तित्वनी विसंगतियों नी तारवणी करे छे ने पछी अतिशयोक्ति के कटाक्ष द्वारा तेमां रहेली हास्यास्पदता ने छती करी दे छे, पण तेनी ए रजुआत मां दंश नथी। कटाक्ष लेखक मां होवी जोइए तेवी निर्भयता विनोद भट्ट मां छे।”^(८१)

विनोदजी ने इन साहित्यिक सर्जकों के अलावा भारतीय संस्कृति के साथ जुड़े रहे ख्यात प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्रों को अपने निबन्ध संग्रह 'अने हवे इतिहास' में स्थान दिया है। जिसमें उनकी प्रशस्ति को गाया नहीं गया पर उनके जीवन की घटनाओं को विनोदात्मक रूप में ग्रहण करते हुए व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है। जिनमें इनकी महिमा को बनाये रखते हुए उनका विनोदात्मक रूप दिया गया है। मधुसूदन पारेख के अनुसार, "आ रेखाचित्रो मां लेखके ऐतिहासिक हकीकत रसोइ मां चपटीक मीठां जेटलीज लीधी छे। ए हकीकत नां नाना तातणा पर ते रेखाचित्र नी इमारत रचे छे। आ रेखाचित्रो ठठ्ठाचित्रो साथे निरांते मूकी शकाय। हकीकतो नी मरड-ठरड, व्यक्तित्व उपसाववामां गांढा रंगोनो उपयोग, गांठनुं थोडुं घणु उमरेण, आ सर्व अही रजू थयेला चित्रो मां ध्यानपात्र बने छे। आ चित्र मां सत्य के गांभीर्यनी शोध करनार निराश थाय छे।"^(८२) ऐसे ऐतिहासिक चरित्रों में 'प्रियदर्शी अशोक', महमद तघलख, चाणक्य आदि की उत्तम व आकर्षक अभिव्यक्ति हुई है।

'प्रियदर्शी अशोक' रचना में अशोक के कार्यों से हलका सा विनोद व्यक्त किया है जैसे, "पोताना एक लेख मां (तेणे) एवो आदेश आपवामां आव्यो छे के दरेके साचु बोलवुं, आ देशमांथी परणेली स्त्रीओं तेमज वकीलों ने मुक्ति आपवामां आवी छे। मुसीबत नी वात ए छे के आ बधा शिलालेखों नी भाषा फक्त प्रोफेसर विनोद भट्टाचार्य ज उकेली शक्या छे एटले तेमना कोई कथनने पडकारी शकाय तेम नथी।"^(८३) उसी प्रकार से 'अकबर के चरित्र के बारे में' मुक्त मन से लिखा है कि, "अत्यारे पोताना नामनी आगल भगवान सुपर स्टार, अभिनय सम्राट, ट्रेजेडी कींग वगैरे विशेषणों वापरवानो रिवाज चाले छे ए भूले अकबर ना समय थी शरु थयेली तेणे जाते पोताने 'महान अकबर' तरीके आलेखवानुं शरु करेलुं।"^(८४)

इनके अलावा विविध व्यवसायों, कार्यों के साथ जुड़े हुए व्यक्तियों को लेकर भी विनोदजी ने उनके व्यक्तित्व की रेखाओं को खींचा है। जिन में उन्होंने डाक्टर, वकील, न्यायधीश, पुलिसमेन, भिखारी, चोर, क्लर्क, किसान, कवि प्रोफेसर, शिक्षक, साधु, नेता आदि के व्यक्तित्व पर उनके व्यवसायों का असर कितना हावी हो गया है, जो उनके

रोजबरोज के व्यवहारों में भी देखा जाता है। उसे लेकर लेखक ने हास्य-व्यंग्य प्रस्तुत किया है क्योंकि वे जब अपने व्यवसायों में विशेषतः आग्रहों के गुलाम बन जाते हैं तब वो अर्थदास का रूप धारण कर लेते हैं तब विचित्र स्थिति का निर्माण होता है, विसंगतियाँ जन्म लेती हैं, तब हास्य-व्यंग्यकार उसमें अपनी कलम से रंग भरके जन-जागृति लाने का यत्न करते हैं।

‘विनोद भट्ट ना प्रेमपत्रों’ संग्रह में विनोदजी ने विभिन्न व्यावसायिकों, कर्मचारियों, खिलाड़ियों पर लिखके उनकी मानसिकता को उजागर किया है। जब कोई वकील खत लिखता है तो कैसे लिखता है उनका अंश देखिए, “तमने वारंवार पत्रो लख्या छतां तमे अमारा एक पण पत्र नो जवाब नहीं आपवाना कारणे उमारु दिल तूटी गयुं छे। आ तूटेलु दिल अमारु पोतानुं छे, एना पुरावा पण अमारी पासे मौजूद छे, तो अमारु दिल तोडवानी नुकशानी पेटे तमारे अमने रुपियाँ पाँच हजार (५०००) भरपाई करवाना रहेशे।”^(८५) उसी प्रकार से डाक्टर जब पत्र लिखता है तो कैसे लिखता है देखिये, “आपणो प्रेम तो विटामिन बी कोम्प्लेक्स करताय वधारे ताकातवान छे, पण तारा पक्षे एक मूश्केली छे। मेडिकल रिप्रेझन्टेटिव विटामिन नी बाटलीओं ना फ्रि सेम्पलो आपे छे, ए रीते तुं य तारो प्रेम बधाने फ्रि सेम्पल नी जेम वहेचे छे, आ मने नथी गमतुं।”^(८६) तों डाकुओं और वकीलो की तुलना करते हुए विनोदजी ने लिखा है कि, “डाकु बननारे जंगल मां रहेवुं पडे छे। ज्यारे वकीलो ज्यां रहे छे त्यां जंगल बनावी दे छे। आ बंने ना धंधा मां आमतो लांबो फरक नथी प्रजामाय बंनेनी सरखीज धाक छे। बंने सामे दलील थई शकती नथी। कहेवत छे के सैनिक नी आगल ने गर्दभ नी पाछल चालवामां पुरु जोखम छे।”^(८७)

उसी प्रकार से पुलिसवाले के प्रेमपत्र में तनख्वाँ में से प्राप्त होनेवाले कम पैसे व उपरी आमदानी का ब्योरा व्यंग्य सूचक है। खाकी वर्दी पहनेनेवाला इन्सान इन्सानीयत या नम्रता दिखा सकता नहीं है जिनका स्वीकार खुद पुलिस के द्वारा ही होने से मार्मिकता की अनुभूति होती है। ‘दुधवालों’ के बारे में दुधवाले की मिलावट वृत्ति को विनोदात्मक शैली में व्यक्त किया गया है। “वाडामां भेस भाभंरे छे एटले पत्र पुरो करु छुं” रचना का अन्तिम वाक्य हमें पशुपालन जीवनशैली से अवगत करवाता है। ‘शिक्षक

के प्रेमपत्र' में उनकी भीरुता, वेदियाँवृत्ति के दर्शन होते हैं जो अपनी बात को विभिन्न दृष्टांतों से जोड़ के व औपचारिकता के साथ शिष्टता के साथ कहने का आग्रही होता है। 'क्रिकेटर नो प्रेमपत्र' में क्रिकेट से जुड़े शब्द फील्डिंग, ड्रॉप, नेट प्रेक्टिस आदि का प्रयोग करके अपनी उत्तम अभिव्यक्ति व शक्ति का परिचय दिया है।

'शील अने साहित्य' रचना में विनोदजी ने साहित्यकार के जीवन में दिखाई पड़नेवाले विरोधाभास को लेकर व्यंग्य किया है। जैसे, "केटलाक लेखकों नुं शील तेमनी रचनाओं मां विपरित रीते प्रगट थाय छे। एक एवा लेखक ने हुं पिछाणुं छु के जेमणे सफल दाम्पत्य नी लेखमाला पोतानी उपपत्नी ने त्यां बेसीने लखी हती।"^(८८) ढोंगी साधुओं के बारे में लिखा है कि, "आपणे त्यां पहेला ओरिजनल एटले के असली साईबाबा हता, शिरडीवाला ते बहु चमत्कारों नहोता करता, ते देव थई गया तयारबाद पट्टवर्ती ना बीजा साईबाबा हाल विद्यमान छे जेमनी नामनी आगल सत्यनुं विशेषण जडबे सलाक थई गयुं छे। आ सत्य सांइबाबा हवामांथी भस्म ज नहीं, जापान मेइक नी इम्पोर्टेड घडियाल काढता ने पोताना एकाद परम भक्त ने चूंटीने, प्रसाद रूपे घडियाल आपता।"^(८९)

विनोदजी ने भिखारी को लेकर भी बहोत से निबन्ध लिखे हैं। जिनमें फाइवस्टार भिक्षुक नो इन्टरव्यू, भिक्षुकोंनेय आत्म सन्मान होय छे हो, में उनकी आदतो को व्यक्त किया गया है। उनकी जीवनशैली को एक संवाद के माध्यम से ऐसे व्यक्त किया है,

"तमारु आ भिक्षापात्र चांदीनुं होय तेवुं केम लागे छे?

कारण के ते चांदीनु ज छे?

शुं वात करो छो? आ शुद्ध चांदीनुं छे?

हा, जी....."^(९०)

इनसे स्पष्ट है कि विनोदजी ने अपने निबन्धों में हर तरह के चरित्र की अभिव्यक्ति दी है। जिनमें उन्होंने उनके वैयक्तिक गुण-दोषों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए उनकी व्यावसायिक मानसिकता के साथ जोड़कर देखा है।

उसी प्रकार से 'आमा छेतरपिंडी क्या आवी, तमारे इन्स्टन्ट निर्वाण जोइऐ छे?,

‘बंगलानुं नाम छे कातरकृपा’ डाक्टर मात्र भूलने पात्र, आम वात-वातमां तमारुं हृदय केम भांगे छे ! रविशंकर, चीमनभाई बधाज अर्थमां अभुतपूर्व, फूलदानी अने राखदानीमां कोई अन्तर खरू, अमने सुरेशदलाल नी इर्षा आवे छे, (कारण के) सुरेश दलाल रडे तो पण हसता-हसता रडे....., सेक्सपियर थी शेरबजार सुधीनी सफर, एक बीजा बचुभाई नी वार्ता तो आछे अश्विनी भट्ट, (वगेरे, वगेरे, वगेरे), तमाचो मारवामां हिंसा नथी....., गांधीजी इन्कमटेक्स भरता हता, लेखकों ने तो वांचवाज सारा (अथ थी इति), इनाम माणस ने बगाडे छे, चालो चंद्रकोने नाना बनावी दइऐ, राजकपूर मात्र चेप्लिन ज न होतो, शंकरे गर्दभोनुं सन्मान कर्युं हतुं, धूमकेतु ने गुजराती नहोतु आवडतुं, नौशादनी बदतमीजी (प्रसंगोपात), आइन्स्टाइननी आँखों पण महान हती, बे प्रश्नों बाबते कलापी, गलता जामनो कवि, मरीझ, पु.ल.देशपांडे एक जीवंत दंतकथा, दंतकथा पाछलनी स्त्री: सुनिता देशपांडे (मगनुं नाम मरी) आदि ऐसे निबन्ध है जिनमें विनोदजी ने वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य को साकारित करते हुए अपने आपको एक कुशल चितेरे के रूप में प्रस्थापित किया है।

विनोदजी के इन वैयक्तिक निबन्धों को देखेतो ये स्पष्ट हो जाता है कि उनमें विविध मानवीय आदतों, वृत्तियों, मानसिकताओं का एक बहोत बड़ा पुलिंदा भरा पड़ा है। इर्षा, लोभ, भय, अज्ञान, पागलपन, मूर्खता, व्यसन, धृणा, वेरभावना, असत्यकथन, शत्रुता, झूठी सिद्धांतप्रियता, गुरुता, लघुता, क्रोध, अप्रमाणिकता, प्रशंसा प्रियता, हताशा, कायरता, कामुकता आदि अनेक ऐसे मानवीय गुण-दोषों की अभिव्यक्ति वैयक्तिक हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में हुई है। जिस प्रकार से माना जाता है कि हास्य-व्यंग्य साहित्यकारों को अपनी सामग्री अपने आसपास के जन-जीवन में से ही मिल जाती है। बशर्ते वह दृष्टि चाहिए, उसी दृष्टि को विकसित कर हास्य-व्यंग्यकार अपनी रचना को विकसित करता है। जयंतजी के अनुसार - “मनुष्य ज एक ऐवुं प्राणी छे जेने हास्यनी शक्ति वरेली छे। अनौचित्य अने वैचित्र्य हास्यना विभाव बनी शकेछे। कोईपण पदार्थमां रहेला वैचित्र्य थी, अस्वाभाविकता थी, अनौचित्य थी हास्य जन्मे छे पण वस्तुगत वैचित्र्य ने पारखवा माटे व्यक्ति पासे अमुक प्रकारनी बुद्धिशक्तिनी पण अपेक्षा रखाय छे।”^(९९)

इस बात को विशेषतः स्पष्ट करते हुए वह लिखते हैं कि - “समग्र हास्य साहित्य भले अनेक विषयों अनेक पद्धतिओं, अनेक स्वरूपों अने ध्येयो धरावतुं होवा छतां ए विविधतामांथी सार तो एक ज निकले छे, अने ते प्रख्यात फ्रेन्च विवेचक ‘hehri bergson’ पोताना पुस्तक ‘laughter’मां कहेछे तेम ‘man an animal which is laughed at.’ (माणस ए हसतुं करतां जेनी पर हसी शकाय एवुं प्राणी छे।)”^(९२)

विनोदजी के हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों को देखने से लगता है कि उन्होंने हेनीबर्गसा की मान्यता को सहज ही साकारित किया है। विनोदजी की रचनाओं में विशेषतः मानव सहज कमजोरियों का आलेखन हुआ है। मनुष्यों में दिखाई देनेवाली त्रुटियों-खुबियों का उन्होंने हास्य-व्यंग्य मिश्रितरूप बखूबी व्यक्त किया है।

पागलपन मानवजाति के बीच वैचित्र पैदा करनेवाला मनोरोग है, उनके बारे में लेखक मानते हैं कि - “डाह्या माणसों माटे कोई स्पेशियल कानून नथी पण पागलो माटे इन्डियन ल्यूनसी एक्ट (भारतीय पागलपन धारो) छे। कायदा थी कोईने डाह्यो ठेरवी शकातो नथी पण गांडो ठरावी शकाय छे - जो के आवुं प्रमाणपत्र पाछा कायदेसर डाह्या माणसो ज आपता होय छे ए पाछी गम्मतनी वात छे। ‘सेम्युअल बकेटे’ तेना अतिलोकप्रिय नाटक, ‘वेइटिंगफोर गोदो’ मां लख्यु छे के - ‘we are bornmed some remain so’ (आपणे पागल जन्म्या छीऐ केटलाक तेवा ज रहे छे) पण आमा मुश्केली ऐटली ज छे के आपणे बधा सर्टिफिकेट वगरना पागल छीए।”^(९३)

इर्षा मनुष्य का एक ऐसा दुर्गुण है जो सुख के दिनों में भी मनुष्य को सुखी रहने देता नहीं है। व्यक्ति अपने दुखों से दुखी नहीं होता पर पड़ोसी के सुख से दुखी होता है। यह भी एक सामाजिक सत्य है। ‘मरेला माणस ने कोईनी इर्षा थती नथी’ में यही बात है। “एक डेनिश कहेवत छे के - If Envy were fever, All the world would be ill (इर्षा जो ताव होय तो आखु जगत मारुं होत) आनो अर्थ ए थयो के ईश्वर नी जेम इर्षा पण सर्वत्र छे। आपणा बधामां ‘ओथेलो’ नो पेलो इयागो वत्ते ओछे अंशे बेठेलो छे।”^(९४)

मनुष्य की सबसे बड़ी कमझोरी हताशा व निराशा है। इसी कारण इन्सान आत्महत्या करने तक पहुँच जाता है। ऐसे व्यक्ति की ठिठोली करते हुए 'पार्कर' के मंतव्य को व्यक्त किया है। जैसे, "अस्त्रा थी तने वेदना थाय छे? नदीनुं पाणी ठंडु लागे छे? तेजाब थी (कालजे) डाघा पडवानी बीक लागे छे? झेर पीता कम कमाटी आवे छे? बंदूक कायदेसर नथी? गलेफासो पसंद नथी? गेस नी वास थी उबका आवे छे? तो पछी तारे जीवुं जोइए....." (९५)

विनोदजी ने अपनी रचना 'अज्ञानियों हमेशा बहुमती मां होय छे' में इस बात की प्रतीति करवाई है कि हर इन्सान आधा-अधुरा होता है, उसमें किसी न किसी बात की अज्ञानता अवश्य होती है, जिसे लेखक ने अनेक उदाहरण व तथ्यों, तर्कों के माध्यम से साकारित किया है। भय के बारे में विनोदजी ने माना है कि, "एवो कोई माणस नहीं होय जे एक या बीजी चीज थी क्यारेय डर्यो नहीं होय। कोइनाथी नही डरनार इश्वर थी डरतों हशे। मने तो व्हेम छे के खुद इश्वर पर कशांक थी तो डरतो ज हशे। भय ए बिलकुल स्वाभाविक लागणी छे।" (९६) उसी प्रकार से मनुष्य मात्र में दिखाई देनेवाली थोड़ी-बहोत मूर्खता के बारे में लेखक मानते हैं कि, "बुद्धिनी जेम मूर्खता पण इश्वरना आशीर्वाद थी ज मलती हशे, केम के देश अने वेश बदलवाथी माणस अक्कल वालो थई जतो नथी। वटवामां जे गदर्भ होय छे ते वियेना मां पण गदर्भ ज रहे छे।" (९७) इस तरह लेखक ने मानव जीव से जुड़े हुए अनेक ऐसे व्यक्तिगत गुण-दोषों की बात की है।

विनोदजी के 'मगनुं नाम मरी' निबन्ध संग्रह को देखे तो 'सिक्कानो इतिहास हसतां हसतां' में पुरुष की स्त्री के प्रति आसक्ति को लेखक ने अन्योक्ति के माध्यम से व्यक्त किया है। जैसे, "केटलीक वार सिक्का बहार पाडनार राजानी रसिकता जे ते सिक्का द्वारा प्रगट थाय छे, जेम के बीजा पुरना आदिल शाहे १७मीं सदी मां हेरपिन आकारना सिक्का चलण मां मुक्या हता। हेरपिन आकारना आ सिक्का नो उपयोग कान खोतरवामां अने स्त्रीओ माथाना वाल सरखा राखवा माटे करती हशे? आ सिक्को आदिल शाहे तेनी बेगम नी प्रेरणा थी बनाव्यो होय एम पण बने।" (९८)

लेखक ने विनोदात्मक रूप में एक प्रसंग को व्यक्त करके ये स्पष्ट करने का

प्रयास किया है कि स्त्री का स्वभाव सहज ही ऐसा होता है जिनसे वह किसी भी चीज़ की खरीदी बहेतर रूप से कर सकती है। जैसे, “एम तो अहीं साडीओं नी एक मसमोटी दुकान छे, जे करोड़ों नो वेपार करे छे, आ दुकान मां रू.२५०.०० थी मांडी ने एकलाख रुपियानी किंमत सुधीनी साडी वेचाय छे (नो अर्थ खरिदाय छे एम करवानों) एक वार आ दुकाने ‘लत्ता मंगेशकर’ खरीदी माटे गया, त्यारे दुकानदार ने एक करोड नी लोटरी लाग्या जेवो आनन्द थयो हतो, लताजी ने एक पछी एक साडीयों बताववानो दुकानदारे बे कल्लाक व्यायाम कर्यो, त्यार बाद एक सस्ती साडी पसंद पडी जवाथी लताजीए ते खरीदी हती।”^(९९) एक और मानव सहज वृत्ति को व्यक्त करते हुए विनोदजी ने माना है कि नारियों पर अपनी जोहुकमी चलाने, उन पर आधिपत्य स्थापित कराने की वृत्ति सदियों पुरानी है पुरुष उसे अपना हक्क समजता है। ‘मनुस्मृति’ का आधार लेकर विनोदजी ने माना है कि, “मनु पुरुष होवाने कारणे तेमनो पुरुष तरफ नों थोड़ो पक्षपात बताव्यो छे, जेम के पति तेनी पत्नी ने त्यजी शके छे, वेची शके छे, छतां एना पर ते पोतानो अधिकार राखी शके छे। पत्नी ने दुर्गुणी, दुराचारी ने भ्रष्ट पति नी पण देवनी माफक सेवा-पूजा करवानुं जणाव्यु छे।”^(१००) इन से पुरुषों की मानसिकता स्पष्ट होती है।

‘कीडीओ मां हास्यवृत्ति होय छे’ रचना में विनोदजी ने अन्योक्ति के माध्यम से मानव स्वभाव की विचित्रताओं को अभिव्यक्ति दी है। मनुष्य के जीवन में पाई जानेवाली खामियों को उजागर करते हुए लेखक ने व्यंग्य किया है कि, “आपणे साधारण रीते एवुं मानीए छीए के माणस करता कीडीनी बुद्धि शक्ति उतरती होय छे, ए एटला पुरतु साचु छे के तेना मां कोई ने छेतरवानी, लांच लेवानी, एवी तेवी बुद्धि नथी, पण बीजी रीते ते माणस जेटली ज चतुर छे, तेनामां संप छे तेटलो संप जो माणस जात मां होत तो अखबारो चालता न होत के आ लेख लखवानी अमने जरूर पण न जणात।”^(१०१) उसी प्रकार से ‘कागडा ने खरीदी शकातो नथी’ रचना में भी लेखक ने अन्योक्ति के माध्यम से मानव स्वभाव की विचित्रता पर व्यंग्य किया है। जैसे, “कागडाओ मां काला अने वधु काला एवा भेद होता नथी, कागडाओनों धर्म एक बीजा थी अलग होतो नथी, तेमनों धर्म

छे मात्र का.... का.... करवानो। ए लोको अंदर-अंदर कोईनी धार्मिक लागणी नथी दुभावता, आ कारणे कोइ कागडो अन्य 'कागडा'नुं स्टेबिंग नथी करतो, कोई कोई ने दगो नथी देतो, एक बीजा नी पीठ मां खंजर नथी भोकता। एक पुख्त कागडो सगीर कागडा ने नसाडी गयो होय या दहेज माटे कोइ कागडा ए कागडी ने बाली मूकी होय एवो एक पण किस्सो पक्षी विदो ए नोंध्यों नथी।'^(१०२) इस तरह लेखक ने सामान्य पशु-पक्षियों को माध्यम बनाकर मानवीय स्वभाव पर हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किये है।

'प्रसंगोपात' निबन्ध संग्रह में दर्ज 'चालो चंद्रकों ने नाना बनावी दइए', 'इनाम माणस ने बगाडे छे' निबन्ध में से ये तथ्य प्रकट होता है कि मानवीय स्वभावानुसार जो चीज उसे सहज ही प्राप्त हो जाती है, उनका कोइ विशेष महत्त्व उनके मन में नहीं रहता। तो 'दर्दीनां जीवन नो अमे ठेको नथी राख्यो' निबन्ध में मनुष्य की स्वार्थवृत्ति का प्रकटिकरण हुआ है कि स्वार्थ की खातीर मनुष्य किसी भी हद तक जा सकता है।

'वगेरे, वगेरे, वगेरे.....' के निबन्ध 'इमेज नी तो' में मनुष्य में देखें जानेवाली पशुतावृत्ति का परिचय मिलता है। तो मनुष्य की भोजन लालसा का निदर्शन 'सूरज तो बधे सरखो' में हुआ है। इनके अलावा 'समय चोरनार माणस नी वात', 'कल्पवृक्ष पासे मोत मंगाय' में भी इन्सानी भावानुभूति का बखूबी चित्रण हुआ है। अपने आनेवाले कल (भविष्य) को जानने की जिज्ञासावृत्ति मनुष्य को कमज़ोर बनाती है। जिनका लाभ ज्योतिषाचार्य लेते हैं। विनोदजी ने 'अखबारी भविष्य क्यारेय खोटुं होतु नथी' में दोनो पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए मंतव्य दिया है कि, "अमारी राशि वृषभ छे। विश्व मां घणा बधा लोको आ राशि धरावता हशे, पण छापा मां छपातुं आ राशि भविष्य अमे ध्यानपूर्वक अने रसपूर्वक वांचीए छीए, जो के जुदा-जुदा छापा मां अमारु भविष्य जुदु-जुदु लखायु होय छे, ते छतां अखबारी भविष्य कथन मां अमने भारे श्रद्धा छे।'^(१०३)

'नरो वा कुंजरोवा' निबन्ध संग्रह में 'खेल खतरनाक', 'ते हि नो दिवसा गताः', 'एक रुपैया दे दे बच्चा, साचु बोलवानी किंमत.....!', 'समय समय नी वात' आदि रचनाओं में मानवीय भावनाओं का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। अपने पेट के लिए, रोज-बरोज़ की आवश्यकता पूर्ति के लिए इन्सान कुछ भी कर सकता है। वह बड़े से

बड़ा साहस दिखा सकता है। 'खेल खतरनाक' में इसी मानसिकता को शब्दबद्ध किया गया है। विनोदजी के अनुसार बाहरी देशों में यश प्राप्ति के लिए जो बड़े-बड़े साहसी कार्य किये जाते हैं वो यहाँ सिर्फ जीवन निर्वाह के लिए किए जाते हैं, सहजता से किए जाते हैं इस सन्दर्भ में लेखक ने लिखा है कि, "पण तमे तो कोई पण प्रकार नी नामना मेलववा नहीं फक्त जीववा माटे ज असल अने साहसभर्या खेल खेली रह्या छो। सलाम छे तमारी साहसिकता ने।"^(१०४)

इस तरह से इन्सानी जीवन व्यापन की शैली, स्वभाव, प्रवृत्ति, कार्यप्रणाली, रहन-सहन, बोलचाल आदि अनेक ऐसे भिन्न-भिन्न आधारों को ग्रहण करते हुए वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य को प्रश्रय दिया है। जिनके पीछे लेखक का उत्स मानवसहज वैशिष्ट्य व कमजोरी को निर्व्याज रूप से देखना मात्र है। जिसे पूर्णरूपेण तटस्थ भाव से व्यक्त करके लेखक ने अपनी सज्जनता व श्रेष्ठतम हास्य-व्यंग्य वृत्ति का परिचय दिया है। जो उनके द्वारा प्रयुक्त किए गये विभिन्न उदाहरणों से सहज ही स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि लेखक ने काफी सूझबूझ के साथ अपने गहन व सूक्ष्म दृष्टिकोण का परिचय देते हुए विषय का निरूपण किया है। उन्होंने व्यक्ति के जीवन की अच्छी-बुरी दोनों ओर की बातें बताई हैं। जिनके पीछे वह अपनी दार्शनिकता या उपदेशात्मक वृत्ति को प्रस्थापित करना नहीं चाहते पर मानव सहज वृत्तियों की समीक्षा करना चाहते हैं। हम कह सकते हैं कि उनके ऐसे ढेर सारे निबन्धों के द्वारा शाश्वत मानवीय भावनाओं का आलेखन हुआ है। साधारणतः जन समाज में देखी जानेवाली प्रकृतिगम विसंगतियों को विनोदात्मक व व्यंग्यात्मक रूपों में उन्होंने जिस प्रकार से उत्तमोत्तम कौशल्य से व्यक्त किया है जिनसे उनकी गहरी साहित्यिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है।

७.८ विनोद भट्ट के निबन्धों में भाषा एवं शब्द चयन :-

विभिन्न कला रूपों में साहित्यकला को विशेष स्थान व महत्त्व प्राप्त है, जिनका प्रमुख कारण भाषा है। साहित्य की अभिव्यक्ति का ये वह जरियाँ हैं जिनके माध्यम से सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को भी प्रश्रय मिल जाता है, जो अन्य कला रूपों के लिए सम्भव नहीं

है। साहित्य में लेखक व पाठक के बीच किसी रचनाकार की रचना को आत्मसात करना हो, उनके वैशिष्ट्य को समजाना हो तो उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा व शब्दचयन के महत्त्व को परखना जरूरी बन पड़ता है।

भाषा साहित्य का वह गद्य-रूप है जो अपने विभिन्न घटकों एवं अर्थों के समायोजन से बनता है। भाषा की सबसे छोटी इकाई वर्ण है। सार्थक शब्दों के समूह से पद व पदों के मेल से वाक्य बनता है और जब एक से अधिक वाक्यों का मेल होता है तो भाषा का स्वरूप बनता है। अतः “भाषा शब्दों से बनती है, इसलिए उनमें शब्दों का महत्त्व सबसे अधिक होता है।”^(१०५) पर ऐसे शब्दों में सार्थकता का होना जरूरी है, शब्दों में से एक विशिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति हो तब ही वह लेखक व पाठक के भावबन्ध व साधारणीकरण को साकारित कर सकता है इसलिए शब्द में अर्थ का समायोजन जरूरी समझते हुए माना गया है कि, “ध्वनि के मेल से बने सार्थक वर्णसमूदाय को शब्द कहते हैं, “अर्थ के धरातल पर देखे तो भाषा संकल्पनाओं का एक विस्तृत जाल है। अपने मूल रूप में संकल्पनाएँ या अर्थ सार्वभौम होते हैं। वह सार्वभौम संकल्पनाओं और अर्थतत्त्वों को अपने दृष्टिकोण और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग खंडों में विभक्त करता है और उन्हें शब्द और अर्थ के दायरे में बाँधता है।”^(१०६) शब्दों में विराट शक्ति होती है, रचनाकार कम से कम शब्दों में अपने गहनतम भावों को व्यक्त कर देता है जैसे.....

श्लोकार्धेन प्रबक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिमिः।

परोपकारः पुण्याय पापं य परपीडनम्॥

(जैसे करोड़ों ग्रन्थों में कहा गया है वो में आधे श्लोक में कहूंगा। परोपकार से पूण्य मिलता है और दूसरो को पीडित करने से पाप मिलता है।)^{१०७}

हर भाषा की एक विशिष्ट प्रकृति होती है जिनके अनुरूप उनमें विभिन्न भाषा-रूपों (शब्द, वाक्य, मूहावरें, कहावतें, प्रतीक, बिम्ब सूक्तियाँ) का प्रयोग होता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उनकी मूलभूत चेतना व भाव-बोध के आधार पर भाषा बनती है। जिनमें निबन्ध विधा का अपना एक अलग अस्तित्व है। क्योंकि ये मुक्त विधा है, उनमें भी

हास्य-व्यंग्य निबन्धों की भाषा सबसे अलग रूप में व्यक्त होती है, उनमें वो सारे उतार चढ़ाव, हाव-भाव, विभिन्न क्रिया कलापों को व्यक्त किया जाता है इसलिए हास्य-व्यंग्य निबन्धों की भाषा में हर प्रकार का आरोह-अवरोह दिखाई पड़ता है। विनोदजी के हास्य-व्यंग्य निबन्धों की भाषा भी वह सभी गुणों से युक्त है, जो हास्य-व्यंग्य साहित्य के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। यशवन्त शुक्ल के अनुसार, “विनोद भट्ट नुं कोई मोटु लक्षण जडी रह्यु होय तो ते ए छे के ए कशु लांबु ताणता नथी ए सोसरवा उत्तरे छे अने लक्ष्यवेध करे छे।”^(१०८) हास्य-व्यंग्यकार की भाषा के लिए ये सहज ही आवश्यक गुण समझा गया है। विनोदजी ने अपने निबन्धों में जो वस्तु विन्यास प्रस्तुत किया है, उसमें तात्कालिकता के दर्शन होते हैं। वह शीघ्रगति से वस्तु की भूमिका को स्पष्ट करते हुए उनके हार्द तक पहुँचने में वह उत्तम व सार्वभोम शब्दावली का प्रयोग करते हैं।

विनोदजी के भाषा-कौशल्य का परिचय उनके ग्रन्थ ‘विनोद भट्ट नां प्रेमपत्रों’ से ही मिलने लगता है। जिनमें उन्होंने विभिन्न व्यवसायों व कार्यों से जुड़े हुए लोगों की बात की है। जिनमें उनकी मानसिकता को प्रस्तुत करने में उनके व्यावसायिक भावभोध को, बोलचाल को हुबहु व्यक्त किया है। ‘एक क्रिकेटर नो प्रेमपत्र’, ‘एक शिक्षक नो प्रेमपत्र’, ‘एक वकिल लो प्रेमपत्र’ आदि रचनाओं में उस व्यवसाय से जुड़े हुए व्यक्तियों की भाषा व जीवनशैली का अवलोकन जिस रूप में व्यक्त हुआ है, उसमें वो सारी छटाओं का प्रकटिकरण हुआ है। विनोदजी ने अपने विचक्षण भाषा-कौशल्य से उसे जीवंत बनाया है। जैसे....

- “बे नम्बर ना बस स्टोप पर क्यांय सुधी फील्लिंग भरतो उभो रह्यो, तु न आवी एटले वरसाद पड्या पछीनी ‘पीच’ जेवो खराब मुड लइने घेर आव्यो अने लॉग ऑफ मां उभेला मामानी नज़र चुकवी ने मामी ए तारो पत्र मारां हाथ मां मूक्यों।”^(१०९)
- “हुं तमारो हाथ मांगु तो? (आ ‘हाथ मांगवो’ ए रुढिप्रयोग क्यारेक परीक्षा मां पूछाय एवो छे एटले तमारा भाई नीतिन ने एनो अर्थ समजावी देजो पण ए पहेला तमे पण समजी लेजो।”^(११०)

- “तमारी आगल-पाछल फरवामां अमे अमारां घणा बधा केसो गुमावी बेठा छीए। अमारा असीलों सारा छे, नहीं तो केसो नी साथे-साथे अमे अमारा हाथ-पग पण गुमावी बेठा होत। आ गुमावेल केसो नी किंमत रु.६,००० (छ हजार पुरा) तमारे अमने आपवाना रहेशे।”^(१११)

इन उपरेक्त गद्य-खंडो में प्रयुक्त किए गये फील्डिंग, पीच, लॉग ऑफ आदि शब्द क्रिकेट से जुड़े हुए हैं। उसी प्रकार से रूढ़िप्रयोग, परीक्षा जैसे शब्द शिक्षा जगत के हैं। केस, असील, फी आदि वकील व न्यायतंत्र से जुड़े हुए शब्द हैं। विनोदजी ने अपने निबन्धों में अन्य भाषा के ऐसे शब्द जो गुजराती में रूढ़ हो गये हो उनका खुलकर प्रयोग करके अपनी भाषा को कुछ अलग पहचान दी है। उन्होंने अपनी प्राचीन अभिव्यक्ति को असरकारकता प्रदान की है, एवं सरलतम उदाहरणों से विशिष्ट ऐतिहासिक चरित्रों को साधारण बनाये हैं। ‘अने हवे इतिहास’ में ‘महमद गझनवी’ का परिचय कुछ उसी रूप में दिया है। “एवु मनाय छे के तेनी पासे कुल २,५०० हाथी हता। नाना बालकों ने सिगारेट ना खाली खोखा, लखोटीओं तथा सोडावोटर नी बाटली नां ढांकणा एकठा करवानो शोख होय छे ए रीते तेने हाथीओं भेगा करवानो शोख हतो।”^(११२)

विनोदजी के निबन्धात्मक कथनों में आलंकारिकता का प्रयोग भी सहज समभाव्य हुआ है। खास करके उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनन्वय, स्वभावोक्ति, अन्योक्ति, द्रष्टांत, अल्पोक्ति, श्लेष, वक्रोक्ति आदि के उदाहरण तो उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं। जैसे, “बाबुदादा उर्फ बाबु कलाई याने बाबु डट्टी, उर्फ बाबु छूरी जेवा अनेक नामो ‘दादाओ’ ना पाडवा मां आवे छे ए रीते अशोक नाय आठेक जेटला नामों हता। स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट मां तेनुं नाम चंडाशोक हतुं।”^(११३) यहाँ उपमा व द्रष्टांत का उचित प्रयोगकर अपने कथन को रोचक बनाया है।

अपने निबन्धों को कुछ विशेष गहराई देने के लिए विनोदजी के मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग भी सहजता से किया है। कई बार ऐसे प्रयोग के कारण रचना में कुछ वैविध्य भी प्रस्तुत हुआ है। जो उनके प्रथम निबन्ध संग्रह के शीर्षक से स्पष्ट हो

जाता है। जिनमें उन्होंने प्रचलित कहावत 'पहेलु सुख ते जाते नर्या' के दूसरे पद में मौलिक परिवर्तन करके 'पहेलु सुख ते मूंगी नार' शीर्षक दिया जो उनकी विचक्षण बुद्धि कौशल्य का परिचायक है। ऐसे ही अन्य प्रयोग उनके निबंधों में बहोत से स्थान पर मिलते हैं। जैसे -

- पृथ्वीनो छेडो घर।^(११४)
- बहु तो वाघ ने पण वहाली होय छे।^(११५)
- घंट चोरवा जनार थी कानमां पूंमडां ना खोसाय।^(११६)

उसी प्रकार से विनोदजी ने सूक्तियों का भी सहारा लिया है, जिनके जरिये वह अपनी बात को समूचित रूप से व्यक्त करना चाहते हैं जैसे -

- इफ यु आर मेरिड, डायवोर्स योर स्पीड..... यानी तमे परणित हो तो तमारी जडप ने छूटाछेड़ा आपी दो।^(११७)
- ड्राइव लाइफ हेल ऐन्ड यु वील बी धेर-यानी दोजखमां पहाँचवा माटे एवुंज ड्राइवींग करो।^(११८) काव्य पंक्तियों का प्रयोग विनोदजी के निबंधों में विशेषतः नहीं पाया जाता फिर भी कहीं-कहीं अपने भावबोध की अन्योक्ति के रूप में वाचा देने के लिए अन्य कवियों की काव्य-पंक्तियों में मौलिक परिवर्तन करके किया गया है। 'आ दिल मन्सूरी' लिखित गझल 'मले न मले' के शेर में कुछ परिवर्तन करके व्यक्त किया है। जैसे-

“वतननी धूलथी माथुं भरी लऊ आदिल।

अरे आ धूल पछी उम्रभर मलेन मले।।”^(११९)

विनोदजी ने इन पंक्तियों को कुछ परिवर्तित रूप में व्यक्त करते हुए लिखा है कि,

“चन्द्रनी धूलथी माथुं भरी लऊ आमीं

अरे आ धूल पछी उम्रभर मले न मले।।”^(१२०)

लेखक ने यहाँ मूल पंक्ति के दो शब्दों में परिवर्तन किया है। 'वतन' के स्थान पर

‘चन्द्र’ एवं ‘आदिल’ के स्थान पर ‘आर्मी’ ऐसा कर उन्होंने अपनी हास्य-व्यंग्य भावना को बलवत्तर बनाया है।

विनोदजीने अपने निबन्धों के ओचित्य को नज़र में रखते हुए संस्कृत श्लोकों को व तत्सम शब्दावलियों का भी प्रयोग किया है जिनसे उनकी भाषा में विषयानुकूलता प्रस्थापित हुई है। जैसे - “शिवाम्बु सेवन, शिवाम्बु बंधन, शिवाम्बु अंजन, शिवाम्बु अवगाहन, शिवाम्बु आलेपन, शिवाम्बु उषपान, (नासिका के माध्यम से सुबह में शिवाम्बु का सेवन करना) शिवाम्बु कर्णपुरण, शिवाम्बु नस्य आदि प्रयोग।”^(१२१) इनके अलावा विविध रोगों के संस्कृत नाम भी उन्होंने व्यक्त किये हैं जैसे - तुण्डि कोरिका, कंठरोहिणी, मधुप्रमेह, अम्लपित्त, आदि..... तो उसी प्रकार से श्लोकों का भी निरूपण किया है। जैसे-

सर्वस्व हर सर्वस्य त्वं भवच्छेद तत्परः।

नयोपस्कार सांमुख्यं मा यासि तनुवर्तनम्॥

(हे पुत्र, तू बधानुं सर्वस्व हरी ले, घर फोड़वामां तत्पर रहे, कोईना पर उपकार करीश नहीं ने दुःख आपनार जीवन व्यतीत करजे)^(१२२) इनसे स्पष्ट है कि विनोदजी की भाषा में हम प्रबल रूप से व्यंग्यनात्मकता के दर्शन कर सकते हैं जिनसे कईबार ‘कहीपे निगाहे, कहीपे निशाना’ जैसी स्थिति का निर्माण होता है। उनके बहोत से ऐसे गद्य खंडों में उनका ध्वन्यात्मक सूर समज से बाहर होता है। उन्होंने अतिशयोक्ति, अत्योक्ति, अल्पोक्ति के माध्यम से विसंगतियों का लक्ष्यभेद किया है। जिनसे पाठकों की कल्पनाओं से परे होकर वह चमत्कृतिका सर्जन करते हैं। जैसे - “एक मालामां पाँच लाख कीडीओं संपीने एक साथे रही शकेछे। ने हमेंशा कार्यरत होय छे। क्यारेक तो रात्रे पण ओवर-टाइम करेछे। ओछुं काम-वधु दाम ए तेमनी प्रकृति विरुद्ध छे।”^(१२३) ऐसा कहके लेखक ने मानवजाति पर व्यंग्य किया है उनकी प्रकृति इनसे विरुद्ध है वह ‘कमकाम और ज्यादा दाम’ में मानने वाले है वह परिश्रम से ज्यादा फल मिले ऐसी अपेक्षा रखते हैं। इनसे स्पष्ट है कि विनोदजी की भाषा में व्यंग्यात्मकता का निरूपण सहज ही होता हुआ

देखा जा सकता है। कभी-कभी तो वह मार्मिक व मारक बन जाता है। उनकी रचनाओं में हास्य के साथ ही साथ व्यंग्य व कारुण्य अनायास ही शामिल हो जाते हैं। जब वह किसी सर्वसाधारण सामान्य घटना को लेकर अपनी बात शुरू करते हैं। तो प्रथम नज़र में उसमें विशेष उतार-चढ़ाव नज़र नहीं आता, पर जब तर्कबद्ध दलिलें देकर अपना लक्ष्य साधते हैं तब उनका व्यंग्यकार जीवंत हो जाता है। जो इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है।

१. आ गांधीजीने पैसा खाताय न आवड्यु ! तेमणे धार्यु होततो जवाहरलाल ने देशना वडाप्रधान बनाववा माटे करोड़ों रुपियाँ उतारी शक्या होत, पण आवडवुं जोइए ने ! आझादी पछी य खास्सा दिवसो तेमनी पासे हता, पण ते पैसा खाइ न शक्या। खाई-खाई ने मफतमां त्रण गोली खाधी।^(१२४)
२. एक मुख अमने कहेतो हतो के वडाप्रधान नां विमानमां खास पलंग फीट करावेला। ते करावे, विमानमां कई शेतंजी नाखीने हाथनुं ओशिकुं करीने सुई जवाय ! एक तो ७४३ जेवुं किंमती बोइंग विमान होय, तेमां शेतंजी पाथरीने पडता नाखीए तो एमां उचे चडता विमान ने य नीचा जोणुं थाय।^(१२५)

विनोदजीने ज्यादातर सरल भाषा का प्रयोग किया है। वह छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा अपनी भाषा को गतिमान रखते हैं। जब तक हो सके सहजता से भाषा का प्रवाह चलता रहता है। यही कारण है कि उनकी भाषा में कठिनता व क्लिष्टता कभी कभार आ जाती है। ज्यादातर उन्होंने अपनी भाषा को सरल बोलचाल की सद्योगामी बनाने का प्रयास किया है। इसीसे उन्होंने ऐसे विचार प्रधान विषयों को भी हलके-फूलके ढंग से व्यक्त किया है। अन्य विचारों को, विद्वत जनों के मंतव्यों को वह सहज ही रख देते हैं जैसे 'अथ थी इति' संग्रह में मानव सहज गुण-दोषों पर वह जब लिखते हैं तो विश्व के महान विचारकों के विमर्श को उस विषय के साथ जोड़के देखते हैं, पर साथमें अपनी धारणाओं को भी वो अवश्य जोड़ देते हैं ऐसा कर वह अपनी बात को मजबूती प्रदान करते हैं।

विषयानुरूप भाषा का निर्माण करना विनोदजी के भाषाकौशल्य का एक महत्त्वपूर्ण

गुण है, इसी कारण उनका हर एक निबन्ध संग्रह अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुए हैं। हास्योपचार, मंगल-अमंगल, विनोदभट्ट नां प्रेमपत्रों, ग्रन्थ नी गरबड, अने हवे इतिहास आदि संग्रहों को देखे तो 'हास्योपचार' में तबीबी क्षेत्र से जुड़ी हुई शब्दावली का प्रयोग हुआ है। रोगों के नाम, कारणों, लक्षणों, उपचारों का ब्योरा देने में तबीबी क्षेत्र से जुड़ी हुई शब्दावली का प्रयोग हुआ है। 'मंगल-अमंगल' में प्रयुक्त भाषा उनके प्राचीन शास्त्र-विद्या के सन्दर्भ में गहरी समझ को व्यक्त करता है। लगता है कि वह ज्योतिष शास्त्र, खगोल-शास्त्र के ज्ञाता है, ये उनकी भाषा का ही कमाल है। उसी प्रकार से 'विनोद भट्ट के प्रेमपत्रों' में दिखाई देनेवाला व्यावसायिक भाषा रूप भी प्रभावशाली है। 'ग्रन्थ नी गरबड' में गुरु गाम्भीर्य रूप धारणकर चिंतनप्रधान शुद्ध-साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते हैं, तो उनकी भाषा का ऐतिहासिक-परिप्रेक्ष्य 'अने हवे इतिहास' ग्रन्थ में देखा जा सकता है। विनोदजी ने सहेतुक विषयानुरूप भाषा का निरूपण कर हास्य मिश्रित व्यंग्य का प्रस्फूटन किया है जैसे मंगल-अमंगल का एक उदाहरण देखिए। "आ शनि सगपण मां यम नो मोटो भाई होवानुं मनाय छे। यम माणस ने एक झाटके पतावी दे छे आ शनि टी.वी. परनी लांबी सिरियल नी जेम रिबावी-रिबावी ने मारे छे।"^(१२६)

'अथ थी इति' ग्रन्थ में अलग-अलग विषय के सन्दर्भ में गंभीर व चिंतन प्रधान विषयों को सहजभाषा में व्यक्त कर अपनी एक अलग पहचान दी है। जिनमें उन्होंने मानव जीवन से जुड़े विविध घटकों को अपने दर्शन से सिंचा है। विद्वानों के मंतव्यों को आधार बनाकर अपने भावबोध को वाचा दी है। जैसे.....

- एमर्सन नुं एक कथन छे के पैसा घणीवार बहुं मोंघा पडे छे। ए वात पण साची छे के माणस ने खरीदवा करता पैसा ने खरीदवों वधु अघरो छे। हवे तो माणस ज नहीं देशप्रेम पण पैसाथी खरीदी शकाय छे, आसान थी।^(१२७)
- पण साचुं पुछो तो आपणी सलाह नी कोइने जरुर नथी होती 'गुलिवर्स-ट्रावेल्स' फेइम जोनाथन स्विफ्टे नोंधु छे के जे लोको चेतवणी नी पण दरकार नथी करता ए लोको तमारी सलाह मानशे एवुं तमे केवी रीते मानो छो? तो 'ओस्कार वाइल्डे' जणाव्यु छे के सारी सलाह हंमेशा बीजा नी तरफ सरकावी दो, ते क्यारेय कोइना

खपनी नथी होती। मारी जातने हुं घणी वार अमूल्य सलाहो आपुं छु, पण हुं पोते ज तेनुं पालन करी शकतो नथी ए वातनो आनंद 'मोन्टेग्यु' ए व्यक्त कर्यो हतो।^(१२८)

विनोदजी ने अपनी बात को गहराई देने हेतु कोष्टकों का भी जगह-जगह प्रयोग किया है। कइ बार तो वही उनके हास्य-व्यंग्य के आधार बन जाते हैं। डॉ. मधुसूदन पारेख के अनुसार, “वचमा-वचमा वक्ताओं ना कौसमां उद्गारों कृति ना विनोद मां वृद्धि करे छे। विनोद नी विलक्षण वाणी जेम कौंस बहार तेम कौंस मां पण घणी कृतियों मां प्रगटती रही छे। आपणे त्यां कविता कौंस मां कहेवानुं वलण थोडा वर्षो थी विकसेलुं छे। विनोद भट्टे एमना लखाणो मां कौंस द्वारा मार्मिक नुकतेचीनी करवानी बाबत मां कदाच विक्रम स्थाप्यो छे।”^(१२९) जिनके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है, यथा

- उचा करवेरा, प्रजा नो महिमा वधारी ने प्रजाने कार्यरत बनावे छे (कहे छे के करवेरा भरी-भरी ने ए वखत नी प्रजानी कमर वांकी वली जती, पण प्रजा समजु हती ए मानती के कर भरवाने कारणे अमारी कमर वांकी वली गई छे एवी फरियाद बादशाह ने करीशुं तो क्यांक ते वांकी कमर उपर पण टेक्स ठोकी देशे)^(१३०)
- ए समये रेडियों सिलोन पर थी जाहेर खबर पण आवती के मिसर नी मलेका फिलियोंपेट्रा पण काबर छाप गली इस्तेमाल करे छे (ट्रीन.....ट्रीन.....)^(१३१)
- कहेवाय छे के चन्द्र पर ऑक्सिजन नुं नाम नथी, चन्द्र पर हवापण नथी (त्यां पतंग चगावी शकाय नहीं)^(१३२)

विनोदजी ने बहोत से निबन्धों में कौंसका उचित प्रयोग किया है। जिनके जरिये वे अपने उद्देश्य को साकारित कर सके हैं। सामान्य चर्चा के साथ-साथ कौंस के प्रयोग से भाषागत चमत्कृति जन्म लेती है। विनोदजी का भाषा-वैभव संपूर्णतः साकाररूप में अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने शब्द की शक्ति को पहचानकर उनका बखूबी प्रयोग किया है। उनका शब्द चयन ही भाषा को समृद्ध बनाता है। साथ-साथ उनका उचित स्थान व समयानुसार प्रयोग भी भाषा को प्रभावी बनाता है। व्यंजनात्मकता, आलंकारिता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, वक्रोक्ति, मर्मोक्ति आदि के कारण उनकी भाषा में हास्य-

व्यंग्य का उचित प्रस्फूटन हुआ है। उनके द्वारा की गई सफल हास्य-प्रयुक्तियों को देख प्रफूल रावल ने माना है कि, “वाच्चार्य मां थी छटकी ते व्यंग्यार्थ मां सरे छे। श्लेष योजे छे। शब्द नो पुरो कस काढे छे। क्यारेक साव नूतन-शब्द निर्माण करे छे। उपमा अने दृष्टांत अलंकारनो तेणे भरपेट विनियोग कर्यो छे। व्यक्ति चित्रों मां लाघव थी शब्दचित्र चितरवानी तेनी शक्ति अनन्य छे। लांबु कांतवुं तेने इष्ट नथी लागतुं तेम छतां लाघव थी ते कशु चूकी जतो नथी। निबन्ध सर्जननी आज सिद्धि छे।”^(१३३) इनसे स्पष्ट है कि विनोदजी की भाषा में वो सारे गुण मौजूद हैं जो हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य के लिए उचित माने जाते हैं। उनकी प्रासादीक भाषा सिद्धि उनके गहन अनुभव का परिणाम है। जो अभिव्यक्ति के हर पहलू में दिखाई पड़ता है।

७.९ विनोद भट्ट के निबन्धों में शैली वैविध्य :-

साहित्य रचना के लिए जितना महत्व कथन का रहता है, विषय का रहता है, उतना ही महत्व उनके निरूपण रीति का, अभिव्यक्त कौशल्य का, शिल्प का, शैली का रहता है। किसी भी रचनाकार के लिए क्या कहा जाय का जितना महत्व है, उतना ही महत्व कैसे कहा जाय का भी है। यानी कि रचना की विषय सामग्री जितनी महत्वपूर्ण है, उनका प्रकटिकरण रूप भी उतना ही महत्व रखता है। यही कारण है कि हर रचनाकार उसे प्रमुखता देते हुए रचना रीति को वैविध्य प्रदान करता है।

भारतीय विद्वानों के अनुसार ‘रीति’ एवं पाश्चात्य मीमांसकों के अनुसार शैली (style) के बीच में कितना साम्य-वैषम्य है उसे लेकर मतमतांतर पाये जाते हैं। ‘शैली’ शब्द पाश्चात्य विचारकों की देन है। भारतीय साहित्यशास्त्र में ‘रीति’ शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है। ‘रमेश शुक्ल’ ने ‘मनुस्मृति’ का आधार लेकर दोनों के बीच साम्य-वैषम्य की समीक्षा की है। यथा-“प्रायेण आचार्याणां मियं शैली यत् सामात्येनाभिधाय विशेषणा विवृणोति (मनुस्मृति : १-४) आ संज्ञा ‘शील’ उपरथी व्युत्पन्न थई छे तेथी तेमां व्यक्तिगततानुं लक्षण समायेलु छे। अंग्रेजी संज्ञा ‘style’ ना पर्याय तरीके आ संज्ञा

प्रचलित बनी छे। अने वोल्टर पेटर ना सूत्रात्मक विधान 'styles the man' ना भाषांतर रूपे 'शील तेवी शैली' एवं विधान प्रचारमां आव्युं।^(१३४) 'शैली' शब्द लेखन के साथ दो रूपों में जुड़ता है रचना विधान एवं रचना रीति। रचना विधान यानी रचना का आन्तरवैविध्य, विषय वैविध्य रीति यानी रचना का आकृतिगत वैविध्य।

विनोदजी के निबन्धों में विषय एवं आकृति दोनो रूपमें विपुल वैविध्य मिलता है। विषय के रूप में देखेतो उन्होंने चींटी से लेकर हाथी तक, चिड़ियाँ से लेकर बाज़ तक, बुंद से लेकर समुद्र तक, धरती से लेकर आकाश तक, छोटें-छोटें गाँवों की संवेदना को, नगरों की आपाधापी को, वैयक्तिक राग-द्वेष व मनोव्यथा को, समाज भावना को, संसार शिक्षण, साहित्य, राजकारण, आदि उनके निबन्ध के विषय रहे हैं। उनमें कोलंबस से लेकर युरेनस-ग्रह जैसे अनेक विषयों का समावेश हुआ है एवं उनकी रचना का आकार भी विविध रूप में देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में अपना प्रतिभाव देते हुए 'रघुवीर चौधरी' ने माना है कि - "गुजराती हास्यना जमा-उधार पासांनी एने खबर छे। कशुक नवुं करवानी तमन्ना छे। हास्य स्वरूप अने शैली परत्वे अनेक अखतरा करेला छे। दृष्टांत कथा, नवलिका, संवाद, पत्र, रेखाचित्र, अहेवाल, विवेचन अनेक प्रकारे विनोदे हास्य-लेखन कर्युं छे।"^(१३५) विनोदजी के निबन्धों को देखकर लगता है कि वे प्रयोगशील लेखक हैं। उनके प्रत्येक निबन्ध-संग्रह में उनके प्रयोगवादी मानस को देखा जा सकता है। निबन्धाभिव्यक्ति में जितनी भी शैलियों का प्रयोग सम्भव है उनका नैसर्गिक प्रयोग विनोदजी ने किया है। इसलिए प्रफुल रावल ने कहा है कि - "आ साहसवीरे विविध रीते हास्य ने व्यक्त कर्युं छे। पोतानी रीतेज रूप घड्यु छे।"^(१३६) विनोदजी के निबन्धों में वस्तु विकार, गति एवं बिंब नैसर्गिक रूप से ही जुड़ जाता हो ऐसा आभास होता है। उसमें कोई आयास या प्रयास नहीं हुआ है। वे सहज ही सर्जनात्मक रूप धारण करते गये। इससे प्रभावित होकर रतिलालजी ने माना है कि - "विनोद भट्ट नी सर्जन यात्रा खरेज अभ्यास नो विषय बनी रहे तेम छे। मनुष्यनी सर्जकता हमेंशा रहस्यमय रही छे। सर्जकनो विकास पण एवीज अगम्य रीते थतो होय छे 'नकशा हुकम चले, इमारत वृक्ष

चले निज लीला' एवोज घाट सर्जकता नो पण होय छे। जेम वृक्षनी बल्यु प्रिन्ट अगाउ थी बनावी शकाती नथी। तेम सर्जकतानी बल्यु प्रिन्ट अगाउ थी बनावी शकाती नथी।”^(१३७) इनसे स्पष्ट है कि विनोदजी ने तो सहज भाव से रचना का निर्माण किया है। उसे कौन सा रूप दिया जा या माना जाय यह विवेचक का कार्य है। लेखक ने तो मुक्त रूप से अपने विचारों को वाचा दी है, हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य की शैली अन्य साहित्यिक रचनाओं से बिलकुल अलग लगती है वो हर प्रकार से खुले मन से अपनी रचना का शैलीयरूप बनाते हैं ‘रामप्रसाद बक्षी’ ने माना है कि - “हलवा निबन्ध ना लेखन माटे बे प्रकारनी मुक्तदशा आवश्यक छे। एक छे साहित्य सर्जन अंगे व्यवस्था, नियत स्वरूप वगैरे ना बन्धन थी मुक्त (विचार प्रवाह ने वहेवडावती मानस स्थिति) अने बीजी छे, राग, द्वेष, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वों थी पर एवी मनःप्रसादनी मुक्त दशा (विनोदनुं तत्त्व ग्रहण करवानी दृष्टि)।”^(१३८) विनोदजी के हर निबन्ध में इसी प्रकार की शैली का प्रयोग हुआ है तभी तो उनका हर निबन्ध मनभावन रूप धारण कर सका है।

विनोदजी के हास्य-व्यंग्य निबन्धों के अध्ययन से ये स्पष्ट हो जाता है कि उनके निबन्धों में जितनी भावगत सूक्ष्मता है, विषय वैविध्य है उतना ही भाषिक नावीन्य व शैलीय वैविध्य नज़र आता है। विनोदजी ने अपनी निबन्ध रचनाओं में विभिन्न प्रकार के आरोह-अवरोह व्यक्त करने के लिए उन्हीं के अनुरूप शैली का प्रयोग किया है। विनोदजी को हम हर प्रकार की शैली को अपनाते हुए देख सकते हैं, कोई भी ऐसी शैली नहीं है जिसको विनोदजी ने न अपनाया हो, पर उनके द्वारा विशेषतः जिन शैलियों का प्रयोग हुआ है। उनमें चरित्रात्मक, व रेखाचित्रात्मक, पत्रात्मक, संस्मरणात्मक, चिंतनात्मक, साक्षात्कार (इन्टरव्यू) संवादात्मक, आत्मकथनात्मक, विवेचनात्मक शैली का प्रयोग विशेषतः होता हुआ नज़र आता है इनके अलावा भी अन्य शैलियों का प्रयोग भी काफी समझ-बूझ के साथ किया है।

विनोदजी के निबन्धों में चरित्रात्मक निबन्धों की संख्या काफी है। उन्होंने इस शैली को विशेषतः अपनाया है। चरित्रात्मक व रेखाचित्रात्मक शैली के जरिये लेखक ने बहोत से ऐसे व्यक्तिचित्रों को जीवन्त रूप से अभिव्यक्त किए हैं। - “जीवन चरित्र नी

साथे स्मरण थाय एवो साहित्य प्रकार रेखाचित्र नो छे। आ प्रकार लेखक ना आत्म निरीक्षण ने निरूपीने, एना रोजबरोजना जीवन पर प्रकाश फेंकी, एना व्यक्तिक वलणोंनो परिचय करावे छे।”^(१३९) चरित्रात्मक कृतियों में लेखक अपने स्मरणों को वाचा देता है, उस चरित्रों की रेखाओं को खिंचता है सो चरित्रात्मक रचनाओं में संस्मरणात्मक व रेखाचित्रात्मक शैली रूपों का समावेश अपने आप हो जाती है, विनोदजी को इसमें विशेष दक्षता हांसिल है। अने हवे इतिहास विनोद नी नज़रे, प्रभु ने गम्यु ते खरुं आदि संग्रहों में जो व्यक्तिचित्र मिलते हैं उनमें लेखक की चरित्रात्मक शैली का विकास होता हुआ नजर आता है। जिसमें लेखक ने हास्यात्मक भावबोध की मात्रा विशेष रखी है, इसलिए ऐसे चरित्रों को गुजराती में ‘ठठ्ठाचरित्रों-विनोदी चरित्रों के रूप में देखे जाते हैं। ‘अने हवे इतिहास’ में ‘ऐतिहासिक चरित्रों को आधुनिक सन्दर्भों में देख विनोदात्मक व्यंग्य प्रस्तुत किया है। मधुसूदन पारेख के अनुसार - “लेखक ऐतिहासिक पात्रों नो वाचक ने अभ्यास करवानुं प्रयोजन धरावता नथी। एमनो मुख्य हेतु ऐतिहासिक महापुरुषों तरीके पंकायेला महानुभावों नी बेघडी ठेकडी उडाववानो छे अने एमना केटलाक युग अथवा वहीवट कार्यों नुं आजना युगना सन्दर्भ मां विनोदी अर्थघटन करवानो छे।”^(१४०) तो ‘विनोदनी नज़रे’ में साहित्यकारों के चरित्रों को लिया है जो किसी भी लेखक के लिए कसौटी समान है जिनमें संतुलन को बनाये रखके लेखक ने अपने आपको एक कुशल चितंरे के रूप में व्यक्त किया है। अन्य निबन्ध संग्रहों में भी बहोत से ऐसे चरित्रात्मक निबन्ध मिल जाते हैं। इस शैली को लेखक ने विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है।

पत्रात्मक शैली भी विनोदजी के लिए प्रिय शैली रही है। इस शैली के माध्यम से उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। ‘विनोद भट्टना’ प्रेमपत्रों’ इस शैली में लिखा गया प्रचलित निबन्ध संग्रह है। जिसमें उन्होंने विनोदी शैली में पत्रात्मक निबन्ध लिखे हैं। गुजराती साहित्य में ऐसे निबन्धों की रचना करके उन्होंने एक अलग पहचान बनाई है। डॉ.भरत पंड्या के अनुसार - “पत्र ए अभिव्यक्ति नुं एक सबल माध्यम छे। आडी अवली कशीज पलोजण मां न पडतां पत्र धार्युं निशान ताकवा गतिमान होय छे।

पत्रनी रचना प्रयुक्ति द्वारा सर्जक तेना लखनार नी अंदरनी लागणीओ, वृत्तिओं प्रतिबिंबित थती होय छे।”^(१४१) विनोदजी ने इसी रूप से विभिन्न व्यवसायों व कार्यों से जुड़े लोगों की प्रेमानुभूति को पत्रात्मक निबन्ध के माध्यम से व्यक्त किया है जिसमें व्यवसायगत लाक्षणिकताओं के कारण वे विशेष प्रभावी बन पड़े हैं। - “आपणी आस-पास विश्वमां राष्ट्रनी के कोईक व्यवसायना प्रतिनिधि रूप गणाय तेवी व्यक्तियों नी ‘विशेषताओं’ तेमना प्रेमपत्रो द्वारा सचोट रीते प्रगट थईछे।”^(१४२) शिक्षकनो प्रेमपत्र, क्रिकेटरनो प्रेमपत्र, वकिलनो प्रेमपत्र आदि इस शैली के उत्तम पत्रात्मक निबन्ध हैं। ऐसे निबन्धों में यथार्थता एवं काल्पनिकता दोनों का सहज सामांजस्य रहता है। जयंत कोठारी के अनुसार - “पत्रों खरेखरा के काल्पनिक पत्र होई शके - औपचारिक तेमज अनौपचारिक बन्ने निबन्ध प्रकारों आ विशिष्ट रचना विधानो लइ शकेछे।”^(१४३) इस दृष्टिकोण से विनोदजी के निबन्धों का पत्रात्मक रूप काल्पनिक एवं अनौपचारिक है। इस प्रकार के हास्य निबन्धों से पत्रात्मक शैली का प्रयोग गुजराती साहित्य में दुर्लभ है इस शैली से विनोदजी को विशेष सफलता मिली है।

विनोदजी के निबन्धों में जहाँ कुछ ठहराव आता है, वहाँ उनका चिन्तन प्रस्फुटित होता है। हास्य-व्यंग्यकार जब अपनी हलकी-फूलकी रचनाओं में जीवन सत्य को व्यक्त करने का प्रयास करता है तो सहज ही वह चिंतनप्रधान शैली को अपना लेता है। इस शैली के लिए अंग्रेजी में ‘फिलोसोफिक’ या ‘रिफ्लेक्टिव’ जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। जो यही स्पष्टता करते हैं कि इसमें जीवन विमर्श को प्रमुखता दी गई है। विनोदजी ने भी अपने हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में बहोत से स्थानो पर इस शैली का प्रयोग किया है। जिनमें उनका उद्देश्य उपदेश देना नहीं है क्योंकि हास्य-व्यंग्यकार के लिए ये कार्य कठिन है पाठक उनसे हास्य की, व्यंग्य की अपेक्षा रखते हैं उसी उद्देश्य से उसे पढ़ते हैं इसलिए उनके गंभीर चिन्तन में भी ठिठोली छिपी रहती है। विनोदजी ने ‘अथ थी इति’ ग्रन्थ में इस शैली का प्रयोग किया है। जैसे वो सुख के बारे में अपने चिंतन को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि - “आ सुख खरेखर शुं छे? ‘सुख’ शब्द पण

आपणे धारिए एटलो सुखी नही होय। आम तो सुख ए वस्तुगत नथी, व्यक्तिगत छे। बेर्तोली ब्रेखी कहे छे के एक ने माटे जे सुख होयछे ते बीजाने मन दुःख होयछे, आ बीना आजनी नहीं हंमेशनी पण छे।”^(१४४) विनोदजीने ऐसे गंभीर चिंतन को हलके ढंग से लिया है। इस संग्रह की सभी रचनाओं में ऐसी चिंतन कणिकार्यें पाई जाती है। ‘पागलो पागल खाना मां ज नथी होता, मरेला माणस ने कोईनी इर्षा थती नथी, पैसो कदी जेलमां जतो नथी आदि निबन्धों में इस शैली का विशेषतः प्रयोग हुआ है।

विनोदजी ने चिन्तन प्रधान शैली से निबन्धों में गहनता व गंभीरता को बनाये रखा है। तो उसी प्रकार से निबन्ध में जीवंतता बनाये रखने के लिए साक्षात्कारात्मक, संवादात्मक, प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया है। विनोदजी ने साक्षात्कारात्मक (इन्टरव्यू) रूप में अनेक रचनाएँ लिखी है। अपनी काल्पनिकता के सहारे लिखे गये ऐसे निबन्धों में विनोदजी को विशेष सफलता हाँसिल हुई है। श्रीमती गांधारी धृतराष्ट्र नो रेडियो परथी इन्टरव्यू, महारथी कर्ण नो रेडियो पर थी नहीं लीधेलों इन्टरव्यू, लग्न जीवननी पच्चीस पूरी करनार दम्पति नो इन्टरव्यू, अर्थीमांथी अर्थ पेदा करनारनी वात, फाइवस्टार भिक्षुक नो इन्टरव्यू, एक गरीबनो इन्टरव्यू एक खिस्सा कातरु नो रेडियो पर थी इन्टरव्यू, ओटो रिक्शा वाला नो इन्टरव्यू इन निबन्धों को देख ऐसा लगता है कि लेखक ने निरस विषयों को रसयुक्त बनाये हैं। ‘साक्षात्कार’ में लेखक दोनों ओर से उत्तर देते है, जिनसे विशेषतः हास्य निष्पन्न होता है। दुर्बोधता मे से सबोधता जन्म लेती है। प्रवीण दरजी के अनुसार - “निबन्धनो विषय सर्जक पोते ज छे ए गमे ते संवेदन के अनुभूति ने निबन्धना विषय तरीके आकार आपे, पण ए सौनी उपर एना पोताना व्यक्तित्वनो रंदो तो वारेवारे फरतो ज रहेतो होयछे। ए निबन्धमां रस निर्मितनुं कारण विषय नहीं पण सर्जकनुं व्यक्तित्व ज होयछे।”^(१४५) विनोदजी के साक्षात्कारात्मक निबन्ध रचनाओं में ऐसी ही अनुभूति होती है।

विनोदजी ने प्रश्नोत्तरी व संवादशैली से निबन्धों में जीवंतता के साथ-साथ संघर्षशीलता व नाट्यात्मकता को भी बनाये रखा है। ‘मैत्री-विवेचन एक प्रश्नोत्तरी’ रचना

प्रश्नोत्तरी रूप में लिखी गई है। - “एक थी वधु दृष्टिबिंदुओं छेड़ाता होय अने अंते एनो उकेल आण्यो न होय के पात्रों विशिष्ट स्थितिमां मुकायेला होय ते जातनुं रचना विधान निबन्धने खरा अर्थमां नाट्यात्मक बनावे छे।”^(१४६) विनोदजी ने संवाद शैली के माध्यम से नाट्यात्मकता को बनाये रखा है। ‘हिन्दी-फिल्मनी वार्ता, लग्नगालो, दहेजनो वसंतोत्सव, खलनायकनी पूजा, एक वण लख्युं फरमान, समाजवादी फ्लेट, तमारे घरघाटी जोइए छे? जाहेरातनुं नाटक, मोरारीबापु अने हृदय पलटो आदि निबन्ध रचनाओं में इसी शैली का प्रयोग हुआ है। जैसे ‘समाजवादी फ्लेट’ के एक संवाद को देखें-

“बांधकाम केटला वारनुं छे
 बावीस वारनुं..... पण साहेब, तमने एमां सगवड बधीज
 मलवानी, बाथरूम, ने बे कीचन, त्रण बेडरूम.....
 त्रण बेडरूम? अमे विस्मय थी पूछ्युं
 एज तो खूबी छे ने !
 साइझ शुं रहेवानी?
 अढी बाय चार,
 बस?
 केम ओछी छे? ”^(१४७)

विनोदजी ने संवादशैली के माध्यम से अपने विभिन्न उद्देश्यों को साधा है। इन संवादों का प्रयोग लेखक ने कथ्य के उतार-चढ़ाव को नज़र में रखते हुए किया है। कभी दो पात्रों के बीच की सामान्य बातचीत के माध्यम से, टेलीफोनिक बातों से, कभी नाट्यात्मक रूप से, उग्रबोलचाल से, प्रेमालापों के माध्यम से आदि विभिन्न संवादरूपों का प्रयोग कर लेखक ने कथा विकास, आंतरिक बाह्य संघर्ष, पात्र-परिचय, नाट्यात्मकता, व्यंजनात्मकता का निरूपण किया है।

विनोदजी के निबन्धों में रिपोर्टिंग शैली, अहेवालशैली के कारण भी एक नवीन उर्जा का निर्माण हुआ है। हास्य-व्यंग्य साहित्य के लिए इस प्रकार की शैली उनकी

जरूरत मानी जाती है। क्योंकि हास्य-व्यंग्य साहित्य की असरकारकता सिद्ध करनी हो तो इस प्रकार की शैली से उसे विशेष सहायता मिल सकती है। - “अहेवाल द्वारा सर्जक पात्र विशे, बनती घटनाओं विशे, बनी गयेली घटनाओं विशे, परिस्थिति विशे, प्रसंगो, चालती गडमथल विशे, प्रकाश फेंके छे। जेमांथी वाचकपात्र प्रसंग, घटना, परिस्थिति थी वाकेफ थतो होय छे। अने लांबा वर्णन ने बदले आवा टूँका-टच अहेवाल थी सर्जक पोतानुं धार्युं निशान पार पाडी शकछे।”^(१४८) ज्ञाननुं स्टेंग रींग, खाना लग गया है, तशरीफ लाइऐ, आजे गांधी जन्मदिने गोडसे नी वात, टेइक इट इझी, आपका वह कुत्त कहा गया? हम आपके नौकर है, मेडम..... एक खून केसनुं रिपोर्टींग, लेखको द्वारा विमान अपहरण एक रिपोर्टींग, एक शोकसभा नो अहेवाल, अमे ज्ञान सत्रमां जइ आव्या आदि निबन्धो में इस शैली का बखूबी प्रयोग हुआ है।

विनोदजी की रचनाओं में बाह्य रिपोर्टींग के साथ-साथ आन्तर रिपोर्टींग भी मिलता है। उनके निबन्धों में आत्मकथनात्मक शैली का भी भरपूर प्रयोग हुआ है। - “आत्मकथन तो व्यक्ति ज्यारे ने तयारे करतो होय छे। तेना करता आ आत्मकथन भिन्न प्रकारनुं छे अने तेमां विवेक, विवेकशून्यता, आत्मक्षोभ अथवा आत्मश्लाघा जेवा द्वन्द्वों क्रियाशील होयछे ज।”^(१४९) हास्य रचनाकार ऐसी रचना में ज्यादातर काल्पनिकता का ही निर्वहन करते हैं। इस शैली की चर्चा करते हुए रतिलाल बोरीसागर व भोलाभाई पटेल ने लिखा है कि - “ललित निबन्ध नी जेम हास्य निबन्धमां ‘हु’ नुं केन्द्र स्थाने होवुं अत्यंत स्वाभाविक छे। पण ललित निबन्ध ना ‘हु’ करतां आ ‘हु’ जुदो होय छे। आ ‘हु’ एटले सरेराश मनुष्य। पोतानामां अनेक मर्यादाओं समावतों छतां चाहवो गमे एवो सरेराश मनुष्य। हास्यकार मनुष्य मात्र नी नबलाइओ पोताना पर ओढी ले छे। पोतानी मजाक करतो करतो ए समग्र मनुष्य जाति नी मजाक करी ले छे। पोताना परनुं हास्य ए श्रेष्ठ हास्य छे एम कहेवायुं छे।”^(१५०) विनोदजी आत्मकथनात्मक शैली से दोनो प्रकार के ‘हुं’ का प्रयोग किया है। आत्मकथानुं एक प्रकरण, कवि भास्करदवेनी शोकसभा, मारो हुं सहेज पण नानो नथी आदि निबन्धों में ‘हुं’ का प्रयोग सर्वसाधारण आम व्यक्ति का

निर्देशन करता है। जो हास्य-निबन्ध का सही अन्दाज है। तो समाजमां लेखकनुं स्थान, मारो प्रिय लेखक, हुं कवि केम बन्यो? अमारी मासी: ऐल.डी.आर्ट्स कॉलेज, मारो प्रिय रस करुण रस छे, इश्वरथी पण वधु डर मने पिताश्रीनो लागेछे, तीर्थोत्तम मां, चांदलो पांच नहीं अगियार शोभे, आदि निबन्धों में जिस रूप में आत्मकथनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है इसमें 'हुं' का प्रयोग ललित निबन्ध के समान हुआ है यानी कि खुद यहाँ 'हुं' के रूप में प्रस्तुत होते हैं। लेखक ने काफी समझदारी के साथ आत्मकथनात्मक शैली का प्रयोग किया है।

विनोदजी के निबन्धों में विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली रूपों को भी सहज ही देखा जा सकता है। उनका 'विनोद विमर्श' संपूर्णतः हास्य विवेचन का ही ग्रन्थ है, जिसमें उनके विवेचनात्मक रूप से हम सहज ही रुबरु हो जाते हैं। यशवंत शुक्ल के अनुसार, "हास्य विशे नो विवेचन पुरुषार्थ ते हास्य रहित लोकोनी रमत छे ए आक्षेप नो आ सर्वग्राही विवेचन ग्रन्थमां खास्सो परिहार थयो छे।"^(१५१) विनोदजी ने अपने निबन्धों में ह्युमर, विट्, सेटायर, आयरनी, कॉमेडी, पेरोडी का प्रयोग कर अपने रचनात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। लेखक ने अपने विवेचनात्मक अंदाज को सुष्क नहीं बनने दिया, वे विभिन्न उदाहरणों से उसे आस्वादय बनाते रहे हैं। इसी कारण धीरुभाई ठाकर ने माना है कि, "विनोद भट्ट नी शैली (अन्य हास्य सर्जको ना मुकाबले) मार्मिक ने चित्रात्मक होय छे 'विनोद नी नज़रे' मां रघुवीर नी जेम सर्जको ना व्यक्तिचित्रों छे, पण तेमना निरीक्षण विश्लेषण नुं निगमन हास्य होय छे।"^(१५२)

इन प्रमुख शैली रूपों के अलावा भी विनोदजी ने अपनी आवश्यकता के अनुसार कथ्य के वैशिष्ट्य को बनाये रखने के लिए अन्य शैलियों का भी प्रयोग किया है। जिनमें अन्योक्ति शैली, मिथकीय शैली, वर्णनात्मक शैली, डायरी शैली, समीक्षात्मक शैली आदि का प्रयोग विनोदजी ने आवश्यकतानुसार किया हुआ नज़र आता है। विनोदजी ने चींटी, उधई, काग जैसी मानवेत्तर जीव सृष्टि को निबन्धों का विषय बनाकर अन्योक्ति का प्रयोग किया है। 'कीडीओं मां हास्यवृत्तित होय छे', 'कागडाने खरीदी शकातो नथी', 'एक हास्य निबंध, 'उधई पर' आदि रचनाओं में इन मानवेत्तर सृष्टि के जरिये इन्सानी

कमज़ोरियों पर अन्योक्ति के माध्यम से हास्य-व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। उसी प्रकार से महत्त्व पंखीनी आँखनुं नथी, रामायण नी रामायण, कथा भगवान सत्यनारायण नी आदि निबंधों में मिथकीय शैली रूप का प्रयोग हुआ है। जिसमें पौराणिक कथा सन्दर्भ के माध्यम से आधुनिक जीवन व्यवहारों को लताड़ा गया है। 'हास्य लेखक आवो होय' डायरी शैली में लिखी गई रचना है। जिसमें लेखक पति अंगेना पत्नी ना निरीक्षणों, अभिप्रायों, निर्मल हास्य के साधन बनते हैं। उसी प्रकार से विनोदजी ने जहाँ वर्णनात्मक व समीक्षात्मक शैली रूप प्रयुक्त किया है वहाँ उन्होंने तार्किकता व गहरी फिलोसोफी का प्रयोग किया है। जो उनके निबन्ध संग्रह 'अमदावाद एटले अमदावाद', 'हास्योपचार', 'मंगल-अमंगल' के ज्यादातर निबन्धों में देखा जा सकता है। इनसे यह स्पष्ट है कि विनोदजी ने विषय-वैविध्य के समान ही विभिन्न शैलियों का भी समुचित प्रयोग कर अपने हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य को प्रभावशाली रूप प्रदान किया है, "हास्य साहित्यनुं सर्जन करवुं ए कार्य कपरु छे। तेमाय एने सतत चालु राखवुं ए विशेष कपरु छे। ए साहित्य होवुं जोइए, तेम तेमाथी हास्य निष्पन्न थवुं जोइए एवी तेनी बेवडी शरत छे।"^(१५३) विनोदजी ने हास्य-व्यंग्य साहित्य की नब्ज को बखूबी पहचाना है जिनसे उनकी रचना का सत्त्व और तत्त्व दोनों बने रहे हैं। जो उन्हें आधुनिक हास्य-व्यंग्य साहित्य के अग्रदूत के रूप में प्रस्थापित करते हैं।

संदर्भ सूची

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	नमुं ते हास्य ब्रह्म ने	सं.रतिलाल बोरीसागर	१०
२	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	१०
३	अर्वाचीन गुजराती साहित्य नो इतिहास	डॉ.रमेश त्रिवेदी	३७०
४	हलवा निबंध नुं साहित्य (लेख) (निबन्ध अने गुजराती निबन्ध)	मधुसूदन पारेख	१६५
५	कारण के	विनोद भट्ट	१
६	सुनो भाई साधो	॥	४८
७	अने हवे इतिहास	॥	६
८	नरो वा कुंजरोवा	॥	३८
९	भूल-चूक लेवी-देवी	॥	५७
१०	प्रसंगोपात	॥	५
११	॥	॥	६१
१२	अथ थी इति	॥	३४
१३	॥	॥	२५
१४	कारण के	॥	८९
१५	मगनुं नाम मरी	॥	१२
१६	हास्योपचार	॥	८४
१७	॥	॥	८३
१८	नरो वा कुंजरोवा	॥	१६
१९	॥	॥	३४
२०	कारण के	॥	५७
२१	प्रसंगोपात	॥	२९

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
२२	अमदावाद एटले अमदावाद	॥	२३
२३	सुनो भाई साधो	॥	३५
२४	अमदावाद एटले अमदावाद	॥	७३
२५	भूल-चूक लेवी-देवी	॥	४६
२६	वगेरे, वगेरे, वगेरे	॥	६७
२७	मंगल-अमंगल	॥	१३
२८	प्रति शब्द	उमाशंकर जोशी	६२
२९	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	४२
३०	सुनो भाई साधु	विनोद भट्ट	९९
३१	विनोद नी नजरे	॥	१०१
३२	नरो वा कुंजरोवा	॥	३२
३३	॥	॥	४७
३४	प्रसंगोपात	॥	४९
३५	मगनुं नाम मरी	॥	४२
३६	वगेरे, वगेरे, वगेरे	॥	२४
३७	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	३८
३८	सुनो भाई साधो	विनोद भट्ट	१८
३९	॥	॥	४२
४०	नरो वा कुंजरोवा	॥	५३
४१	॥	॥	५९
४२	कारण के	॥	७०
४३	मगनुं नाम मरी	॥	३७
४४	कारण के	॥	१४

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
४५	ग्रंथ नी गरबड़	॥	३
४६	कारण के	॥	५
४७	ग्रंथ नी गरबड़	॥	१३
४८	॥	॥	३२
४९	नरो वा कुंजरोवा	॥	९१
५०	अथ थी इति	॥	३३
५१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य	डॉ.हरिशंकर दुबे	२०९
५२	सुनो भाई साधु	विनोद भट्ट	९५
५३	नरो वा कुंजरोवा	॥	२२
५४	॥	॥	८६
५५	भूल-चूक लेवी-देवी	॥	२१
५६	अमदावाद एटले अमदावाद	॥	५८
५७	॥	॥	५९
५८	॥	॥	३३
५९	उच्चतर साहित्यिक निबन्धों	जयंत पाठक	२२४
६०	वगेरे, वगेरे, वगेरे	विनोद भट्ट	७५
६१	॥	॥	११७
६२	मंगल-अमंगल	॥	१३
६३	॥	॥	६१
६४	॥	॥	१४७
६५	॥	॥	१०३
६६	कारण के		३५
६७	॥	॥	३०

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
६८	जगत नी संस्कृतिओं	रजनीकांत मोदी	६
६९	अने हवे इतिहास	विनोद भट्ट	३५
७०	॥	॥	९२
७१	प्रसंगोपात	॥	४९
७२	सुनो भाई साधो	॥	६१
७३	मगनुं नाम मरी	॥	२५
७४	कारण के	॥	११
७५	मगनुं नाम मरी	॥	६
७६	विनोद नी नजरे	॥	१
७७	॥	॥	१०८
७८	॥	॥	१०८
७९	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	सं.जयन्त कोठारी	२४९
८०	श्रेष्ठ हास्य रचनाओं	विनोद भट्ट	१८
८१	निबन्ध अने गुजराती निबन्ध	सं.जयन्त कोठारी	२८४
८२	विनोद भट्ट नी श्रेष्ठ हास्य रचनाओं	सं. विनोद भट्ट	२१
८३	अने हवे इतिहास	विनोद भट्ट	२१
८४	॥	॥	९५
८५	विनोद भट्ट नां प्रेमपत्रों	॥	४
८६	॥	॥	६४
८७	सुनो भाई साधो	॥	७०
८८	ग्रंथ नी गरबड़	॥	६३
८९	कारण के	॥	३५
९०	कारण के	॥	८३

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
९१	उच्चतर साहित्यिक निबन्धों	जयंत पाठक / जयंत पटेल	२२३
९२	॥	॥	२३१
९३	अथ थी इति	विनोद भट्ट	९
९४	॥	॥	७
९५	॥	॥	२७
९६	॥	॥	१०३/१०४
९७	॥	॥	१२५
९८	मगनुं नाम मरी	॥	७
९९	॥	॥	१५
१००	॥	॥	३१
१०१	॥	॥	४३
१०२	॥	॥	९६
१०३	वगेरे, वगेरे, वगेरे	॥	१०३
१०४	नरो वा कुंजरोवा	॥	१३
१०५	हिन्दी की प्रकृति और शुद्ध प्रयोग	डॉ.ब्रजमोहन	९१
१०६	भाषा	जनवरी-फरवरी, २००५	३०
१०७	सुभाषित सुधा	सं.यशवंत त्रिवेदी	३
१०८	इदम् तृतीयम्	विनोद भट्ट	५
१०९	विनोद भट्ट नां प्रेमपत्रों	॥	२३
११०		॥	१७
१११		॥	४
११२	अने हवे इतिहास	॥	२६
११३	॥	॥	३२

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
११४	मगनुं नाम मरी	॥	१९
११५	॥	॥	३
११६	॥	॥	८३
११७	॥	॥	२७
११८	॥	॥	२७
११९	कविता नुं रसास्वादन	सं.हेमन्त देसाई	९०
१२०	मंगल-अमंगल	विनोद भट्ट	१९१
१२१	हास्योपचार	॥	११३
१२२	मगनुं नाम मरी	॥	३७
१२३	॥	॥	४५
१२४	भूल-चूक लेवी-देवी	॥	११३
१२५	प्रसंगोपात्त	॥	४२
१२६	मंगल-अमंगल	॥	६५
१२७	अथ थी इति	॥	१५
१२८	॥	॥	७६
१२९	श्रेष्ठ हास्य रचनाओं	॥	२५
१३०	॥	॥	३७
१३१	॥	॥	९९
१३२	॥	॥	१२९
१३३	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	६६
१३४	संस्कृत संमीक्षा शास्त्र	रमेश शुक्ल	१००
१३५	श्रेष्ठ हास्य रचनाओं	विनोद भट्ट	१३
१३६	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	६८

ક્રમ	ગ્રંથ / ઉપન્યાસ	લેખક / સંપાદક	પૃ.ક્રમાંક
૧૩૭	નમું તે હાસ્ય બ્રહ્મ ને	સં.રતિલાલ બોરીસાગર	૧૦
૧૩૮	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	સં.જયન્ત કોઠારી	૧૫૧
૧૩૯	જીવન ચરિત્રાત્મક નિબન્ધ સંચય	સં.ચિમનલાલ ત્રિવેદી આરતી ત્રિવેદી	૧૦
૧૪૦	શ્રેષ્ઠ હાસ્ય રચનાઓં	વિનોદ ભટ્ટ	૨૧
૧૪૧	રચના-રીતિ, સંજ્ઞા અને સંપ્રત્યય	ડૉ.ભરત પંડ્યા	૯૯
૧૪૨	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	સં.જયન્ત કોઠારી	૧૭૮
૧૪૩			૨૨
૧૪૪	અથ થી ઇતિ	વિનોદ ભટ્ટ	૫૩
૧૪૫	ચર્વણા	પ્રવિણ દરજી	૨૦૮
૧૪૬	નિબન્ધ અને ગુજરાતી નિબન્ધ	સં.જયન્ત કોઠારી	૨૧
૧૪૭	સુનો ભાઈ સાધો	વિનોદ ભટ્ટ	૫૫
૧૪૮	રચના-રીતિ, સંજ્ઞા અને સંપ્રત્યય	ડૉ.ભરત પંડ્યા	૯૪
૧૪૯	અનુવાક્	રમેશ શુક્લ	૭૧
૧૫૦	હાસ્ય નિબંધ સંચય	રતિલાલ બોરીસાગર મોલાભાઈ પટેલ	૫
૧૫૧	વિનોદ વિમર્શ	વિનોદ ભટ્ટ (વિધાન-યશંવત શુક્લ)	૧૦
૧૫૨	અર્વાચીન ગુજરાતી સાહિત્ય ની વિકાસ રેખા	ધીરુભાઈ ઠાકર	૫૮૨
૧૫૩	હાસ્ય રસ નાં વિકાસ માં સામયિકોં નો ફાલો	પ્રા.નરોત્તમ વાલંદ	૮૯

निष्कर्ष

निष्कर्ष

हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट हिन्दी व गुजराती साहित्य के ऐसे दो विशिष्ट व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने हास्य-व्यंग्य विधा की कल्पना को साकारित करने में एवं उनकी जड़ों को जमाने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। ऐसे ये युग प्रवर्तक, महान, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हैं। इन दोनों निबन्धकारों ने अपने-अपने साहित्य में अपनी ओर से श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति दी है। उनके निबन्धों का अनुशीलन करने से ये सहज स्पष्ट हो जाता है कि दोनों मनीषियों की ओर से जो अभिव्यक्तियाँ मिली हैं वो अपने-अपने साहित्य में मिल के पथर समान हैं। यही कारण है कि उनके बनाये हुए रास्ते पर आज अनेकों लेखक सफर पर निकल पड़े हैं। इन दोनों हास्य-व्यंग्यकारों ने जो आदर्श प्रस्थापित किया है उनकी प्रतिष्ठा आज की नई पीढ़ी में देखी जा सकती है। दोनों निबन्धकारों ने अपने निबन्ध में परिवेश की परिवर्तित परिस्थितियों, प्रेरणा एवं प्रभावों व युग बोधात्मक अभिगमों को आत्मसात करते हुए अपने निबन्धों का दायरा बढ़ाया है।

वैसे तो हिन्दी व गुजराती हास्य-व्यंग्य साहित्य की मूलभूत चेतना में काफी कुछ अन्तर पाया जा सकता है। पर समान लक्ष्य होने के कारण दोनों के सफर में काफी कुछ हमसफर जैसी साम्यता देखी जा सकती है। एक तरह से देखा जाय तो गुजराती साहित्य के मूकाबले हिन्दी में हास्य-व्यंग्य साहित्य काफी विकसित पाया जाता है। व्यंग्य को विधा के रूप में प्रस्थापित करने में हिन्दी साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में वैविध्यपूर्ण साहित्य का निर्माण किया, जिसमें परसाईजी की सूत्रात्मक भूमिका रही। परसाईजी आद्यांत व्यंग्यकार रहे हैं उनके साहित्यमें 'हास्य' व्यंग्य की आड़ में विकसित होता हुआ जान पड़ता है जबकी विनोदजी के साहित्य में हास्य की आड़ में 'व्यंग्य' विकसित होता हुआ देखा जा सकता है। एक तरह से देखा जाय तो समस्त गुजराती साहित्य का यही स्वभाव रहा है। यही कारन है कि विनोदजी एवं परसाईजी के निबन्ध साहित्य के

तुलनात्मक अनुशीलन से हमे हास्य-व्यंग्य विधा का बहुमुखीय स्वरूप उभरता हुआ दिखाई पड़ता है।

हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के साहित्यिक योगदान को देखे तो इन दोनों हास्य-व्यंग्यकारों ने निबन्ध विधा को विशेषतः चुना है। दोनों साहित्यकारों ने निबन्ध विधा को विशेषतः चुना है। दोनों साहित्यकारों ने निबन्ध साहित्य को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख आधार बनाकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में पाई जानेवाली विसंगतियों को वाचा देने का प्रयास किया है। दोनों साहित्यकार प्रारम्भ से ही निबन्ध विधा को अपनाये हुए हैं और निरन्तर वह इन्हीं के साथ जुड़े हुए पाये जाते हैं।

हरिशंकर परसाई व विनोदजी के निबन्धों में जो कथ्य व्यक्त हुआ है उसे किसी ऐसे निश्चित कटघरों में बाँधा नहीं जा सकता है इन दोनों निबन्धकारों ने व्यापक फलक पर बात की है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, “परसाईजी के निबन्धों में प्रत्येक अमानवीय स्थिति की संवेदना है। यह वर्तमानता की विविधता, पूर्णता है जिसके कारन परसाईजी ने इतने अधिक विषयों पर व्यंग्य-निबन्ध लिखे हैं।”^(१) उसी प्रकार से विनोदजी के बारे में कहा गया है कि, “विनोद क्षण नो कसबी छे। ए क्षण ने पकड़े छे, नाथे छे, माणे छे ने रजु करे छे।”^(२) सो दोनों निबन्धकारों ने वैविध्यपूर्ण निबन्धों की रचना की है। समाज, धर्म, राजनीति, शिक्षा, साहित्य, प्रशासन, संस्कृति, परिवार आदि परम्परागत रूप में मानवीय व्यवहारों से जुड़ी हुई हलचल को, चहल-पहल को, कलात्मक ढंग से शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। दोनों लेखकों के निबन्ध संग्रहों के अनुशीलन से यह देखा गया है कि परसाईजी के निबन्ध संग्रहों में भिन्न-भिन्न विषयों से जुड़े हुए निबन्ध मिलते हैं जबकि विनोदजी के ज्यादातर निबन्ध संग्रह ऐसे हैं जिनमें एक ही विषय को विभिन्न सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है।

राजनैतिक हास्य-व्यंग्य निबन्धों की बात करे तो परसाईजी के निबन्धों में सबसे ज्यादा हिस्सा राजनैतिक निबन्धों का है, जबकि विनोदजी ने समान्तर रूप से उसकी अभिव्यक्ति की है। विनोदजी ने भले ही कम मात्रा में राजनैतिक हास्य-व्यंग्य निबन्ध दिये हो पर उन्होंने भी परसाईजी के समान चुन-चुनकर राजनैतिक विसंगतियों को व्यक्त

किया है। नेताओं के चरित्र, दलबदल की राजनीति, घोषणाओं का व्यापार, भाषणबाजी, चुनावों में होनेवाली धाधलियाँ आदि को लेकर उन्होंने भी राजनीति के हर पहलु को छूआ है। जिन में दोनों के बीच में बहोतसी समानता पाई जाती है। दोनों लेखकों ने चुनाव प्रक्रिया को एक युद्ध के रूप में देखा है। परसाईजी के निबन्ध 'हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं' में जिस प्रकार की अभिव्यक्ति मिलती है उसी प्रकार से विनोदजी के 'महाभारत नुं युद्ध एक अर्थघटन' निबन्ध में चुनावी तांडव को दिखाया गया है। दोनों निबन्धकारों ने तत्कालीन राजनैतिक यथार्थ को सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य निबन्धों की बात करे तो लगता है परसाईजी एवं विनोदजी दोनों ने अपनी सारी भडास उन पर निकाली है दोनों ने समानान्तर रूप से प्रशासनिक गतिविधियों में चल रही तानाशाही, बेजिम्मेदारी, घुसखोरी, लापरवाही को खुला किया है। राजनीति व प्रशासन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीति जितनी भद्दी उतना ही भद्दा प्रशासन रहता है। दोनों लेखकों ने खासकर कर्मचारियों के कारनामों को यथार्थ रूप में व्यक्त किया है, एवं सभी प्रशासनिक संस्थानों में चल रहे दुलमूल रवैये को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। पंचायती कचहरियाँ, पालिकाएँ, अस्पताल, रेल एवं बससेवा, पुलिस एवं न्याय व्यवस्था आदि सभी सार्वजनिक इकाइयाँ मानव सेवा के लिए हैं। उनकी परेशानियों के निपटारे के लिए हैं पर वो खुद एक परेशानी हैं। क्योंकि लोगों की मांगों की बजाय उनकी मांगें बढ़ जाती हैं। दोनों लेखकों ने प्रशासनिक भ्रष्टता एवं उनके बाजारूपन को खुला करने में काफी सफलता पाई है।

सामाजिक व सांसारिक हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में कहे तो परसाईजी एवं विनोदजी ने व्यापक रूप से सामाजिक व सांसारिक विसंगतिको अपने निबन्धों में स्थान दिया है जिसे देख ऐसा अहसास अवश्य होता है कि उनकी कलम में 'कबीर' की संचेतना का वास है। क्योंकि 'कबीरजी' के समान दोनों लेखकों ने समाज व परिवार से जुड़ी हुई सूक्ष्म से सूक्ष्मतम विसंगति को अपने निबन्धों के जरिये व्यक्त किया है। जिस तरह से परसाईजी को प्रेमचंदजी के बाद सबसे बड़े सामाजिक पक्षधरके रूप में देखा जाता है उसी प्रकार से विनोदजी ने भी पन्नालालजी के सामाजिक

समरसता के दृष्टिकोण को आत्मसात करते हुए सामाजिक विसंगतियों को खोजा है। यही कारण है कि दोनों निबन्धकारों का हर एक निबन्ध संग्रह समाजोन्मुखी पाया जाता है। प्राचीन समाज व्यवस्था और उनके मूल्यों के साथ आधुनिक सामाजिक मूल्यबोध को जोड़ के देखना व सामाजिक समरसता के निर्माण में बाधक तत्वों को अपने शाब्दिक प्रहारों से खुला करके दोनों लेखकों ने सामाजिक भावना को बनाये रखा है। और उनके प्रति लोगों को सजग व शिक्षित कर जन जागृति लाने का प्रयास किया है।

धार्मिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखे तो दोनों निबन्धकारों ने धर्म एवं संस्कृति को लेकर काफी सतर्कता दिखाई है। धर्म को प्रभाहीन बनानेवाले एवं हमारी सांस्कृतिक विरासत को तार-तार करनेवाली प्रवृत्तियों के प्रति दोनों निबन्धकारों ने कड़े शब्दों का प्रयोग किया है। धर्म को भ्रष्ट करने के पीछे उन्होंने ने राजनैतिक गंदगी, गवारूपन व अंधविश्वास को विशेषतः जिम्मेदार माना है और सांस्कृतिक विकृति के पीछे पाश्चात्य मूल्यों के प्रभाव को जिम्मेदार समजा है। पाश्चात्य संस्कृति के अन्धे अनुकरण के कारण भारतीय संस्कृति की विरासत की जड़ें कमजोर होने लगी, जिनका असर पारिवारिक रिश्तों पर, सामाजिक सबन्धों व संस्थाओं पर पड़ा उसी प्रकार से आज धर्म भी व्यावसायिक रूप में ढलता जा रहा है। जिनसे उनके आचरण की रीत भी काफी परिवर्तित हो गई है। सम्प्रदायों के बीच होड़ देखी जा सकती है जिसमें कारोबार चलाया जाता है, यही कारण है कि इसीसे विभिन्न प्रकार की विसंगतियों का जन्म होता है। परसाईजी के निबन्धों में व्यापक रूप से धार्मिक व सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य मिलता है विनोदजी ने भी उसे अपने अंदाज में पर दृढ़ता के साथ व्यक्त करके आजकी वास्तविक स्थिति का यथातथ्य चित्रण किया है।

साहित्य व शिक्षा सबन्धी विसंगतियों की अभिव्यक्ति विशेषतः निबन्धों के माध्यम से ही व्यक्त हुई है। परसाईजी व विनोदजी की अन्य विधाओं में साहित्य व शिक्षा सबन्धी हास्य-व्यंग्य काफी कम है उनकी निबन्धों में ही जमकर अभिव्यक्ति हुई है। सत्यता, शिवता व सुन्दरता की वेदी पर चलनेवाले साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र भी इन निबन्धकारों की नज़रों से बचे नहीं है। हालाँ की उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति से यह एहसास करवा

दिया है कि अन्य क्षेत्रों के समान यहाँ भी उतनी ही धाधलियाँ होती है यही कारन है कि आज सच्चा साहित्यकार व सच्चा शिक्षक जो अपने सिद्धांतों के साथ ही जुड़ा रहना चाहता है उनका इस जमाने में कोई स्थान नहीं है। लेखक के अनुसार आज की धनप्रिय संस्कृति, पाश्चात्य सभ्यता व कम परिश्रम में ज्यादा पाने की वृत्ति के कारन इस क्षेत्र में विसंगतियाँ बढ़ी। आज कोई सच्चा साधक व शिष्य बनना नहीं चाहता आज तो 'इन्स्टन्ट निर्माण' की संस्कृति है इसी का ये नतिजा है कि आज गुरु को गोविंद माननेवाली भारतीय परम्परा पुरानी लगने लगी है। आज तो गुरु को गाय बनाकर रखा जाता है। दोनों लेखकों ने इस स्थिति के निर्माण के लिये यही माना है कि शिक्षा व साहित्य राजनीति एवं उनके व्यावसायीकरण के कारण विसंगतियों का शिकार हुए है। परसाईजी एवं विनोदजी ने अपने निबन्धों में इनके प्रति अपनी कड़ी प्रतिक्रिया दी है।

वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य की बात करे तो यह निसंदेह कहा जा सकता है कि विनोदजी उनके बादशाह है। वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य निबन्धों का जहाँ तक सवाल है विनोदजी की इस रूप में श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति रही है। उनके निबन्धों में व्यापक रूप से वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है। परसाईजी ने भी इस दिशा में समान्तर रूप से निबन्धों में उसे स्थान दिया है पर विनोदजी के निबन्धों को देख लगता है कि वो इस दृष्टि से एक मज़े हुए कलाकार है। ऐसी अभिव्यक्ति में देखा गया है कि उसमें व्यंग्य का दायरा थोड़ा कम हो जाता है हास्य थोड़ा विशेष हावी हो जाता है पर यह कहना पड़ेगा कि दोनों लेखको ने विभिन्न व्यवसायों, कारोबारों व नौकरियों के साथ जुड़े हुए लोगों को एवं लोगों की व्यक्तिगत आदतों, वृत्तियों स्वभावगत मानसिकताओं को लेकर जो हास्य-व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की है उनमें विशेष रूप से सफलता मिली है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों निबन्धकारों ने हर प्रकार के विषय को चुना है। जिसमें परसाईजी ने राजनैतिक व प्रशासनिक विसंगतियों पर विस्तार से लिखा है तो विनोदजी ने वैयक्तिक विसंगतियों पर, सामाजिक हास्य-व्यंग्य को लेकर दोनों ने समान्तर रूप से विशाल फलक पर अपनी अभिव्यक्ति दी है एवं धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक व शैक्षिक क्षेत्र को दोनों ने उचित रूप से विभिन्न पहलुओं पर व्यक्त किया है।

हास्य-व्यंग्यकार अन्य साहित्यकार से उनके अभिव्यक्ति कौशल्य से ही अलग पड़ता है। माना जाता है कि हास्य-व्यंग्यकार के लिए उनका अभिव्यक्ति कौशल्य ही विशेष महत्त्वपूर्ण होता है वही व्यंग्यकार ज्यादा प्रहारात्मक व प्रखर बन सकता है जिनकी भाषा, शब्दचयन व शैली में विषयानुरूप संकलनात्मक संयोजन हो। जो भावों को मारक व मर्मान्तक रूप में व्यक्त कर सके। इस सन्दर्भ में हम परसाईजी एवं विनोदजी के निबन्धों के बारे में कह सकते हैं कि उनकी प्रखरता का यही कारण है कि उनका अभिव्यक्ति कौशल्य विविधोन्मुखी है। दोनों लेखक भाषा को अपने श्रेष्ठतम हथियार के रूप में मानते हैं। कथ्यानुरूप दोनों ने सामान्य भाषा, विद्वत्भाषा, जनभाषा, चलती भाषा, गलियों की भाषा, लोकभाषा का प्रयोग किया है। घटना, पात्र, विषय, समय के अनुरूप वो अपनी भाषा के तेवर बदल देते हैं। यही कारन है कि उनका हर निबन्ध नवोन्मेशी लगता है। लक्षणा, व्यंजना, श्लेष, वक्रोक्ति का उन्होंने सहजता से प्रयोग किया है। तो मुहावरों, कहावतों, सूक्तियों का प्रयोग उनके लिए सहज ही समभाव्य हो गया है। दोनों निबन्धकारों ने शब्दों के चुनाव में काफी समजदारी व सतर्कता दिखाई है इन्हीं से उनको इतनी उचाई मिल सकी है। जिनमें उनका रचनात्मक अभिगम भी उतना ही महत्त्व रखता है। दोनों लेखक यह स्पष्ट मानते हैं कि लेखक व पाठक के बीच संप्रेषणीयता स्थापित करने के लिए अगर अनुकूल रूप में शैलीय आधार न दिया जाय तो रचना को यथोचित प्रतिसाद मिलता नहीं है। यही कारन है कि परसाईजी एवं विनोदजी अपने निबन्धों के शैलीय पक्ष को भी कथ्यानुरूप बनाकर विकसित किया है। इन दोनों निबन्धकारों ने तरह-तरह की शैलियों का प्रयोगकर एक आदर्श भी प्रस्तुत किया है। इन सन्दर्भ में उनका कार्य मिलके पथ्यर समान पाया जाता है। हास्य-व्यंग्य को विधा का रूप देने में उनके इस अभिव्यक्ति कौशल्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ये अपने आप स्पष्ट हो जाता है। हास्य-व्यंग्य साहित्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए किस प्रकार के ओज़ार चाहिए ये उनका आदर्श रूप परसाईजी एवं विनोदजी के निबन्धों से सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट के निबन्धों का समग्रतया आकलन किया जाय

तो हम ये आभास अवश्य करेंगे कि उनमें बहोतसी ऐसी खुबियाँ हैं जो दोनों निबन्धकारों को कुशल निबन्धकार के रूप में प्रस्थापित करती हैं। दोनों के निबन्धों में विषय वैविध्य उनके कथ्यात्मक रूप को आकर्षण का केन्द्र बनाती है। दोनों निबन्धकारों ने हर प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। हम कह सकते हैं कि जीवन पर्यन्त इन्सान जिस प्रकार की आपाधापी से गुजरता है, जिस प्रकार की क्रिया-प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों को निभाता है, ऐसे सभी घटनाक्रम को विषय के रूप में अपनाकर दोनों निबन्धकारों ने अपने निबन्ध में कथ्यगत वैविध्य को बनाये रखा है।

हरिशंकर परसाई एवं विनोदजी के निबन्धों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि दोनों नवोनवोन्मेशी हैं, विकासशील साहित्यकार हैं। उनका निबन्ध साहित्य जिस प्रकार से गतानुगतीत रूप में आगे बढ़ता गया, दोनों निबन्धकारों ने समय के साथ चलते हुए अपने निबन्धों के पहेनावे को युगानुरूप बनाया है। जिससे वो हरदम विकासशील निबन्धकार की पहचान बना सके हैं। इसलिए उनके बारे में कहा जाता है कि ये 'आधुनिक संचेतना से जुड़े हुए निबन्धकार हैं। वो वर्तमान के रचनाकार हैं। उनका साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के भारत का है। स्वतंत्रता के पश्चात की हलचलों को इन दोनों निबन्धकारों ने यथार्थ रूप में व्यक्त किया है। वर्तमान समस्याओं को यथातथ्य रूप में व्यक्त करना यही उनके निबन्धों का आधार है। दोनों निबन्धकारों ने बड़ी-बड़ी समस्याओं को तो लिया है। साथ-साथ वर्तमान के मामूलीपन या रोजमर्रा को रचनाकारों ने जिस तरह से प्रतिष्ठित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए हम कह सकते हैं कि ये प्रगतिशीलता को, विकासशीलता को अपनाये हुए हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति जितनी जटिल क्लिष्ट, कष्टदायक व छद्मावेशी है उसे आत्मसात करते हुए मन, कर्म, वचन से उनसे संघर्ष करते हुए दोनों निबन्धकारों ने एक आदर्श प्रस्थापित किया है। मानवमूल्यों की रक्षा करते हुए अनैतिक शक्तियों को मात देने की रणनीति उनके निबन्धों में देखी जा सकती है। विसंगतियों के खुलासे के लिए जिस तरह के शाब्दिक अस्त्रों का प्रयोग किया है, जिस तरह के दांवपेच व उतार-चढ़ाव देखे जाते हैं उसे देख हम अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत की चुनौतियों का

सामना काफी सभानता के साथ किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ बनता-बीगड़ता हुआ सक्रिय यथार्थ दोनों के निबन्धों में व्यक्त हुआ है। जिसमें वर्तमान भारत के द्वन्द्व को उभारा गया है।

दोनों निबन्धकारों में यह देखा जा सकता है कि उन्होंने वास्तविकता को कभी नज़र अंदाज़ नहीं किया है, उनका दृष्टिकोण हरदम यथार्थवादी रहा है। पर यह भी हमें मानना ही पड़ेगा कि उनकी अभिव्यक्ति चाहे कितनी ही वास्तववादी हो वो खुलेआम खरी-खरी सुना रहे हो, कठोर से कठोर रूप में अपनी प्रस्तुती दे रहे हो पर इन सारी मशक्कत के बीच उनका समाजोन्मुखी रूप, लोक कल्याण की भावना आम आदमी के पक्षधर के रूप में ही उभरती है, उनके निबन्धों में सामाजिक एवं मानवीय यथार्थ की चरित्र मूलक सृष्टि हुई है। जो हमें कबीर के जमाने में ले जाती है।

परसाईजी एवं विनोदजी के निबन्धों का जो कथ्य है, उनमें जिन गाथाओं का चितार मिलता है उनका आकलन करने से ये सहज अनुभूति होती है कि दोनों निबन्धकारों ने ज्यादातर आम इन्सान की रोज़बरोज़ की संवेदनाओं को व्यक्त किया है। इन दोनों निबन्धकारों के निबन्धों में अभिव्यक्त कथ्य का वैशिष्ट्य यही है कि वह आम आदमी के आत्मीक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है यही इन निबन्धकारों की महत्त फलश्रुति है।

परसाईजी एवं विनोदजी के निबन्धों का आकार भले ही छोटा हो, पर इनमें छोटी-छोटी संवेदनाओं का महासागरीय रूप अभिव्यक्त हुआ है। जो वैसे तो भिन्न-भिन्न संवेदनाओं से भरे हुए हैं पर उसे एक साथ पढ़ने से वह एक बृहत युग-गाथा बन पड़ती है जो हमें तरबतर कर देती है। उनकी इसी क्षमता के कारन वह श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य लेखक के रूप में अपने आपको प्रस्थापित कर सके हैं। उनके निबन्धों में बौद्धिकता व संवेदना का उचित सामंजस्य मिलता है। जिसमें पूर्ण रूपेण आधुनिक संचेतना की छटपटाहटें, किलकारियों का शोर सुनाई पड़ता है। जिनके अध्ययन से हमें इस बात की अनुभूति अवश्य होती है कि उनके निबन्ध साहित्य में ज्ञानशील साहित्य की जरूरतों के साथ आत्मीक सृजन की संभावनाओं की पूर्ति हुई है।

साहित्य की खुराक समाज है। सामाजिक गतिविधियों से प्रभावित होकर ही रचनाकार उनके लिए कुछ लिखता है। फलतः उनका समाजोन्मुखी होना, उनसे सामंजस्य होना जरूरी बन जाता है। इस सन्दर्भ में हम परसाईजी एवं विनोदजी के निबन्धों को देखे तो ये सहज मिलेगा कि उनका निबन्ध-साहित्य इन्सान के सामाजिक जीवन के दस्तावेज़ों का विश्वसनीय आकलन है। मानवीय जीवन के विभिन्न स्पंदनों, संवेदनाओं को उन्होंने ने उचित ढंग से स्थान दिया है। उनकी अभिव्यक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानवीय जीवन व उनकी सामाजिक भूमिका को विभिन्न उतार-चढ़ाव के साथ परखते हुए काफी विश्वसनीयता के साथ उस सामाजिक सत्य को व्यक्त किया गया है। वैसे हास्य-व्यंग्य साहित्य में सत्य की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है क्योंकि खरीं-खरीं सुनाने के लिए सत्य का आधार जरूरी बन पड़ता है। इस कारन हास्य-व्यंग्यकार उंची आवाज़ में बात कर सकता है। इन दोनों निबन्धकारों के निबन्धों का आधार सत्य ही है, इसलिए वो खूलेआम कठोर भाषा का प्रयोग करते हुए भी पाये जाते हैं। पर यह भी मानना पड़ेगा कि उनका उद्देश्य कल्याणकारी है। उनकी नज़रो से शिवत्व कभी-भी ओज़ल नहीं हुआ है। इसी कारण ऐसा लगता है कि उनकी रचनाओं में साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आत्मीक व आध्यत्मिक सौंदर्य का साहचर्य मिलता है। उनके निबन्धों में सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के त्रिगुणात्मक भावबोधका अनुपालन सहज ही साध्य हो सका है। जिनके पीछे इन दोनों निबन्धकारों के रचनात्मक अभिगम की भी बड़ी भूमिका मानी जा सकती है। इसी कारन ही उनके निबन्धों की प्रतिष्ठा जन-जन के हृदय में प्रस्थापित हो सकी है। जिसे उनकी स्वच्छता, स्वस्थता, निच्छलता व आत्मपरकता ने प्रभावित किया।

हरिशंकर परसाई एवं विनोदजी के निबन्धों का महत्त्व इसलिए भी बरकरार रहा है कि उनका निबन्ध साहित्य जनकला से जुड़ा हुआ है। उनमें छोटे-बड़े हर इन्सान की बात है। उनके निबन्धों में बड़े लोगो के बड़े कारनामों को खोलकर कोसा गया है, तो साथ ही उनमें सर्वहारावर्ग के प्रति सहज जुड़ाव भी देखा जा सकता है। इसी कारण वह अपने निबन्धों में जमीनी हकीकतों को स्थान दे सके हैं, एवं भारतीय सभ्यता व

संस्कृति के महत्त्व के प्रति समझ पैदा कर सके हैं।

परसाईजी व विनोदजी ने अपने भावबोध को लोगों तक पहुँचाने के लिए जिस प्रकार का ढाँचा तैयार किया है वो प्रशंसनीय है। जिसमें बहोत से ऐसे नवीन सन्दर्भ मिल जाते हैं जिनके कारण हास्य-व्यंग्य विधा को काफी बल मिला। कहाँ जा सकता है कि ये उनका खुदका बनाया हुआ ढाँचा है, ये दोनों लेखक जितने स्वच्छन्द हैं उतने आत्मपरक भी। इसलिए उनकी अनुभूति व अभिव्यक्ति में जितना वैविध्य है, उतनी ही गहराई भी है। इसी सामंजस्यता के कारण वह अपनी एक अलग ही शैली का निर्माण कर सके। उनके निबन्धों में प्राचीन व नवीन परिपाटी का सुभग समन्वय देखा जा सकता है। उसी प्रकार से हास्य और व्यंग्य दोनों रूपों के बीच भी उनका सामंजस्य भी काफी कारगर रूप में देखा जा सकता है। उनके निबन्धों के द्वारा यह महसूस किया जा सकता है कि उन्होंने किसी एक परम्परा का अनुपालन नहीं किया है पर उन्होंने अपना रास्ता खुद बनाया है।

परसाईजी एवं विनोदजी का रचना क्षेत्र इतना व्यापक है कि जिनसे कोई भी प्रभावित हो सकता है। उन्होंने ने इतने विशाल फलक पर निबन्धों की रचना की है कि जिसमें हर प्रकार का वैविध्य मिल सकता है। भाव, भाषा, शैली हर दृष्टिकोण से उन्होंने हो सके इतना वैविध्य लाने का प्रयास किया है। यह इसलिए संभव हो सका है कि निबन्ध एक मूल विधा है और हास्य-व्यंग्य साहित्य के लिए भी ऐसी कोई पाबंदियाँ नहीं हैं इसलिए दोनों निबन्धकारों ने खुलकर, खिलकर अपने कथ्य व शिल्प को अपने अनुकूल ढाँचे में सजाया है। यही कारन है कि परसाईजी एवं विनोदजी के निबन्ध साहित्य में हमें अन्य विधाओं का अनावरण होता हुआ भी मिलता है। कविता, कहानी, रेखाचित्र-संस्मरण रिपोर्टाज आदि विभिन्न विधाओं का आस्वाध्यजनक प्रारूप दोनों के निबन्धों में पाया जाता है। निबन्ध विधा एक ऐसी विधा है, जिसे हम सर्वग्राह्य विधा मान सकते हैं। निबन्ध को आप किसी भी ऐसे विधागत ढाँचे में ढाल सकते हैं क्योंकि उसमें ऐसी कोई अन्य विधाओं के समान स्वरूपगत पाबंदी नहीं है। सिर्फ उनके स्वभावानुसार उन तत्वों का निर्वाह जरूरी है, जो उनकी पहचान बनाते हैं। निबन्ध के इस मूलभूत

आधार को समजते हुए दोनों निबन्धकारों ने अपने निबन्धों में विभिन्न विधाओं की आस्वाध्यजनक अभिव्यक्ति की है।

दोनों निबन्धकारों के निबंधों को 'काव्यशास्त्रीय' ढंग से तराशने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रचनाओं में निबन्धात्मक तत्त्वों का समूचित समाहार हुआ है। दोनों लेखकों ने सभी प्रकार के निबन्ध लिखे हैं, जिनमें उनकी स्वरूपगत समीक्षा करने पर वो सफल सिद्ध होते हैं, क्योंकि दोनों निबन्धकारों ने वैयक्तिकता, वैचारिकता, संक्षिप्तता, स्वच्छंदता, बौद्धिकता, काल्पनिकता आदि निबन्धों के मूलभूत तत्त्वों को आधार मानते हुए उनका समूचित प्रयोग किया है, जिनके कारण उनके निबंधों का आन्तरिक व बाह्य प्रभाव हरतरह से पाठकों को आकर्षित करता है। यही कारण है कि परसाईजी एवं विनोदजी को विशाल पाठक वर्ग का समर्थन हासिल है। उनके निबन्ध इसलिए जनप्रिय बन सके हैं। आज उनका निबन्ध-साहित्य हिन्दी व गुजराती में आधारभूत साहित्य के रूप में माना जाता है। जिन्होंने हास्य-व्यंग्य साहित्य के लिए बहोतसी ऐसी नवीन दिशाओं को खोला है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि परसाईजी एवं विनोद भट्ट भले ही भिन्न-भिन्न भाषा-साहित्य से जुड़े हुए हों पर उनकी मूलभूत संवेदना समान प्रतिभासित होती है। उनकी भावबोधता एवं अभिव्यंजना में काफी हद तक एकात्मकता पाई जाती है। जिनके कारन वो अलग-अलग भाषा साहित्य, एवं प्रदेशों से जुड़े हुए होने के बावजूद भी एक ही नाव में सवार होकर साथ-साथ यात्रा करनेवाले साथी के समान हैं। सिर्फ भाषा भेद ही दोनों के बीच की दूरी को बरकरार रखती है। साथ-साथ कुछ बातें ऐसी भी हैं, जो दोनों के निबंध साहित्य में कुछ भिन्न-भिन्न रूपों में देखी जा सकती हैं, जैसे परसाईजी के निबन्धों में व्यंग्य का पुट ज्यादा है। हास्य का कम तो विनोदजी के निबन्धों में हास्य का पुट व्यंग्य के साथ समानान्तर रूप में पाया जाता है। उसी प्रकार से परसाईजी के निबंधों में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य ज्यादा है प्रादेशिक कम। विनोदजी के निबन्धों में प्रादेशिकता व राष्ट्रीयता समानान्तर रूप में पाई जाती है। परसाईजी के निबन्धों में राजनैतिक व प्रशासनिक हास्य-व्यंग्य विशेष मिलता है। जब की विनोदजी ने वैयक्तिक हास्य-व्यंग्य को

ज्यादा महत्त्व दिया है। परसाईजी के निबन्धसंग्रहों व निबंधों के शीर्षकों में संक्षिप्तता एवं व्यंजनात्मकता पाई जाती है, जब कि विनोदजी के शीर्षकों में देखा जा सकता है कि वो थोड़े लम्बे व लचीले हैं। परसाईजी के निबन्ध संग्रहों में दर्ज निबंधों में ज्यादातर विषय वैविध्य मिलता है, जबकि विनोदजी के ज्यादातर संग्रह ऐसे हैं जिनमें किसी एक ही विषय पर लिखे गये निबन्ध मिलते हैं। परसाईजी के निबंधों में गम्भीरता व चिन्तनात्मकता कुछ विशेष देखी जा सकती है, जबकि विनोदजी किसी विषय के संदर्भ में उतने गम्भीर नहीं पाये जाते, वो हलके-फूलके ढंग से चलती भाषा में तरलता के साथ विषय का निरूपण करते हुए पाये जाते हैं। विनोदजी के निबन्धों में हास्य का पुट विशेष होने से वो ज्यादा भारी-भरकम नहीं लगते हैं। इस तरह भाषिक व प्रादेशिक अन्तर के कारण दोनों में कुछ असमानता देखी जा सकती है, पर पाठकिय सम्प्रेषण के दृष्टिकोण से दोनों में काफी कुछ समानता भी देखी जा सकती है। उनका एक कारन यह भी है कि विनोदजी का हिन्दी हास्य-व्यंग्यकारों के साथ संवाद चलता ही रहता था। विनोदजी और परसाईजी कभी-कबार गोष्ठियों में मिल भी जाते थे। डॉ.मजीठियाजी गुजरात के हिन्दी हास्य-व्यंग्य साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। उनके साथ विनोदभाई का मित्रवत व्यवहार चलता था, तो हिन्दी के हास्य-व्यंग्य लेखक बालेन्दु-शेखर तिवारी, शंकरपुणतांबेकर के साथ भी विभिन्न गोष्ठियों में संवाद चलते रहते थे। १९८९ में भावनगर में हास्य-व्यंग्य लेखकों की एक गोष्ठी का आयोजन हुआ था, जिनमें इन सभी महानुभावों का भाव-मिलन हुआ था, जिसमें मैं भी अभिभावक के रूप में शामिल था। विनोदभाई के लेख हिन्दी पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। यही कारन है कि विनोदभाई का सारोँकार हिन्दी भाषा के साथ भी विशेष रूप से रहा है। उन्होंने हिन्दी में कुछ रचनायें भी दी हैं, एवं उनका साहित्य गुजरात के अलावा भारत के अन्य प्रदेशों में भी पढ़ा जाता है, यही कारण है कि डॉ.शर्माजी ने विनोदजी के एक समीक्षात्मक पुस्तक 'विनोद-विमर्श' का हिन्दी अनुवाद किया, जो यह दिखाता है कि विनोदजी को परसाईजी के साथ जोड़ के देखने में कुछ ऐसा ऐतिहासिक सन्दर्भ भी जुड़ा हुआ है। इसलिए भगवानदास कहार ने भी माना है कि, "हास्य-व्यंग्य के स्तर पर विनोद भट्ट,

हरिशंकर परसाई की व्यंग्य धर्मी दृष्टि के अधिक निकट ठहर पाते हैं।^(३)

संक्षिप्त में कहे तो हरिशंकर परसाई हिन्दी हास्य-व्यंग्य साहित्य के श्रेष्ठतम हस्ताक्षर हैं एवं विनोदभाई भट्ट गुजराती हास्य-व्यंग्य साहित्य के श्रेष्ठतम हस्ताक्षर हैं, दोनों की अभिव्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में उत्तमोत्तम मानी जाती है। यही कारन है कि आज भी उनका प्रभाव उतना ही है, जितना उनके जमाने में था। परसाईजी ने तो आज साहित्यजगत को अलविदा कर दिया है, पर विनोदजी उसी अंदाज में आज भी निरंतर लिख रहे हैं। इन दोनों लेखकों के बारे में उतना ही कहा जा सकता है कि ये हास्य-व्यंग्य साहित्य में 'भीष्म पितामह' के समान हैं, उनके बिना हास्य-व्यंग्य साहित्य को इतनी ऊँचाई मिल सकती नहीं है। हास्य-व्यंग्य साहित्य में से इन दोनों निबंधकारों को निकाल लिया जायतो पीछे कुछ रहता नहीं है।" - "हरिशंकर परसाई उन लेखकों में से हैं, जिनके बिना हिन्दी के आधुनिक व्यंग्य लेखन की प्रतिष्ठा संभव नहीं होती।"^(४) परसाईजी की महत्ता से अभिभूत होकर यशपालजी ने भी माना है कि - "तुम्हारी लेखनी महान है, जिसे पढ़कर लोग तिलमिला जाते हैं और लाठी उठा लेते हैं।"^(५) विनोदभाई के हास्य-व्यंग्य निबंधों का असर भी गुजराती साहित्य में ऐसा ही देखा जा सकता है। प्रफूल्ल रावल ने सही कहा है कि - "हलवा निबंधना सर्जक तरीके नी विनोदजी नी प्रतिभा ने ओप मले छे। क्यांक उंडाणमांथी कोईक अनुभूति जबके छे जे हास्य थी इतर रूप ने व्यक्त करेछे, अने एम निबंधकारनुं व्यक्तित्व महोरे छे। आथी तेमना व्यंग्यमां सबलता, साहजिकता नी साथे-साथे आस्वादता पण सहज भावे आवी जाय छे।"^(६) विनोदभाई की महत्ता को कुछ अलग-अंदाज में व्यक्त करते हुए रघुवीर चौधरी ने माना है कि - "विनोद भट्ट ने लोकप्रिय करवामां कोई विवेचकोनो फालों नोंधायेलो जाण्यो नथी। परिस्थिति ऐथी उल्टी हशे, कदाच थोडाक विवेचकों ने आ हास्यकारे जाणीता कर्या हशे।"^(७)

इनसे स्पष्ट है कि हरिशंकर परसाई एवं विनोद भट्ट हिन्दी व गुजराती हास्य-व्यंग्य निबन्ध साहित्य के ऐसे दो नाम हैं, जिन्होंने अपने ही दम पर बिना किसीका

सहारा लिए अपना एक नवीन अंदाज पाठकों के सामने रखा जो आज जनप्रिय बन गया है। उन्होंने ऐसा रास्ता बनाया है, जिन पर आज अनगिनत साहित्यकार चल रहे हैं। परसाईजी एवं विनोदजी की भूमिका एक वटवृक्ष के समान है, जिन्होंने दुनियाँ के साथ संघर्ष करते हुए काफी कुछ दिया आज उसीका परिणाम है कि हास्य-व्यंग्य साहित्य को इतनी ऊँचाई प्राप्त हो सकी है। जिनका भविष्य भी काफी उज्ज्वल है क्योंकि परसाईजी एवं विनोदजीने इसकी ऐसी नींव डाली है कि अनंतकाल तक हास्य-व्यंग्य साहित्य का प्रभाव बना रहेगा।

साँद भूँ साँची

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास	लेखक / संपादक	पृ.क्रमांक
१	देश के इस दौर में	डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी	आवरण से
२	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	३८
३	हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन	डॉ.भगवानदास कहार	४४३
४	ऐसा भी सोचा जाता है	हरिशंकर परसाई	आवरण से
५	आँखन देखी	सं.कमला प्रसाद	२०
६	विनोद भट्ट (सर्जक श्रेणी)	प्रफुल्ल रावल	४७
७	परब (अंक, ७/८)	सं.भोलाभाई पटेल	४४

परिशिष्ट

टाणी नु क्रमिक ग्रंथानु क्रमणिका

आधार ग्रंथ (हिन्दी)				
क्रमा	ग्रंथकका नामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
१	अभी अभी बी मारी	हरिशंकर प्रसाद	वाणी प्रकाशक	द्वितीय २००१
२	ऐसा भी सो जाऊ है	हरिशंकर प्रसाद	वाणी प्रकाशक	द्वितीय २००१
३	आँ र अन्त माँ	हरिशंकर प्रसाद	अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६८
४	काग भगा डे	हरिशंकर प्रसाद	वाणी प्रकाशक	१९९९
५	जाँहे पह जाँहे लो	हरिशंकर प्रसाद	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९९१
६	जैसे जके दफिरे	हरिशंकर प्रसाद	भारतीय इकाफी द दिल्ली	द्वितीय २००१
७	ठिठर हाहु आण्ड	हरिशंकर प्रसाद	मयूर प्रेस बौद्धिक	१९९४
८	हवा की बाँध और भी	हरिशंकर प्रसाद	राजपाल प्रकाशन, दिल्ली	१९५६
९	तिरछी रेखाएँ	हरिशंकर प्रसाद	वाणी प्रकाशक	द्वितीय २०००
१०	देना कवाले लो	हरिशंकर प्रसाद	नवाँ दया सेल्स, दरिया प्रकाशक	१९९४
११	मिठले की डायरी	हरिशंकर प्रसाद	अर प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली	१९६८
१२	मड्डियों का काम	हरिशंकर प्रसाद	राजपाल प्रकाशन, दिल्ली	१९७६
१३	परसाई रचनावली - भाग ३	सं. क्रमला प्रसाद प्रकाशदुर्बो अदि.	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९८५
१४	परसाई रचनावली - भाग ४	सं. क्रमला प्रसाद प्रकाशदुर्बो अदि.	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९८५
१५	बोई माँ की परत	हरिशंकर प्रसाद	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९६५
१६	बाँले लो रेखाएँ	हरिशंकर प्रसाद	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९७१
१७	मेरी श्रेष्ठ ग्रंथें	हरिशंकर प्रसाद	ज्ञानभारती या प्रकाशन दिल्ली	द्वितीय १९७७
१८	विक्रम श्रद्धा कदौ	हरिशंकर प्रसाद	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९७०
१९	लौहवा की फिलत	हरिशंकर प्रसाद	युनिवर्सल प्रकाशन, जबालपुर	१९७८

क्रमा	ग्रंथककानामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
२०	शिक्षयस्मृतेष्वैषी है	हरिशंकर प्रसाद	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९७०
२१	सदाचार कलावीज	हरिशंकर प्रसाद	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	साप्ताहिक २०१
२२	सुनो भाई साधो	हरिशंकर प्रसाद	युनिवर्सल प्रकाशन, जबालपुर	१९६५
आधार ग्रंथ (गुजराली)				
१	अतथी ईति	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९४
२	आववाक्से आववाद	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९७९
३	अहो वीर इतिहास	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९४
४	कारण के	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	प्रथम १९९४
५	ग्रंथनी गुर बाड	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९६
६	फरो वाकुं फरो वा	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९८९
७	पहे कु सुखे मुं गी मर	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	१९६२
८	प्रसांगी पात	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९९
९	भूतभूत के वी देवी	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९४
१०	मरुतुं नाम मरी	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	प्रथम २००१
११	मां गल अमां गल	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	प्रथम २००३
१२	वारे रे वारे रे वारे रे	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९४
१३	विमोक्षट्ट कां प्रेमप्रे	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	चतुर्थ १९९४
१४	विमोक्षट्ट की मरुते	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९८६
१५	सुनो भाई साधो	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	द्वितीय १९९४
१६	हास्यापचार	विमोक्षट्ट	गुरु रंजित शर्मा प्रकाशन	प्रथम २०००
सां दभं ग्रंथ (हिन्दी)				
१	आत्मसाहसिकीबां	ऊर्कषेदेव शर्मा	रीतबु कछो द्वितीय	१९७४
२	अष्टु न्हिकहिदी रद्व शैली का विकास	ऊर्कषेदेव शर्मा	रंजित शर्मा रामबाग, कानपुर-१२	चतुर्वार १९७९
३	अष्टु न्हिकव्यं यका स्त्रोत और स्वरूप	छविनाथ मिश्र	साहित्यिक ब्रिडिशर्स हाउस, दिल्ली	१९७९
४	अष्टु न्हिकहिदी कव्यमें टयां ग्या	ऊर्कषेदेव शर्मा	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	१९९७
५	अष्टु न्हिकहिदी साहित्य मां टयां ग्या	ऊर्कषेदेव शर्मा	रिसर्क प्रकाशन, दिल्ली	१९७६
६	अष्टु न्हिकहिदी साहित्य, विवाद और विवेचना	मुरती मनोहर प्रसाद सिंह	स्वराज प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम २०००
७	अष्टु न्हिकहिदी साहित्य में मनो वैज्ञानिक भावना	ऊर्कषेदेव शर्मा	ट्रांस एशिया प्रब्लिकेशन्स	प्रथम २००१

क्रमा	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
८	एक और तात्त्विकी की भूमिका से	मरेन्द्रकेशरी	दिल्ली	१९७०
९	काव्य के रूप	बाबू लालराय	आचार्य राम एण्ड सन्स, दिल्ली	१९८९
१०	काव्य शास्त्र	जैयसी द्विवारी	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर	१९९०
११	कविसंकेत प्रमाण	जैमवर सिंह	दिल्ली	१९६९
१२	कबीर	जैमवर प्रसाद द्विवेदी	द्वाराणसी	१९६२
१३	कबीर दास	कमल मारफै	गालिलियस	१९८५
१४	जाला और जल	हरिशंकर पर्रई	भारतीय बुक ट्रस्ट, दिल्ली	प्रथम २००३
१५	जी पी श्री वास्वकी कृतियों में हास्यविमोद	श्यामसुन्दरी जैसवाल	लाखनौ	१९६३
१६	तुलनात्मक साहित्य : सिद्ध और समीक्षा	जैमवर सिंह चौहान	सरदार प्रतियुक्ति, विद्यानगर	प्रथम १९९४
१७	तुलनात्मक अध्ययन : भारतीय भाषाएँ	संहराफूरकर	वापी प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम १९९२
१८	तुलनात्मक संक्षेप : एक समस्याएँ	संजय लाल सुन्दर जैसवाल	हिंदी साहित्य संघ, लाखनौ	प्रथम १९८०
१९	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	डा. इन्द्रनाथ चौधरी	वैष्णव भारतीय हिंदी प्रचार संस्था	१९८३
२०	तुलनात्मक अध्ययन : साहित्य और समस्याएँ	जैमवर पर्रई	वापी प्रकाशन, दिल्ली	१९८३
२१	तुलनात्मक साहित्य	डा. नगेन्द्र	शेखर प्रबुद्धि शाह हाउस, दिल्ली	१९८३
२२	तेल की प्रकृति	प्रभाकर माधव	ज्ञानोदय प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६२
२३	मई हिंदी कहानी में सामाजिक के तना : प्रतिक्रिया और स्वास्त	कमल द्विवारी	आशा के बुक, सागर विश्वविद्यालय	१९८०
२४	निबंध सिद्ध और प्रयोग	डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी	हिंदी के अकादमी, बिहार	प्रथम १९७१
२५	निबंध सप्तक	सं. रामनाथ मिश्र एवं मनोहर गौतम	एन. टी. दंत प्रतीति, दिल्ली	१९९६
२६	परसाईर काव्य की भाषा	सं. कमला प्रसाद प्रकाश दुबे आदि.	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९८५

क्रमा	ग्रंथककानामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
२७	परसाइरक्षावती भाष्य	सं. कमलाप्रसाद प्रकाशदुर्बो अदि.	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९८५
२८	पहल पुस्तिका	ऊँमवरसिंहसेतु	रेशा प्रेस, देवसाहकर	
२९	पश्चाद्य काव्यशास्त्र	ऊँकृष्णदेवशर्मा	विमोक्ष संस्कृत वि, आग्रा	सं. १९९९
३०	पश्चाद्य काव्यशास्त्रक सिद्धांत	ऊँकृष्णदासप्रसाद शर्मा	अशोक प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम १९९८
३१	भारतेंदु युगीन साहित्य साहित्यमें युगीन साहित्य की अभिव्यक्ति	ऊँशुक्रान्तदुर्बो	सुधाभाषा प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम १९९७
३२	भारतीय काव्यशास्त्रक सिद्धांत	ऊँगणपतिचन्द्र गुप्त	तोषार प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९७
३३	भारतीय काव्यशास्त्रक सिद्धांत	ऊँमनलाल शर्मा	प्रेमशील प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम १९९९
३४	मेरी श्रेष्ठ गुरु	नरेन्द्रकोहली	ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली	१९७७
३५	मेरी श्रेष्ठ गुरु	ऊँनरसातेतत चतुर्दशी	ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली	१९७०
३६	रसमीमांसा	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	ज्ञानी ठाकुर प्रकाशन, दाराणसी	१९५७
३७	रसप्रिया	केशवदास (हिस्सा क्र. १)	दाराणसी	१९३७
३८	रसकला	हरिऔध	हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस	वि. सं. २००८
३९	रिमांजिमा	ऊँरामुक्तमरवर्मा	साहित्य भवन प्रतिज्ञा, इलाहाबाद	१९५३
४०	व्यंग्य का व्यंग्य क्या है?	सं. ऊँश्यामसुंदर घांसे	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	१९८३
४१	व्यंग्य कर शरद्वेशी व्यंग्य और शिल्प	प्राणसी पटेल	अप्रशांति प्रकाशन	सं. यु. वि. २००९
४२	व्यंग्य और शिल्प का पुनर्जागरण	ऊँतिवारी	मीर कबुतरी, दिल्ली	प्रथम २००२
४३	व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र	डॉ. माला	साहित्यवापी, इलाहाबाद	१९८३
४४	व्यंग्य का कलात्मक स्थान और बारीकी	ऊँदत्तातक्ता	अमित प्रकाशन, जोधपुर	१९९०
४५	व्यंग्य का भारतीय गान गद्य	मां. गी. लाल उपाध्याय	स्वाध्याय प्रकाशन, मथुरा	१९८७

क्रमा	ग्रंथककानामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
४६	व्यासजीकेहासम्बिं ६ (व्यासजीके दफ्तर १)	सावित्री सिंहा	एसकां दंक प्रसी, दिल्ली	१९६६
४७	विमोदऔरव्यंग्य	ऊँटु तातशु ब	हिंदी साहित्य संघ, लखनौ	प्रथमा १९६७
४८	विचार और विवेक	डॉ. न. गे. न्द्र	दिल्ली	१९४७
४९	शुद्धोत्तरम्बिं धर्म में साहित्यिक कथा	ऊँगाबू राममै हल	निर्मल प्रबुद्धिकेशव, दिल्ली	प्रथमा १९९३
५०	समकालीन हिंदी व्यंग्यः उल्लिखित व्यंग्य के नये आरामा	भावामदास्वकार	दर्पण प्रकाशन, नडियाद	२००१
५१	समकालीन हिंदी व्यंग्यः एक परिदृश्य	डॉ. सु. दर्शन माजी ठिया	शांति प्रकाशन, हरियाणा	प्रथमा १९९२
५२	समीक्षासिद्धांत	कृष्णदेवशर्मा	विमोदुस्कां दि, आगरा	१९७८
५३	खातं ओत्तर हिंदी साहित्य साहित्यकर	ऊँगाभदेवज्जकर	कदलौ का प्रकाशन, कानपुर	प्रथमा २००२
५४	खातं ओत्तर हिंदीम्बिं ६ एवं निबं ६कार	ऊँगापूरावेदसई	चिंतन प्रकाशन, कानपुर	१९९०
५५	खातं ओत्तर हिंदीम्बिं ६ मानें टयांगरा	उषा शर्मा	आत्मारामा एण्ड सन्स, दिल्ली	१९८५
५६	खातं ओत्तर हिंदी गद्य मानें टयांगरा	ऊँगरिशं कदुबे	विकास प्रकाशन, कानपुर	प्रथमा १९९७
५७	खातं ओत्तर हिंदी कवितामं व्यंग्य	ऊँशेरॉफ	साहित्य भारती, दिल्ली	१९९३
५८	खातं ओत्तर हिंदी व्यंग्य कामू ल्यांकन	ऊँसुरेशमहेश्वरी	विकास प्रकाशन, कानपुर	प्रथमा १९९४
५९	साहित्य विवेक	ऊँकेमदस्सुमान योगेन्द्र मारमलिक	आत्मारामा एण्ड सन्स, दिल्ली	१९९०
६०	साहित्यशास्त्र	ऊँवमीनासामी ऊँओमप्रकाशगुहा	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	द्वितीय १९९४
६१	साहित्यालोचन	ऊँश्यामसुंदरवर	इंडियन प्रेस प्रयाग	१९९३
६२	साहित्यिकम्बिं ६	राऊफशर्मा	विमोदुस्कां दि, आगरा	१९५४
६३	साहित्यमं गद्यकी नई विधि विधि	ऊँकैलाशकद्वर भाटिया	स्वशिला प्रकाशन, दिल्ली	१९९६
६४	साहित्यिकम्बिं ६	ऊँप्रपति कद्वर गुप्त	तोकनारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथमा १९९९

क्रमा	ग्रंथकका नामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
६५	साठो करी हिंदी उद्यानों में व्यंग्य	डॉ. विश्वेश्वर सिंह राठा	पार्थ प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथम १९९९
६६	हरिशंकर परसाई व्यंग्य में वर्णमाला	कु. अ. भा. भट्ट	जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम १९९४
६७	हरिशंकर परसाई की वैचरि कृष्णमि	प्रो. रामोहन्सर्मा	भूमिका प्रकाशनी दिल्ली	१९९९
६८	हरिशंकर परसाई: व्यक्तिगत कृतियाँ	मनोहर देवदिया	साहित्यवापी, इलाहाबाद	प्रथम १९८६
६९	हरिशंकर परसाई हुई रचनाएँ	सं. क्रमता प्रसाद ए. प्रकाश दुबो	वापी प्रकाशन, दिल्ली	द्वितीय २००१
७०	हरिशंकर परसाई आपकी कहानी	डॉ. नन्दलाल कल्ला	शैलजा प्रकाशन, कानपुर	प्रथम २००२
७१	हरिशंकर परसाई दुनियाँ	डॉ. मनोहर देवलिया	साहित्यवापी, इलाहाबाद	प्रथम १९८५
७२	हिंदी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शास्त्री	भारती प्रचारिणी समाजाराणसी	तीसरी दिसंबर २०१२
७३	हिंदी विभाषा का शैलीगत अध्ययन	डॉ. मू. बा. शाहा	पुस्तक संस्थान, कानपुर	१९७३
७४	हिंदी के इतिहास निबंधकार	डॉ. द्वारिका प्रसाद साक्सना	विमलकुस्मं दिग्, आगरा	द्वितीय १९९३
७५	हिंदी साहित्य का आधुनिक काल	डॉ. श्री विद्यास शर्मा	अग्रो क प्रकाशन, दिल्ली	१९९२
७६	हिंदी साहित्य और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार शर्मा	अग्रो क प्रकाशन, दिल्ली	तेरहवाँ १९९२
७७	हिंदी साहित्य का इतिहास	डॉ. न. गे. न्द्र	मयूर प्रेस बौद्ध, नएँ एडा	१९९२
७८	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ. सिमाता चिपलू पकर	अलका प्रकाशन, कानपुर	प्रथम २००१
७९	हिंदी कक्षाएं हास्य और व्यंग्य	डॉ. बा. दे. दु. शेर तिवारी	अग्रो क प्रकाशन, कानपुर	१९७८
८०	हिंदी विभाषा कार	जयनाथ मलिन	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	१९६४
८१	हिंदी के व्यंग्य विभाषा	आनंद प्रकाश गौतम	भिरभार प्रकाशन, महाराणा	प्रथम १९९०
८२	हिंदी व्यंग्य शास्त्र और इतिहास	डॉ. बा. रा. वे. दे. सई	चिन्मय प्रकाशन, कानपुर	१९९०
८३	हिंदी हास्य और व्यंग्य विभाषा और विकास	इन्द्रनाथ मदान	प्रयाग	१९७८

क्रमा	ग्रंथककानामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
८४	हिंदी साहित्य में हास्य रस	डॉ. रमेश चंद्र वर्मा	हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली	प्रथम १९५७
८५	हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य	महावीर प्रसाद द्विवेदी	हिंदी साहित्य संसार, लखनौ	१९६७
८६	हिंदी व्यंग्य के प्रतिमा	डॉ. बालकृष्ण शर्मा	सहयात्री प्रकाश, रांची	१९९१
८७	हिंदी व्यंग्य के प्रतिमा	सं. लक्ष्मी शर्मा	प्रयोग	१९९४
८८	हिंदी साहित्य में व्यंग्य-विज्ञान	डॉ. प्रमोद शर्मा	भारत बुक्स, लखनौ	१९९६
८९	हिंदी व्यंग्य का विकास	डॉ. रामचंद्र वर्मा	विनय प्रकाशन, कानपुर	प्रथम १९९७
९०	हिंदी हास्य व्यंग्य की कविता का सृष्टिक	डॉ. रामचंद्र वर्मा	अनुराधा प्रकाशन, मेरठ	प्रथम १९८६
९१	हिंदी साहित्य के शाखा-१	डी. रे. द्रवर्मा	आदिशक्ति, सारंगपुर	सं. २०२०
९२	हिंदी साहित्य में हास्य रस	डॉ. रमेश चंद्र वर्मा	हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली	प्रथम १९५७
९३	हिंदी कविता में हास्य रस	सर. जे. ए. ए. शर्मा	तो वरार ही प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम १९६९
९४	हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य	सं. प्रेमनारायण टंडन	हिंदी साहित्य संसार, लखनौ	प्रथम १९६७
९५	हिंदी रस का शास्त्र भाग-१	श्री. पुरुषोत्तम शर्मा	इलाहाबाद	१९३१
९६	हिंदी नाटकों में हास्य तत्त्व	डॉ. शास्त्राजी	आगरा	१९६९
९७	हिंदी रंगशिल्प	हरिवंश शर्मा	आगरा	१९६६
९८	हिंदी व्यंग्य साहित्य	डॉ. एन. एन. शर्मा	शाहरी संस्कार, शहरा, दिल्ली	प्रथम १९८९
९९	हिंदी व्यंग्य का विकास और व्यंग्य का साहित्यिक अनुशासन	डॉ. रामचंद्र वर्मा	महाराजसयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा	१९९२
१००	हिंदी की प्रकृति और शाब्दिक प्रयोग	डॉ. रामचंद्र वर्मा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम २००२
१०१	हास्य की रंगशिल्प	डॉ. एस. पी. शर्मा	हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, बनारस	१९५६

क्रमा	ग्रंथकका नामा	लेखकसं पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
१०२	हास्यकाविचोदक	जुवातेदेवमिश्र	रंसादांती	फुलाई १९६६
१०३	हास्यकेसिद्धां त्और मानसमो हास्य	जादिशापांडेय	आरा	१९५२
१०४	हास्यरसस्थआद्युक्तिक हिन्दीसाहित्य	चित्तोकरायण दीक्षित	अस्मारा मण्डस, दिल्ली	१९६४
सां दर्भ ग्रंथ (गुजराती)				
१	आर्षी मनुजराती साहित्यमो इतिहास	खैरमोशाणा त्रिवादी	अर्द्धा प्रकाशन, अहमदाबाद	तृतीयस्व
२	आर्षी मनुजराती साहित्य मो विकसरेखा (आधुनिक युग)	दीरुभाईठाकर	गुर्जरमंडल अहमदाबाद	१९९४
३	आर्षी मनुजराती साहित्य मो विकसरेखा (आधुनिक युग)	दीरुभाईठाकर	गुर्जरमंडल अहमदाबाद	१९९४
४	आर्षी मनुजराती साहित्य मो विकसरेखा (आधुनिक अनु. प्रवाहा)	दीरुभाईठाकर	गुर्जरमंडल अहमदाबाद	१९९५
५	आपणाश्रेष्ठकिंबां	सुरेशदात जयामोहता	स्वभारतसाहित्य मंडल, मुंबई	प्रथमा १९९१
६	अनुवाक	रमोशाशुक्ल	गुर्जरमंडल अहमदाबाद	प्रथमा १९९६
७	आलांके	जयंतभाठक	हरिहरपुस्तकालय, सुरत	प्रथमा १९६६
८	उत्तरसाहित्यिक निबंधां	जयंतभाठक जयंतभाटेल	मोथुतरप्रकाशन, सुरत	प्रथमा १९७७
९	कवितामं रसास्वाद	सं. हेमदेसाई	प्रदीप प्रकाशन	प्रथमा १९९१
१०	गुजराती साहित्य मध्यकालीन सुधारयुग	विनायकावत	अहमदाबाद	प्रथमा १९९३
११	गुजराती साहित्यमो इतिहास ग्रंथ-३	आशं. कजेशी	गुजराती साहित्य परिषद्, अहमदाबाद	प्रथमा १९९८
१२	गुजराती हास्य कटाक्ष	मधुसुंदरपारेख	युनि. प्रिन्सिपल, डा. डि, अहमदाबाद	प्रथमा १९८८
१३	चर्चाणा	प्रदीपदरजी	बा. तला प्रकाशन, दाडादरा	प्रथमा १९९६
१४	जास्ती संस्कृति	रंजीकं. तमोदी	परिचय प्रकाशन, मुंबई	प्रथमा १९६८
१५	जीवपरिचयकवितां सं. चरा	सं. दी. मतात त्रिवादी भारती चिन्तेदी	गुर्जरमंडल अहमदाबाद	प्रथमा १९९८
१६	जूनूनं नमो गद्य	सं. दाशं. कर	अहमदाबाद	१८६५

क्रमा	ग्रंथकानामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
१७	तुलनात्मकसाहित्यः सिद्धांतिविनियोग	डा. प्रसाद श्रीलम्भाट्ट	युनिट प्रिन्टिन्ग बोर्ड अहमदाबाद	प्रथमा १९९८
१८	तुलनात्मकसाहित्यः भारतीयसंदर्भ	सं. त्रैतया जयंत रायदेसाई	युनिट प्रिन्टिन्ग बोर्ड अहमदाबाद	प्रथमा १९९६
१९	तुलनात्मकसाहित्यसमी दिशाामा	डॉ. अश्विनीदेसाई	दिव्यांग दत्तकशास्त्र, बारडोली	१९९२
२०	समुद्रहोहास्यब्राह्मणे	रतिलाल बोरीसार	गुर्जर प्रिन्टिन्ग अहमदाबाद	द्वितीय २००३
२१	निबंधमाला	सं. विनोदचट्ट	भारतीयप्रकाशन मंदिर भवन	१९४०
२२	निबंधरीति	डॉ. जयवन्तराम लक्ष्मीराम	रुक्मीरामधर्म अहमदाबाद	द्वितीय १९१७
२३	निबंधस्वरूप विकास	प्रवीणदरजी	अनन्त प्रकाशन, अहमदाबाद	द्वितीय २००१
२४	निबंधोंपर निबंध	जयंत कोठारी	गुर्जर प्रिन्टिन्ग अहमदाबाद	द्वितीय १९९५
२५	निबंधकारसुरेशप्रेशी	मापीलालह. पटेल	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथमा १९८९
२६	प्रकाशनिबंधविषयक लेखमाला	सुन्दराम	वोराएडकॉफी, अहमदाबाद	२००३
२७	प्रतिशब्द	आशं. कृष्णेशी	वोराएडकॉफी, अहमदाबाद	प्रथमा १९६७
२८	बारसाहित्यस्वरूप	प्रसादब्राह्मण्ट	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथमा १९९३
२९	रामायणीसिद्धांति संप्रत्येय	डॉ. भरत जयंत	साहित्यधाराप्रकाशन, राजकोट	प्रथमा २००२
३०	विनोदचट्ट(संस्कृत श्रेणी)	गुणलाल	समीर प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथमा १९८४
३१	विनोदविमर्श	विनोदचट्ट	गुर्जर प्रिन्टिन्ग अहमदाबाद	प्रथमा १९९७
३२	शैलीसंस्कार	आशं. कृष्णेशी	गुर्जर प्रिन्टिन्ग अहमदाबाद	१९९४
३३	सरवालेभागाकर	प्रिन्टिन्ग जयंतदी	गुर्जर प्रिन्टिन्ग अहमदाबाद	प्रथमा १९९९
३४	संन्यास	सं. सुमनशाह	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	१९८८
३५	साहित्यमां अष्टमिका	डॉ. सुमनशाह	गुर्जर प्रिन्टिन्ग अहमदाबाद	प्रथमा १९८८

क्रमा	ग्रंथकानामा	लेखक/पादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
३६	साहित्यसंकेतोंके सादीमाआ	हरीशंखि	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथमा १९९७
३७	साहित्यकारों	सादबाहमट्ट	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथमा १९९४
३८	सुदर्शनचवली	माणीलाल	अहमदाबाद	१८९७
३९	सुभाषितसुधा	संश्वत्तिले	सुसाअकादमी	प्रथमा १९९४
४०	सुरेशशेखीसुरेश जांशी	सुमानशाह	पार्क प्रकाशन, अहमदाबाद	द्वितीय २०००
४१	संतायार	मधुसूदनरेड्डी	युनिट प्रिंटिंग बांडेगांधीनगर	प्रथमा १९८९
४२	संस्कृतसमीक्षाशास्त्र	रमेशशुक्ल	प्रदीप प्रकाशन	प्रथमा १९८९
४३	हास्यविधाएवं हास्य	रतिलाल बोरीसार	गुरुचरण प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथमा १९९८
४४	हास्यमांदिर	रमणभट्टिक	गुरुचरण प्रकाशन, अहमदाबाद	१९९०
४५	श्रेष्ठहास्यरत्नाकर	संविमलदत्त	महाराष्ट्रसाहित्य मांदिर	षष्ठम्, २००१
सां दभर् ग्रंथ (सांस्कृत)				
१	अग्निपुराण	वादेव्यास	संस्कृत साकायार्थ, अहमदाबाद	विंश १९४४
२	काव्यप्रकाश	ममताचार्य	संस्कृत साकायार्थ, अहमदाबाद	विंश १९४४
३	दशरूपक	धनंजय	संस्कृत साकायार्थ, अहमदाबाद	विंश १९४४
४	नाट्यशास्त्रम्	भरतमुनि	कानपुर	विंश १९६०
५	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	दोख बाब्रकशाह, वाराणसी	विंश २००६
सां दभर् ग्रंथ (अंग्रेजी)				
१	इंशिशह्युमार	जे.बी.प्रिस्टली	लन्दन	१९२९
२	एडिक्वारीऑफ़ोर्ड इंग्लिश	यू.से.फ़ुल्लायू फाल्गर	लन्दन	१९४९
३	फोनाइसिफ़िफ़िद फाटोमीऑफ़ेदयर	फॉफ़ेबा.तिट	लन्दन	१९६१
४	व्युमारऑफ़्युमार	ईसरईवान	फोफीकहासति, लन्दन	१९५४
५	टिटररीक्रिटिसिज एथाईहिस्ट्री	विन्डियमविमसैट	कलीगु.बा.क, न्यायाधिक	१९६५

क्रमा	ग्रंथककानामा	लेखकसमादक	प्रकाशक	प्रकाशवर्ष
६	हाउटू राईट	स्टीफनी कॉक	लन्दन	१९३४
७	कमेरे टीवटी टरे ह्य मोटर एण्ड मोथड	एलरिज एअर	आर्नयु सिअफ लिमोईस प्रेस	१९६९
८	केमररी प्रिटी सिम	मात्मबो डारी एडेविजाल्मार	लन्दन	१९७१
हिन्दी, गुजराती : पत्र-पत्रिकाएँ एवं लेख				
१	आँखन देखी, स. कमाला प्रसाद, दिल्ली, १९८१			
२	आलाचना, स. शिवादान सिंह चौहान, अप्रैल-१९६६			
३	अलेख हरिशंकर परसाई, स्त्रीय आन्दोलन, धर्म प्रबलपुर			
४	ईकोनोमी विकली (पार्टी सिस्टम) र जमीन कोठारी, १९६१			
५	कल्पना पत्रिका, जनवारी, १९६०			
६	गुजरात सामयिक (दिपोल्लो अंक) भा. धीनर, दिस २००२			
७	धर्मगुग, २८ जुलाई, १९७४			
८	परबा, भा. लाभाई पटेल, अहमदाबाद, १९८६			
९	भाषा, स. शशिभारद्वज, जनवारी, २००५			
१०	माधुमाति, स. पुनमादईया, अंक-७, जुलाई २००१			
११	रचनाकर्म, स. डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, अप्रैल २००४			
१२	शांति कल्प, डॉ. मा. हे. शंकरशर्मा, रायपुर (म.प्र.) अप्रैल २०००			
१३	शांति भारती, स. रामगोपाल सिंह, अहमदाबाद, अप्रैल २००५			
१४	सारिका, स. कमलेश्वर, दिल्ली, जून १९७२			
१५	साहित्यालेखकसंघ, शंखडीवाला, सा. भा. धीनर, १९९६			
१६	साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २२ जनवारी, १९७८			
१७	संचेतना, स. मा. ही. प. सिंह, सितम्बर १९८२			
१८	हास्यव्यंग्यभारती, डॉ. रामगोपाल सिंह, अहमदाबाद मार्च २००३			
काशग्रंथ				
१	अदर्श हिंदी शब्दकोश अरु श्री पाठकमार्ग व. ब. क. डिपो चार। प. सी. १९९			
२	संस्कृत हिंदी कोश रामशिवराम ओ. मो. तितातबार सी. दासदिल्ली १९४			
३	बृहद् हिंदी कोश काली दास सादराम्म डलतिबामार स. २००३			
४	गुजराती भाषाको तथु व्युत्पत्तिको शब्दहरिवत्तभायाणी गु. सा. भा. धीनर १९९४			
५	एडिफाइं सिशगु. गु. रा. डिकारपी पी. डी. देशपांडे ओ. व. प. यु. मि. स. १९७९			